देव ग्रंथावली

लक्षण-ग्रंथ

प्रथम खण्ड

लक्ष्मीधर मालवीय
एम० ए०, डी० फ़िल्०

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७

पूज्य पितामह

स्वर्गीय पंडित मदनमोहन मालवीय

की

पावन स्मृति को

समर्पित

आभार

'देव ग्रंथावली—लक्षण ग्रंथ—प्रथम खंड' प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फ़िल्० उपाधि के लिये स्वीकृत मेरे शोध-प्रबन्ध का अर्ध भाग है। वृहदाकार होने के कारण प्रकाशन की सुविधा से देवकृत सात लक्षण ग्रंथों—भाव विलास, रस विलास, सुमिल विनोद, काव्य रसायन, भवानी विलास, कुशल विलास तथा सुजान विनोद—में से केवल प्रथम तीन इस खंड में प्रकाशित हो रहे हैं। अन्य ग्रंथ एवं छंदों की तुलनात्मक प्रतीक सूची अगले खंडों में प्रकाशित करने का विचार है। इनमें से 'सुमिल विनोद' संपादित होकर प्रथम बार प्रकाश में आ रहा है। इन ग्रंथों के संपादन के ब्याज से देव की जीवनी तथा उनकी रचना-प्रक्रिया एवं उनके कतिपय ग्रंथों की प्रामाणिकता पर नई दृष्टि से विचार किया गया है।

मैंने यह शोध-कार्य डॉ० माताप्रसाद गुप्त, संचालक, के० एम० इंस्टीट्यूट, आगरा, के निर्देशन में, जब वह प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में थे, किया था; उनके निर्देशन के लिये मैं उनका अत्यंत आभारी हूं। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ० रामकुमार वर्मा तथा अन्य प्राध्यापकों का, विशेष रूप से पंडित उमाशंकर शुक्ल, डॉ० जगदीश गुप्त एवं डॉ० पारसनाथ तिवारी का, जो मेरे कार्य में निरंतर रुचि लेते रहे हैं, मैं कृतज्ञ हूं। केवल धन्यवाद देकर ऋषि-ऋण से मुक्त नहीं हुआ जा सकता, इसे मैं भली-भाँति जानता हूं; अतः यह रस्म-अदायगी नहीं करता।

मेरे लिये हस्तलिखित पोथियाँ सुलभ कराने में विशेष रूप से डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० राजबली पांडेय ने जो सहायता की है उसके लिये मैं चिरकाल तक उनका ऋणी रहूँगा। यदाकदा मार्ग में कठिनाइयाँ भले ही आयी हों, सभी ने मेरे लिये सामग्री सुलभ कराने में यथासम्भव सहयोग दिया है। एतदर्थ काशिराज श्री विभूतिनारायण सिंह, नीलगांव के राजकुमार श्री भानुप्रतापसिंह, गंधौली के पंडित कृष्णविहारी मिश्र, पंडित विपिनविहारी मिश्र, डॉ० ब्रजकिशोर मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी के डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, बीकानेर के श्री अगरचंद नाहटा, काशी के पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र, इलाहाबाद के श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, कुसमरा के पंडित मातादीन दुबे; इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन; काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय तथा प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय के अधिकारियों का आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य व्यक्तियों ने अनेक रूपों में मेरी सहायता की है, मैं उन सबका उपकृत हूं।

इस कार्य को वर्तमान रूप देने में मेरे मित्र डॉ० बालकृष्ण मालवीय, मेरे बाल्यकाल के

साथी श्री ईश्वरचंद्र व्यास तथा नेशनल टाइपराइटिंग इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद के श्री जगदीश-नारायण अग्रवाल ने जो व्यावहारिक सहायता दी है उसके लिये वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

आज से लगभग सात वर्ष पूर्व एक दिन डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने यह कार्य-भार मुझे सौंपा था। मैं उनके दिये उत्तरदायित्व का अपनी सीमा भर वहन कर सका, मैं इतने में ही संतुष्ट हूँ। इतना निस्संकोच कहूँगा कि आज हिंदी को इस प्रकार के कार्य की बहुत अधिक आवश्यकता है। कवि देव समृद्ध ब्रजभाषा साहित्य के एक समर्थ कवि थे, अतः देश-काल के असीम विस्तार में यदि मेरे इस कार्य को एक रेणुका कण का भी स्थान प्राप्त हो सका तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

३ अप्रैल, १९६४ —लक्ष्मीधर मालवीय

प्रवास के कारण मैं ग्रंथ पर मुद्रण के दौरान निगाह नहीं रख पाया हूँ, अतः संभव है कि प्रमादवश कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों। मैं उनके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

३०. ७. ६६

ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु, —ल. ध. मा.

ओसाका, जापान

विषयानुक्रमणिका

विषय-प्रवेश

सीमा और उपलब्ध सामग्री

सुमधुर ब्रजभाषा के कवियों में देव का स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण है। हमने प्रस्तुत अध्ययन में उनके लक्षण-ग्रंथों के पाठ तथा उनसे सम्बद्ध पाठ-समस्याओं पर विचार किया है अतः कवि के अन्य ग्रंथों का उपयोग केवल सहायक सामग्री के रूप में हुआ है। इन अन्य ग्रंथों के सम्बन्ध में अपने विचार हम यहाँ नहीं प्रकट कर रहे हैं।

हमने कवि के केवल उन्हीं ग्रंथों को लक्षण-ग्रंथ की सीमा के अंतर्गत माना है जिनमें रस, अलंकार, पिंगल अथवा नायिका-भेद का निरूपण तथा वर्णन मिलता है। कवि देव ने समकालीन अन्य कवियों की भाँति अपने किसी एक ग्रंथ में उपरोक्त विषयों में से एकाधिक पर एक साथ विचार किया है, जैसे कि 'भाव विलास' में शृंगार रस, नायक-नायिका-भेद तथा अलंकारों का वर्णन है, 'रस विलास' मुख्य रूप से नायिका-भेद का ग्रंथ है परन्तु 'काव्य रसायन' में कवि ने इन विषयों के अतिरिक्त शब्द-शक्ति, रीति तथा पिंगल आदि का भी विवेचन किया है। इस आधार पर हमने देवकृत निम्नलिखित सात ग्रंथों को लक्षण-ग्रंथ मानते हुए उनका पाठ-संपादन किया है :—

१. काव्य रसायन	—६९३ छंद
२. कुशल विलास	—३०६ छंद
३. भवानी विलास	—३८४ छंद
४. भाव विलास	—४१७ छंद
५. रस विलास	—४६६ छंद
६. सुजान विनोद	—३५६ छंद
७. सुमिल विनोद	—२७७ छंद
	कुल २८९९ छंद

इन ग्रंथों के देवकृत होने में हमें संदेह नहीं है क्योंकि इनमें से एक भी ग्रंथ ऐसा नहीं है जिसमें देवकृत दूसरे ग्रंथों के समान दोहे अथवा उदाहरण छंद न मिलते हों। देव के एक दूसरे ग्रंथ में समान छंद मिलने की यह विशेषता इतनी व्यापक है कि हमने इसे भाषा अथवा शैली की अपेक्षा ग्रंथ के देवकृत होने का अधिक पुष्ट प्रमाण माना है। भाषा अथवा शैली को विश्वसनीय प्रमाण न मानने का कारण स्पष्ट है। रीतिकाल तक आते-आते साहित्यिक ब्रजभाषा इस सीमा तक विभिन्न प्रादेशिक विशेषताओं से युक्त हो चुकी थी और प्रत्येक क्षेत्र में अनेक कवियों ने

परस्पर प्रभावित होते हुए अथवा प्रभावित करते हुए काव्य-रचना की थी कि केवल भाषा अथवा शैली के आधार पर किसी ग्रंथ को एक कवि की रचना मान बैठना खतरे से खाली नहीं। देव तथा देवकीनन्दन की भाषा बहुत कुछ समान है—यहाँ तक कि देव कवि के पश्चात् किसी ने इस ओर लक्ष्य करते हुए कहा था "देव गए भए देवकीनन्दन"। इस काल में मुख्य रूप से कवित्त तथा सवैया छंदों में रचना हुई है, दो छंदों में पूर्वापर सम्बन्ध भी नहीं है इस कारण भी भाषा-शैली का साक्ष्य निर्णायक नहीं हो सकता। 'सुंदरी सुंदर' जैसे किसी संग्रह से कवि-छाप रहित छंदों के रचयिता का नाम केवल भाषा के आधार पर निश्चित करने पर उपरोक्त कथन की सारवत्ता प्रमाणित होगी। अतः भाषा का प्रमाण केवल सहायक प्रमाण माना जा सकता है। उदाहरण के लिए केवल भाषा के आधार पर 'राग रत्नाकर' को देवकृत ग्रंथ मानने के कारण ही डा० नगेन्द्र भ्रान्ति के शिकार हुए हैं। 'राग रत्नाकर' में देव के किसी अन्य ग्रंथ के छंद नहीं हैं, न किसी अन्य ग्रंथ में 'राग रत्नाकर' के छंद हैं। देव के अन्य सर्वमान्य ग्रंथों की तुलना में यह इस ग्रंथ की असाधारण विशेषता है। डा० नगेन्द्र ने 'देव और उनकी कविता' में पृ० १३ पर प्रसिद्ध कवि देव से भिन्न देव नामधारी एक अन्य कवि का उल्लेख किया है, और उनका केवल एक ही ग्रंथ ज्ञात बताया है 'रागमाला'। सन् १६०६-८ की खोज रिपोर्ट में भी देव नामधारी कवि के नाम से इसी ग्रंथ की सूचना है, सन् १६०५ की खोज रिपोर्ट में 'रागरत्न प्रकाश' नामक एक ग्रंथ की भी सूचना दी है, इसी प्रति को मैंने सभा के संग्रह में (सभा-संग्रह १६१-१११) देखा है, यह 'राग रत्नाकर' की ही प्रति है। अतः संभव है कि 'रागमाला' तथा यह 'राग रत्नाकर', जिसे डा० नगेन्द्र हमारे आलोच्य कवि की रचना समझ बैठे हैं, किसी अन्य देव कवि द्वारा रचित एक ही ग्रंथ के दो नाम हों।

सभा की खोज रिपोर्ट में हमें ऐसे ही कुछ अन्य 'नवीन' ग्रंथ मिले हैं। हम संक्षेप में उनका उल्लेख कर रहे हैं।

सभा-संग्रह में १०८० संख्या पर **'सकुन आर्या'** नामक 'ग्रंथ' इसी प्रकार का है। यह किसी ग्रंथ का केवल अंतिम ६०वाँ पत्र है। विषय शकुन-विचार है, दोहा छंद में निबद्ध होने के कारण इसे आर्या संज्ञा दी गई है। इसके साथ देव का नाम आने का भ्रम इस अंश के कारण संभव है "इति देवकृत सकुन आर्या संपुर्णम्—।" इसका एक अंश इस प्रकार है—"इतवार के दिन तंबोल खाजे। सोमवार के दिन कांच देखजे। बुधवार के दिन दही खाजे।"

दूसरा ग्रथ **'वैद्यक'** है। १६२०-२३ की खोज रिपोर्ट (पृष्ठ ४७७) के अनुसार यह भिनगा राजपुस्तकालय में है। इस ग्रंथ के सम्बन्ध में लोग बहुत लम्बे समय से उत्कर्ण हैं। खोज रिपोर्ट में दिया 'देवकृत' इस ग्रन्थ का परिचय देखें :—"अलख अमूरत अलख गति किनहि न पायो पार। जोरि जुगल कर कवि कहै देव देव सत सार॥ अथ वैद्यक लिख्यते तत्र प्रथम पित्तज्वर को काढ़ा। प्रमाण संज्ञा रसों का विचार, जलंधर रोग, भगंदर चिकित्सा, गुल्म, कृमि—मंदाग्नि, अंड रोग, अपस्मार—"

मेरे विचार से उपर्युक्त उद्धरण से पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि 'रस विलास' के रचयिता तथा 'वैद्यक' के प्रणेता एक ही देव नहीं हैं।

तीसरा **'इंद्रजाल'** नामक ग्रंथ प्रयाग म्युनिसिपल संग्रहालय में ३४।१५७ संख्या पर है।

अप्रकाशित खोज रिपोर्ट (१९४१-४३) में भी इसका उल्लेख है। इसकी प्रतियाँ हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, तथा नागरी प्रचारिणी सभा के आर्य भाषा पुस्तकालय में भी हैं। संभवतः एकेडमी की प्रति सभा वाली प्रति की प्रतिलिपि है। ग्रंथ का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है :—
"जंत्र तांबे के पात्र में लिखि के मसान मैं गाड़े तो शत्रु दिमाना होय—"

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि समान छन्दों के प्राप्त होने के आधार पर देव के ग्रंथों की प्रामाणिकता का सिद्धान्त विशेष रूप से केवल देव के ग्रंथों पर लागू होता है अतः इसे व्यापक सिद्धान्त नहीं मानना चाहिए।

हमने देवकृत लक्षण-ग्रंथों की सूची में 'जाति विलास', 'प्रेम तरंग', 'प्रेम चंद्रिका' तथा 'सुख सागर तरंग' जैसे ग्रंथ नहीं सम्मिलित किए हैं क्योंकि इनमें से कुछ नाम किसी स्वीकृत ग्रंथ के प्रथम संस्करण अथवा प्रथम संस्करण की खंडित प्रतिलिपि तथा कुछ केवल संग्रह ग्रंथ हैं।

'जाति विलास' अब तक देव के स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में स्वीकृत होता रहा है परन्तु वर्तमान अनुसंधान के अनुसार यह 'रस विलास' के प्रथम संस्करण की पंचम विलास तक खंडित प्रतिलिपि है। इस कारण इसका उपयोग 'रस विलास' की खंडित प्रति के रूप में किया गया है। हमने इस प्रश्न पर विस्तार से 'जाति विलास' की प्रामाणिकता शीर्षक के अंतर्गत विचार किया है।

इसी प्रकार 'प्रेम तरंग' 'कुशल विलास' का कविकृत प्रथम संस्करण है। देव ने इसी 'प्रेम तरंग' के आधार पर कुशलसिंह को समर्पित करने के हेतु 'कुशल विलास' की रचना की थी अतः इस दूसरे ग्रंथ में 'प्रेम तरंग' का संपूर्ण आकार समाविष्ट होने के कारण इसका पृथक संपादन करना अनावश्यक है। 'कुशल विलास' तथा 'प्रेम तरंग' शीर्षक के अंतर्गत हमने इन दोनों ग्रंथों के परस्पर-सम्बन्ध की परीक्षा की है।

'प्रेम चंद्रिका' तथा 'सुख सागर तरंग' ग्रंथ इनसे भिन्न कारणों से इस कार्य की परिधि से बाहर माने गए हैं। 'प्रेम चंद्रिका' शुद्ध प्रेम-काव्य है। यत्र-तत्र मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा का नामोल्लेख इसके शीर्षकों में भले ही हो परन्तु कवि का मुख्य लक्ष्य इनका भेद-प्रभेद करना न होकर केवल इन नायिकाओं के प्रेम का वर्णन है।

'सुख सागर तरंग' संग्रह-ग्रंथ होने के कारण अस्वीकृत हुआ है। इसमें नख-शिख तथा अष्टयाम के छंद होते हुए भी प्रकृति से यह संग्रह-ग्रंथ ही है। इसमें नायिका-भेद के केवल उदाहरण होने से यह लक्षण-ग्रंथ नहीं हो सकता—वैसे ही जैसे बिहारी 'सतसई' के अनेक दोहों का विषय नायक-नायिका-भेद होने के कारण उसे लक्षण-ग्रंथ नहीं माना जाएगा। 'सुख सागर तरंग' में केवल उदाहरण छंद संकलित हैं एवं प्रायः सभी उदाहरण अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं। इन कारणों से हमने इस ग्रंथ के पाठ पर विचार करना अनावश्यक समझा है।

खोज रिपोर्ट में देव के नाम से प्राप्त 'गण-विचार' तथा 'रस रत्नाकर' ग्रंथ ऐसे हैं जो लक्षण-ग्रंथ की सीमा के अंतर्गत आ सकते हैं। अतः हम खोज रिपोर्ट का इन ग्रंथों से सम्बद्ध अंश नीचे दे रहे हैं :—

"८९ के गण विचार'—सब्सटेंस—कंट्रीमेड पेपर। लीव्स—४। साइज़—१२-४ इंचेज़।

लाइन्स पर पेज—७२। एक्सटेंट—२१६ अनुष्टुप श्लोकाज्ञ। एपियरेंस—ओल्ड। कैरेक्टर—नागरी। डट आव मेन्युस्क्रप्ट—संवत् १९१७-१८६० ए० डी०। प्लेस आव डिपाजिट—ठाकुर अनरुद्धसिंहजी, एसिस्टेंट मैनेजर आव राज्य नीलगांव, पोस्टआफिस नीलगांव, डिस्ट्रिक्ट सीतापुर।

बिगिनिंग—श्रीगणेशाय नमः। अथ गण विचार लिख्यते। छप्पै॥ सूर अनल रजनी निसा विष शिव लोचन सजिये। तितिहि प्रगट गुरु तीनि सकल मिलि मगन उपजिये। बहुरि यगन रस नगन जगन अरु मगन मगन पुनि। क्रम ही अष्ट प्रकार एक तह येक उदित गुनि॥ **नृप सिंह सुरूप सुजान** सुनि पढ़ि सरस सोहित करिये॥ तुव कीरति विमल कवि कुल बरनि सुछंद वृंद भूतल भरिये॥ मगन जानि गुरु तीनि यगन लघु आदि बखानिय। रगन मध्य लघु संचि सगन गुर दृष्टि नगन लघु सकल निरंतर॥ गण अष्ट स्वरूप सुजान सुनि इमि छंद बहु ग्रंथन भरिये। तुव कीरति विदित अलंब सो भाँति-भाँति सुरपुर चढ़िये॥

एण्ड—अथ शिशिर॥अरुणनीलममीलित सदलं प्रचुर फुल्ल समुल्ल मनेश्रियं वाहति कंचन कांचन काननंनवतरानि तरां शिसिरागमे॥ अपटु तिग्म मरीचिभिर्नहि तथा शिशिरे सिशिर क्षितिः॥ निसिजथोष्पलपीन घनस्तनी॥ भुजन पीड़नतः स्वपतांनृणां॥ इति शिशिर पूर्ण॥ सवैया भेद॥ सैल पगा वसु भा मुनि भाग गसात भगोल लसैल भगा॥ लै मुनि भाग गही ललसत्त भगोल लसत्त भगंग पगा॥ पी मदिरा ब्रजनारि करी सुभ मालति चित्र पदम्र मगा॥ मल्लिक माधवि दुर्मिलिका कमला ससवे पय शुक्र मगा॥ ललसत्त भगाय सुनि कै धुनि चात्रिक मोरनि की चहुं ओरनि कोकिल कूकनि सों। अनुराग भरे हरि बागनि में सपि रागति राग अचूकनि सों। कवि देव घटा जु नई उनई बन भूमि भई जल टूकनि सों। रंगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर की झूकनि सों॥ जाहि जोह निपटहिं भटू लटू भयो नंदनंद। मुख मयंक तेरो सखी बिनु कलंक को चंद॥ इति श्री गण विचार ग्रंथ कवि देव कृतं सम्पूर्णम् शुभमस्तु लिपिते गिरधारी-लाल वैश्य चुरहट लखनऊ निवासी संवत १९१७

सब्जेक्ट—गणों का विचार तथा उनके भेद।"

'खोज रिपोर्ट' १९२३-२५, पृष्ठ ४५०-५१

रेखांकित अंश से ज्ञात होता है कि देव ने सुजानसिंह के लिए इस ग्रंथ की रचना की थी।

'रस रत्नाकर' के सम्बन्ध में खोज रिपोर्ट की सूचना इस प्रकार है:—

"८९ वी रस रत्नाकर बाइ देव। सब्सटेंस—कंट्रीमेड पेपर। लीव्स—४८। साइज—८—३१।२ इंच। लाइन्स पर पेज ८। एक्सटेंट—३७२ अनुष्टुप श्लोक। एपियरेंस—आर्डिनरी। कैरेक्टर—नागरी। डेट आव मैन्युस्क्रप्ट—संवत् १८८१—ए० डी० १८२४। प्लेस आव डिपाजिट—नागेश्वर बक्श प्रमोद, विलेज नुनरा, लम्हा, डिस्ट्रिक्ट सुल्तानपुर औध।

बिगिनिंग—श्रीगणेशायनमः॥ दोहन हो यह कीजियु रस रतनाकर ग्रंथ॥ जाके जानि जानिये रस ग्रंथन के पंथ॥१॥ प्रीति सदा निज पतिहि सो स्वीया की यह रीति। परकीया पर पुरुष सों दुरै जो राखै प्रीति॥२॥ स्वकीया को उदाहरण। कैसे धौं या बदन की कढ़त जाल मग जोति। जाकी मुसक्यानी नहीं ओठन बाहिर होति॥३॥ परकीया के उदाहरण॥ डौल रहत कत रोकि तुम कौन खेल यह आहि। चलत देह सो देह छ्वै नेकु कहूँ डर नाहिं॥४॥ सामान्या लक्षणम्

।।प्रीति जो राखै सबनि सों धन धनही के काज। तासौं सामान्या कहै सुकविन के सिरताज ।।५।। यथा ।। अथ प्यारे सों बोलिहौ कहुं वरषाइप कवार। कनक जँभीरन सौं जरित लै हीरन को हार।।६।।

एण्ड—अथ वितर्क जहं संदेह तें तरजनी भौहै सीस नवाइ। कीजे कछू विचार तहँ वितरक दियौ बताइ ।। यथा—कौन न फूलत रैनि दिन चंदन जाति सराहि। जगमगातु दिन रैनि यह ताते तिय मुख आहि ।। इति संचारिन। अथ सात्विक—थंभ भेद रोमांच सुरभंगो वेपथु मानि। विवरनता असुया प्रलय आठौ सात्विक जानि ।। आठहू को उदाहरणः—विवरण असुया मूरछा थंभ कंटकित अंग। देखत भये दुहून के कंप सेद सुर भंग ।। इति सात्विक ।। इति रस रत्नाकर ग्रंथ समाप्तः ।। शुभम्भूयात ।। ईश्वरी दस्तेनालेखि बंधु हेतवे पुस्तकमिदम् ।।

सब्जेक्ट— १ पृ० १ से १८ तक—नायिका-भेद, स्वकीया, परकीया, सामान्या, मुग्धा, अज्ञात तथा ज्ञात यौवना, विश्रब्ध नवोढ़ा, प्रगल्भा, धीरा, अधीरा, धीराधीरा, मध्या धीरा, प्रौढ़ा धीरा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, परकीया—ऊढ़ा, अनूढ़ा, भूत सुरतगोपना, भविष्य सुरतगोपना, क्रिया विदग्धा, वाक्य विदग्धा, कुलटा, मुदिता, लक्षिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, लघु मान, मध्य-मान, अष्ट नायिका।

२ पृ० १९ से २४ तक—नायक लक्षण, त्रिविधि नायक, पति, उपपति, वैसिक, दक्षिण नायक, धृष्ट, शठ, वैष्टिक, मानी, वचन चतुर, क्रिया चतुर, प्रोषितपति नायकाभास।

३ पृ० २५ से २६ तक—सखा वर्णन, पीठमर्द, विट, चेट, विदूषक।

४ पृ० २७ से ३१ तक—तीन प्रकार के दर्शन, स्वप्न, चित्र, दर्शन। सखियों के चार कार्य, उपालंभ, मंडन, शिक्षा, परिहास। उत्तम, मध्यम और अधम दूती वर्णन। दासी दूती, सखी दूती, चुरिहारिन, मालिन, नाइन, तमोलिन, धाई, धाई सुता, शिल्पिनी, भगतिन।

५ पृ० ३२ से ३५ तक—हाव वर्णन।

६ पृ० ३६ से ४२ तक—रस वर्णन, चारों अंगों समेत।

नोट—इस 'रस रत्नाकर' नामक ग्रंथ में देवजी ने दोहों में नायिका-नायक, दूती, सखी, सखादि का वर्णन करके नवरसों का सूक्ष्म वर्णन किया है। साथ ही विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा स्थायी भावों का भी वर्णन किया है। यह पुस्तक १८८१ में अपने भ्राता के लिए ईश्वरी प्रसाद ने लिखी है। पुस्तक में कवि ने अपना, अपने कुटुम्ब तथा ग्रंथ निर्माण काल के संबंध में कुछ भी कथन नहीं किया है। पुस्तक के अंत में निम्नलिखित दोहा है जिससे उसका संवत् १८८१ में लिखा जाना सिद्ध होता है :—

'इंदु नाग बसु बसुमति मास दयो गुरुवार।
असित पक्ष तिथि पञ्चमी रस सागर लिखि पार ।।' "

—खोज रिपोर्ट १९२३-२५, पृष्ठ ४६९-७०

खेद है कि इन स्थानों पर जाने पर भी हमें ये प्रतियाँ उपलब्ध न हो सकीं अतः इनकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ कहना संभव नहीं।

ग्रन्थों का क्रम

'रस विलास' के द्वितीय संस्करण को छोड़कर कवि देव ने अपने किसी ग्रंथ में उसका

रचनाकाल नहीं दिया है अतः देव के ग्रंथों का रचनाक्रम निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। डा० नगेन्द्र ने अपने ढंग से देव के ग्रंथों का क्रम निर्धारित करने की चेष्टा की है परन्तु अप्रामाणिक सामग्री तथा कल्पना पर आश्रित होने के कारण उनके अनेक निष्कर्ष भ्रमात्मक हैं। उदाहरण के लिए, 'भाव विलास' के जिस 'संवत सत्रह सै' दोहे के आधार पर उन्होंने संवत् १७४६ में इस ग्रंथ की रचना, १७३० में कवि का जन्म तथा देवकृत ग्रंथों का क्रम निश्चित किया है वह इस दोहे के प्रक्षिप्त सिद्ध होने के कारण अशुद्ध है। हम अभी कह आए हैं कि 'जाति विलास' देवकृत 'रस विलास' की अपूर्ण प्रतिलिपि है परन्तु पंडितों में प्रचलित मत को विस्तार देते हुए डा० नगेन्द्र ने अपनी ओर से कल्पना कर ली है कि देव को देशव्यापी अपनी यात्रा में १०-१५ वर्ष लगे होंगे, जिसके उपरांत उन्होंने 'जाति विलास' की रचना की होगी। ('देव और उनकी कविता'—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४६) अतः इस पद्धति से निर्धारित क्रम अवैज्ञानिक होने के कारण अमान्य है। वास्तव में देव के ग्रंथों का रचनाक्रम निश्चित करना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। केवल समस्त ग्रंथों के प्रामाणिक पाठ के आधार पर इन छंदों की तुलनात्मक प्रतीक-सूची निर्मित कर, ऐसी दो प्रतियों का युग्म निर्धारित करते हुए, जिन दो ग्रंथों में समान छंद मिलते हैं, ग्रंथों का रचनाक्रम निश्चित किया जा सकता है। कहना न होगा कि इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी 'सुख सागर तरंग' ग्रंथ के दोनों संस्करण हैं। यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न अपने-आप में अध्ययन का स्वतन्त्र एवं विस्तृत विषय है तथा देव के समस्त ग्रंथों का पाठ-सम्पादन किये बिना इसका अध्ययन नहीं हो सकता अतः हम इस प्रश्न को भविष्य के लिए छोड़ रहे हैं।

'सुख सागर तरंग' से सम्बद्ध एक भिन्न संभावना कवि की रचना-पद्धति से सम्बन्धित होने के कारण यहाँ उल्लेखनीय है।

यह तो निश्चित है कि देव ने अपने विभिन्न ग्रंथों से छंद-संकलन करते हुए 'सुख सागर तरंग' का निर्माण किया है। 'सुख सागर तरंग' के सम्बन्ध में क्या यह संभव नहीं है कि कवि स्फुट छंदों की रचना करने के पश्चात् उन्हें किसी लक्षण-ग्रंथ में रखने के बजाय किसी एक ग्रंथ में संकलित करता गया हो एवं इसी संग्रह से स्वयं उसने अथवा उसके आदेश पर उसके किसी शिष्य या प्रतिलिपिकार ने अन्य ग्रंथों में छन्द संकलित किये हों—तथा 'सुखसागर तरंग' के दो संस्करण इसी संग्रह के सुनियोजित संग्रह हों ? कवि के विभिन्न ग्रंथों में इतनी अधिक संख्या में समान छन्द मिलने पर, सुगम तथा व्यावहारिक होने के कारण, यह संभावना हमें अधिक उचित मालूम देती है। इस संभावना के पक्ष में निम्नलिखित तर्क हैं :—

(१) "ईठ रस बातनि" छन्द 'काव्य रसायन' में ७:४३, 'प्रेम चन्द्रिका' में ४:४७ तथा 'सुख सागर तरंग' में ४०५ संख्या पर आया है। इस छन्द के तृतीय चरण का स्वीकृत पाठ इस प्रकार है—

"गैयन गोहन प्रेम गुन के पोहन देव मोहन अनूप रूप रुचि के राखन चोर।"

इन तीनों ही ग्रंथों की सभी प्राचीन प्रतियों में 'के' त्रुटित हैं, यद्यपि अर्थ तथा पिंगल के विचार से 'के' का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। ये सभी प्रतियाँ इतनी दूरस्थ हैं कि इनमें परस्पर पाठ-मिश्रण सम्भव नहीं है और तीन-तीन ग्रंथों की सभी प्रतियों में एक शब्द

का न्यून होना पाठ-मिश्रण की अपेक्षा इन प्रतियों में किसी प्रकार के प्रतिलिपि-सम्बन्ध के कारण अधिक सम्भव है। इससे भी हमारी उपरोक्त धारणा पुष्ट होती है कि इन ग्रंथों में छन्द के आगम का आधार कोई केन्द्रीय संग्रह रहा होगा, जिससे कवि के आदेश पर उसके किसी शिष्य अथवा प्रतिलिपिकार ने छन्दों को समाविष्ट किया होगा।

(२) यदि देव का एक छन्द उनके तीन ग्रंथों में भी आया है तो इन तीनों ग्रंथों में छन्द के एक ही स्थल पर पाठ-विकृतियाँ मिलती हैं। यह भी केवल पाठ-मिश्रण के कारण सम्भव नहीं हो सकता। यदि विभिन्न ग्रंथों के समान छन्द किसी लिखित संग्रह से न लिये जाकर सर्वथा स्वतन्त्र रूप से आये होते तो एक ही निरर्थक विकृति एकाधिक ग्रंथों की अनेक प्रतियों में क्यों मिलती अथवा इन प्रतियों में एक ही स्थल पर विकृति क्यों उत्पन्न होती। स्थान-संकोच के कारण मैं ऐसा केवल एक उदाहरण दे रहा हूँ—

'मन भावन के' छन्द का अन्तिम चरण है "तिय बारहि बार सँवारहि के निरवारति बार किवार दिये।" छन्द में 'के लिए' के संक्षिप्त रूप में 'के' आया है परन्तु 'भाव विलास' (४ : ३१) की का० सा० प्रतियों एवं 'रस विलास' (८:१४) की ब्र० प्रति में 'सँवारहि की' पाठ है, 'भाव विलास' की भा० एवं 'रस विलास' की सा० प्रति में 'सँवारति ही' पाठ है, 'भाव विलास' की ज० प्रति में 'सँवारहि केश' तथा 'सुजान विनोद' की का० प्रति में 'सँवारति बार' पाठ है। यह संभव नहीं है कि इन सभी प्रतियों में एक ही स्थल पर एक-दूसरे में पाठ-मिश्रण हुआ हो। पाठ-मिश्रण की एक सीमा होती है। इस उदाहरण से यह प्रगट होता है कि यह छन्द जिस प्रति में था या तो उसमें इस स्थल पर कवि द्वारा पाठ-संशोधन हुआ था अथवा अपठ होने के कारण या लिपि में भ्रम की सम्भावना होने के कारण यहाँ प्रतिलिपिकार को भ्रम हो सकता था। दोनों ही प्रकार से छन्द के आगम के केन्द्रीय आधार की सम्भावना पुष्ट होती है।

'सुख सागर तरंग' में समान छन्दों की तुलनात्मक सूची देखते हुए हमें यह ग्रंथ भी इसी संग्रह-ग्रंथ का संकलित-सुसंयोजित संस्करण लगता है। जो भी हो, किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इस पर और अधिक गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

इन सभी प्रश्नों का समाधान 'सुख सागर तरंग' के दोनों संस्करणों के सम्पादन के बाद ही मिल सकता है क्योंकि यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ कवि की रचनाओं में एक रहस्यपूर्ण कड़ी है।

छन्दों का परस्पर आदान-प्रदान

मध्य युग के अनेक कवियों में अपने एक ग्रंथ के छन्दों को दूसरे ग्रंथ में सम्मिलित करने की विशेषता पायी जाती है। तुलसीकृत 'दोहावली' के दोहे इस कवि की अन्य कृतियों में भी मिलते हैं, कवि केशवदास के अनेक छन्द उनके दो-दो ग्रंथों में मिलते हैं और मतिराम के 'ललित ललाम' के अनेक दोहे उनकी 'सतसई' में पाए जाते हैं। इस प्रकार अपने ही छन्दों को एकाधिक ग्रंथों में रखने की प्रवृत्ति अकेले देव में नहीं अन्य कवियों में भी पायी जाती है। नवीन ग्रंथ तैयार करने की आवश्यकता भी इस प्रवृत्ति के मूल में विद्यमान एक कारण हो सकता है परन्तु इससे अधिक संगत कारण सम्भवतः यह था कि एक ही छन्द एकाधिक लक्षणों का उदाहरण हो सकता था। देव ने इन दोनों ही कारणों से अपने छन्दों को एकाधिक

ग्रंथों में स्थान दिया है । परन्तु इसमें कदापि सन्देह नहीं कि देव में यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर है। यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कम से कम सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में किसी अन्य कवि ने अपने छन्दों को हेरफेर कर इतने अधिक स्थलों पर नहीं रक्खा है, अन्य भाषाओं के किसी कवि ने भी ऐसा किया होगा, कहा नहीं जा सकता। देव के कुल छन्दों में ये प्राय: आधे एक से अधिक स्थलों पर आये हैं। एक ही छन्द तीन-चार स्थलों पर तो साधारणत: मिल जाता है, 'आपुस मैं रस' छन्द पाँच स्थलों पर, 'देव मैं सीस' एवं 'बालम बिरह' जैसे छन्द, सात स्थलों पर मिलते हैं। कुछ छन्द इनसे भी अधिक स्थलों पर आए हैं। छन्द-प्रतीकों की सूची का इस दृष्टि से विश्लेषण करने पर रोचक निष्कर्ष निकलते हैं। देव के आलोच्य ग्रंथों में छन्दों की तुलनात्मक स्थिति निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट होती है :—

ग्रंथ	दोहे जो केवल इस ग्रंथ में हैं	अन्य छंद जो केवल इस ग्रंथ में हैं	योग	दोहे जो अन्यत्र भी आए हैं	अन्य छंद जो अन्यत्र भी आए हैं	योग	कुल योग
१ 'सुमिल विनोद'	८८	७४	१६२	२७	८८	११५	२७७
२ 'सुजान विनोद'	१०१	६५	१६६	९	१८१	१९०	३५६
३ 'काव्य रसायन'	३७३	२०३	५७६	१	११६	११७	६९३
४ 'रस विलास'	१३२	१११	२४३	३७	१८६	२२३	४६६
५ 'भाव विलास'	—	१७६	१७६	१९६	४५	२४१	४१७
६ 'भवानी विलास'	७०	६५	१३५	७६	१७३	२४९	३८४
७ 'कुशल विलास'	४५	५१	९६	७६	१३४	२१०	३०६
	८०९	७४५	१५५४	४२२	९२३	१३४५	२८९९

—अर्थात् इन सात ग्रंथों के कुल २८९९ छंदों में से १५५४ छंद अन्यत्र नहीं मिलते तथा १३४५ छंद एक से अधिक स्थलों पर आये हैं। यह संख्या अभूतपूर्व है!

पाठ-मिश्रण—देव के ग्रंथों के अधिकतर छंद अन्यत्र भी मिलने से जहाँ पाठ-संपादन में अत्यधिक सहायता मिलती है, इसी सामर्थ्य पर जहाँ कुछ ग्रंथों का केवल एक प्रति के पाठ से संपादन संभव हुआ है, वहाँ इन छंदों में परस्पर पाठ-मिश्रण भी धड़ल्ले से होने के कारण कठिनाई भी कम नहीं होती। किसी भी संग्रह की प्रतियों में जहाँ देव के एक से अधिक ग्रंथ हों, उनमें परस्पर पाठ-मिश्रण की संभावना पर निगाह रखना आवश्यक हो जाता है। वैसे पाठ-मिश्रण के लिए आधार-रूप में केवल 'सुख सागर तरंग' की एक प्रति का होना पर्याप्त है!

विभिन्न ग्रंथों की प्रतियों में हुए पाठ-मिश्रण की संपूर्ण सूची यहाँ देना असंभव है इस कारण केवल थोड़े से उदाहरण दिये जा रहे हैं:—

१ "ज्ञावक के रंग रपटी सी लपटी सीं **लील पटी** झपटी सी काम केहरी।"

—'सुजान विनोद' ४:२३:४

'लील पटी' पाठ 'नीलपृष्ठी' अर्थात् अग्नि के अर्थ में संगत है परन्तु 'सुजान विनोद' की

केवल गं० प्रति एवं 'सुख सागर तरंग' में ६४२ पर 'लाल परी' पाठ है।

२ "आइ हुती अन्हवावन नाइन सोधो लिए **बहु** सूधे सुभाइन।
ह्वै रही ठौरही ठाढ़ी ठगी सी हँसै कर ठोढ़ी **धरे** ठकुराइन।।"

—'काव्य रसायन' ५:३५

'बहु' के स्थान पर 'कर' पाठान्तर गं० हि० प्रतियों में मिलता है। 'अष्टयाम' में २:२ पर विभिन्न प्रतियों में 'कर' तथा 'बहु' दोनों पाठ हैं। 'काव्य रसायन' की गं० प्रति तथा हि० प्रति का आदर्श एक ही संग्रह की प्रतियाँ हैं अतः इनमें पाठ-मिश्रण हुआ है। 'काव्य रसायन' की नी० प्रति तथा 'सुख सागर तरंग' की नी० प्रति में 'वह' पाठ मिलता है। 'अष्टयाम' की कुछ प्रतियों में 'वह' तथा 'बहु' पर्याय है। 'धरे' के स्थान पर 'अष्टयाम' की कुछ प्रतियों में 'दिये' पर्याय भी मिलता है। 'काव्य रसायन' की हि० प्रति में 'दिये' पाठ है।

३ "कमल सुनैन जोरे जब तें सुनैन तुम तबतें सुनै न **स्यामा** सखिन के सोरए।"

—'रस विलास' ७ : ८७

'रस विलास' की केवल अ० प्रति तथा 'सुजान विनोद' की का० प्रति में 'स्यामा' के स्थान पर 'स्याम' पाठ है।

४ "जगर-मगर होत **सहज** जवाहिर से **अति ही** उज्यारे जब नैसिक उवटियत।"

—'रस विलास' १ : ४८

'सहज' के स्थान पर 'सहन' विकृत पाठ 'सुजान विनोद' (३:३१) की का० प्रति में एवं 'रस विलास' की नी० प्रति में मिलता है। 'अति ही' के स्थान पर 'नग से' पाठ 'रस विलास' की नी० गं० गंजा० प्रतियों में एवं 'सुजान विनोद' की गं० प्रति में है।

५ "भीर मैं भूले भए सखि मैं जब तें जदुराइ की **ओर** कियो रुख।"

—'भाव विलास' २ : २८

'ओर' के स्थान पर 'राइ' विकृत पाठ 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियों में एवं 'सुख सागर तरंग' (५४२) की नी० प्रति में मिलता है।

६ "नैकु चितौत नहीं चित दै रस हास कियेहू **हियेहू न** खोलै।"

—'भाव विलास' ३:३२

'हियेहू न' के स्थान पर 'हियो नहिं' पाठ 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियों में तथा 'सुजान विनोद' की गं० अ० प्रतियों में है।

देव के ग्रंथों में परस्पर पाठ-मिश्रण की समस्या सबसे जटिल है। सामान्यतया यदि कोई एक छंद एक से अधिक स्थलों पर आया है तो दोनों स्थलों पर प्राप्त पाठ, ग्रंथों के मूल स्रोत का पाठ होने के कारण कवि कृत माना जा सकता है परन्तु देव की प्रतियों में प्रत्येक स्तर पर पाठ-मिश्रण होने के कारण दो ग्रंथों की प्रतियों में प्राप्त छंद का समान पाठ भी स्वीकृत करते हुए सतर्क रहने की आवश्यकता है। इस पाठ-मिश्रण का पता पाना भी प्रायः कठिन है क्योंकि अधिकतर पाठ-मिश्रण प्रतियों के विकृत पाठों के न होकर संगत तथा सार्थक पर्यायों के हुए हैं। इसी कारण हमने 'देव पीयूष' तथा 'सुन्दरी सिंदूर' जैसे संग्रहों का उपयोग करना उचित नहीं समझा है।

सहायक संपादन-सामग्री

इन आलोच्य ग्रंथों के अतिरिक्त हमने देवकृत निम्नलिखित ग्रंथों का उपयोग सहायक संपादन-सामग्री के रूप में किया है :—

१ 'सुख सागर तरंग'—श्री बालदत्त मिश्र द्वारा संपादित तथा सन् १८९८ में अयोध्या से प्रकाशित संस्करण, जिसका आधार ब्रजराज पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति है। इस प्रति में अत्यधिक पाठ-मिश्रण हुआ है अतः संपादित संस्करण के अनुसार छंद-संख्या देते हुए हमने नील-गाँव राजपुस्तकालय की संवत् १९३२ की हस्तलिखित प्रति को उपयोग में लिया है।

२ 'सुख सागर तरंग' के कवि कृत द्वितीय संस्करण की नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति (संख्या ५७३।१२) का उपयोग भी हुआ है।

३ 'प्रेम चंद्रिका'—श्री मिश्र बंधुओं द्वारा संपादित तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'देव ग्रंथावली' के अन्तर्गत प्रकाशित संस्करण। इस संस्करण के अनुसार छंद-संख्या देते हुए, बाद में उपलब्ध काशिराज सरस्वती भंडार की संवत् १८५७ की प्रति के पाठ का हमने उपयोग किया है।

४ 'देव शतक'—श्री गोविन्दशरण द्वारा संपादित एवं 'भाव विलास' के साथ बालचंद्र यंत्रालय, जयपुर से प्रकाशित ग्रंथ का संस्करण।

५ 'देव चरित्र'—हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग, में मिश्रबंधु की प्रति से संवत् १९९९ में तैयार प्रतिलिपि।

६ 'अष्टयाम'—भारत जीवन प्रेस का संस्करण तथा दशाधिक हस्तलिखित प्रतियों का पाठ।

उपरोक्त सहायक सामग्री के अतिरिक्त श्री अगरचंद नाहटा के संग्रह में 'शृंगार संग्रह', श्री रायकृष्णदासजी के संग्रह में 'देव पीयूष' तथा कवित्त-सवैये के कतिपय अन्य छोटे-बड़े संग्रह संपादक के देखने में आए हैं परन्तु इनके देवकृत छंदों का आगम-स्रोत ज्ञात न होने के कारण पाठ-मिश्रण के भय से हमने इन ग्रंथों का उपयोग नहीं किया है। इसी कारण 'सुंदरी सिंदूर' को भी छोड़ दिया गया है।

संपादन-प्रणाली

देवकृत उपर्युक्त लक्षण ग्रंथों में से केवल दो ग्रंथों का संपादन अकेली प्रति के पाठ के आधार पर तथा अन्य का संपादन एकाधिक प्रतियों के आधार पर किया गया है।

'सुमिल विनोद' तथा 'भवानी विलास' के संपादन का आधार अकेली प्रतियाँ हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने बनारसीदास कृत 'अर्धकथानक' का पाठ अकेली प्रति के आधार पर संपादित करते हुए इस प्रकार के संपादन की जो प्रणाली निर्धारित की है, संपादक ने उससे इन ग्रंथों के संपादन में पर्याप्त सहायता ली है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्राप्त प्रति के पाठ में वहीं अपनी ओर से विशेष संशोधन किया है जहाँ पाठ निश्चित रूप से विकृत है। उन्होंने विशेष संशो-धन भी कवि के अन्य प्रयोग, उसकी शैली तथा उसकी प्रकृति के आधार पर किये हैं। देव के संबंध में स्थिति इससे थोड़ी भिन्न है क्योंकि देव के छंद अन्य ग्रंथों में भी मिलने के कारण बहुधा

छंद का संगत पाठ देवकृत किसी अन्य ग्रंथ में मिलता है। अतः देव के अन्य ग्रंथों में प्राप्त पाठ का उपयोग अकेली प्रति के आधार पर संपादित ग्रंथों के संपादन में किया गया है परन्तु यहाँ भी आलोच्य ग्रंथ में केवल ऐसे ही स्थलों पर अन्य ग्रंथ के पाठ की सहायता ली गई है जहाँ पहली प्रति का पाठ निश्चित रूप से विकृत है । यदि यह छंद किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलता तभी कवि की शैली का ध्यान रखते हुए अपनी ओर से विशेष संशोधन किया गया है। दूसरे ग्रंथों के सभी पाठ पर्याय दो कारणों से आलोच्य ग्रंथ में नहीं स्वीकृत हुए हैं। एक तो, संभव है कि कवि ने दूसरे ग्रंथ में स्वतः पाठ-परिवर्तन किया हो अतः सभी पर्यायों का संमिश्रण करने से बाद में कविकृत-पाठ-संशोधन का अध्ययन करना असंभव होगा। दूसरे, अन्य एकाकी प्रति का पाठ-पर्याय, कविकृत न होकर प्रतिलिपिकार कृत संशोधन भी हो सकता है अतः सभी पाठ-पर्यायों को संपादित प्रति में समाविष्ट कर लेना हमारे विचार से अवैज्ञानिक है।

जिन ग्रंथों का संपादन एकाधिक प्रतियों के आधार पर हुआ है उनकी संपादन-विधि का विस्तार से वर्णन सम्बद्ध भूमिका में है । सामान्य रूप से यह माना जाता है कि जिन दो प्रतियों में पर्याप्त संख्या में पाठ-विकृतियाँ समान हैं, उनमें ये समान विकृतियाँ इन दो प्रतियों के एक ही आदर्श से प्रतिलिपि होने के कारण आई हैं। अतः ऐसी प्रतियों की परंपरा, जसमें इन प्रतियों से समान पाठ-विकृतियाँ नहीं मिलतीं, इन समान विकृतियों वाली प्रतियों की परंपरा से स्वतंत्र होगी । इन्हीं समान पाठ-विकृति-सम्बन्ध द्वारा सम्बन्धित प्रतियों के समुच्चय निर्मित करते हुए हमने प्रतियों के वंश-वृक्ष का निर्माण किया है। इस वंश-वृक्ष की दो स्वतंत्र शाखाओं में उपलब्ध पाठ को हमने मूल प्रति का माना है।

इन ग्रंथों के संपादन में देवकृत अन्य ग्रंथों के पाठ का उपयोग व्यापक रूप से परन्तु केवल सहायक सामग्री के साक्ष्य के रूप में हुआ है। यहाँ भी अन्य ग्रंथों के समस्त पाठ-पर्याय उपरोक्त कारणों से मिश्रित नहीं किये गए हैं। यदि इन पर्यायों को एक स्थल पर रखा जाता तो अत्युत्तम था परन्तु ऐसा विस्तारभय से नहीं किया गया है । जिज्ञासु सहृदय छंद-प्रतीक की सहायता से अन्य ग्रंथों में आए छंद के पाठ की तुलना कर इन पाठ-पर्यायों का अध्ययन कर सकते हैं।

हमने इस संपूर्ण संपादन-कार्य में अपनी ओर से किसी स्थल पर संशोधन किया है तो उसका उल्लेख ग्रंथ की भूमिका में भी कर दिया है।

इधर आधुनिक वैज्ञानिक विधि से हिन्दी के अनेक ग्रंथों का पाठ-संपादन हो चुका है अतः इस प्रणाली एवं इसमें व्यवहृत अधिकतर शब्दावली से पाठक परिचित हो चले हैं। फिर भी प्रस्तुत संपादन के संदर्भ में हमने जिन शब्दों का प्रयोग विशेष अर्थ में किया है उनका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। स्मरण रहे कि हमारा उद्देश्य परिभाषा देना नहीं, केवल अपने मंतव्य का स्पष्टीकरण है।

विकृत पाठ—सामान्यरूप से हम उस पाठ को विकृत मानते हैं जो मूल पाठ में प्रतिलिपिकार के दृष्टि-भ्रम के कारण, लिपि-भ्रम के कारण अथवा अनेक अन्य संभव कारणों में से किसी कारण से विकृत हुआ हो तथा जिसे निश्चित रूप से अशुद्ध कहा जा सके। प्रस्तुत कवि की रचनाओं में विकृत पाठों की स्थिति पूर्णतया स्पष्ट नहीं है क्योंकि विभिन्न प्रतियों में पाठान्तरों की संख्या-बहुलता के कारण निश्चित रूप से विकृत अथवा असंगत पाठ बहुत कम मिलते हैं।

अतः एक पाठान्तर को सहसा सुविधा से विकृत सिद्ध कर सकना कठिन है। इसका एक कारण प्रतिलिपिकार की सजगता है। ब्रजभाषा काव्य से सामान्यतया परिचित होने के कारण यदि प्रतिलिपिकार की आदर्श प्रति में किसी स्थल पर अशुद्ध पाठ भी है तो उसने उसके स्थान पर अपनी ओर से दूसरा सार्थक तथा यथासंभव संगत पाठ रख दिया है। प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त इस पाठ को हम केवल शब्दार्थ अथवा प्रसंग की संगति-असंगति के आधार पर मूल प्रति का अथवा विकृत नहीं सिद्ध कर सकते। ध्यान रहे कि रीतिकाल तक आते-आते ब्रजभाषा इतनी विकसित हो चुकी है, उसका शब्द-समूह इतना संवर्द्धित होकर सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को अनोखी रीति से अभिव्यक्त करने में समर्थ है कि केवल शब्दार्थ के आधार पर विकृतियों का निर्धारण करना कठिन है। कुछ उदाहरण लें। स्वीकृत पाठ है "केसर केसु कदंब **कुरौ** कचनारनि की रचना उर सूली।"—'सुजान विनोद' ४ : १४ : १। इस ग्रंथ की केवल का० प्रति में 'रुरौ' पाठ मिलता है, जो वास्तव में 'क' के प्राचीन रूप में भ्रम होने के कारण संभव है। परन्तु 'रुरौ' शब्द की व्युत्पत्ति एक फलदार वृक्ष के अर्थ में 'रुरु' से मानी जा सकती है अतः का० प्रति का पाठ केवल अर्थ के आधार पर असंगत नहीं कहा जा सकता। 'कुरौ' पाठ प्रतियों के पाठ-साक्ष्य पर तथा कवि में अनुप्रास का आग्रह होने के आधार पर अनुप्रास-युक्त होने के कारण मूल प्रति का माना गया है। ऐसा ही दूसरा उदाहरण है—"गुलगुली गोल मखमल कैसो **गेंदुआ** गड़ै न गड़ी जी में जऊ करत ढिठाई सी।"—'रस विलास' ५ : ११। 'रस विलास' की कुछ प्रतियों में प्राप्त 'गेंडुआ' पाठ 'दु' में 'ड' का भ्रम होने से संभव है परन्तु तकिया के अर्थ में संस्कृत के 'गेन्डक' शब्द से इन दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति होने के कारण दूसरा पाठ केवल शब्दार्थ के आधार पर विकृत नहीं सिद्ध हो सकता। यहाँ हमने प्रतियों के साक्ष्य पर 'गेंदुआ' पाठ स्वीकृत माना है।

उपर्युक्त कारणों से हमने किसी पाठ को विकृत मानने के लिए शब्दार्थ के साथ-साथ प्रसंग में उसकी संगति-असंगति पर भी विचार किया है क्योंकि बहुधा अर्थ के विचार से संगत पाठ भी उस प्रसंग में असंगत होता है।

पर्याय—प्रतिलिपिकार बहुधा अपनी प्रति में कठिन शब्द के स्थान पर उसका सरल पर्याय रख देते हैं। एक शब्द के स्थान पर किन्हीं दो प्रतियों में समान पर्याय मिलने से भी उनके बीच प्रतिलिपि सम्बन्ध संभावित माना जाता है। छंद में चमत्कार लाने के लिए, अथवा अनेक अन्य कारणों से बहुधा प्रतिलिपिकार एक पाठ के स्थान पर समानार्थी दूसरा पाठ रख देता है। उदाहरण के लिए "घाघरो घनेरो लाँबी लटैं **लटे लाँक पर**" ('रस विलास' ७:५२) के स्थान पर कुछ प्रतियों में 'लंक पातरे पै' पाठ मिलता है। दोनों पाठों का भाव एक ही है। प्रतियों में शब्द-पर्याय के अभाव में समान पाठ-पर्यायों से भी प्रतियों का सम्बन्ध समझने में सहायता मिलती है अतः हमने पाठ-पर्यायों के कुछ स्थलों को भी पर्याय के साथ रखा है।

लिपिजन्य विकृति—संत कबीर, जायसी तथा गोस्वामी तुलसीदास के ग्रंथों की प्रतिलिपि-परंपरा में नागरी लिपि के अतिरिक्त कैथी, गुरुमुखी तथा फ़ारसी लिपियों का योग होने के कारण लिपिजन्य अनेक विकृतियाँ पायी जाती हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी तथा तुलसीदास की रचनाओं के संपादन में तथा डा० पारसनाथ तिवारी ने कबीर ग्रन्थावली के संपादन मे विस्तार से इन विकृतियों का विश्लेषण किया है। कवि देव का यह सौभाग्य नहीं रहा कि उसकी

रचनाएँ नागरी के अतिरिक्त किसी अन्य लिपि में प्रतिलिपि हों अतः प्रस्तुत संपादन में हमें निर-पवाद रूप से केवल नागरी लिपि से उत्पन्न विकृतियाँ मिलती हैं। ये विकृतियाँ वर्ण के किसी अपरिचित प्राचीन रूप-रूपान्तर में प्रतिलिपिकार को किसी अन्य वर्ण का भ्रम होने के कारण हुई हैं। 'झ' के अनेक रूप विभिन्न प्रतियों में पाये जाते हैं अतः इसमें 'ह' तथा 'क' का भ्रम प्रतिलिपि-कारों को हुआ है। ("झिलमिली झालरनि-हिलमिली हालरनि"—'सुजान विनोद' ७:३८, "सूझै-सूहै"—वही ७:३६) इसी प्रकार 'रु' के प्राचीन रूप में 'नू' का भ्रम एवं प्राचीन 'ओ' में 'ड' का भ्रम भी सम्भव है। यद्यपि प्रतिलिपिकार का दृष्टि-भ्रम प्रत्यक्ष में इन पाठ-विकृतियों का कारण जान पड़ता है परन्तु इस भ्रम का मूल वर्ण के रूपान्तर में निहित है अतः हमने उस प्रकार की विकृतियों को लिपिजन्य विकृति शीर्षक के अन्तर्गत माना है।

प्रतियाँ : सामान्य परिचय : देवकृत लक्षण-ग्रंथों की विभिन्न प्रतियाँ मुख्य रूप से केवल कुछ संग्रहों में प्राप्त हुई हैं एवं एक तथा दूसरे संग्रह की प्रतियों में निश्चित सम्बन्ध मिलता है अतः यहाँ इन संग्रहों के परस्पर-सम्बन्ध तथा उनकी विश्वसनीयता पर विहंगम दृष्टि डालने से आगे के विस्तृत विवेचन को समझने में सहायता प्राप्त होगी।

१. का०—काशिराज सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, काशी, की जितनी प्रतियों का हमने उपयोग किया है वे सभी प्राचीन, संवत् १८५७ के आस-पास की तथा विश्वसनीय हैं। पाठ-विकृतियों की परीक्षा करने पर ये अपने ग्रन्थ के मूल आदर्श से कुछ ही पीढ़ी आगे की प्रतियाँ मालूम देती हैं।

२. नी०—नीलगाँव राजपुस्तकालय, नीलगाँव, जिला सीतापुर, की प्रतियाँ भी अत्यन्त प्राचीन तथा कवि की उन पोथियों की परंपरा में हैं, जिनमें कवि के पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति ने छंदों का प्रक्षेप तथा पाठ-संशोधन किया था। इस संग्रह की प्रतियाँ संवत् १९४२ के लगभग की हैं। इस संग्रह की प्रतियों में गं० संग्रह की प्रतियों के समान परस्पर पाठ-मिश्रण नहीं हुआ है।

३. गं०—ब्रजराज पुस्तकालय, गंधौली, सीतापुर, की प्रतियों में पाठ-मिश्रण खूब हुआ है अतः ये प्रतियाँ पाठ के विचार से विश्वसनीय नहीं हैं। ये प्रतियाँ नीलगाँव संग्रह की प्रतियों की समकालीन— संभवतः उनकी प्रतिलिपियाँ हैं।

४. नागरी प्रचारिणी सभा, याज्ञिक संग्रह की प्रतियाँ प्राचीन, १८७५ के लगभग की तथा सामान्य रूप से विश्वसनीय हैं। ये सभी प्रतियाँ भरतपुर के आसपास से प्राप्त हुई हैं अतः राजस्थान से प्राप्त अन्य प्रतियों के साथ इस संग्रह की प्रतियों का सम्बन्ध पाया जाता है।

५. नागरी प्रचारिणी सभा, आर्य भाषा पुस्तकालय, की हस्तलिखित प्रतियाँ आधुनिक समय में संवत् १९७७ के लगभग गं० संग्रह की प्रतियों से तैयार प्रतिलिपियाँ हैं।

६. हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, की प्रतियाँ आर्य भाषा पुस्तकालय की प्रतियों से प्रतिलिपि की गई हैं। गं० प्रति से प्रतिलिपि होने के कारण इन दोनों संग्रहों की प्रतियाँ विश्वस-नीय नहीं हैं।

७. हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद, की प्रतियाँ राजस्थान से प्राप्त हुई हैं, संवत् १८७५-८० के आसपास की हैं एवं विश्वसनीय हैं। राजस्थान से प्राप्त अन्य प्रतियों के साथ इन प्रतियों का सम्बन्ध मिलता है।

कवि-प्रवृत्ति—किसी भी कवि के ग्रंथों का संपादन उसकी प्रवृत्तियों को समझे बिना नहीं हो सकता अतएव सुविधा के लिए हम कवि देव की भाषा-शैलीगत कुछ विशेषताओं की ओर इंगित कर रहे हैं।

अनुप्रास—कवि देव पर भाषा का स्वरूप विकृत करने का आरोप अनेक समालोचकों ने लगाया है तथा शब्दों की तोड़-मरोड़ का लांछन भी उन पर है। वास्तव में देव ने यह सब केवल अनुप्रास तथा यमक के प्रबल आकर्षण के कारण किया है। "देव दुति **गात** नव जोवन जगम**गात** लरजि ल**जात** जल**जात** पर**भात** के" जैसी ध्वनि-योजना देव के छंदों में पग-पग पर मिलेगी। और ध्यान दें, इसमें केवल अनुप्रास का निर्जीव आग्रह नहीं, समान ध्वनियों का बारम्बार प्रतिध्वनित होता नाद-सौंदर्य है, जो परम सुन्दर-सुकुमार भावों के आयतन-रूप में कवित्त-सवैया छंद की परमोपलब्धि है। डा० नगेन्द्र ने ध्वनि-योजना के इस प्रश्न को बड़े ही सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है। ('देव और उनकी कविता'—पृष्ठ २४३-४६)। इसी आकर्षण के कारण देव ने यत्र-तत्र-सर्वत्र शब्दों के प्रचलित रूप को छंद की ध्वनि-योजना के अनुरूप ढाल कर रखा है। उचित-अनुचित का निर्णय करना विज्ञ समालोचकों का कार्य है, कवि से परिचित होना हमारा कर्त्तव्य है। देव की रचनाओं में 'फीके' के साथ 'नेकु मैं' के लिए 'नीके' ("नीके मैं फीके ह्वै"—'काव्य रसायन' २:५७), 'इठाइ' के साथ 'बढ़ाइ' के लिए 'बठाई' (' देव दुहूँ सो इठाइ बठाइ"—'कुशल विलास' ६:६) जैसे प्रयोग अनेक मिलेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि देव ने शब्दों का रूप परिवर्तित करने में अन्य कवियों से अधिक स्वतन्त्रता दिखलायी है। उनकी रचनाओं में 'लीला सहित' के लिए 'सलील' ("पति निसि अनत सलील"—'कुशल विलास' ७:२) तथा 'पूरने' के अर्थ में 'पूजै' ("देखतहू दिखसाध न पूजै"—'सुजान विनोद' १ : ५६) जैसे प्रयोग भी कम नहीं हैं। देव के "भाग भरे **भाल** पै सुहाग बरसत है" प्रयोग पर कवि दूलह ने आपत्ति की थी कि "भाग भरे मुख" पाठ होना चाहिए। "ऐसी रसीली अहीरी अहो कहौ क्यों न लगै **मन मोहनै** मीठी" पर अभी तक विवाद समाप्त नहीं हुआ है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कहना है कि 'मन मोहनै' के स्थान पर 'री गोपालहिं' पाठ होना चाहिए। ('बिहारी'—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र—पृष्ठ ६९-७०) असंभव नहीं जो केवल अनुप्रास के मोह से देव ने यह पाठ रखा हो।

संक्षेप—वर्ण-लोप तथा शब्द-लोप के द्वारा संक्षेप कवि की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। "**संके** ग्वार ारन" ('कुशल विलास' ५ : १३) में 'संग के' का एक वर्ण लुप्त है। "सब लोगनि के **हीरा** वाके हाथ ह्वै बिकात हैं" ('रस विलास' १ : ३२) में 'हियरा' का एक वर्ण नहीं है—'हीरा' में श्लेष भी है। "वाही के **जैये** बलाइ ल्यों बालम" ('भाव विलास' ४ : ५७) में 'जाइये' का एक वर्ण लुप्त है। "आजु मिले बहुतै दिन भावते" ('काव्य रसायन' २ : ५५) अर्थात् बहुत दिन बाद—'बाद' लुप्त है। "संग के **न जाने** गए डगर डराने देव" ('काव्य रसायन' २ : ४०) अर्थात् न जाने कहाँ गए—परन्तु 'कहाँ' प्रच्छन्न है। 'के लिए' के लिए केवल 'के' आया है "कुंजन-केलि **के** बेली नवेली—" ('सुजान विनोद" ६ : ५)—यहाँ 'वाले' के अर्थ में 'के' नहीं आया है।

दूरान्वय—कवि देव के छंदों में दूरान्वय की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। कदाचित् यह

भी ध्वनि-संयोजन पर अधिक बल देने के कारण है। अनेक स्थलों पर अर्थ की संगति बैठाने के लिए पदों को असाधारण रूप से भंग करना होता है। "कोटिक मार कुमारनि" का अर्थ मिश्र बंधुओं ने "कामदेव के कुमार" किया है परन्तु हमारे विचार से इसका अन्वय इस प्रकार करना उचित है, "कोटिक कुमार मारनि" अर्थात् 'नि' संबंधकारक का चिह्न न होकर बहुवचन का सूचक है। इसी प्रकार "कोविद काम कला सकलानि" ('रस विलास' ५ : ३४) में भी अर्थ की संगति के लिए 'नि' को 'कला' से मिलाकर 'कलानि' बहुवचन का रूप बनाना होगा।

इन प्रवृत्तियों को समझे बिना कवि के अभीष्ट भाव तक पहुँच सकना संभव नहीं है। आश्चर्य है कि देव में अनुप्रास का यह आग्रह स्वीकार करने पर भी डा० नगेन्द्र ने 'दुहुप' जैसे शब्दों को निरर्थक शब्दों की श्रेणी में डाल दिया है :—"देव के काव्य में ऐसे शब्द भी सैकड़ों हैं जिनका कोई अर्थ ही नहीं मिलता। तीभ, थील, बावस, हुद्र, सीजी, बसीकने, गमार्यो, दुहुव, तरावक, हूप आदि आदि।"

—'देव और उनकी कविता', पृ० २०६

इनमें से न जाने कितने शब्द उन प्रतिलिपिकारों अथवा संपादकों के हैं, जिनकी सामग्री के आधार पर डा० नगेन्द्र ने यह निर्णय दे दिया है। 'बावस' यदि 'वायस' का विकृत रूप है तो यह 'कौवे' के अर्थ में 'काव्य रसायन' में आया है—"वायस चामु चबात"। 'दुपुव' विकृति 'दुहुप' से हुई है जो 'पुहुप' के अंत्यानुप्रास पर 'रुहुप' तथा 'मुहुप' शब्दों के साथ 'दुहू' के लिए आया है। ('कुशल विलास' ५ : २१) 'तरावक' विकृति 'रति मानत रावक' का अशुद्ध रूप से पद-भंग करने के कारण हुई है। इसी प्रकार 'हूप' भी "निरगुनहू पुहै" ('रस विलास' ४ : १७) को अशुद्ध रूप से भंग करने के कारण हुई विकृति है।

शब्द-रूप—अनेक वर्ष हुए 'माधुरी' में एक हस्तलिखित पत्र देव के हस्तलेख के नाम से छपा था। हमने यह प्रतिकृति गंधौली में देखी थी। इस लेख में छोटी-छोटी अशुद्धियाँ होने के कारण यह देव के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का हस्तलेख हो सकता है—यद्यपि इसमें भी शब्दों के औकारान्त की अपेक्षा ओकारान्त तथा उकारान्त की अपेक्षा अकारान्त रूप अधिक हैं। कुसमरा के देव वंशजों के पास संग्रहीत प्रतियाँ भी देव का स्वहस्तलेख नहीं हैं। यद्यपि इसमें भी ओकारान्त तथा अकारान्त रूप अधिक हैं। फिर भी हमने समस्त शब्दों को एक ही रूप में ढालने की अपेक्षा ग्रंथ की अनेक हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त रूप अथवा ग्रंथ की प्राचीनतम प्रतियों में प्राप्त रूप संपादित पाठ में दिया है। हमारे विचार से एक ही कवि में शब्दों का एक ही रूप सर्वत्र मिले, यह अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं है।

शब्द-रूपों को निश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। एक ही काल के अनेक कवियों की भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से प्राप्त एकाधिक प्रतियों से एकत्रित सभी शब्द-रूपों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उस काल में शब्द-रूपों की स्थिति निश्चित की जा सकती है। परन्तु यह प्रस्तुत कार्य से स्वतंत्र कार्य है।

भाव विलास

भूमिका

प्रतियाँ : प्रतियों की बहिरंग परीक्षा——'भाव विलास' के पाठ-संपादन में प्रयुक्त विभिन्न प्रतियों का विवरण इस प्रकार है :—

१. ज०——अर्थात् जयपुर से प्रकाशित 'भाव विलास' का संस्करण । जयपुर के श्री गोविंद-शरण ने सन् १९१६ ई० में अपने निजी पुस्तकालय की संवत् १९१३ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर यह संस्करण प्रकाशित किया था। संपादक ने प्रतिलिपि-संवत् के अतिरिक्त प्रति के संबंध में अन्य सूचनाएँ नहीं दी हैं। इस संस्करण में पंचम विलास, जिसमें अलंकारों का विवेचन है, नहीं है।

सामान्य लेखन-प्रमादों के होते हुए भी प्रति का पाठ अत्यंत विश्वसनीय है।

२. भा०——अर्थात् भारत जीवन प्रेस का संस्करण । 'भाव विलास' का एक अन्य संस्करण भारत जीवन प्रेस, काशी, के संचालक श्री रामकृष्ण वर्मा ने सन् १८९३ ई० में संपादित कर प्रकाशित किया था। ग्रंथ के मुख-पृष्ठ पर प्रकाशित सूचना से ज्ञात होता है कि संपादक ने इसे "रियासत सूर्यपुरा से हाथ की लिखी प्रति पाकर अत्यंत परिश्रम से शुद्ध कर छपवाया है।" आदर्श प्रति के विषय में अन्य सूचनाओं का यहाँ भी अभाव है। संपादक की ओर से काफी शुद्धीकरण होने के कारण प्रति का पाठ अधिक विश्वसनीय नहीं है।

३. सा०——अर्थात् हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग, की संवत् १८७१ की हस्तलिखित पोथी । संग्रहालय में यह पोथी १९५७। २०९५ संख्या पर है। इस प्रति में ११६ पत्र तथा प्रति पृष्ठ १८ पंक्तियाँ हैं। लेखन में काली तथा लाल स्याही का प्रयोग हुआ है। प्रति की चौड़ाई ६ इंच तथा लंबाई ११ इंच है। कुछ स्थलों पर किसी अन्य व्यक्ति ने प्रति का पाठ शुद्ध किया है; ऐसे संशोधन दूसरी कलम से पार्श्व पर अंकित हैं। प्रति की अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"भाव विलासे—पंचमो विलासः ॥ संवत् १८७१ मिति द्वितीय भाद्रपद वदि मिति आसाढ़ पंचमी। दीतवाण संवत् १९१३ ॥" यह प्रति संग्रहालय को बूंदी के श्री राव मुकुन्दसिंह से प्राप्त हुई है। प्रति का पाठ सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

४. हि०——अर्थात्, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, के संग्रह की संवत् १९७७ की हस्तलिखित प्रतिलिपि । काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने गंधौली के श्री ब्रजराज पुस्तकालय की 'भाव विलास' की प्रति से यह प्रतिलिपि एकेडमी के निमित्त तैयार कराई थी। यह प्रति सफेद लाइनदार कागज पर लिखी है तथा इसमें ७२ पत्र एवं प्रति पृष्ठ पर ३२ पंक्तियाँ हैं। प्रति की लंबाई १३ इंच तथा चौड़ाई ९ इंच है। प्रति की अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"बटुकप्रसाद कायस्थ श्री काशी जी में नागरी प्रचारिणी सभा के निमित्त लिखा। मार्गशीर्ष कृष्ण सात संवत्

१९७७।"

यद्यपि हि० प्रति नी० समूह की ही एक आधुनिक प्रति है परन्तु नी० प्रति अत्यधिक जर्जर एवं स्थान-स्थान पर अपठ है इसलिए हमने इस प्रति का उपयोग किया है।

इस प्रति का पाठ अधिक विश्वसनीय नहीं है।

५. नी०—अर्थात् नीलगाँव राजपुस्तकालय, जिला सीतापुर, की 'भाव बिलास' की अपूर्ण प्रति। इस प्रति की एक उल्लेखनीय विशेषता है कि इसके आदि में तथा प्रत्येक विलास के अंत की पुष्पिका में ग्रंथ-नाम 'भाव प्रकाश' मिलता है। यह अत्यंत नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में मुझे प्राप्त हुई थी। अनेक स्थलों पर पाठ दीमकों द्वारा नष्ट हो गया है। पत्रों की संख्या ४२ एवं प्रति पृष्ठ पंक्तियों की संख्या १९ है। यह प्रति 'जाति विलास', 'उमराउ कोष' आदि ग्रंथों के साथ एक जिल्द में बँधी है। इनमें से अंतिम ग्रंथ, अर्थात् 'उमराउ कोष' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि गौरीशंकर दुबे ने संवत् १९४३ में इन ग्रंथों की प्रतिलिपि की थी। 'भाव विलास' की प्रति की अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है "इति श्री देवदत्त विरचिते भाव प्रकाशे पंचमो बिलासः ॥५॥ जदपि बहुत असुद्ध प्रति तदपि सुद्ध बहु कीन। ताहू को पुनि सोधिहैं सज्जन महा प्रवीन॥"

प्रति में केवल श्लेष लक्षण दोहे ५ : ४२ तक ही पाठ है। यह प्रति 'बहु सुद्ध कीन' होने के कारण अधिक विश्वसनीय नहीं है, ऊपर से दीमकों द्वारा पुनः सोधने के कारण अनेक स्थलों का पाठ अपठ भी है।

६. का०—अर्थात् काशिराज सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, काशी, की संवत् १८५७ की हस्तलिखित प्रति। इस प्रति की सूचीपत्र संख्या साहित्य १२-३९ है। पत्र-संख्या ६६ तथा प्रति पृष्ठ पंक्तियों की संख्या १२ है। प्रति की चौड़ाई लगभग ६ इंच तथा लंबाई ४ इंच है। प्रति अपनी चौड़ाई में खुले पत्रों पर लिखी है। लेखन में काली तथा लाल स्याही का उपयोग हुआ है। कागज पुराना तथा मटमैला है। पाठ "—लो अंकुर होइ" १ : ५ से प्रारंभ होता है, इसके पूर्व एक पत्र सादा छूटा है। प्रति में कुछ स्थलों पर उसी हस्ताक्षर से पार्श्व पर पाठान्तर संकलित हैं। प्रति की अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"संवत् १८५७ मिति पोषे १ मासे शुक्ल पक्षे रवि वासरे लिखित श्री काशी जी मध्ये ईश्वरीप्रसाद गौड़ ब्राह्मण अपने पठनार्थ॥"

प्रति का पाठ विश्वसनीय है।

अन्य प्रतियाँ—'भाव विलास' की उपर्युक्त प्रतियों के अतिरिक्त मुझे इस ग्रंथ की अन्य प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं किंतु उसी शाखा की एक अन्य प्रति संपादन-कार्य के निमित्त स्वीकृत हो चुकने के कारण इन प्रतियों का उपयोग नहीं किया गया है। इन प्रतियों का विवरण इस प्रकार है :—

७. काअ०—अर्थात् काशिराज सरस्वती भंडार की दूसरी प्रति। यह प्रति भंडार के साहित्य १३-४० बिंडा में है। प्रति की चौड़ाई ८ इंच तथा लम्बाई लगभग १० इंच है। पत्रों की संख्या ५२ तथा प्रति पृष्ठ पंक्तियों की संख्या १७ है। प्रति बगल से जिल्दबन्द है। कागज मोटा तथा सफेद है। इस सुलिखित प्रति के लेखन में काली-लाल स्याही प्रयुक्त हुई है। प्रतिलिपिकार का नाम-स्थान, प्रतिलिपि-संवत् आदि प्रति में नहीं दिये हैं। प्रति का पाठ का० प्रति के समान आदि में खंडित है एवं "जो नव रस के आदि में पहिलो अंकुर होइ"—१:५ से प्रारम्भ होता है।

इसी शाखा की का० प्रति प्राप्त होने तथा इन प्रतियों में समान विकृतियाँ मिलने के कारण हमने इस प्रति का उपयोग नहीं किया है।

८. गं०—अर्थात् श्री ब्रजराज पुस्तकालय, गंधौली, जिला सीतापुर की संवत् १९३५ की हस्तलिखित प्रति। लगभग १२ इंच लम्बाई तथा ८ इंच चौड़ाई वाले रजिस्टर में यह प्रति अन्य ग्रन्थों के साथ जिल्दबन्द है। ग्रन्थ का नाम आदि में तथा विलास के अन्त की पुष्पिकाओं में पहले 'भाव प्रकाश' था परन्तु प्रतिलिपिकार ने बाद में 'प्रकाश' को काली स्याही से संशोधित कर 'विलास' बनाया है। केवल ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका के 'भाव विलास' पर काली स्याही से संशोधन नहीं हुआ है।

इस प्रति में "श्लेष लक्षण—बरनत संत विहंत"—५:४२ तक का पाठ एक हस्तलेख में है, इससे आगे ग्रन्थ के अन्त तक का पाठ दूसरे हस्तलेख में है। ५:४२ तक का लेखक सादे कागज पर पेंसिल से शिरोरेखा खींचे बिना लिखता था परन्तु दूसरे लेखक ने "—बरनत संत विहंत" पाठ (जो पंक्ति के मध्य में समाप्त होता है) से आगे, यहीं अधूरी पंक्ति से पहले पेंसिल से शिरोरेखा खींचकर लिखना प्रारम्भ कर दिया है। इसी स्थल पर नी० प्रति के भी खंडित होने के संदर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से स्मरणीय है।

इस प्रसंग में श्री ब्रजराज पुस्तकालय में संग्रहीत 'टिकैत राय प्रकाश' की अपूर्ण प्रति के अन्त में प्रतिलिपिकार की निम्नलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है "यतना ही ग्रन्थ मिला सो लिखा गया और जब मिलेगा तब लिखेंगे—जुगल किशोर।" ऐसा मालूम देता है कि 'भाव विलास' की आलोच्य प्रति का आदर्श भी ५:४२ से आगे खंडित था अतः प्रति के स्वामी ने ग्रन्थ का शेषांश किसी अन्य प्रति से पूर्ण किया है। गं० प्रति में "मालती सों" ५:२० छंद "जानि है सुजानि" छंद के पहले, पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख में है। इस प्रति में तथा का० प्रति में "जानि है सुजानि" छंद के केवल प्रथम तीन चरण ही मिलते हैं। संशय लक्षण ५:११ दोहा भी, जो नी० प्रति में प्रमादवश त्रुटित है, इस प्रति में पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख में है।

हमने उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करते हुए इसी शाखा की नी० हि० प्रतियाँ प्राप्य होने के कारण गं० प्रति का उपयोग संपूर्ण रूप से न करके हि० प्रति से इसके पाठान्तर का मिलान कर लिया है।

९. दा०—अर्थात्, तरुण भारत ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग से प्रकाशित संस्करण। श्री लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी ने संवत् १९९१ में 'भाव विलास' का यह सटीक संपादन प्रकाशित किया है। संपादकीय भूमिका में पाठ के आदर्श का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु भा० प्रति से इसके पाठ की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दा० प्रति का आधार यह भा० मुद्रित संस्करण ही है। विस्तारभय से हम केवल थोड़े से प्रमाण दे रहे हैं :—

४:१२ दोहा केवल भा० दा० प्रतियों में त्रुटित है। केवल इन्हीं प्रतियों में उत्कंठिता नायिका लक्षण दोहा ४:८९ के पश्चात् स्थान-विपर्यय से कलहंतरिता नायिका का उदाहरण मिलता है, जो असंगत है। ४:१११ का सामान्य पाठ है "नाह सों नेह को नातो न नेकु **जऊ पर** पाइ प्रतीति बढ़ावै।" भा० प्रति में अशुद्ध पद-भंग करने से **'ज ऊपर'** पाठ मिलता है एवं यही अशुद्ध रूप दा० प्रति में भी है। ५:२९ सामान्य पाठ है "कौन के होइ **न ही** मैं हुलास।" भा० प्रति

में **'नहीं'** पाठ है तथा पाठ का यही रूप दा० प्रति में भी मिलता है।

भा० प्रति की प्रतिलिपि होने के कारण दा० प्रति का उपयोग हमने नहीं किया है।

१०. ना०—अर्थात् नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के आर्य भाषा पुस्तकालय की संवत् १९७७ की प्रति। इस प्रति की सूचीपत्र संख्या ११८ है तथा यह लम्बाई-चौड़ाई में ६॥ इंच एवं ७ इंच है। पत्र-संख्या ११८ तथा प्रति पृष्ठ पंक्तियों की संख्या १६ है। प्रति बगल से जिल्दबन्द है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है "हस्ताक्षर बटुकप्रसाद कायस्थ श्री काशी जी में नागरी प्रचारिणी सभा के निमित्त लिखा। मार्गशीर्ष कृष्ण ७ संवत् १९७७।"

यह प्रति बिलकुल आधुनिक है। श्री मिश्र बन्धुओं ने सभा के अपने मंत्रित्वकाल में गंधौली वाली प्रति से सभा के लिए यह प्रतिलिपि तैयार कराई थी। गं० तथा ना० प्रति में समान पाठान्तर एवं पाठ-विकृतियाँ मिलने से भी यही सिद्ध होता है। इस प्रति की पूर्वज गं० एवं वंशज हि० प्रति उपलब्ध होने के कारण हमने इस प्रति को परिहार्य माना है।

११. इ०—अर्थात् इंडिया आफिस लाइब्रेरी, लंदन, की प्रति। संपादक को उक्त पुस्तकालय के सौजन्य से 'भाव विलास' की एक प्रति की माइक्रोफिल्म प्रतिलिपि प्राप्त हुई है। माइक्रोफिल्म प्रतिलिपि होने के कारण इसकी आदर्श प्रति का आकार-प्रकार ज्ञात नहीं हो सका है। प्रति में कुल १०९ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर ११ पंक्तियाँ हैं। प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि-संवत् प्रति के अन्त में नहीं हैं।

इ० तथा का० प्रति में समान पाठ-विकृतियाँ मिलने के कारण इस प्रति से पाठान्तर केवल प्रथम विलास तक दिये गए हैं।

प्रतियों की अंतरंग परीक्षा : नी० हि० प्रतियाँ : प्रक्षेप :

'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियों में अन्य प्रतियों की अपेक्षा लगभग ९० छंद अधिक हैं। कवि देव ने बहुधा अपने ग्रंथों का आकार-परिवर्धन कर एक नवीन ग्रंथ अथवा उसका नया संस्करण तैयार किया है, इस संभावना के संदर्भ में नी० हि० प्रतियों के इन अधिक छंदों की परीक्षा होना आवश्यक है। इन छंदों की प्रतीक सूची इस परिच्छेद के अंत में दे दी गई है।

जहाँ 'भाव विलास' की अन्य प्रतियों में एक लक्षण का एक उदाहरण है, वहाँ नी० हि० प्रतियों में इस उदाहरण के पश्चात् पुनर्यथा शीर्षक से दूसरा उदाहरण-छंद भी मिलता है। इन अधिक छंदों के देवकृत न होने का संदेह इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि इनमें से अधिकतर छंद देवकृत अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं तथा इनमें से कुछ ऐसे छंद भी, जो अन्य ग्रंथों में नहीं आए हैं, देवकृत हैं क्योंकि ऐसे अनेक छन्दों में भी देव की छाप है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि ये अधिक छंद नी० हि० प्रतियों में निरपवाद रूप से लक्षण के द्वितीय उदाहरण होकर आए हैं, जैसे कुट्टमित हाव का उदाहरण "नाह सों नाही" ३:३४वां छंद नी० हि० प्रतियों सहित सभी प्रतियों में मिलता है किंतु इसके पश्चात् केवल नी० हि० प्रतियों में पुनर्यथा शीर्षक से "छतिया छुवत" छंद भी है। यह छंद देवकृत किसी अन्य ग्रंथ में नहीं आया है। कहीं-कहीं सभी प्रतियों में समान रूप से मिलने वाले उदाहरण छंद के बाद नी० हि० प्रतियों में एकाधिक अधिक छंद आए हैं, जैसे प्रथम विलास के अंत में नी० हि० प्रतियों

में पन्द्रह छंद एक साथ अधिक हैं। कहीं-कहीं इन अधिक छंदों के द्वारा नी० हि० प्रतियों में विषय के किसी भेद अथवा उपभेद को सम्मिलित करने का प्रयास हुआ है, जैसे रोमांच संचारी उदाहरण के साथ इन प्रतियों में उसके एक उपभेद स्मरण रोमांच का उदाहरण अधिक है। यह सत्य है कि कवि ने हाव-भाव के परस्पर संयोग से अनेक संचारियों की उद्भावना मानी है। 'रस विलास' के सप्तम विलास में विस्तार से इनका विभाजन तथा वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए देव ने स्मरण सात्विक भाव के ही स्वेद स्मरण, स्तंभ स्मरण, प्रलय स्मरण आदि नौ भेद किये हैं। किंतु नी० हि० प्रतियों में अधिक छंद के द्वारा केवल एक रोमांच स्मरण को 'भाव विलास' में सम्मिलित किया गया है। कहीं-कहीं अधिक छन्दों से किसी नवीन विषय का भी प्रवर्तन हुआ है, जैसे प्रथम विलास के अंत में वैभव का लक्षण-उदाहरण, भूषण का उदाहरण, अष्टांगवती नायिका का उदाहरण आदि।

इन अधिक छंदों की परीक्षा करने पर यह भी ज्ञात होता है कि ये छंद सभी प्रतियों में प्राप्त उदाहरण की अपेक्षा लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा उसके अनुपयुक्त उदाहरण हैं। जैसे १:२९ के पश्चात् चल चितवन के दूसरे उदाहरण के रूप में नी० हि० प्रतियों में निम्नलिखित छंद अधिक है :—

"ग्वालि गई इक ह्याँ कि उहाँ मधि रोकि सु तौ मिसु कै दधिदान कौ।
वौ तो भटू वहि भेंटी भुजा भरि नातो निकासि कछू पहिचानि कौ।
आई निछावरि कै मन मानिक गौ रस दै रस लै अधरानि कौ।
वाहि दिना ते हिये मैं गड़ौ वह ढीठ बड़ौ री बड़ी अँखियानि कौ॥"

परंतु चल चितवन अथवा नेत्र संचालन की ओर छंद में कहीं संकेत भी नहीं मिलता! नेत्रों से संबंधित शब्द केवल अंतिम चरण के "ढीठ बड़ौ री बड़ी अँखियानि कौ" पदांश में है परन्तु वह भी ढीठ नायक का विशेषण है, उसमें नेत्रों का कोई कार्य-व्यापार नहीं है।

इस अधिक छंद की तुलना में चल-चितवन का सभी प्रतियों में प्राप्त उदाहरण द्रष्टव्य है :—

"हरि को इत हेरत हेरि उतै उर आलिन के उर सों परसै।
तन तोरि कै जोरि मरोरि भुजा मुख मोरि कै बैन कहै सरसै।
मिस सों मुसक्याइ चितै समुहै कवि देव दरादर सों दरसै।
दृगकोर कटाछ लगे सरसान मनो सर सान धरे बरसै॥" १:२९

—परस्पर हेरने में, मुख मोड़ने में, अंतिम चरण में—संपूर्ण छंद में नेत्र संचालन की प्रमुखता स्पष्ट है।

इसी प्रकार वैवर्ण्य सात्विक भाव के दूसरे उदाहरण के रूप में नी० हि० प्रतियों में आये निम्नलिखित अधिक छंद की संगति भी चिंत्य है :—

"धाई के अंक में सोई निसंक ह्वै पंकज सी अँखियानि झकाझकी।
त्यों सपने में लख्यो अपने पिय प्रेमपने छवि ही सों छकाछकी।
ठाढ़े ही ठाढ़े भरी भुज गाढ़े सु बाढ़ी दुहू के हिये में सकासकी।
देव जगी रतियाहू गई न तिया की गई छतिया की धकाधकी॥"

इस छंद में कहीं वैवर्ण्य का संकेत नहीं है। इसके विपरीत द्वितीय चरण में स्वप्न दर्शन का वर्णन स्पष्ट है अतः यह छंद स्वप्न दर्शन का उदाहरण हो सकता है। 'सुजान विनोद' तथा 'भवानी विलास' में यह छंद इसी शीर्षक के अंतर्गत आया भी है।

अब इस छंद की तुलना में सभी प्रतियों मैं मिलने वाला २:१६वां छंद देखें—

"सुंदरि सोवति मंदिर मैं कहुँ सापने मै निरख्यो नंदनंद सो।
त्यों पुलक्यो जल सौं झलक्यो उर औचक ही उचक्यो कुच कंदु सो।
तौ लगि चौंकि परी कहि देव सु जानि पर्‌यो अभिलाष अमंद सो।
आलिन कौ मुख देखत ही मुख भावती कौ भयो भोर को चंद सो॥"

छंद वैवर्ण्य सात्विक भाव का संगत उदाहरण है।

सभी प्रतियों में प्राप्त उद्वेग उदाहरण के पश्चात् केवल नी० हि० प्रतियों में निम्नलिखित छंद अधिक हैं—

"इभ से भिरत चहूँधाई से घिरत घन आवत झिरत झीन झुर सों झपकि झपकि।
सोरन मचावै नचै मोरन की पाँति चहुँ ओरन तैं कौंधि जाति चपला लपकि लपकि।
बिन प्रान प्यारे प्रान न्यारे होत देव कहै नैननि तैं रहै असुवा टपकि टपकि।
रतिया अँधेरी धीर न तिया धरति मुख बतिया कढ़त उठै छतिया तपकि तपकि॥"

यह छन्द उद्वेग कामदशा का अनुपयुक्त उदाहरण है। छन्द में पावस का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है एवं इसी शीर्षक के अन्तर्गत यह 'सुजान विनोद' तथा 'सुखसागर तरंग' में मिलता है। अब इस उदाहरण के साथ सभी प्रतियों में प्राप्त निम्नलिखित उदाहरण की तुलना करें—

"बिरह के घाम ताई बाम तजि धाम पाई प्रतिकूल कूल कालिंदी की लहरी।
याते न अन्हाइ जरै जोवत जुन्हाई तातें चितै चहुँ ओर देव कहै यहै हहरी॥
बारिज बरत बिन बारे बारि बारु बीच बीच बीच बीचिका मरीचिका सी छहरी।
चंड मारुतंड कै अखंड बिधु मंडल है कातिक की राति किधौ जेठ की दुपहरी॥" ३:५८

कवि द्वारा निरूपित लक्षण "भली वस्तु नागा लगै सो उद्वेग बखान" के अनुसार कालिंदी की धार, जुन्हाई, वारिज तथा कार्तिक की रात्रि जैसी सुखदायिनी वस्तुएँ भी विरह के कारण दुःखद हो रही हैं।

इस विश्लेषण से यह प्रगट होता है कि नी० हि० प्रतियों में प्राप्त अधिक उदाहरण छंद स्वीकृत लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा अनुपयुक्त उदाहरण हैं।

नी० हि० प्रतियों में जहाँ भी अधिक छंदों के द्वारा आलोच्य विषय के किसी उपभेद का वर्णन हुआ है वहाँ उसके सभी उपभेदों को नहीं वरन् उसके कुछ भेदों को ही सम्मिलित किया गया है। स्मरण के केवल स्मरण रोमांच भेद को सम्मिलित करने से यह स्पष्ट है। इसी प्रकार 'रस विलास' में वर्णित दूती के दस कर्मों में से विरहास्वासन आदि केवल तीन कर्मों को ही नी० हि० प्रतियों में अधिक छंदों के द्वारा सम्मिलित करने से भी यही प्रगट होता है।

कहीं-कहीं इन अधिक छंदों के द्वारा किसी नवीन विषय को ग्रंथ में सम्मिलित करने का भी प्रयास हुआ है परन्तु इस नवीन विषय का संदर्भ अनुपयुक्त है। जैसे ग्रंथ के द्वितीय विलास में संचारी भावों के विवेचन के मध्य अष्टांगवती नायिका का उदाहरण तथा दूती-भेद का विस्तार

हुआ है। वास्तव में इनके विवेचन का उपयुक्त स्थल चतुर्थ विलास है, जहाँ नायक-नायिका भेद विस्तार से वर्णित है, द्वितीय विलास नहीं।

इन प्रतियों में अधिक छंदों की उपस्थिति केवल तीन प्रकार से संभव है (१) ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के प्रथम संस्करण की प्रतियाँ हैं, इस कारण ये छंद कवि की अप्रौढ़ रचनाएँ हैं, (२) ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के आकार-परिवर्धित संस्करण की प्रतियाँ हैं, तथा (३) ये छन्द इन प्रतियों में प्रक्षिप्त हैं। हम इन संभावनाओं पर इसी क्रम से विचार करेंगे।

(१) कवि देव ने अपने ग्रंथों का एकाधिक संस्करण किया है अतः असंभव नहीं जो उन्होंने 'भाव विलास' ग्रंथ के भी दो संस्करण किये हों तथा आलोच्य प्रतियाँ इनमें से प्रथम संस्करण की वंशज प्रतियाँ हों। 'भाव विलास' की प्रौढ़ता देखते हुए श्री मिश्र बंधुओं ने अनुमान लगाया है कि देव ने सोलह वर्ष की अल्पायु में रचित अपने इस ग्रंथ का परिष्कार वय प्राप्त करने पर किया होगा तो "उन्होंने इसके निकम्मे छंद निकालकर उनके स्थान पर पीछे से बने हुए उत्कृष्ट छंद रख दिये होंगे।" ('हिंदी नवरत्न' पृ० २७६) और डा० नगेन्द्र का भी ऐसा ही मत है ('देव और उनकी कविता' पृ० ३६-३९)। इन प्रतियों के ये अधिक छंद ही, जो लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा अनुपयुक्त उदाहरण सिद्ध हुए हैं, तथा जो अन्य प्रतियों में नहीं मिलते हैं, 'निकम्मे' छंद हो सकते हैं।

इस सम्भावना पर मेरी निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं। सर्वप्रथम तो 'भाव विलास' के सोलह वर्ष की अवस्था में रचे जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। 'चढ़त सोरही वर्ष' दोहा प्रक्षिप्त है। (देखें ' 'भाव विलास' के अन्तिम दोहों की प्रामाणिकता' शीर्षक। यह कल्पना इस दोहे को प्रामाणिक मानने तथा 'भाव विलास' के छंदों की उत्कृष्टता को देखते हुए की गई है अतः उपर्युक्त दोहा के प्रक्षिप्त सिद्ध होने के बाद कवि के वय तथा अनुभव प्राप्त करने पर इसके निकम्मे छन्द निकालने की सम्भावना भी केवल कल्पना पर आधारित रह जाती है। कोई भी कवि अपनी अल्पायु में रचित कृति का परिमार्जन करेगा तो वह केवल हलके छन्दों को ही निकालकर सन्तुष्ट नहीं होगा, वरन् वह स्वीकृत छन्दों के पाठ में भी संशोधन-परिवर्तन करेगा क्योंकि अल्पवय के प्रभाव से ग्रंथ के केवल कुछ ही छन्द ग्रसित नहीं होते अपितु ग्रंथ के लक्षण दोहे तथा सभी उदाहरण छन्द इससे समान रूप से प्रभावित होते हैं। यदि कवि ने छन्दों को अस्वीकृत करने के साथ-साथ पाठ-संशोधन भी किया होता तो वह 'भाव विलास' की अन्य प्रतियों में अवश्य दृष्टिगोचर होता। परन्तु 'भाव विलास' की इन तथाकथित दो कोटि की प्रतियों में पाठ के स्तर के आधार पर ऐसा कोई अन्तर नहीं मिलता।

हम देख चुके हैं कि अधिक छन्दों में अनेक अपने लक्षण के अनुपयुक्त उदाहरण हैं, अनेक उदाहरण संदर्भ-भ्रष्ट हैं तथा अनेक स्थलों पर नवीन विषय का विवेचन भी अधूरा है। संस्करण चाहे प्रथम हो अथवा द्वितीय, चाहे कवि की अल्पायु में रचित हो अथवा प्रौढ़ता प्राप्त करने पर, सोलह वर्ष की आयु में ही अष्टांगवती नायिका के शास्त्रीय लक्षण से विज्ञ कवि अष्टांगवती नायिका तथा दूती का उदाहरण छन्द संचारियों के मध्य नहीं रख देगा, ना ही वह दूती-कर्म के दस भेदों में से केवल दो-तीन भेदों का ही उदाहरण देकर रह जाएगा। इस प्रकार भी ये छन्द कवि द्वारा इस ग्रंथ में समाविष्ट हुए नहीं लगते।

(२) पहली सम्भावना के विपरीत दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि जैसे कवि देव ने 'रस विलास' आदि अपने अनेक ग्रंथों के आकार में छन्दों को समाविष्ट कर ग्रंथ का नया संस्करण तैयार किया है उसी प्रकार उसने 'भाव विलास' के भी दो संस्करण किये हों। अतः ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के ऐसे ही आकार-संवर्धित संस्करण की प्रतियाँ हो सकती है।

हम इस सम्भावना को निम्नलिखित कारणों से अमान्य समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि 'रस विलास', 'कुशल विलास', 'सुजान विनोद' तथा 'सुख सागर तरंग' आदि ग्रंथों के आकार संवर्धित द्वितीय संस्करण भी हुए हैं परन्तु कवि ने इन सभी ग्रंथों का आकार-परिवर्धन किसी आश्रयदाता को समर्पित करने के हेतु किया है। 'भाव विलास' की स्थिति इन ग्रंथों से भिन्न है क्योंकि यह तथाकथित आकार-संवर्धित संस्करण किसी आश्रयदाता को समर्पित नहीं है—आज़मशाह को भी नहीं क्योंकि आज़मशाह से सम्बन्धित प्रक्षिप्त दोहे (देखें, ' 'भाव विलास' के अंतिम दोहों की प्रामाणिकता' शीर्षक में भी केवल आज़मशाह को 'भाव विलास' सुनाने का उल्लेख है, उन्हें यह ग्रंथ समर्पित करने का नहीं। अतः इस ग्रंथ की पाठ-वृद्धि करने का कोई कारण नहीं है। कवि देव ने अकारण अपने ग्रंथों का पाठ-परिवर्धन कभी नहीं किया है—कोई कवि नहीं करेगा। फिर, यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाए कि इन प्रतियों में कवि-कृत पाठ-परिवर्धन के कारण अधिक छन्द मिलते हैं तो भी असंगत उदाहरणों, भ्रष्ट-संदर्भ तथा अपूर्ण विषय-विवेचन का कोई संतोषप्रद कारण नहीं है। पाठ-वृद्धि करते समय देव-जैसा समर्थ कवि उन्हीं छन्दों को ग्रंथ के मूल आकार में सम्मिलित करेगा जो छन्द ग्रंथ में विद्यमान उदाहरणों की तुलना में उत्कृष्ट होंगे, वह उसी नवीन भेदोपभेद का विवेचन इस संस्करण में करेगा जिनसे ग्रंथ में निरूपित विषय पूर्ण होता हो। केवल कुछ-एक भेदों की चर्चा कर वह पहले ही सम्पूर्ण ग्रंथ का विषय-विवेचन अपूर्ण तथा खंडित नहीं करेगा। एक बार ग्रंथ के आकार-परिवर्धन में प्रवृत्त होने पर वह पुनः संयम द्वारा भी बाधित न होगा।

इस प्रकार इन प्रतियों में ये अधिक छन्द 'भाव विलास' के किसी संस्करण की प्रति में कवि द्वारा समाविष्ट सिद्ध नहीं होते अतः हम इन छन्दों को नी० हि० प्रतियों में प्रक्षिप्त मानते हैं।

(३) इन अधिक छन्दों की असंगति तथा लक्षण के अनुयुक्त उदाहरण होने आदि की जिन विशेषताओं का हमने ऊपर वर्णन किया है वे सभी विशेषताएँ इन छन्दों के प्रक्षिप्त होने का प्रमाण हैं। अधिक छन्दों में पाठ-विकृतियों की तुलनात्मक स्थिति से भी ये छन्द प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं क्योंकि 'भाव विलास' की सभी प्रतियों में मिलने वाले नी० हि० प्रतियों के छन्दों में अत्यधिक पाठान्तर तथा पाठ-विकृतियाँ मिलती हैं परन्तु इन अधिक छन्दों में पाठ-विकृतियों की संख्या अत्यन्त अल्प है। अनेक अधिक छन्दों में तो केवल सामान्य पाठान्तर मिलते हैं। स्मरण रहे कि यदि ये अधिक छन्द प्रतिलिपि परम्परा में कहीं प्रक्षिप्त न होकर सभी प्रतियों में मिलने वाले नी० हि० प्रतियों के अन्य छन्दों की भाँति ग्रंथ की मूल पाठ-परम्परा में चले आए 'भाव विलास' के किसी भी संस्करण के मौलिक छन्द होते तो अन्य छन्दों में तथा इन अधिक छन्दों में पाठ-विकृतियों की संख्या में इतना अन्तर कदापि नहीं हो सकता था। एक ग्रंथ की एक ही पाठ-परम्परा में चली आई नी० हि० प्रतियों में छन्दों के इन दो समूहों के मध्य पाठ-विकृतियों

का यह असाधारण अन्तर पाठ-वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार असामान्य तथा इस कारण अविश्वसनीय है।

हमने ऊपर यह भी देखा है कि अधिक छन्द लक्षण के निरपवाद रूप से द्वितीय अथवा तृतीय उदाहरण के रूप में नी० हि० प्रतियों में मिलते हैं। इन अधिक छन्दों में ऐसे भी एक-दो छन्द हैं जो प्रथम उदाहरण की अपेक्षा लक्षण के अधिक उपयुक्त उदाहरण कहे जा सकते हैं। अतः यह भी नहीं माना जा सकता कि कवि ने छन्दों को उत्कृष्टता के क्रम से रक्खा है। इस प्रकार अधिक छन्दों का सर्वदा द्वितीय उदाहरण के रूप में सम्मिलित किया जाना भी प्रक्षेप की सम्भावना को पुष्ट करता है।

कवि प्रत्येक नये विषय का निरूपण करने के पूर्व एक दोहे में उसका विस्तार तथा उसकी रूपरेखा स्पष्ट करता आया है परन्तु नी० हि० प्रतियों में इन अधिक छन्दों के द्वारा जिन नये विषयों का समावेश किया गया है, ग्रंथ में पहले उनका कहीं किसी प्रसंग में उल्लेख नहीं मिलता अतः इस प्रकार भी इन प्रतियों की पूर्व परम्परा में ये अधिक छन्द किसी प्रक्षेपकार द्वारा प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं।

बहुत संभव है कि काव्य-शास्त्र का अध्ययन करते हुए किसी योग्य व्यक्ति ने अभ्यास कौतुकवश 'भाव-विलास' में देवकृत अन्य ग्रंथों से समान लक्षण के उदाहरण छंद खोज-खोजकर प्रति के पार्श्व पर एकत्र किये हों तथा यह पाठ-वृद्धि प्रतिलिपि परंपरा में मूल पाठ के साथ मिल गई हो। हमारा अनुमान है कि यह कार्य संभवतः देव के पौत्र तथा कवि, 'बखतेसु विलास' के रचयिता श्री भोगीलाल द्वारा संपन्न हुआ है। भोगीलाल समर्थ कवि थे, देवकृत प्रायः सभी ग्रंथ उन्हें सुलभ थे तथा उन्होंने इन सभी ग्रंथों का गंभीरता से अध्ययन किया होगा अतः इन ग्रंथों से लक्षण के समान उदाहरण खोज-खोजकर एक स्थल पर संग्रहीत करना भी उन्हीं के वश की बात थी। कोई सामान्य प्रतिलिपिकार तो यह दुस्तर कार्य करने में समर्थ भी नहीं हो सकता। अधिक छंदों वाली नी० हि० प्रतियों की पाठ-परम्परा अन्य प्रतियों की अपेक्षा प्राचीनतर भी है, तथा संवत् १८५७ में प्रतिलिपि हुई का० (तथा इसी समय की इंडिया आफ़िस की प्रति) में ये विवादास्पद छंद नहीं हैं अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि का० प्रति अथवा उसकी आदर्श प्रति के प्रतिलिपि होने तक अधिक छंद प्रक्षिप्त नहीं हुए थे। संवत् १८५७ तक प्रक्षेप न होने तथा भोगीलाल द्वारा इस वर्ष 'बखतेसु विलास' की रचना होने के आधार पर भी उन्हीं के द्वारा इन अधिक छंदों के प्रक्षेप की संभावना मानी गई है।

प्रक्षेप का एक और कारण संभव है। नी० हि० प्रतियों में प्राप्त पाठ की परीक्षा से यह ज्ञात होता है कि ग्रंथ का मूल आदर्श प्रतिलिपि के समय अत्यंत नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में था। इसी कारण अन्य उपलब्ध प्रतियों में भी ग्रंथ के अंतिम अंश में पाठ-विकृतियों तथा पाठान्तरों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। नी० प्रति तो अंत में खंडित ही है। इस प्रति के अंत में आया "जद्यपि बहुत असुद्ध प्रति तदपि सुद्ध बहु कीन" दोहा भी आदर्श प्रति के अत्यंत नष्ट-भ्रष्ट होने पर किसी प्रतिलिपिकार का साक्ष्य है। स्मरण रहे कि इस संग्रह की न केवल 'भाव विलास' की प्रति वरन् 'जाति विलास', 'प्रेम तरंग' आदि ग्रंथों की प्रतियाँ भी मूल आदर्श के नष्ट-भ्रष्ट होने का प्रमाण देती हैं। कहना न होगा कि ये सभी प्रतियाँ अपने ग्रंथ की प्राचीनतम शाखा

की प्रतियाँ हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि 'भाव-विलास' में अधिक छंदों के प्रक्षेप का एक कारण इसके मूल आदर्श का स्थल-स्थल पर खंडित तथा जर्जरित अवस्था में होना भी है। प्रतिलिपि-कार ने अपने ग्रंथ का खंडित रूप छिपाने के लिए अथवा उसकी क्षतिपूर्ति करने के हेतु अन्य ग्रंथों से छंद लेकर सम्मिलित किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

ऊपर उद्धृत दोहे के शब्द इसी संभावना की ओर इंगित करते प्रतीत होते हैं। स्पष्ट है कि प्रक्षेपकार ने प्रक्षेप के लिए देवकृत एक से अधिक ग्रंथों का आश्रय ग्रहण किया है। संभव है कि इन ग्रंथों में कोई ऐसा भी ग्रंथ रहा हो जो आज उपलब्ध नहीं है तथा अन्य ग्रंथों में न मिलने वाले छंद इसी ग्रंथ से आये हों। देवकृत एक नवीन ग्रंथ 'सुमिल विनोद' इन पंक्तियों के लेखक को मिला है। संभव है कि भविष्य में नवीन ग्रंथों के प्रकाश में आने पर सभी अधिक छंदों का आगम-स्रोत ज्ञात हो सके। इन अधिक छंदों वाली प्रतियों में ग्रंथ का 'भाव प्रकाश' नाम भी इसी प्रक्षेपकार का दिया हुआ है।

प्रक्षिप्त छंदों की सूची नीचे दी जा रही है। छंद के पूर्व दी हुई संख्या इस संपादित संस्करण के अनुसार उस स्थल का निर्देश करती है जिसके अनन्तर नी० हि० प्रतियों में प्रक्षेप हुआ है:—

१:३० "ग्वालि गई"। १:३२ "जहाँ साज", "पावरिन पाउड़े", "फटिक सिलान", "गोरे मुख गोल", "थोरिये बैस", "जगमगे जोवन", "काहू की बंक", "नंद कुमार उतै", "सील के सागर", "कानन कुंडल", "ऐपन की ओप", "बरुनी बघंबर", "लेहु लली", "देव तजौ गुन", "बारिये बैस"। २:१० "हरषि हरषि", "इंगुर सों मिलि"। २:१६ "धाइ के अंक"। २:१७ "आइ नहीं तन"। २:४० "कछु और उपाय", "बैरी बसंत के", "खोरि मैं खेलन"। २:६० "मानमई अबही"। २:८१ "घाघरो घनेरो", "मोरे ते भूरिक"। २:८२ "देह तज्यो"। २:८८ "ना यहु नंद को","धुनि धुनि सीस"। २:१०३ "सुख दुःख मैं","रीझि रीझि", "ठकुराइन सब", "उज्ज्वल अखंड"। ३:१४ "आई हौं देव"। ३:२४ "सहर सहर सोंधो", "आली झुलावत"। ३:३४ "छतिया छुवत"। ३:३८ "परम सलोनी", "बरसाने की ओर"। ३:५२ "मूरति जो मन"। ३:५४ "गूजरी ऊजरे", "कैसेऊ कोऊ करौ", "देव मैं सीस", "नाखिन टरत"। ३:५६ "देखे अनदेखे", "प्रेम की पीर", "कान्ह मई"। ३:५८ "इभ से भिरत", "कंत बिन बासर"। ४:७ "झूलनहारि अनोखी"। ४:११ "भोरही श्री बृषभान"। ४:१६ "बैठी कहा धरि"। ४:१८ "मोसो कहो सो"। ४:२२ "भौन भरे सिगरे"। ४:२७ "बलि बाम लोचन"। ४:२९ "रँग लाल जरी"। ४:३० "बैरिनि मेरि"। ४:३२ "बालापन को मेटि", "लहलही बैस"। ४:३३ "सावन मास सखीन"। ४:३८ "हाथी दे निसंक", "होरी मैं आजु", "लोग लोगायन होरी"। ४:४२ "कुंज में ह्वै"। ४:४९ "जवा झमकावति", "महल तें आई", "वै दिन नाहिं"। ४:६० "खेलत आँख मिहीचनि"। ४:६५ "बार दुवारन"। ४:६७ "बृंदावन चारन को"। ४:६९ "ऐहौ भरे रस"। ४:८२ "आजु गई हुती"। ४:८३ "देखु री दरपन दौरि", "कुंदन से अंग", "जोवन लौ जुवतीन", "आँखिन मैं पुतरी", "बूझो बड़ेन को", "गौत गुमान उतै"। ४:८८ "रूप चुवै चपि"। ४:९४ "सखी के सोच"। ४:१०० "बालम बिरह", "पीछे पँखा चौर"। ४:१०२ "सूझत न", "बात कही सो", "कल न परति", "नौल बधू नव", "हाँसी करी स्याम",

'आवन सुन्यो है" । ४:१०७ "रावरे पायन ओट" । ४:१०९ "कौन भयो दिन" ।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, नी० हि० शाखा की आदर्श प्रति का पाठ अत्यंत भ्रष्ट अवस्था में था अतः प्रतिलिपिकार ने अपनी ओर से स्थल-स्थल पर पाठ संशोधन तथा प्रक्षेप किया है। यही कारण है कि नी० हि० प्रतियों में संगत तथा असंगत दोनों प्रकार के पाठान्तर बड़ी संख्या में मिलते हैं परन्तु प्रतिलिपिकार द्वारा संशोधित होने के कारण स्पष्ट पाठ-विकृतियाँ बहुत कम मिलती हैं। यहाँ हम यथासम्भव केवल ऐसे ही उदाहरण दे रहे हैं जो अर्थ अथवा प्रसंग के विचार से असंगत तथा अग्राह्य हैं।

त्रुटित पाठ :

१:३१ अंग भंग उदाहरण।

"जानति हौ भुजमूल उचाइ दुकूल लचाइ लला ललचैयत।"

अंग भंग के प्रस्तुत प्रसंग में उपरोक्त चरण संगत है तथा 'भवानी विलास' में २:४४ एवं 'सुख सागर तरंग' में ७८६ पर इसी छन्द में भी मिलता है। कदाचित् नी० हि० प्रतियों के समान आदर्श में यह चरण त्रुटित होने के कारण इन प्रतियों में इसके स्थान पर निम्नलिखित पाठ है "ता रस सिंधु गई बुधि बूड़ि न बोहित धीरज कैसे बचैयत।" स्वीकृत पाठ से तुलना करने पर यह पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

२:१०

"अंचल भीन भकै भलकै पुलकै कुच कुंद **कदंब** कली सी।"

नी० हि० प्रतियों में **'कदंब'** शब्द त्रुटित होने के कारण मत्तगयंद सवैया के प्रस्तुत चरण में २३ के स्थान पर २० वर्ण ही रह जाते हैं और छन्दोभंग होता है।

२:३०

"**गोकुल** गाँव की गोपवधू बनि कै निकसीं दुरि दै दै बुलायो।"

नी० प्रति में "गाँव की गोपवधू बनि कै दुरि कै सबदै दै बुलायो" तथा हि० प्रति में "गाँव की गोपवधू निकसीं बनिकै दुरि कै सब दै दै बुलायो" पाठ है। तीन वर्णों का **'गोकुल'** शब्द इन दोनों ही प्रतियों में त्रुटित है तथा दोनों ही प्रतियों में चरण की गति शुद्ध करने के हेतु **"कै सब"** पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त हुआ है। यह पाठ प्रस्तुत प्रसंग में असंगत होने के कारण प्रक्षिप्त माना गया है।

२:३२

"**आजुही** भाजि गई सब लाज हँसै अरु मोहन को मुख जोवै।"

नी० हि० प्रतियों में इसके स्थान पर पाठ है "भाजि गई सब लाज हँसै अरु—रूप कै—नी०, रोय कै—हि०—मोहन को मुख जोवै।" इन दोनों ही प्रतियों में तीन वर्णों का **'आजु ही'** शब्द त्रुटित है तथा इसके स्थान पर प्रतिलिपिकार द्वारा "रोय कै" असंगत पाठ-प्रक्षेप हुआ है।

३:१७ प्रच्छन्न संयोग का उदाहरण छन्द केवल नी० हि० प्रतियों में नहीं है। इसके पूर्व शृंगार रस के भेदों का वर्णन करते हुए कवि ने स्वयं कहा है "द्वै प्रकार सिंगार रस है संयोग वियोग। सो प्रच्छन्न प्रकास करि कहत चारि विधि लोग॥"—३:१५। ३:१८ संख्या पर

प्रकाश संयोग का उदाहरण नी० हि० प्रतियों में भी मिलता है अतः इन प्रतियों में प्रच्छन्न संयोग का उदाहरण प्रतिलिपिकार की भूल से छूट गया मालूम देता है।

४:४५ रतिकोविदा उदाहरण छन्द केवल नी० हि० प्रतियों में नहीं है। ४:४३ संख्या के दोहे में कवि ने प्रौढ़ा नायिका के निम्नलिखित भेद माने हैं "लब्धापति रति कोबिदा क्रान्त नाइका सोइ।" रतिकोविदा के अतिरिक्त अन्य भेदों के उदाहरण नी० हि० प्रतियों में भी मिलते हैं अतः यह स्पष्ट है कि यह छन्द भी इन प्रतियों में प्रतिलिपिकार के प्रमाद से छूट गया है।

४:८१

"सीरी बयार छिदै अधरा उरझै उर झाँखर **झार मझाइ कै।**"

'झार' का 'र' वर्ण त्रुटित होने के कारण नी० हि० प्रतियों में **'झाम झाई कै'** पाठ मिलता है। यह पाठ निरर्थक है तथा इससे छन्दोभंग भी होता है अतः यह पाठ विकृत माना गया है।

५:४२ से आगे नी० प्रति खंडित है तथा हि० प्रति में इस स्थल से आगे का पाठ भिन्न हस्तलेख में है। जैसा कि हमने अन्यत्र कहा है, यह प्रति भी नी० प्रति के समान ५:४२ पर खंडित थी परन्तु किसी दूसरी प्रति के पाठ की सहायता से इसे पूर्ण किया गया है।

स्थान विपर्यय :

१:७

"नेक जु प्रियजन देखि सुनि आन भाव चित होइ।
अति कोविद पति कविन के सुमति कहत रति सोइ।।"

नी० हि० प्रतियों में प्रतिलिपिकार के दृष्टिभ्रम से दोहे के द्वितीय पद के स्थान पर १:५ दोहे का द्वितीय पद "सो ताको थिति भाव है कहत सुकवि सब कोइ" आ जाने से रति लक्षण के स्थान पर भाव का लक्षण दूसरी बार वर्णित होता है।

१:१६वे छन्द के पश्चात् छन्दों का स्वीकृत क्रम नी० हि० प्रतियों में इस प्रकार है—२२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, १७, १८, १९, २०, २१, ३१, ३२। इस क्रम के अनुसार छन्दों की विषय-सूची इस प्रकार होगी—उद्दीपन के अन्तर्गत नृत्य-उदाहरण के पश्चात् बन-बेलि उदाहरण, अनुभाव लक्षण, अनुभाव के आनन नयन प्रसन्नता आदि उदाहरण, पुनः उद्दीपन के अंतर्गत उपवन गमन-उदाहरण। उद्दीपन वर्णन के मध्य अनुभाव का वर्णन तथा पुनः उद्दीपन की पूर्वोल्लिखित वस्तुओं का वर्णन छन्दों के स्थान-विपर्यय के कारण हुआ है। इसे दुष्क्रम मानते हुए हमने नी० हि० प्रतियों में प्राप्त क्रम को अग्राह्य माना है।

२:४०

"मोही सों रूठि के बैठि रहै किधौं कोऊ **कहूँ कछू** सोध न पावै।"

केवल नी० हि० प्रतियों में शब्दों के क्रम-विपर्यय से पाठ इस प्रकार मिलता है "कोउ **कछू कहूँ** सोध न पावै।"

३:६

"सोइ गई अभिलाख भरी **तिय सामने में** निरखे नँदनंदन।"
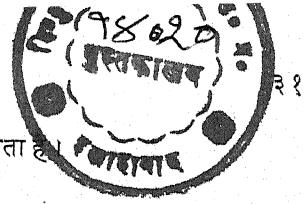
केवल नी० हि० प्रतियों में **"सापने मैं तिय"** पाठ मिलता है।

४:५

"कान लगी कवि देव ह्वै कुंडल बाँसुरी लौं अधरान धरी है।"

केवल नी० हि० प्रतियों में शब्दों के विपर्यय से पाठ है **"देव जू कुंडल ह्वै लगी काननि**……।"

४:११ नी० हि० प्रतियों में धृष्ट नायक उदाहरण छंद के चरणों का क्रम स्वीकृत क्रम की अपेक्षा तृतीय-द्वितीय है, यद्यपि इस चरण-विपर्यय से छंद के अर्थ में कोई असंगति नहीं उत्पन्न होती।

४:४६ प्रौढ़ा सुरतान्त उदाहरण।

"आगे धरि अधर पयोधर सधर जानि जोरावर जघन सघन लरैं लचि कै।
बार बार देति बकसीस जैतवारनि को बारनि को बाँधे जे पिछारे दुरे बचिकै।
उरुन दुकूल दै उरोजनि को फूलमाल ओठनि उठाए पान धाइ खाइ पचिकै।
देव कहै आजु मानो जीतो है अनंगरिपु पी के संग संग रस रति रंग रचि कै॥"

केवल नी० हि० प्रतियों में चरणों का क्रम तीसरा-चौथा होने के कारण असंगति उत्पन्न होती है क्योंकि छंद के प्रथम तीन चरणों में सुरति-संगर का जो रूपकात्मक वर्णन है, अंतिम चरण में उस रूपक का स्पष्टीकरण "मानो जीतो है अनंगरिपु……" आदि शब्दों से होता है। अंत में आने पर तीसरा चरण रूपक से उच्छिन्न हो जाता है।

४:७४ स्वीकृत पाठ :

"भूमि अटा उझकै कहुँ देव सु दूरि तैं दौरि झरोखनि झूली।
हास हुलास बिलास भरी मृग खंजन मीन प्रकासनि तूली।
चारिहू ओर चलैं चपलैं सु. मनोज की तेगैं सरोज सी फूली।
राधिका की अँखियाँ लखिकै सखियाँ सब संग की कौतिक भूली॥"

केवल नी० हि० प्रतियों में चरणों का क्रम चौथा-तीसरा होने से छंद के अर्थ में भी असंगति उत्पन्न होती है।

लिपिजन्य विकृति :

१:६

"नव रस के तिथि भाव **नव**।"

नी० हि० प्रतियों में 'न' में 'त' का भ्रम होने से पाठ है 'तिथि भाव **तव**।' स्थिति भावों की संख्या नौ है अतः 'नव' पाठ संगत तथा 'तव' पाठ असंगत है।

१:१७

"बाग चली बृषभान लली सुनि कुंजनि मैं पिक पुंज पुकारनि।
तैसिय नूतन **नूत लतान** मैं गुंजत भौंर भरे मधु भारनि।
मोहि लई कवि देव उतै अति रूप रचे विकचे कचनारनि।
हेरति ही हरिनी नयनी को हरयो हियरा हरि के हिय हारनि॥"

'ल' में 'न' का भ्रम होने से नी० हि० प्रतियों में **'नूतन तान'** पाठ मिलता है। यह पाठ असंगत है क्योंकि प्रथम तो नवीन के अर्थ में 'नूतन' शब्द पहले ही आ चुका है अतः इसी शब्द की आवृत्ति अनावश्यक है। दूसरे, नूतन तान में मधु भार से भरे भ्रमरों का गुंजन करना और भी असंगत अर्थ है। संगत पाठ "नूतन नूत लतान" ही है।

आश्चर्य है कि 'नूत' शब्द का अर्थ समझने में अनेक विद्वानों ने भूल की है। पंडित कृष्ण-बिहारी मिश्र ने इसे 'नवीन' का पर्याय माना है—

"देवजी ने टेसू के लिए किंसु और नवीन के लिए 'नूत' शब्द का प्रयोग किया है। इस पर आक्षेप यह है कि देवजी को 'किंशुक' का 'क' उड़ाकर 'किंसु' रूप रखने का कोई अधिकार न था। इसी प्रकार 'नूतन' के 'न' को हटाकर 'नूत' रखना भी अनुचित हुआ है।''''''संस्कृत में 'नूतन' और 'नूत्न' ये दो शब्द हैं। हिन्दी में ये दोनों शब्द क्रम से 'नूतन' और 'नूत' रूप में व्यवहृत होते हैं। "अरुन **नूत** पल्लव धरे रँग भीजी ग्वालिनी" और "दूत विधि **नूत** कबहुँ उर आनही" इन दो पद्यांशों में क्रम से सूरदास और केशवदास ने '**नूत**' शब्द का प्रयोग किया है।''''''"

—'देव और बिहारी'—पृ० २७४-७५।

(डा० जानकीनाथ सिंह 'मनोज' भी 'नूत' का अर्थ 'नवीन' मानते हैं—'शब्द रसायन' पृ० ग।)

परन्तु 'नूत' नवीन का पर्याय नहीं है। हम इस शब्द के देव कृत जो प्रयोग नीचे दे रहे हैं उनमें अनेक स्थलों पर 'नूतन नूतन' प्रयोग मिलता है। हमारे विचार से यह पुनरुक्तिप्रकाश के रूप में न आकर 'नूत' का संबंधकारक रूप है।

श्री मिश्र बंधुओं के मत से 'नूत' का अर्थ नवीन होने के अतिरिक्त 'आम' भी होता है—"नूत न नूत—जो नए नहीं अर्थात् पुराने हैं, और जो नए हैं, यों दोनों दावानल से जले हुए दिखाई देते हैं। **नूत आम को भी कहते हैं।**" —'देव सुधा', पृ० १२८।

कदाचित् श्री मिश्रबंधुओं ने संस्कृत के 'च्युत' शब्द से भ्रान्त होकर 'नूत' का अर्थ 'आम' माना है। "आम्रश्चूत रसालश्च"। परन्तु संस्कृत के इस शब्द से हिन्दी में जो शब्द निर्मित हुआ है उसमें भी 'न' के स्थान पर 'च' वर्ण है। स्मरण रहे कि ब्रज-प्रदेश में आम्र-वृक्षों का वर्णन ब्रज वाणी में प्रायः नहीं हुआ है, इस कारण भी 'नूत' का आम्रवाची होना संभव नहीं लगता।

काशी के पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि 'नूत' आम को ही कहते हैं और यह संस्कृत के 'चूत' शब्द से ही व्युत्पन्न है परन्तु इस शब्द के अश्लील अर्थ होने के कारण चकार का नकार कर दिया गया है। पं० विश्वनाथ प्रसादजी के अनुसार राजस्थान के संस्कृत के पंडित संस्कृत में भी इस शब्द का चकार सहित नहीं, नकार सहित ही उच्चारण करते हैं। राजस्थान में कई पुराने पंडितों से पूछने पर इस मत की पुष्टि नहीं हुई अतः यह मान्य नहीं प्रतीत होता। वैसे यह व्याख्या अटपटी सी लगती है।

मेरे विचार से 'नूत' शब्द वृक्षवाची है। देवकृत ग्रंथों में यह शब्द निम्नलिखित स्थलों पर आया है:—

"आजु गुपाल जू बाल बधू संग नूतन **नूत** निकुंज बसे निसि।"

—'भवानी विलास'—८:३४

"नतन गुलाल **नूत** मंजरी की मालनि सों कीजे गजमुख सनमुख सनमान को।"

—'भाव विलास'—५:३६

"कोकिल रागनि **नूत** परागनि देखु री बागनि फागु मची है।"

—'सुजान विनोद'—६:२२

"चंपक दाड़िम **नूत** महाडर पाडर डार डरावनी फूली।"

"तैसिय नूतन **नूत** लतान में गुंजत भौंर भरे मधु भारनि।"

—'भाव विलास'—१:१७

"नूतन महल **नूत** पल्लवनि छ्वै छ्वै स्वेद लवनि सुखावत पवन उपवनसार।"

"केतकी हेत न **नूत** सों नेह कदंब न कुंद न लौंग सों लेख्यो।"

—'सुमिल विनोद'—२:२०

"घोर लगै घर बाहिरहू डर **नूत** पलास लगैं पजरे से।"

—'रस विलास'—७:६२

"नूतन **नूतन** के बन वेष न देखन जाती तो हौं दुरि दौरी।"

—'भाव विलास'—३:७३

इन सभी उदाहरणों में 'नूत' शब्द किसी वृक्ष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मॉनियर विलियम्स कृत संस्कृत कोष में एक शब्द मिलता है 'नुत्त', अर्थ है 'एक पौधे का नाम।' इसी शब्दकोष में दूसरा शब्द है 'नूद', अर्थ है 'शहतूत के वृक्ष का एक प्रकार'। हिंदी में शहतूत के लिए 'तूत' शब्द प्रयोग में आता ही है अतः मेरे विचार से यह 'नूत' शब्द की व्युत्पत्ति 'नुत्त' अथवा 'नूद' शब्द से है तथा यह शहतूत के किसी प्रकार के वृक्ष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

१:१९

"न्हात पमारी सों प्यारी के ओठ तें छूटो मजीठ निहारि **नजीक सों।**"

नी० हि० प्रतियों में 'ज' 'न' का भ्रम होने से **'ननीक'** पाठ हो गया है। निहारने के साथ निकट अथवा नजदीक के अर्थ में 'नजीक' पाठ ही संगत है।

२:७

"क्रोध हर्ष संताप श्रम घातादिक **भय** लाज।
इनतें सजल शरीर सो स्वेद कहत कविराज॥"

'य' में 'म' का भ्रम होने के कारण 'भम' तथा इसे संशोधित करने के कारण **'भ्रम'** पाठ नी० हि० प्रतियों में मिलता है। 'भ्रम' के कारण शरीर का सजल होना असंगत है अतः हमने इस पाठ को लिपिजन्य विकृति माना है।

२:३८

"मैन सर जोर **मारे** पवन झकोरनि सों आई है उमगि छिति छाती नीर भरिये।"

'मारे' में दृष्टि-भ्रम होने से नी० हि० प्रतियों में **'मोर'** पाठ मिलता है। यह पाठ इस प्रसंग में असंगत है।

२:५८

"देव **ह्वदै** पथ आइ मनो चढ़ि धाई मनोरथ के रथ ऊपर।"

'ह्' में 'ह्व' का भ्रम होने के कारण नी० हि० प्रतियों में "देव **ह्वं** दै" पाठ मिलता है। कहना न होगा कि यह पाठ निरर्थक है।

२:६८

"कोकिलऊ कल कोमल बोल बिसारि कै आपु **अलोप** कहै है।"

'प' में 'य' का भ्रम होने के कारण नी० हि० प्रतियों में **'अलीय कहै है'** पाठ मिलता है। कोकिला की मधुर वाणी ही प्रायः सुनाई देती है परन्तु स्वयं पक्षी पत्रों के झुरमुट में बैठने के कारण बहुधा दिखलायी नहीं देता, इसकी मधुर वाणी ही सुनाई देती है। दूसरे, आम्र मंजरियों के बीच में छिपी कोकिला की वाणी सुनाई देती है—वह भी ग्रीष्म ऋतु में ही। अन्य ऋतुओं में यह पक्षी अदृश्य हो जाता है। इस अर्थ में 'अलोप' पाठ सर्वथा संगत है एवं उपर्युक्त प्रतियों का 'अलीय' पाठ निरर्थक है।

३:६१ गुरु मान उदाहरण।

"**सौति** की माल गुपाल गरे लखि बाल कियो मुख रोष उज्यारो।"

कवि ने इस उदाहरण के पूर्व मान भेद दोहे में गुरु मान का लक्षण इस प्रकार दिया है :—

"पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुरु मान।
मध्यम ताको नाम सुनि ता दरसन लघु जान।"

—३:६०

तदनुसार उपर्युक्त उदाहरण छन्द में नायिका के रोष का कारण गोपाल के कंठ में सौत की पहनाई माला को देखना है अतः 'सौति की माल' पाठ संगत है परन्तु 'स' में 'म' का भ्रम होने से नी० हि० प्रतियों में "**मोती** की माल" पाठ है। हमने इस पाठ को इसलिए असंगत माना है क्योंकि गोपाल के कंठ में मोती की माल देखकर नायिका के कुपित होने का कोई कारण नहीं रह जाता।

पर्याय :

१:१७

"तैसिय नूतन नूत लतान मैं गुंजत भौंर भरे **मधु** भारनि।"

नी० हि० प्रतियों में "**रस** भारनि" पाठ मिलता है।

१:१६

"न्हात पमारी सों प्यारी के ओंठ तें छूट्यो **मजीठ** निहारि नजीक सों।"

नी० हि० प्रतियों में **'तमोर'** पाठ है। स्नान करते समय किसी रेशमी वस्त्र से ओठ मलने पर, उसमें लगी लाल मंजिष्ठा का छूटना भी संगत पाठ है तथा ओठ में लगे पान की लाली का निकलना भी संगत है।

१:२०

"कवि देव सखी के सिखाये मरू कै **नह्यो** हिय नाह को नेह नयो।"

नी० हि० प्रतियों में 'नह्यो' के स्थान पर पाठ का सरलीकृत रूप दिया हुआ है **"भयो** हिय नाह के···।"

२:८

"हेलिन खेलन के मिस सुंदरि **केलि के मंदिर** पेलि पठाई।"

नी० हि० प्रतियों में **"केलि के भौन मैं"** पर्याय है।

२:५२

"नूपुर पाँइ उठे झननाइ सु जाइ लगी **धन धाइ झरोखे**।"

नी० हि० प्रतियों में पाठ का पर्याय है "जाइ लगी **अतुराइ झरोखे।"**

३:२०

"एहि भाँति विविध विधि **विवुधवर।"**

नी० हि० प्रतियों में पाठ मिलता है "विविध विधि **कविराज वर।"**

३:३२

"स्याम के अंग सों **अंग लगावै न···।"**

नी० हि० प्रतियों में पाठ है **"अंग छुआवै न।"**

३:४२

"वियोग चौविधि जान।"

नी० हि० प्रतियों में पाठ-पर्याय है **"विप्रलंभ यों जान।"**

४:६२ परकीया भेद।

"ताहि परोढ़ा कन्यका द्वै विधि कहत प्रवीन।
गुपित चेष्टा परोढ़ा कन्या पितु आधीन॥"

नी० हि० प्रतियों में 'परोढ़ा' का पर्याय है **"ताही ऊढ़ा"**। 'परोढ़ा' का अर्थ भी 'ऊढ़ा' होता है, निम्नलिखित उदाहरण से यह प्रमाणित है :—

"तासों परऊढ़ा कहत और अनूढ़ा नारि।
मात पिता आधीन जो तरुनि सु काम कुमारि॥"

—'सुमिल विनोद'—२:२५

पाठ-विकृति :

१:८

"देव मुरझाइ उरमाल उरझाइ कह्यो दीजो सुरझाइ बात पूछी छल छेम की।"

उलझी हुई उरमाल को सुलझाना तो श्रीकृष्ण से वार्तालाप करने का केवल एक व्याज है। परन्तु नी० हि० प्रतियों की परम्परा की किसी आदर्श प्रति में 'मुरझाय' शब्द पार्श्व पर होने के कारण 'उरझाय' के पश्चात् दृष्टि-भ्रम से 'सुरझाय' होकर आया है अतः इन प्रतियों में चरण का पाठ है **"देव उरमाल उरझाय सुरझाय कह्यो···।"** लेकिन यदि नायिका ने अपनी

उलझी हुई माला स्वयं ही सुलझा ली तो फिर कृष्ण से कहने को रह क्या गया ?

१:६

"गौने के **चार** चली दुलही गुरु लोगन भूषन भेष बनाये ।"

'चली' के सान्निध्य के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से नी० हि० प्रतियों में "गौने की चाल चली" पाठ हो गया है । गौने की चाल कोई विशिष्ट प्रकार की मंद अथवा तीव्र नहीं होती अतः हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकार की प्रमादजन्य पाठ-विकृति माना है । यहाँ 'चार' शब्द रीति के अर्थ में 'आचार' का संक्षिप्त रूप है ।

१:१६

"कालिंदी कूल कदंब के कुंज **करै तम तोम तमासो** सो तामैं ।"

'तम तोम' का अर्थ है 'घनांधकार'; देखें "दूरि धरो दीपक झिलमिलात झीनी सेज के समीप छहरान्यो **तम तोम** सो ।"—'सुजान विनोद'—२:१४:१ । कदाचित् 'तोम' (संस्कृत 'स्तोम') का अर्थ ढेर अथवा समूह न समझ सकने के कारण नी० हि० प्रतियों के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रति में पाठ-प्रक्षेप किया है "**करत मनोज तमासो** सो तामें ।" यहाँ रति-प्रसंग की चर्चा अप्रासंगिक है अतः हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त माना है ।

२:२३ निर्वेद लक्षण ।

"चिंता अश्रु प्रकाश करि अपनोई अपमान ।
उपजहि तत्वज्ञान जहँ सो निर्वेद बखान ।।"

नी० हि० प्रतियों में दोहे का पाठ विकृत रूप में इस प्रकार मिलता है "चिंता अश्रु प्रकाश करि अति अनंग उर आन । उपजहि सात्विक भाव जहँ सो निर्वेद बखान ।।" अपने हृदय में कामदेव को स्थापित कर ऊपर से चिंता करना एवं आँखों में आँसू भरना निर्वेद का असंगत लक्षण है अतः हमने इस पाठ को भी प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त माना है ।

२:२८ तृतीय-चतुर्थ चरण ।

"भीर में भूले भए सखि मैं जब तें जदुराई की **ओर** कियो रुख ।
मोहि भटू तब तें निसि द्यौस चितौतही जात चवाइन को मुख ।।"

प्रस्तुत प्रसंग में 'ओर' पाठ संगत है परन्तु प्रतिलिपिकार की दृष्टि भूल से 'जदुराइ' के अंतिम दो वर्णों पर पड़ने से नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर '**राइ**' पाठ मिलता है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण असंगत है ।

२:३१ मद लक्षण ।

"सो मद जहँ **आसव पिये** हरष होय हिय बीच ।
नींद हास रोदन करै उत्तम मध्यम नीच ।।"

नी० हि० प्रतियों में प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त पाठ मिलता है "सो मद जहँ **आसक्त पिय**···।" यह पाठ मद संचारी का असंगत लक्षण होने के कारण विकृत माना गया है । अगले उदाहरण छंद में भी इन प्रतियों का पाठ असंगत तथा स्वीकृत पाठ पुष्ट होता है :—

"आसव सेइ सिखाये सखीन के सुंदरि मंदिर मैं सुख सोवै ।
सापने मैं बिछुरे हरि हेरि हरेई हरे हरिनीदृग रोवै ।

देव कहै उठि कै विरहानल आनँद के अँसुवान समोवै।
आजुही भाजि गई सब लाज हँसै अरु मोहन को मुख जोवै ॥"

२:३३ श्रम लक्षण।

"अति रति अति **गति** तें जहाँ उपजै अति तन खेद।
सो श्रम जामैं जानिये निस्सहता प्रस्वेद ॥"

नी० हि० प्रतियों में 'गति' के स्थान पर पुनः **'रति'** पाठ होने से उसी शब्द की असंगत पुनरुक्ति होती है।

२:३४

"खरी दुपहरी बीच **तरुन तरु नगीच** सही परे तरनि के करनि की जोति है।"

दोपहर के समय सूर्यातप इतना तीव्र हो चला है कि केवल हरे-भरे वृक्षों के नीचे ही किसी प्रकार ठहरा जा सकता है परन्तु ऐसे भीषण आतप में भी नायिका केवल श्याम के अनुराग से आकृष्ट होकर अपने घर से निकल पड़ती है। नी० हि० प्रतियों में आलोच्य-स्थल पर **"तरुन तरुन गावै"** पाठ मिलता है। कहना न होगा कि अर्थ के विचार से यह पाठ प्रस्तुत प्रसंग में सर्वथा असंगत तथा अग्राह्य है। इन प्रतियों की आदर्श प्रति में इस स्थल पर पाठ भ्रष्ट होने के कारण यह विकृति उत्पन्न हुई है।

३:३९ चिंता लक्षण।

"इष्ट वस्तु पाये बिना व्यग्र चित्त अति होइ।
स्वाँस ताप वैवरन जहँ चिंता कहिये सोइ ॥"

आलोच्य स्थल पर नी० हि० प्रतियों में पाठ है **"स्याम ताप ह्वै रैन दिन"**। 'स्याम ताप' का संगत अर्थ नहीं बैठता तथा यह विकृति 'स्वाँस ताप' से ही संभव है अतः यहाँ भी प्रतिलिपिकार ने अपने आदर्श प्रति के खंडित होने के कारण यह पाठ-प्रक्षेप किया है।

२:५५ दुःख लक्षण।

"उत्तम मध्यम नीच क्रम लघु चिंता अप्रसाद।
महा सोक ये **धन गये** हित संसो सु विषाद ॥"

नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **"वनुग को"** पाठ मिलता है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण विकृत माना गया है।

२:७२

"मानति नाहिं तिरीछेहि **तानति** बान सी आँखैं कमान सी भौंहैं।"

नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर असंगत पाठ है **"तान औ।"**

२:९२ त्रास लक्षण।

"घोर स्रवन **दरसन** सुमृति तंभ पुलक भय गात।
होइ छोभ जो चित्त मैं त्रास कहत कवि तात ॥"

अर्थात् भयावनी वस्तु देखने से, उसकी आवाज़ सुनने से अथवा उसका स्मरण होने से जब मन विचलित हो जाय तो उसे त्रास कहते हैं। इस लक्षण के उदाहरण छंद में भी ऐसा ही वर्णन है। परन्तु नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर असंगत पाठ मिलता है **"देर सब"**।

२:९८

"काम कमान तें बान उतारिहैं देव नहीं **मधु माधव रैहै।**"

अर्थात् कामदेव भी सर्वदा इसी प्रकार मन-मंथन न करते रहेंगे और यह मधुऋतु भी सदा नहीं बनी रहेगी, इसका भी कभी अंत होगा ही। स्मरण रहे कि 'मधुऋतु' के अर्थ में केवल 'मधु' शब्द का प्रयोग कवि ने अन्यत्र भी किया है। केवल एक स्थल उदाहरण के लिए प्रस्तुत है :—

"केतकी रजनि अरगजनि मधुर **मधु राका की** रजनि राजे रंजित चहूँ कोदनि।"

—'कुशल विलास'—५:१५

नी० हि० प्रतियों में "मधु माधव रैहै" के स्थान पर विकृत पाठ मिलता है **"मधु व्याधव रैहै।"** अर्थ के विचार से यह पाठ असंगत है।

२:१०३

"देव कहै दुरि दौरि कुटीर मैं आपनो बैर बधू **उहि** लीन्हो।"

"उहि लेने" का अर्थ है उगाह लेना, वसूल कर लेना। परन्तु प्रतिलिपिकार के प्रदेश की बोली में 'वहि' का रूपांतर है अतः नी० हि० प्रतियों में **'वहि** लीनो' पाठ मिलता है। 'वहि' शब्द 'वधू' के साथ संलग्न मानने पर भी अर्थ की संगति नहीं बैठती है।

३:३७

"मन प्रसाद **पति बस करन** चमतकार अति होइ।
सकल अंग रचना ललित ललित बखानै सोइ॥"

आदर्श प्रति का पाठ इस स्थल पर अपठ होने के कारण प्रतिलिपिकार ने अपनी ओर से पाठ संशोधित किया है—**"अति वास कर"** परन्तु यह ललित हाव का असंगत उदाहरण है अतः यह पाठ अग्राह्य माना गया है।

३:५९ मान लक्षण।

पति परपतिनी रति करत पतिनी करति जु मान।
गुरु मध्यम लघु भेद करि **ताहू त्रिविधि बखान॥"**

अर्थात् अपने पति के शरीर पर पररति के चिह्न देखकर पत्नी जो मान करती है उसके गुरु, मध्यम तथा लघु, ये तीन भेद होते हैं। अतः उपर्युक्त दोहे का पाठ संगत है परन्तु नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर विकृत पाठ इस प्रकार मिलता है **"ताहि अवध्य बखान"**। यह पाठ मानभेद के प्रसंग में अर्थ के विचार से असंगत है अतः हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकारकृत प्रक्षेप माना है।

४:६१ परकीया लक्षण।

"जाकी गति **उपपति** सदा पति सों रति मति नाहिं।
सो परकीया जानिये ढकी प्रीति जग माहिं॥"

नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'उपजै'** पाठ होने से परकीया का लक्षण स्पष्ट नहीं हो पाता। पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से अनुरक्त होना परकीया की मुख्य विशेषता है अतः **'उपपति'** पाठ संगत एवं **'उपजै'** पाठ प्रस्तुत प्रसंग में असंगत माना गया है।

४:६५

"झँझरी के झरोखनि ह्वै कै झकोरति रावटीहू मैं न जाति सही।"

परकीया गुप्ता नायिका अपना परपुरुष प्रसंग छिपाने के हेतु अपने हार टूटने तथा अधर के क्षत-विक्षत होने का कारण तीव्र गति से बहती बयार को बताती है। यह बयार रँग-रावटी में बने वातायन से सीधे नहीं आती; वातायन में लगी झँझरी से अंशतः अवरुद्ध होकर उसका वेग कुछ मन्द पड़ जाता है परन्तु फिर भी उसकी गति असहनीय है। इस प्रकार "झँझरी वाले झरोखे" के अर्थ में "झँझरी के झरोखनि" पाठ संगत है परन्तु निकट के 'झकोरति' शब्द के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से नी० हि० प्रतियों में "झँझरी के **झकोरन** ह्वै कै झकोरति" पाठ मिलता है। इसका अर्थ "झँझरी की झकोर" करने पर दूसरे 'झकोरति' के साथ इस अर्थ की संगति नहीं बैठती अतः हमने इस पाठ को विकृत माना है।

४:७५

"चित्र स्वप्न परतच्छ करि दरसन त्रिविधि बखानु।
देस काल **भंगीनु** करि श्रवन तीनि विधि जानु॥"

कवि देव ने श्रवण तथा दर्शन के उपर्युक्त तीन-तीन भेद अपने 'कुशल विलास' आदि अन्य ग्रंथों में भी माने हैं किंतु नी० हि० प्रतियों में सम्भवतः 'भंगीन' के वर्णों में विपर्यय होने से 'गंमीन' तथा इससे 'गंभीर' पाठ हो गया है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण अग्राह्य है। इसी प्रकार इन प्रतियों में 'तीन' के स्थान पर 'चारि' पाठ मिलता है। जब कवि ने श्रवण के केवल तीन ही भेद किये हैं तो पाठ भी 'तीनि' होना चाहिए। 'चारि' पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा लेखन-प्रमाद से हो गया मालूम देता है।

४:७७

"ऊँची अटा चढ़ि सेज **सजी** तो कहा हरि जो न यहाँ निसि जागे।"

चरण का अर्थ तथा प्रसंग दोनों स्पष्ट हैं परन्तु प्रतिलिपिकार के प्रमाद से हुआ नी० हि० प्रतियों का 'सेज **चढ़ी**' पाठ 'चढ़ी' शब्द की अनावश्यक पुनरावृत्ति होने के कारण अनुचित है। अर्थ के विचार से भी 'सेज चढ़ने' से प्रायः सुरति का भाव लिया जाता है परन्तु यहाँ सुरति का कोई प्रसंग नहीं है। प्रतिलिपिकार द्वारा यह प्रमाद इसके पहले "अटा चढ़ि" पाठ होने के कारण सम्भव है।

४:११० अधमा लक्षण।

"बिनु दोषहि रूठै तजै बिना मनाये मानु।
जाको रिस रस हेतु बिनु अधमा ताहि बखानु॥"

अर्थात् जो नायिका अकारण बैर-प्रीति मान ले उसे अधमा कहते हैं। रेखांकित स्थल पर प्रतिलिपिकार के प्रमाद से '**होत**' असंगत पाठ मिलता है। इस पाठ में अर्थ की असंगति है अतः हमने इसे अग्राह्य माना है।

भा० सा० प्रतियाँ : त्रुटित पाठ :

५:१-२

"कविता कामिनि सुखद पद सुवरन सरस सुजाति।
अलंकार पहिरे निकट अद्भुत रूप लखाति॥

ताही तें कवि देव कहि अलंकार की भाँति।
मुनि मत के अनुसार तें लै कछु लच्छन जाति ।।"

केवल भा० सा० प्रतियों में उपर्युक्त दोहे नहीं हैं, ज० प्रति में पंचम बिलास न होने के कारण इस प्रति की स्थिति अनिश्चित है। कवि ने अन्य विलासों के प्रारम्भ में प्रत्येक नवीन विषय का समारम्भ करते हुए प्राक्कथन के रूप में दोहे दिये हैं तथा उपर्युक्त दोहों में से प्रथम 'काव्य रसायन' में अलंकार सम्बन्धी नवम विलास का भी प्रथम दोहा है अतः हमने माना है कि ये दोहे भा० सा० प्रतियों में प्रतिलिपिकार के प्रमाद से छूट गये हैं।

५:१८　　"राधे के रूप" अतिशयोक्ति उदाहरण छंद केवल भा० सा० प्रतियों में त्रुटित है। इसके पूर्व कवि ने ५:१६-१७ संख्या के दोहों में रूपक तथा अतिशयोक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है :—

"सम समान जैसे जनो जिमि ज्यों मानो तूल।
और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल ।।
जहँ उपमा मैं ये न पद सोई रूपक जान।
सीमा तें अति बरनिये अतिसै ताहि बखान ।।"

अन्य प्रतियों में इन दोनों अलंकारों के उदाहरण पृथक्-पृथक् छंद में दिये हैं परन्तु केवल भा० सा० प्रतियों में अतिशयोक्ति का उदाहरण नहीं है। रूपक उदाहरण से अतिशयोक्ति अलंकार का लक्षण स्पष्ट नहीं होता अतः यह नहीं कहा जा सकता कि कवि ने एक ही उदाहरण में दोनों अलंकारों का उदाहरण समाविष्ट कर लिया होगा।

प्रक्षेप :

१:१　　वंदना के पूर्व केवल भा० सा० प्रतियों में निम्नलिखित दोहा अधिक है :—

"राधाकृष्ण किसोर जुग पग बंदौं जगबंद।
मूरति रति श्रृंगार की शुद्ध सच्चिदानन्द ।।"

यही दोहा 'प्रेम चन्द्रिका' में १:३ तथा 'कुशल विलास' में १:२ संख्या पर भी आया है। आलोच्य ग्रंथ में "श्री वृंदावन चन्द" १:१ छप्पय में भी कवि के आराध्य श्रीकृष्णचंद्र की वन्दना होने से यह दोहा अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं है। भा० सा० प्रतियों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रतियों में प्रक्षेप अथवा प्रतिलिपि-संबन्ध न मिलने के कारण हमने भा० सा० प्रतियों में इस दोहे को देव कृत उपरोक्त अन्य ग्रंथों से प्रक्षिप्त माना है।

स्थान-विपर्यय :

२:४०

"जानति नाहिं रहे हरि कौन के ऐसी धौं कौन वधू मन भावै ।।"

चरण में 'रहे' शब्द का प्रयोग कुछ विचित्र अवश्य है क्योंकि इसे नायिका के लिए प्रयुक्त मानने पर पदान्वय इस प्रकार होगा "हौं जानति नाहिं रहे" परन्तु इसमें लिंग सम्बन्धी असंगति है। इसके विपरीत इसे हरि के साथ जोड़ने पर अन्वय इस प्रकार होगा "हौं जानति नाहिं

कि हरि कौन के ह्वै रहे हैं"। इस प्रकार अर्थ करने में निश्चय ही शब्दों की खींचतान होती है परन्तु कवि में दूरान्वय की विशेषता अन्य स्थलों पर भी मिलने के कारण हम चरण का अर्थ इसी प्रकार करना उचित समझते हैं। संभवतः अर्थ करने में कठिनाई होने के कारण भा० सा० प्रतियों में प्रतिलिपिकार के सचेष्ट प्रक्षेप से अथवा प्रमादवश 'रहे' के स्थान पर **'हरे'** पाठ मिलता है। 'हरि' के साथ उसके संबोधन कारक का रूप 'हरे' असंगत है।

३:३५ बिब्बोक लक्षण।

"प्रिय अपराध धनादि मद उपजै गर्व **विकार**।
कुटिल डीठि अवयव चलन सो बिब्बोक विचार॥"

यहाँ 'विकार' शब्द गर्व की दूषित वृत्ति के अर्थ में संगत है परन्तु भा० सा० प्रतियों में प्रतिलिपिकार के लेखन-प्रमाद से वर्णों का विपर्यय हो गया है **'किवार'**। हमने इस पाठ को प्रस्तुत प्रसंग में अर्थ के विचार से असंगत होने के कारण विकृत माना है।

पाठ-विकृति :

२:१०० प्रथम-द्वितीय चरण।

"कहु कौन की चंपक चारु लता यह देखि सबै जन भूलि रहे।
कवि देव ए **तामै** कहा बिलसैं त्रिवि श्रीफल से धरि धूलि रहे॥

कवि ने नायिका के रूप का सांग रूपक में वर्णन किया है। यह छंद तर्क-वितर्क का उदाहरण है अतः द्वितीय चरण का अर्थ इस प्रकार होगा "इस स्वर्ण लता में यह कौन-सी वस्तु शोभायमान हो रही है जो आकार एवं कठोरता में श्रीफल को भी लज्जित करने वाली है।" अतः "उस चारु चंपक लता में" के अर्थ में 'तामैं' पाठ संगत है परन्तु भा० सा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'तीमैं'** पाठ होने से असंगति उत्पन्न होती है। 'तीमैं' को 'तिय मैं' का रूपान्तर भी नहीं स्वीकृत किया जा सकता क्योंकि तब छंद में रूपक का चमत्कार नष्ट हो जाता है।

३:२७ विभ्रम लक्षण।

"उलटैं जहँ भूषन **बसन** भेष हँसैं जन जाहि।
भाग रूप अनुराग मद विभ्रम बरनहु ताहि॥"

भा० सा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर प्रतिलिपिकार के प्रमाद से **'वचन'** असंगत पाठ मिलता है। विभ्रम हाव में 'वचन' नहीं बदलते वरन् हड़बड़ी में वसन ही बदल जाते हैं, यह इस लक्षण के निम्नलिखित उदाहरण से भी प्रगट होता है :—

"स्याम सों केलि करी सिगरी निसि सोत तें प्रात उठी थहराइ कै।
आपने चीर के धोखे बधू पहिर्यो पट पीत भटू भहराइ कै॥"

३:४६

"**देह** दुहू की दहै बिनु देखे सु देखि दसा निसि सोवत को ती।"

भा० सा० प्रतियों में प्रतिलिपिकार के प्रक्षेप से 'देह' के स्थान पर **'देव'** पाठ मिलता है। यह पाठ कविकृत नहीं हो सकता क्योंकि 'देह' के अभाव में चरण संज्ञा पदे से रहित हो जाता है और व्याकरण-दोष आता है तथा चरण का अर्थ करने में भी असंगति उत्पन्न होती

है—फिर कौन सी वस्तु दहती है ?

३:७६ प्रथम दो चरण।

"सुधाधर से मुख बानि सुधा मुसक्यानि सुधा बरसै रदपाँति।
प्रवाल से पानि मृनाल भुजा कहि देव लता तन कोमल काँति॥"

द्वितीय चरण में उपमेय-उपमान के युग्म हैं प्रवाल-पाणि, मृणाल-भुजा, लता-तन। परन्तु भा० सा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'लतान की'** पाठ होने से छंद में कवि की वर्णन शैली के विपरीत "लतान की कोमल काँति" पद मृणाल भुजा का विशेषण पद हो जाता है। कवि ने नायिका के सुन्दर सुलप शरीर की तुलना लता से अनेक स्थलों पर की है, केवल 'काव्य रसायन' के नवम विलास में निम्नलिखित पाँच स्थलों पर ऐसे प्रयोग मिलते हैं:—
९:३८, ९:४२, ९:४७, ९:७३ तथा ९:७९।

४:२७ अंतिम दो चरण।

"भेटि बियोग समेटि सबै सुख सों भटू भेंटि भटू जुग जीहै।
या मुख सुद्ध सुधाधर तें अधरा रस धार सुधारस पीहै॥"

सखी नायिका से कह रही है, नायक जब तुम्हें अपने हृदयालिंगन में आविष्ट करेंगे तो वह तुम्हारे समस्त दुःखों को एकत्रित कर नष्ट कर देंगे। ऐसे भटू नायक युग-युग जियें। (तुलना- "मन के न मेटे दुख सुख क्यों समेटे जाहि मदन झपेटे जो न भेंटे भुज भरि कै।"—'कुशल विलास'—८:१२।) भा० सा० प्रतियों में प्रतिलिपिकार ने 'भटू' की आवृत्ति को अनावश्यक मान कर 'सुख सो **भरि** भेंटि भटू जुग जीहै" पाठ संशोधित किया है। "भर भेंटना" पाठ उपरोक्त व्याख्या की तुलना में प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है अतः हमने इस पाठ को अग्राह्य माना है।

४:११४ सखी उदाहरण।

"चाइ सों चित्त प्रसन्न करै रस रंग में संग **सयान** सिखावै।"

'सयान' का अर्थ है 'सयानपन'—"मेरो अयान सयान तिहारो।", "देव रच्यो अंग अंगनि रंग बढ्यो सु सयान अयान न लून्यो।"—'कुशल विलास'—४:३२। आलोच्य चरण का अर्थ इस प्रकार होगा "वह चतुर सखी अपने स्नेह से नायिका का मनोरंजन भी करती, उसे रस-रंग की शिक्षा भी देती है और साथ ही साथ उसे सयानपन भी सिखलाती है।" भा० सा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'सयानि'** पाठ मिलने से इसके सखी के विशेषण रूप में प्रयुक्त होने का भ्रम होता है।

लिपिजन्य विकृति :

२:२९ असूया लक्षण।

"क्रोध कुबोध विरोध तैं सहै न **पर** अधिकार।
उपजै जहँ जिय दुष्टता सो असूया अवधार॥"

भा० सा० प्रतियों में 'पर' के स्थान पर **'यह'** असंगत पाठ मिलता है। यह पाठ-विकृति 'प' में 'य' तथा 'र' में 'ह' का भ्रम होने से संभव है।

२:३८

"मैन सर जोर मारे पवन झकोरनि सों आई है उमगि **छिति** छाती नीर भरिये ।"

'धरती' के अर्थ में 'छिति' शब्द यहाँ प्रसंग-संगत है परन्तु भा० सा० प्रतियों में 'त' में 'न' का भ्रम होने से '**छिनि**' विकृत पाठ मिलता है ।

२:५०

"तौ लगि आइ गयो उत तें सु नगीच मनो चित बीच परे **च्वै** ।"

वन कुंज में खेलते-खेलते राधिका का हार किसी झाड़ी में उलझ गया । तभी वहाँ रसिक कन्हाई आ पहुँचे—ऐसे जैसे हृदय में बैठे रहे हों और वहाँ से निकल पड़े हों । इस प्रसंग में प्रस्तुत स्थल पर रेखांकित पाठ संगत है परन्तु भा० सा० प्रतियों के इसके स्थान पर '**छ्वै**' पाठ मिलता है । यह पाठ-विकृति संयुक्ताक्षर में भ्रम होने से संभव है । अन्तिम चरण के "छल सों छतिया छ्वै" पाठ में भी यही शब्द होने के कारण यह शब्द यहाँ संगत नहीं माना गया है ।

२:६७ विप्रतिपति उदाहरण के अन्तिम दो चरण ।

"कवि देव कहैं कहिये जुग जो जलजात रहे जलजात मैं ध्वै ।
न सुने **न पै** काहू कहूँ कबहूँ कि मयंक के अंक मैं पंकज द्वै ।।"

कवि नायिका के कमल सदृश नेत्रों को देख कर मन ही मन तर्क-वितर्क कर रहा है, "कमल के समान ये नेत्र युग्म चन्द्रमंडल में सुशोभित हो रहे हैं । **पर नहीं**, चन्द्रमा के अंक में तो मृग शावक की ही स्थिति लोक-प्रसिद्ध है । यह तो किसी ने कहीं-कभी नहीं सुना कि चन्द्रमा में दो सुन्दर कमल खिले हैं । वास्तव में नकारात्मक 'न पै' से ही कवि-कथन की विप्रतिपति सिद्ध होती है । 'न' में 'त' का भ्रम होने के कारण सा० प्रति में '**तपै**' एवं इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण भा० प्रति में '**तबौ**' पाठ मिलता है । सा० प्रति के पाठ की निरर्थकता स्पष्ट है, भा० प्रति का पाठ भी अर्थ के विचार से असंगत है क्योंकि इस अर्थ में यह चरण के वक्तव्य का खण्डन नहीं करता ।

तुलना—

"रूप के मन्दिर यों मुख मैं मनि दीपक से दृग द्वै अनुकूले ।
दर्पन मैं मनि मीन सलील सुधा सर नील सरोज से फूले ।
देव जू सूरमुखी मृदु फूल मैं भीतर भौंर मनो भ्रम भूले ।
अंक मयंकज के दल अंकज पंकज मैं मनो पंकज फूले ।।"

—'काव्य रसायन'—६:३०

३:२६

"मोहनलाल को मोहन को यह **पैन्हति** मोहनमाल अकेली ।।"

'न्ह' संयुक्ताक्षर में 'ध' का भ्रम होने के कारण भा० सा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर '**पैंधति**' पाठ मिलता है । यह पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत माना गया है ।

नी० हि० का० प्रतियाँ : स्थान-विपर्यय :

५:१५-१६

"सम समान जैसे जनो जिमि ज्यों मानो तूल।
और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल।।
जहँ उपमा मैं ये न पद सोई रूपक जान।
सीमा तें अति बरनिये अतिसै ताहि बखान।"

नी० हि० का० प्रतियों में प्रथम दोहे के बाद रूपक उदाहरण ५:१७ वां छन्द है। इस प्रकार "और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल" के बाद रूपक का उदाहरण तथा उसके बाद रूपक का लक्षण आना स्पष्ट दुष्क्रम है।

पाठ-विकृति :

१:१८

"देव दुहून के देखत ही उपज्यो उर मैं अनुराग अनूनो।
डोलत हैं अभिलाख भरे सुलग्यो बिरहज्वर अंग अभूनो।
तौ लौं अचानक ह्वै गई भेंट इत उत ठौर निहारत सूनो।
प्रीति भरे अरु भीति भरे बन कुंज मैं कंपत दंपति दूनो।।"

वेपथ सात्विक भाव शीत, क्रोध, भय तथा श्रम आदि से होता है एवं इसमें कंप अनुभाव होता है। आलोच्य स्थल पर नी० हि० प्रतियों में **'प्रीति भरे अनुराग भरे'** तथा का० प्रति में **'प्रेम भरे अरु प्रीति भरे'** पाठ है। प्रेम, प्रीति तथा अनुराग प्रायः समानार्थी शब्द हैं, इसके बिपरीत अन्य प्रतियों में प्राप्त पाठ के अनुसार कंप का कारण भीति तथा अनुराग दोनों है अतः यही पाठ संगत माना गया है।

५ : २६ सहोक्ति उदाहरण।

"प्यारी के प्रान समेत पिया परदेस पयान की बात चलावै।
देव जू छोभ समेत छपा छतिया मैं छपाकर की छवि छावै।
बोलि अली बन बीच बसंत को मीचु समेत नगीच बतावै।
काम के तीर समेत समीर सरीर मैं लागत पीर बढ़ावै।।"

छंद सहोक्ति अलंकार का उदाहरण है अतः अर्थोत्कर्ष के लिए सहित शब्द अथवा उसका समानार्थी शब्द आना चाहिये। अतः सहित शब्द अन्य चरणों में भी है किन्तु नी० हि० का० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'काम के तीर समान समीर'** पाठ होने से, संगत अर्थ के होते हुए भी अलंकारिक चमत्कार लुप्त हो जाता है अतः हमने इस पाठ को विकृत माना है।

पर्याय :

३:४८ राधिका पूर्वानुराग।

"साँसिन ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन ले अपनो अरु भूमि गई तन की तनुता करि।

देव जियै मिलिबेई की आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन तें मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि॥"

पंचतत्त्व निर्मित शरीर का एक-एक तत्त्व अपने मूल तत्त्व में जा मिला। एक प्राण बच रहा क्योंकि वह जिस शून्य से निर्मित हुआ है वह जड़ता के रूप में नायिका के चतुर्दिक छाया हुआ है। का० नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'जीव रह्यो'** पाठ पर्याय मिलता है। यह छंद 'सुखसागर तरंग', 'सुजान विनोद', 'भवानी विलास' एवं 'प्रेम चंद्रिका' ग्रंथों में आया है परन्तु अन्तिम ग्रंथ को छोड़कर सभी ग्रंथों में "देव जियै" पाठ है।

३:७५

"व्याकुल ही विरहज्वर सौं सुभ पावन जानि जनीनु जगाई।
घोरि घनोरंग केसरि को गहि गोरी गुलाल के रंग रँगाई।
त्यों तिय साँस लई गहिरी कहि री उनसों अब कौन सगाई।
ऐसे भये निरमोही महा हरि हाय हमैं बिनु होरी लगाई॥"

का० नी० हि० प्रतियों में तृतीय चरण का पाठ इस प्रकार मिलता है :—

"साँस लई गहिरी कहि री उनसों हमसों अब कौन सगाई।"

४:२६

"मोरिये छाती छुवै छिपि के मुख चूमि कहै **कोउ और न जानै।**"

नी० हि० का० प्रतियों में आलोच्य पाठ का पर्याय मिलता है—**'कोई दूजो न जानै'**। दोनों ही पाठ समानार्थी हैं।

५:२६ व्यतिरेक लक्षण दोहा।

"जहँ समान **बिबि वस्तु** को कीजै भेद बखान।
अलंकार व्यतिरेक सो देवदत्त उर आन॥"

का० प्रति में **'द्वै वस्तु'** तथा हि० प्रति में **'ह्वै वस्तु'** पाठ मिलता है, नी० प्रति में इस स्थल का पाठ दीमकों द्वारा नष्ट हो गया है। हि० प्रति का 'ह्वै' पाठ निस्सन्देह का० प्रति के 'द्वै' पाठ से संभव है। जहाँ दो समान वस्तुओं में एक को बढ़ाकर अथवा दूसरे को घटाकर वर्णन करते हैं वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। इस प्रकार 'बिबि' तथा 'द्वै' पाठ समानार्थी होने के कारण संगत हैं परन्तु 'काव्य रसायन' में व्यतिरेक के निम्नलिखित लक्षण से 'बिबि' प्रयोग की संगति सिद्ध होती है :—

"बरनि वस्तु बिबि सम कहै जे विशेष व्यतिरेक।"
—'काव्य रसायन'—९:६१

५:१७ रूपक उदाहरण।

"ऐसो अदभुत रूप भावती को देखौ देव **जाके बिनु देखे छिन छाती न सिराति है।**"

आलोच्य स्थल पर नी० हि० का० प्रतियों में **'जाहि देखे कौन की न छतिया सिराति है'** पाठ मिलता है। ये दोनों पाठ भी प्रायः समानार्थी हैं।

५:३२

"मीठी लगैं बतियाँ **मुख सीठिओ** सुने सब सौतिन को दपटै सी।"

आलोच्य स्थल पर का० प्रति में **'सु अमीठिऔ बातैं'** नी० प्रति में **'अनमीठिऔ बातैं'** तथा हि० प्रति में **'अनईठिऔ बातैं'** पाठ मिलता है। सीठी अथवा सार रहित बातों का भी मीठा लगना अथवा गैर. मीठी बातों का भी मीठा लगना प्रायः समानार्थी है। हि० प्रति का "अन ईठिओ बातैं" जो प्रतिलिपिकार के प्रक्षेप के कारण सम्भव है, अर्थ के विचार से असंगत है।

का० सा० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति :

२:५८ आवेग उदाहरण।

"देव **हूदै** पथ आइ मनौ चढ़ि धाई मनोरथ के रथ ऊपर।"

श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार सुनते ही सभी गोपांगनाएँ उनके दर्शन को अत्यन्त आकुल हो उठीं। आकुलता के कारण वह शीघ्रता से चल तो सकती न थीं परन्तु उनके हृदय में श्याम की मूर्ति आकर पहले से ही विराजमान हो गयी—मानो चलने में असमर्थ होने के कारण वे अभिलाषा के रथ पर आरूढ़ हो हृदय-मार्ग से होती हुई अपने प्रिय से मिल गयीं। का० सा० प्रतियों में 'हृ' संयुक्ताक्षर में भ्रम होने के कारण **'हूदै'** पाठ मिलता है। यह पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत माना गया है।

पाठ-विकृति :

१:२४

"**जिनको निरखत परसपर** रस को अनुभव होइ।
तिनही को अनुभाव पद कहत सयाने लोइ।।"

अर्थात् वे चेष्टाएँ जिनको देखने से रस का अनुभव होता है, अनुभाव कहलाती हैं। का० प्रति में **'परप्रति जिनको परसपर'** तथा सा० प्रति में **'परसत जिनको परसपर'** पाठ है। अनुभाव का 'स्पर्ष' प्राप्त कर उसका आस्वाद लेना असंगत है अतः यह पाठ हमने विकृत माना है। दोनों प्रतियों में 'जिनको' का समान स्थान-विपर्यय भी द्रष्टव्य है।

४:४७

"तैसी चंद्रमुखी के वा चंद्रमुख चंद्रमा सों **होड़ परै** चाँदनो औ चाँदनी से चीर सों।"

चरण का अर्थ स्पष्ट है परन्तु 'होड़ परै' के स्थान पर का० प्रति में **'होय परै'** पाठ है तथा यही पाठ सा० प्रति में पार्श्व पर मिलता है। 'होय परै' पाठ प्रस्तुत प्रसंग में सर्वथा असंगत है।

५:२६

"याही ते प्यारी तिहारी मुखद्युति चंद समान बखानत **हैं** कवि।"

इसके स्थान पर का० सा० प्रतियों में "बखानत **तो** कवि" पाठ होने से असंगति होती है क्योंकि 'मुखद्युति' के लिए 'तो' तथा 'तिहारी' दो सम्बन्धवाचक सर्वनाम अनावश्यक हैं।

पर्याय :

१:२०

"चित चावते चैत की **चंद्रिका** और चितै पति को चित चोरि लयो।"

का० सा० प्रतियों में 'चाँदनी' पर्याय मिलता है।

४:१०६

"सापराध पति देखि कै···"

केवल का० सा० प्रतियोंमें "सापराध पति पेखि कै···" पाठ है।

नी० हि० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

१:२१

"हेरत ही हरि लीनो हियो इन आल रसाल सिरीष जम्हीरनि।"

• नी० हि० प्रतियों में स्थान विपर्यय तथा लिपिभ्रम से 'इन आली सिदाष रसाल' पाठ मिलता है। 'सिदाष' पाठ अर्थहीन होने के कारण असंगत है परन्तु सा० प्रति के आदर्श में 'सिदाष' पाठ कदाचित् पार्श्व पर अंकित होने के कारण सा० प्रति में इस प्रकार आ गया है 'आली सिदाष सिरीष'। नी० हि० प्रतियों का 'सिदाष' विकृत पाठ 'सिरीष' में भ्रम होने से सम्भव है।

२:१०५

"आलस ग्लानि निर्वेद श्रम उत्कंठा जड़ जोग।
संकापसुमृति अवबोधोन्माद वियोग।।"

कवि के मतानुसार विप्रलंभ श्रृंगार में उपर्युक्त संचारियों का वर्णन होना चाहिये। ध्यान रहे कि दोहे के तृतीय चतुर्थ चरण में दोहे के तथाकथित लक्षण के अनुसार मात्राएँ नहीं हैं—पाठ को भंग करके पढ़ने पर भी मात्राएँ पूर्ण नहीं होतीं। इस प्रसंग में यह भी स्मरण दिलाना अनुचित न होगा कि यह पाठ कथ्य के विचार से पूर्ण है, अर्थात् किसी शब्द के त्रुटित होने के कारण मात्राएँ कम नहीं हुई हैं। अतः यही पाठ कविकृत होगा। नी० हि० प्रतियों में मात्रा पूर्ति के हेतु पाठ संशोधन हुआ है 'संका सुमृति सु स्वास औ यो उन्माद विशोग'। इस पाठ से दोहे में वांछित मात्राएँ तो पूर्ण हो जाती हैं किन्तु इसमें स्वास, औ, यो आदि निरर्थक शब्द होने के कारण इसे प्रतिलिपिकार कृत प्रक्षेप माना जाएगा। सा० प्रति में नी० हि० प्रतियों की सहायता से पाठ-संशोधन हुआ है—'संका सुमृति सुस्वास औ बोधोन्माद विसोग'। इस पाठ की असंगति भी उसी प्रकार स्पष्ट है। हमने 'काव्य रसायन' तथा 'रस विलास' आदि ग्रंथों में प्राप्त न्यून मात्रा वाले प्रामाणिक दोहों की चर्चा यथास्थान की है, 'भाव विलास' में प्राप्त केवल एक ऐसा उदाहरण हम यहाँ दे रहे हैं :—

"प्रिय दर्शन सुमिरन श्रवन होत अचल गति गात।
सकल चेष्टा रुकि रहै प्रलय कहैं कवि तात।।" २:१६

तृतीय चरण में एक मात्रा कम है परन्तु लक्षण इसी रूप में पूर्ण तथा स्पष्ट है।

स्थान-विपर्यय :

२:५७

"प्रिय अप्रिय देखे सुने गात पात संवेग।
होइ अचानक भूरि भ्रम सो बरनहु आवेग।।"

नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'तेन ताप सवैग'** तथा सा० प्रति में **'तेन्न तपै संबेग'** पाठ है। दोनों ही पाठ अशुद्ध हैं। इन पाठों की 'ताप' विकृति 'पात' के वर्णों में विपर्यय होने से संभव है।

लिपिजन्य विकृति :

४:१६

"जाहि जपैं **त्रिपुरारि मुरारि** सब असुरारि सुरारि हने हैं।"

'म' में 'स' का भ्रम होने के कारण नी० हि० सा० प्रतियों में **'त्रिपुरारि सुरारि'** पाठ मिलता है। आगे भी 'सुरारि' पाठ होने से यहाँ यह पाठ असंगत है।

४:३९

"झिल्लिन सों **झहनाइ** के किंकिनि बोलै सुकी सुक लौं सुख दैनी।"

'न' में 'र' का भ्रम होने से नी० हि० सा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'झहराइ'** पाठ प्राप्त होता है। 'झहरने' का अर्थ "आग की लपट अथवा तेज़ वायु का शब्द" होने के कारण किंकिणी बोलने के प्रस्तुत प्रसंग में यह पाठ यहाँ असंगत है। तुलना—"झहर झहर झुकि झीनो झर लायो देव छहर छहर छोटी बुंदनि छहरिया।"—'सुजान विनोद'—४:८; "कंकन झनित अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिले मनित सुहात है।"—'भाव विलास'—३:१८

नी० हि० ज० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

३:१८ द्वितीय-तृतीय चरण।

"कंकन **झनित** अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिले मनित सुहात है।
कुंडल हलत मुखमण्डल झलमलात **झूलत** दुकूल भुजमूल भहरात है।"

यह पाठ 'भवानी विलास' में ५:४० तथा 'सुख सागर तरंग' में ५०० संख्या पर भी मिलता है परन्तु केवल नी० हि० ज० प्रतियों में द्वितीय चरण में **'झनक'** तथा तृतीय चरण में **'झलक'** पाठ मिलता है। नायिका के झूमने अथवा हिलने के कारण उसका दुपट्टा कंधे पर से गिर जाता है अतः **'झूलत'** पाठ ही संगत है। 'झनित' पाठ 'रनित' तथा 'मनित' के अनुप्रास से तथा 'झूलत' पाठ 'हलत' के अनुप्रास से पुष्ट भी है।

३:७९

"व्याकुल ह्वै बिरहानल सों **तचि** घूमि गिरि गुनगौरि गली पर।"

नी० हि० प्रतियों में लिपिभ्रम से **'तब'** पाठ मिलता है। यह छन्द 'भवानी विलास' में ६ ३१ पर भी है परन्तु यहाँ **'जरि'** पर्याय मिलता है। कहना न होगा कि प्रस्तुत प्रसंग में "तचि" पाठ संगत तथा **'तब'** पाठ विकृत है।

भा० सा० ज० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

३:२९

"श्रम मद भय **अभिलाष अरु** सुमृति गर्व इक बार।"

भा०.सा० ज० प्रतियों में प्रतिलिपिकार के दृष्टि-भ्रम से असंगत पाठ मिलता है "**अभिलाष रुख**।"

३:५६

"न मानति और कछू तब तें मन माँहि **वहीये** रही छबि छाई।"

'य' में 'प' का भ्रम होने से भा० सा० ज० प्रतियों में '**वही पे**' विकृत पाठ मिलता है। यह पाठ अर्थ के विचार से असंगत है।

४ : ८९ उत्कंठिता नायिका लक्षण।

"हेतु विचारै चित्त में **उत्कंठिता** कहु ताहि।"

'उत्कंठिता' पाठ से चरण में एक वर्ण की नियम-विरुद्ध वृद्धि होती थी अत: केवल भा० सा० ज० प्रतियों के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रतियों में '**उत्कंठा**' पाठ रक्खा है। दोहे में उत्कंठिता नायिका का लक्षण होने के कारण यह पाठ असंगत तथा 'उत्कंठिता' पाठ ही संगत है।

प्रतियों का प्रतिलिपि सम्बन्ध :

'भाव विलास' की उपलब्ध प्रतियों में पाठ-मिश्रण होने के कारण इनका परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त उलझा हुआ है। विकृतियों के आधार पर प्रतियों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं :—

नी० हि० प्रतियाँ एक ही प्राचीन आदर्श की दो प्रतियाँ हैं। यह आदर्श मूल प्रति के निकट की कोई ऐसी प्रति थी जिसका पाठ भ्रष्ट एवं खंडित अवस्था में था। इन प्रतियों में अपनी-अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ भी मिलती हैं अत: ये प्रतियाँ एक-दूसरे की प्रतिलिपि नहीं हो सकतीं।

भा० सा० प्रतियाँ एक आदर्श की दो प्रतियाँ हैं। इन प्रतियों में भी अपनी-अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ मिलती हैं अत: ये प्रतियाँ एक दूसरे की प्रतियाँ नहीं हो सकतीं।

प्रतियों के उपरोक्त समुच्चय के अतिरिक्त शेष समुच्चय प्रतियों में पाठ-मिश्रण के कारण निर्मित होते हैं अथवा इनमें संदिग्ध प्रतिलिपि-सम्बन्ध हैं।

का० प्रति तथा नी० हि० प्रतियों में परस्पर पाठ-मिश्रण हुआ है। इन दो शाखाओं की प्रतियों में परस्पर स्वतंत्र विशेषताएँ भी मिलने के कारण ये पाठ-परंपरा में निम्न स्तर से सम्बन्धित प्रतियाँ नहीं हैं।

इसी प्रकार सा० प्रति में का० प्रति एवं नी० हि० प्रतियों की पूर्व-परंपरा की प्रतियों से पृथक्-पृथक् पाठ-मिश्रण हुआ है।

ज० प्रति तथा नी० हि० प्रतियों में केवल दो स्थलों पर पाठ-विकृतियाँ समान हैं एवं भा० सा० ज० प्रतियों में भी दो ही स्थलों पर समान विकृतियाँ मिलती हैं अत: हम नी० हि० ज० तथा भा० सा० ज० प्रतियों को विकृति-सम्बन्ध से सम्बन्धित प्रतियाँ नहीं मानते हैं।

'भाव विलास' की समस्त प्रतियों के अंतर्सम्बन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :
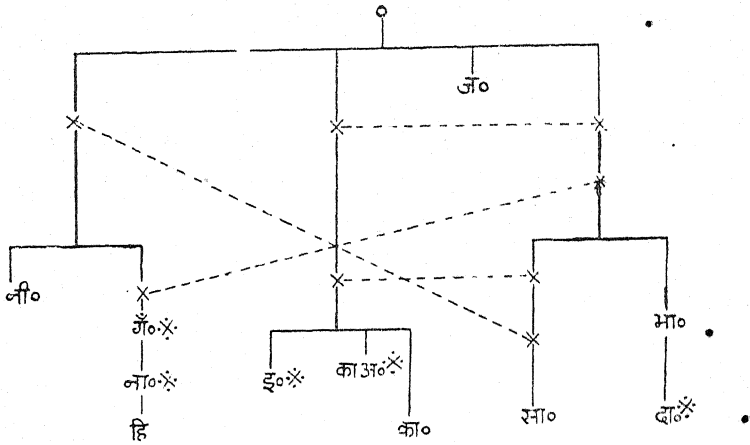
* अंकित प्रतियों का उपयोग आंशिक रूप में हुआ है अथवा इन्हें छोड़ दिया गया है।

संपादन-सिद्धान्त :

प्रतियों के निम्नलिखित परस्पर स्वतंत्र समुच्चयों में प्राप्त पाठ प्रामाणिक होगा :—

सभी प्रतियों में प्राप्त संगत पाठ;

नी०, हि० तथा ज० प्रतियों में प्राप्त पाठ; भा०, ज० तथा का० प्रति में प्राप्त पाठ; भा० सा० ज० प्रतियों के शीर्षक के अंतर्गत आए कुछ स्थलों को छोड़ कर इन प्रतियों तथा नी०, हि०, का० प्रतियों में प्राप्त समान संगत पाठ।

अन्य ग्रंथों की तुलना में 'भाव विलास' में दूसरे ग्रंथ के समान छंद कम मिलते हैं तथा सहायक सामग्री के रूप में अन्य ग्रंथों के पाठ का उपयोग भी कम हुआ है, यदि हुआ है तो भूमिका में उसका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।

अपवाद :

निम्नलिखित स्थलों पर केवल एक प्रति का पाठ अन्य प्रतियों के पाठ के स्थान पर स्वीकृत हुआ है :

केवल नी० हि० प्रतियों में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

५:९ उपमेयोपमा लक्षण।

"उपमा अरु उपमेय जहँ क्रम तें एकै होइ।
सोई उपमेयोपमा कहत सुकवि सब कोइ॥"

ऊपर स्वीकृत पाठ केवल नी० हि० प्रतियों में मिलता है। का० सा० प्रतियों में इसके स्थान पर **"उपमा अरु उपमेय जहँ जहँ क्रम एकै होइ"** तथा भा० प्रति में **"उपमा अरु उप-मेय को जहँ क्रम एकै होइ"** पाठ है। इन दोनों ही पाठों के अनुसार दोहा उपमेयोपमा अलंकार के बजाय क्रमालंकार का लक्षण हो जाता है। उपमेयोपमा में उपमेय की समता जिस उपमान से की जाती है वह उपमान तुरन्त ही उपमेय होकर प्रथम को अपना उपमान बना लेता है।

जैसे, "पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोसी उज्यारी है पूरनमासी।" परन्तु क्रमालंकार में जिस क्रम से उपमेयों का वर्णन किया जाता है, उपमेय के अनन्तर उसी क्रम से उपमानों का भी वर्णन होता है। जैसे 'भाव विलास' के ५:६४ छंद में पहले केश, भाल, भृकुटी, नयन आदि के बाद उसी क्रम से उनके उपमान कुहू-तम, चंद-चाप, खंजन आदि का वर्णन हुआ है। इस प्रकार किंचित भ्रम होने से दोहे में उपमेयोपमा के स्थान पर क्रमालंकार का लक्षण वर्णित हो गया है। भा० सा० का० प्रतियों का पाठ उपमेयोपमा अलंकार का अनुपयुक्त लक्षण होने के कारण अग्राह्य है अतः केवल नी० हि० प्रतियों में प्राप्त पाठ संगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है।

केवल ज० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

२:३९ चिंता लक्षण दोहा।

"इष्ट वस्तु पाये बिना **व्यग्र चित्त अति होइ**।"

रेखांकित पाठ केवल ज० प्रति में मिलता है, अन्य प्रतियों में पाठ की स्थिति इस प्रकार है **"एक अग्र चित होइ"**—सा०का० प्रतियाँ, **"बहु व्याकुल चित होइ"**—नी०हि० प्रतियाँ, **"एक आस चित होइ"**—भा० प्रति। का० सा० प्रतियों का 'अग्र' पाठ दृष्टि-भ्रम से 'व्यग्र' से संभव है, इसी प्रकार नी० हि० प्रतियों का पाठ भी 'व्यग्र' का पर्याय है एवं भा० प्रति का पाठ प्रसंग के विचार से असंगत है अतः केवल ज० प्रति में प्राप्त पाठ स्वीकृत हुआ है।

२:५८

"देव ह्वै पथ आइ मनो चढ़ि धाई मनोरथ के रथ ऊपर।"

रेखांकित पाठ केवल ज० प्रति में तथा भा० प्रति में **'सुदै'**, का० सा० प्रतियों में **'हुदै'** एवं नी० हि० प्रतियों में **'ह्वै दै'** पाठ है। ज० प्रति के अतिरिक्त सभी पाठ असंगत हैं तथा ज०प्रति के पाठ से ये विकृत पाठ संभव हैं अतः केवल ज०प्रति में प्राप्त पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

केवल सा० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

३:७९

"व्याकुल ह्वै बिरहानल सों तचि घूमि गिरी गुनगौरि गली पर।"

रेखांकित पाठ केवल सा० प्रति में है। ज० नी० हि० प्रतियों में इसी पाठ में भ्रम होने के कारण **'तब'**, का० प्रति में **'बरि'** पर्याय तथा भा० प्रति में **'तजि'** पाठ मिलता है। 'भवानी विलास' में इस छंद में 'जरि' पर्याय मिलता है। प्रसंग पर विचार करते हुए भा० प्रति का 'तजि' पाठ असंगत तथा नी० हि० ज० प्रतियों का 'तब' पाठ भी अग्राह्य मालूम देता है एवं ये दोनों ही पाठ मूल में 'तचि' पाठ होने की संभावना पुष्ट करते हैं अतः प्रस्तुत स्थल पर केवल सा० प्रति में प्राप्त 'तचि' संगत पाठ स्वीकृत हुआ है।

केवल का० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

५:७८-७९-८० संख्या के दोहे, जो केवल का० प्रति में प्राप्त होते हैं, मूल प्रति के माने गये हैं। कारणों के लिए देखें " 'भाव विलास' के अंतिम दोहों की प्रामाणिकता" शीर्षक पृ० ५४। इन दोहों का पाठ इस प्रकार है :—

"अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार।
ताते मो पर करि कृपा लैहैं सुमति सुधार॥

या साहित्य समुद्र को बड़ेन न पायो पार।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार।।
द्यौसरिया कवि देव को नगर इटाए वास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास।।"

विशेष संशोधन :

निम्नलिखित स्थलों पर सभी उपलब्ध प्रतियों का पाठ अग्राह्य होने के कारण संपादक ने अपनी ओर से पाठ संशोधन किया है :

४:१८

"**ऊक सो ह्वै** रहिहै अबै इन्दु बिलोकत भूमि पै घूमि गिरौगी।"

संदिग्ध स्थल के पाठान्तर विभिन्न प्रतियों में इस प्रकार मिलते हैं—"**ऊक सो है ह्वै रही है**"—**ज० प्रति**, "**ऊक सो वो रहि है**"—**सा० प्रति**, "**इक सो विरहै रहिहै**"—**का० प्रति**, "**ऊक सो वै रहिहै**"—**नी० हि० प्रतियाँ**, "**ऊँक सो वो रहि है**"—**भा० प्रति**। 'सुख सागर तरंग' में ८२६ पर नी० हि० प्रतियों के समान आदर्श से पाठ-मिश्रण होने के कारण "**ऊक सो वो रहि है**" पाठ मिलता है। कहना न होगा कि यह पाठ 'ह्वै' का विकृत रूप है तथा अर्थ के विचार से असंगत है। अन्य प्रतियों के विभिन्न पाठान्तर भी इसी 'ह्वै' से संभव हैं तथा नायक से अलग रहकर उल्का के समान प्रज्वलित हो उठने के प्रसंग में यह पाठ संगत है अतः संपादक ने 'ह्वै' पाठ संशोधन अपनी ओर से किया है।

४:३१ मध्या सुरतान्त।

"मन भावन के ढिग तें उठि भामिनि भोरही भूषन हाथ लिये।
रँगभौन के भीतर भाजि परी भय भार भरी अति लाज हिये।
सजनीजन तें दुरि कै कवि देव निहारति हार विहार किये।
तिय बारहिबार **सँवारहि के** निरवारति वार केवार दिये।।"

आलोच्य स्थल पर विभिन्न प्रतियों के पाठान्तर इस प्रकार हैं—**निरवारहि के**—**नी० हि० प्रतियाँ, सँवारहि की**—**का० सा० प्रतियाँ**, **सँवारति ही**—**भा० प्रति, सँवारहि केश**—**ज० प्रति**। 'सुजान विनोद' में ३:३८ पर इसी छंद में "**सँवारहि के**" पाठ मूल में एवं "**सँवारहि वार**" पाठान्तर का० प्रति में है। 'रस विलास' में ८:१४ पर केवल गं० प्रति में प्राप्त "**सँवारहि के**" पाठ मूल का माना गया है, यहाँ सा० प्रति में "**सँवारति ही**" एवं का० प्रति में "**सँवारहि की**" पाठान्तर मिलते हैं।

कवि का आशय स्पष्ट है, नायिका सुरति में उलझे हुए अपने हार आदि आभूषणों को सँवारने अर्थात् सजा कर पहनने के हेतु उन्हें अलग-अलग करके सुलझा रही है। सखियाँ उसे देख न लें इसलिए उसने दरवाज़े के किवाड़ दे दिये हैं। अतः "निरवारति वार" पाठ बिलकुल संगत है। तुलना—"कबहूँ कान्ह आपने कर सों केसपास निरवारत—" सूर।

ऊपर 'भाव विलास' की विभिन्न प्रतियों में पाठान्तर होने का कारण 'के' शब्द से उत्पन्न भ्रांति है। वास्तव में कवि ने 'के लिए' के संक्षिप्त रूप में 'के' का प्रयोग किया है।

ऐसे प्रयोग उसकी रचनाओं में अन्यत्र भी मिलते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

"कुंजनि केलि के बेली नबेली बुलावति बालम लाल हसंतहि।"

—'सुजान विनोद'—६:५

"मूँदि मूँदि लोचन ब्रितौति नींद मोचन के मोचत सकोच सोच सकल बढ़त है।"

—'रस विलास'—७:४६

ज० प्रति के प्रतिलिपिकार ने यह समझ कर कि उसके आदर्श में 'केश' का 'श' वर्ण प्रमादवश छूट गया है, 'केश' पाठ अपनी ओर से बना दिया है। नी० हि० प्रतियों के "निर-वारहि के निरवारति वार किवार दिये" पाठ में "निरवारहि" की आवृत्ति असंगत है। द्वितीय "निरवारहि" की प्रतिध्वनि प्रतिलिपिकार के मस्तिष्क में होने के कारण भी यह विकृति संभव है। का० अथवा सा० प्रति में सामान्य लेखन प्रमाद से 'के' का 'की' पाठ हो गया है। स्मरण रहे कि 'रस विलास' की का० प्रति में भी इन दोनों ग्रंथों की प्रतियों में परस्पर पाठ-मिश्रण होने के कारण 'की' पाठ मिलता है। यह पाठ असंगत है।

आठ सगण वाले दुर्मिल सवैया के लक्षण तथा छंद के प्रसंग को ध्यान में रखते हुए अन्य ग्रंथों में प्राप्त पाठ की सहायता से "सँवारहि के" पाठ संशोधन संपादक ने अपनी ओर से किया है।

'भाव विलास' के अंतिम दोहों की प्रामाणिकता

'भाव विलास' की कुछ प्रतियों में मिलने वाले "संवत् सत्रह सै" आदि दोहों के आधार पर अब तक देव का जन्म-संवत्, 'भाव विलास' का रचनाकाल तथा आजमशाह के साथ कवि का सम्बन्ध निश्चित होता आया है। इस ग्रंथ की कुछ प्राचीन प्रतियों में इन दोहों के स्थान पर अन्य दोहे मिलने के कारण हम इस प्रश्न पर यहाँ पृथक् रूप से विचार कर रहे हैं।

'भाव विलास' के अंतिम दोहों का पाठ प्रतियों के उल्लेख सहित नीचे दिया जा रहा है :—

अलंकार ये मुख्य हैं इनके भेद अनंत।
आन ग्रंथ के पंथ लखि जानि लेहु मतिमंत ॥७७॥

यहाँ तक हि० भा० सा० का० प्रतियों में पाठ समान है। इसके पश्चात् हि० भा० सा० प्रतियों में निम्नलिखित दोहे मिलते हैं :—

सुभ सत्रह सै छियालिस चढ़त सोरही वर्ष।
कढ़ी हर्ष मुख देवता भाव विलास सहर्ष ॥
दिल्लीपति अवरंग के आजमशाहि सपूत।
सुन्यो सराह्यो ग्रंथ यह अष्टयाम संयूत ॥

परन्तु संवत् १८५७ की का० प्रति तथा प्रायः इतनी ही प्राचीन इंडिया आफ़िस लाइ-ब्रेरी की इ० प्रति में उपर्युक्त दोनों दोहे नहीं मिलते। इन प्रतियों में इन दोहों के स्थान पर निम्नलिखित तीन दोहे हैं :—

अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार।
ताते मो पर करि कृपा लैहैं सुमति सुधार ।।७८।।
या साहित्य समुद्र को बड़ेन न पायो पार।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार ।।७६।।
द्यौसरिया कवि देव को नगर इटाए वास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास ।।८०।।

अर्थात् इन प्रतियों में जन्म-संवत् तथा आज़मशाह वाले दोहे नहीं हैं। संपादन-कार्य में व्यवहृत उपर्युक्त प्रतियों के अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट से प्राप्त 'भाव विलास' की अन्यान्य प्रतियों के विवरण के आधार पर अन्तिम दोहों की स्थिति इस प्रकार है :—

१ खो० रि० १६०६-११, पृ० ११०—महाराज बलरामपुर की संवत् १६०५ की प्रति। ग्रन्थ का नाम 'भाव प्रकास' है तथा यह प्रति भी नी० प्रति के समान श्लेष लक्षण दोहे पर खण्डित है अतः आलोच्य दोहे इस प्रति में नहीं हैं।

२ खो० रि० १६२३-२५, पृ० ४४६—मुन्नू मिश्र, नीलगांव, ज़िला सीतापुर की प्रति। यह प्रति भी उपरोक्त प्रति के समान श्लेष लक्षण पर खण्डित है तथा इसमें भी ग्रंथ-नाम 'भाव प्रकास' है। नी० प्रति तथा इस प्रति के प्रतिलिपिकार भी एक ही व्यक्ति, गौरी शंकर दुबे हैं। अन्त में खण्डित होने के कारण अन्तिम दोहे इस प्रति में भी नहीं हैं।

३ खो० रि० १६२३-२५, पृ० ४४६—महराजदीन चौबे, कसराया, ज़िला रायबरेली, की प्रति। इस प्रति में यद्यपि ग्रन्थ-नाम 'भाव विलास' है परन्तु यह प्रति भी श्लेष लक्षण पर खंडित है अतः अन्तिम दोहे इस प्रति में भी नहीं हैं।

४ खो० रि० १६२३-२५, पृ० ४४४—श्री मिश्रबन्धुओं की गोलागंज की प्रति। ग्रन्थ का नाम 'भाव विलास' है तथा यह प्रति पूर्ण भी है अतः केवल इस प्रति में भा० सा० हि० प्रतियों में प्राप्त 'सुभ सत्रह सै' तथा 'दिल्लीपति अवरंग के' दोहे मिलते हैं।

इन प्रतियों की केवल बहिरंग परीक्षा से प्रगट है कि उपरोक्त प्रतियों में प्रथम तीन प्रतियाँ तथा नी० प्रति एक ही शाखा की प्रतियाँ हैं। प्रक्षिप्त छंदों वाली गं० प्रति पूर्ण है, एवं गं० तथा मिश्रबन्धुओं की प्रति में अन्तिम दोहे भी मिलते हैं। स्मरण रहे कि मिश्रबन्धुओं की अधिकांश हस्तलिखित सामग्री उनके परिवार के गन्धौली स्थित ब्रजराज पुस्तकालय के ग्रंथों से तैयार प्रतिलिपियाँ हैं। अतः मिश्रबन्धुओं की प्रति की पूर्णता तथा उस प्रति में प्राप्य अन्तिम दोहे, किसी स्वतन्त्र शाखा की प्रति में प्राप्त न होने के कारण, महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। गन्धौली की गं० प्रति की पूर्णता भी संदिग्ध है क्योंकि इस प्रति में श्लेष लक्षण दोहे, जहाँ से इस समूह की अन्य सभी प्रतियाँ खण्डित हैं, से आगे का पाठ भिन्न हस्तलेख में मिलता है। गं० प्रति का विवरण देते हुए हमने यह स्पष्ट किया है कि गं० प्रति में इस स्थल से आगे का पाठ किसी अन्य प्रति से लेकर पूर्ण किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि गं० प्रति में प्राप्य ग्रन्थ के अन्तिम दोहे इस दूसरी प्रति के पाठ के साथ आए हैं। गं० से हि० प्रति की प्रतिलिपि होने के कारण हि० प्रति में भी यही दोहे मिलते हैं। नी० हि० प्रतियों में बड़ी संख्या में प्राप्त समान पाठ-विकृतियों तथा

प्रक्षेपों से यह प्रगट होता है कि नी० तथा गं० हि० प्रतियाँ एक ही आदर्श से प्रतिलिपि हुई हैं। इस स्थिति में जब नी० प्रति श्लेष लक्षण पर खंडित है, गं० प्रति में ग्रंथ के अन्त तक का पूर्ण पाठ मिलना, गं० प्रति में पाठ-मिश्रण के बिना सम्भव नहीं होसकता। हमने यहाँ गं० प्रति की पूर्णता की परीक्षा इसलिए विस्तार से की है क्योंकि नी० गं० हि० प्रतियाँ भा० सा० प्रतियों की शाखा से स्वतन्त्र शाखा की प्रतियाँ हैं,और यदि एक स्वतन्त्र शाखा की हि० प्रति में तथा दूसरी स्वतन्त्र शाखा की भा० सा० प्रतियों में भी आलोच्य दोहे मिलते हैं तो पाठ संपादन के मान्य सिद्धान्तों के अनुसार ये दोहे मूल प्रति के होने चाहिये। गं० हि० प्रतियों के उपरोक्त विवेचन से यह प्रगट है कि वस्तुस्थिति इससे भिन्न है: अन्य प्रति से पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप हि० प्रति में ग्रंथ का पूर्ण पाठ मिलता है। अब यह देखना है कि गं० प्रति में श्लेष लक्षण से आगे का पाठ किस शाखा की प्रति से पूर्ण किया गया है।

'भाव विलास' का "मालती सों" ५:२०वां छंद नी० हि० का० प्रतियों में नहीं है, इन प्रतियों में इस छन्द के स्थान पर "जानि है सुजानि" छन्द मिलता है—नी० हि० प्रतियों में "जानि है" छन्द के केवल तीन ही चरण हैं। केवल गं० प्रति में "मालती सों" छन्द "जानि है सुजानि" छन्द के पूर्व प्रति के पार्श्व पर उसी दूसरे हस्तलेख में लिखा मिलता है, जिस हस्तलेख में श्लेष लक्षण से आगे का पाठ पूर्ण किया गया है। गं० प्रति की हि० प्रतिलिपि में ये दोनों ही छन्द मिलते हैं। हमारे विचार से इस स्थल पर समासोक्ति अलंकार के दो उदाहरण अपेक्षित नहीं हैं अतः इन दोनों उदाहरणों को मूल प्रति का नहीं माना जा सकता। इस प्रति में यह छन्द निस्सन्देह भा० सा० समूह की किसी प्रति से प्रक्षिप्त हुआ है—गं० प्रति संवत् १९३५ की है, भा० प्रति संवत् १९५० में प्रकाशित हुई है अतः यह भी सम्भव है कि भा० प्रति के प्रकाशित होने पर उसी के पाठ से गं० प्रति का पाठ पूरा किया गया हो और "मालती सों" छन्द गं० प्रति के पार्श्व पर लिखा गया हो।

जो भी हो, गं० हि० प्रतियों में भा० सा० प्रतियों से पाठ-मिश्रण के इस स्पष्ट प्रमाण की उपस्थिति में यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गं० प्रति का अपूर्ण पाठ भा० सा० शाखा की किसी प्रति की सहायता से पूर्ण किया गया है। इस पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप ही "सुभ सत्रह सै", "दिल्लीपति अवरंग के" दोहे गं० तथा हि० प्रतियों में मिलते हैं। इस प्रकार गं० हि० प्रतियों के साक्ष्य का महत्त्व समाप्त हो जाता है। भा० सा० प्रतियाँ विकृति-सम्बन्ध द्वारा सम्बन्धित प्रतियाँ हैं। अतः केवल इन दो प्रतियों में प्राप्त दोहा प्रतिलिपि की पूर्व परंपरा में किसी प्रक्षेपकार द्वारा प्रक्षिप्त भी हो सकता है।

इन दोहों में निहित तथ्यों पर पृथक्-पृथक् रूप से विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

भा० सा० हि० प्रतियों में प्राप्त "संवत् सत्रह सै" दोहा सोलह वर्ष की अवस्था में कवि द्वारा 'भाव विलास' के प्रणयन की स्पष्ट घोषणा करता है। परन्तु इस ग्रंथ की प्रौढ़ता तथा विषय-निरूपण की स्पष्टता देव कृत अन्यान्य ग्रंथों में भी दुर्लभ है। अतः इतनी कम आयु में कवि द्वारा इसकी रचना होना कठिन जान पड़ता है। इस अवस्था में किसी व्यक्ति को सांसारिक ज्ञान भले ही हो जाए परन्तु इस अल्पायु में उसे कविताबद्ध कर किसी लक्षण-ग्रंथ में सुसंयोजित रूप से अलंकृत कर सकना प्रायः असम्भव है। श्री मिश्रबन्धुओं ने इस प्रश्न पर अपनी ओर से यह कल्पना

की है कि कवि ने प्रौढ़ता प्राप्त करने पर इस ग्रंथ के निकम्मे छन्द निकाल दिये होंगे। ('हिन्दी नवरत्न'—पृ० २७६) नी० हि० प्रतियों में प्रक्षिप्त छन्दों का विश्लेषण करते हुए हमने इस सम्भावना की विस्तार से परीक्षा की है एवं यह सम्भावना निराधार सिद्ध हुई है। इस प्रकार "चढ़त सोरही वर्ष" में 'भाव विलास' की रचना होने का उल्लेख स्वयं कवि द्वारा ग्रंथ-रचना के वर्षों पश्चात् किया आत्मोल्लेख न होकर कवि को महिमामंडित करने के लिए उसके किसी प्रशंसक द्वारा किया गया प्रक्षेप है। बहुत संभव है कि मूल प्रति में विद्यमान शब्दावली "जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास" के आधार पर प्रक्षेपकार ने "चढ़त सोरही वर्ष" का निश्चित वर्ष अपनी ओर से दे दिया हो।

अपने ग्रंथों में ग्रंथ का रचनाकाल देने की देव कवि की प्रवृत्ति भी नहीं रही है। केवल एक 'रस विलास' के अन्त में इस ग्रंथ का रचनाकाल दिया है—यह भी उस संस्करण की प्रतियों में मिलता है जो संस्करण सुल्तानपुर के राजा भोगीलाल को समर्पित है।

इस संदर्भ में 'सुजान विनोद' तथा 'कुशल विलास' ग्रंथों के निम्नलिखित दोहे देखें :—

"परम सुजान सुजान की कृपा देव कवि हर्षि।
कियो सुजान विनोद को रचन वचन वसु वर्षि ॥"

—'सुजान विनोद'—१ : १५

"देव विभव रस भाव रस भव रस नव रस सार।
सुख रस वसु वर बरस सुभ बरस रच्चो सिंगार ॥"

—'कुशल विलास'—१ : ११

इन दोनों दोहों में संख्यावाचक शब्दों की बहुलता से सहसा यही भ्रम होता है कि कवि ने इनमें ग्रंथ का रचनाकाल दिया होगा परन्तु इनमें दिये हुए संख्यावाचक सांकेतिक शब्द केवल ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय तथा अध्यायों (वर्ष अर्थात् खंड) की संख्या के द्योतक हैं। यहाँ इन दोहों की चर्चा चलाने से भी हमारा अभिप्राय यह स्पष्ट करना है कि यदि इन ग्रंथों में अथवा 'भाव विलास' में ग्रंथ का रचनाकाल देने में कवि की किंचित भी रुचि होती तो वह इन दोहों में सुविधा से तिथि दे सकता था।

अब आज़मशाह से सम्बन्धित दूसरे दोहे को लें। इसके अनुसार देव ने आज़मशाह के सम्मुख कभी 'भाव विलास' तथा 'अष्टयाम' ग्रंथों का पाठ किया था तो उसने इन ग्रंथों की सराहना की थी। कवि ने इस तथ्य को प्रशंसापत्र के रूप में 'भाव विलास' के अन्त में नत्थी करना आवश्यक समझा। परन्तु इस पर भी गम्भीरता से विचार करना चाहिये। देव जब 'भाव विलास' लेकर आज़मशाह के पास गए तो ग्रंथ किसी को समर्पित नहीं था (और यह ग्रंथ बाद में भी किसी आश्रयदाता को समर्पित नहीं हुआ !), आज़मशाह काव्य-रसिक होने के अतिरिक्त गुणग्राही भी था और देव को इन दोनों विशेषताओं से युक्त आश्रयदाता की सर्वदा आवश्यकता रहती थी। ऐसी स्थिति में 'भाव विलास' ग्रंथ आज़मशाह को समर्पित करना देव के लिए सबसे अधिक स्वाभाविक था। देव सुविधा से ऐसा कर सकते थे। 'सुजान विनोद' का प्रथम प्रारूप पहले किसी आश्रयदाता के नाम समर्पित नहीं था परन्तु बाद में किंचित आकार परिवर्धन के साथ देव ने इसे दिल्ली के कायस्थकुलीन रईस सुजानमणि को समर्पित किया। 'रस विलास'

की भी ऐसी ही स्थिति है। यह ग्रंथ भी पहले किसी को समर्पित न था परन्तु बाद में भोगीलाल से भेंट होने पर देव ने उन्हें 'रस विलास' समर्पित किया। देव ने एक ही ग्रंथ के छन्दों में उलट-फेर करके उसे दो आश्रयदाताओं के नाम समर्पित किया है। 'सुख सागर तरंग' पिहानी के राजा अली अकबर खान तथा महाराज जसवंत सिंह को भी इसी प्रकार समर्पित है। इसकी तुलना में आजमशाह को 'भाव विलास' समर्पित करने में देव को कोई कठिनाई नहीं हो सकती थी। देव उनके पास 'भाव विलास' लेकर गए तो केवल उन्हें ग्रंथ सुनाने के लिए, इस पर कठिनता से विश्वास किया जा सकता है।

अब का० प्रति तथा इंडिया आफिस लाइब्रेरी की प्रति में प्राप्त "अपनी बुद्धि समान", "या साहित्य समुद्र" तथा "द्यौसरिया कवि देव" दोहों को लें।

का० प्रति के "अपनी बुद्धि समान" दोहे तथा सभी प्रतियों में प्राप्त इसके पहले के "अलंकार ये मुख्य हैं" दोहे में प्रत्यक्ष तारतम्य है—"अलंकार के भेद अनन्त हैं, मैंने अपनी बुद्धि-बल के अनुसार उनमें कुछ का वर्णन किया है।" इस कथन का उत्तरार्ध भाग का० प्रति के "या साहित्य" दोहे में प्रतिध्वनित होता है—"यह साहित्य-सागर अपार है, बड़े-वरिष्ठ कवि भी उसका ओर-छोर न पा सके, फिर मुझ जैसे तुच्छ कवि की क्या सामर्थ्य है।"

का० प्रति में प्राप्त इन दोहों की तुलना में भोगीलाल को समर्पित 'रस विलास' के संस्करण के अन्तिम दोहे द्रष्टव्य हैं :—

"यहि विधि दरसन श्रवन करि सुमिरै विधि हरि रुद्र।
पार लहत को बरनि के या साहित्य समुद्र ॥८ : ६० ॥
अपनी बुद्धि समान मैं बरनि कह्यो रस सार।
रस विलास रस रूप नृप भोगीलाल उदार ॥८ : ६१ ॥"

इन दोहों की "या साहित्य समुद्र" तथा "अपनी बुद्धि समान मैं बरनि कह्यो—" आदि शब्दावली के साथ का० प्रति के दोहों की तुलना करने पर का० प्रति के दोहे कविकृत प्रमाणित होते हैं।

इस समस्त विवेचन के आधार पर हमने केवल भा० सा० हि० प्रतियों में प्राप्त दोहों को प्रक्षिप्त तथा का० प्रति में प्राप्त दोहों को प्रामाणिक माना है।

भाव विलास

[मूल पाठ एवं पाठान्तर]

श्री वृन्दावनचन्द[1] चरण जुग चरचि[2] चित्त धरि।
दलि मल कलिमल सकल कलुष दुष दोष मोष करि।।
गौरीसुत गौरीस गौरि गुरुजन गुन गाये।
भुवन[3] मातु भारती सुमिरि भरतादिक ध्याये।।
कवि देवदत्त शृंगार रस सकल भाव संयुत सँच्यो[4]।
सब नायिकादि नायक सहित अलंकार वर्णन रच्यो।।१।।

[1] वृन्दावन वन्दि—नी०। [2] चरण—नी० हि० इ०। [3] भवन—सा०। [4] रच्यो—हि०।

अरथ धर्म तें होइ अरु काम[1] अरथ तें जान।
ताते सुख सुख को सदा रस शृंगार[2] निदान।।२।।

[1] धर्म—नी० हि० इ०। [2] ताते है सो सुख के सदा है शृंगार निदान—नी० हि०।

ताके कारण भाव हैं तिनको करत विचार।
जिनहि जानि जान्यो परै सुखदायक सिंगार।।३।।
थिति विभाव अनुभाव अरु कहौं[1] सात्विक भाव।
संचारी अरु हाव ये षट विधि बरनौं हाव[2]।।४।।

[1] कहिहौं—नी० हि०। [2] भाव—ज०।

जो जा रस की उपज मैं पहिलो अंकुर होइ।
सो ताको थिति भाव है कहत सुकवि सब कोइ।।५।।
नव रस को थिति भाव नव[1] तिनको बहु विस्तार।
तिन में रति थिति भाव तें उपजत रस सिंगार।।६।।

[1] है—भा०, तव—नी० हि० सा०।

नेकु जु प्रियजन देखि सुनि[1] आन भाव[2] चित होइ।
अति कोविद पति कविन के सुमति कहत रति सोइ[3]।।७।।

[1] देखि कै—नी० हि०। [2] भाँति—का० इ०। [3] सो ताको थिति भाव है कहत सुकवि सब कोई—नी० हि०।

प्रिय दर्शन उदाहरण।

संग ना सहेली केलि करत अकेली एक कोमल नबेली बर बेली जैसी[1] हेम की।
लालच भरे से लखि[2] लाल चलि आए सोचि[3] लोचन लचाय[4] रही रासि कुल नेम की।
देव मुरझाइ उरमाल उरझाइ[5] कह्यो दीजो सुरझाइ बात पूछी[6] छल छेम की।

भायक[७] सुभाय भोरे स्याम के समीप आय गाँठिहि छड़ाइ[८] गाँठि पारि गई प्रेम की ॥८॥

[१] मानो—नी० हि० सा० । [२] तहाँ—नी० हि० । [३] लोल—नी० । [४] ललचाय—का० ।
[५] उरमाल उरझाय सुरझाय—नी० हि० । [६] बूझी—हि० । [७] भायन—सा० ।
[८] गाँठि छुटकाइ—भा० ।

प्रिय श्रवण उदाहरण ।

गौने के चार[१] चली दुलही गुरु लोगन[२] भूषन भेष बनाये ।
सील सयान[३] सिखाय सखीन[४] सबै सुख सासुरेहू के सुनाये ।
बोलिये बोल सदा हँसि[५] कोमल जे मनभावन के मन भाये ।
यों सुनि ओछे उरोजनि पै अनुराग के अंकुर से उठि आये ॥९॥

[१] चाइ—का० इ०, चाल—नी० हि० । [२] गुरु नारिन—नी० हि० ।[३] सुभाय—सा० ।
[४] सबै सिखयेरु—नी० हि०, सखीन सिखायो—भा० । [५] अति—नी० हि० ।

विभाव लक्षण ।

जे विशेष करि रसनि को उपजावत हैं भाव ।
भरतादिक सतकवि सबै तिनको[१] कहत विभाव ॥१०॥

[१] तिनसों—नी० हि० सा० ।

ते[१] विभाव द्वै भाँति के कोविद कहत बखानि ।
आलंबन कहि[२] देव अरु उद्दीपन उर आनि ॥११॥

[१] है—नी० हि० । [२] कवि—का० इ० ।

रस उपजै आलंबि जेहि सों आलंबन होइ ।
रसहि जगावै दीप ज्यों उद्दीपन कहि सोइ[१] ॥१२॥

[१] सो उद्दीपन होइ—नी० हि० ।

उदाहरण ।

चित दै चितऊँ जित[१] ओर[२] सखी तित नन्दकिसोर की ओर ठई ।
दसहूँ दिसि दूसरो देखति[३] ना छवि मोहन की छिति माँह छई ।
कवि देव कहाँ लौं कछू कहिये प्रतिमूरति हौं[४] उनही की भई ।
ब्रजवासिन कौ ब्रज जानि परै न भयो ब्रज री ब्रजराज मई ॥१३॥

[१] चितवै जिहि—नी० हि० । [२] ओरी—इ० । [३] दीसति—नी० हि० सा० । [४] है—इ० ।

उद्दीपन भेद ।

गीत नृत्य[१] उपवन गवन आभूषन जल केलि[२] ।
उद्दीपन श्रृंगार के विधु वसन्त वन वेलि[३] ॥१४॥

[१] नृत्य गान—नी० हि०, गीत नाच—का० इ० । [२] वन केलि—नी० हि० का० भा० ज० सा० । [३] वन केलि—ज० ।

गीत उदाहरण ।

आली अलापी वसंत मनोरम मूरतिवन्त मनोज दिखावनि ।
पंचम नाद निषादहि मैं[१] सुर मूरछना गन ग्राम[२] सुनावनि ।

देव कहै मधुरी धुनि सों वर बीन ललै कर बीन बजावनि।
बावरी सी हौं भई सुनि आजु गई गड़ि जी मैं गुपाल की गावनि ।।१५।।

१ सों—नी० हि०। २ गुन ग्राम—नी०, गुन तान—हि०, स्रुति गान—का० इ०, स्रुति तान—सा०।

नृत्य उदाहरण।

पीरी पिछौरी के छोर छुटै छहरै छवि मोर पखान की जामैं।
गोधन की गति बेनु बजै कवि देव सबै[१] सुनि कै धुनि आमैं[२]।
लाज तजी गृहकाज तजे मन मोहि रहीं[३] सिगरी ब्रजवामैं।
कालिंदी कूल कदंब के कुंज करै तमतोम तमासो[४] सो तामैं ।।१६।।

१ तजै—इ०। २ धामैं—नी० हि० का०। ३ लई—सा०। ४ करत मनोज तमासो—नी० हि०, करै तुम मूरतिमंत—का० इ०।

उपवन उदाहरण।

बाग चली बृषभान लली सुनि कुंजनि में पिकपुंज पुकारनि।
तैसिय नूतन नूत लतान[१] में गुंजत भौंर भरे मधु[२] भारनि।
मोहि लई कवि देव उतै[३] अति रूप रचे विकचे कचनारनि।
हेरत ही[४] हरिनी नयनी[५] को हरयो[६] हियरा हरि के हिय हारनि ।।१७।।

१ नूतन तान—नी० हि०। २ रस—नी० हि०। ३ कवि देय नते—भा०। ४ हौं—नी० हि०। ५ नयना—इ०। ६ निहरयो—सा०, कह्यो—हि०।

भूषण उदाहरण।

खोरि[१] मैं खेलन ल्याई[२] सखी सब बाल को भेष बनाइ नवीनो।
आरसी मैं निज रूप निहारि अनंग तरंगनि मैं मनु[३] भीनो।
जोति जवाहर हारन[४] की मिलि अंचल को झलक्यो[५] पट झीनो।
हेरि इतै[६] हरिनी नयनी[७] हरि हेरत हेरि हरै[८] हँसि दीन्हो ।।१८।।

१ पौरि—नी० हि०। २ आई—हि०। ३ मैं रस—नी० हि०। ४ हीरन—का० इ०। ५ छलक्यो—भा०। ६ उतै—नी० हि०। ७ नयना—भा० सा०। ८ हारे हरे—नी० हि०।

जल केलि उदाहरण।

सोहै सरोवर बीच वधू वर ब्याह को भेष बन्यो वर लीक सों।
लाज गड़े[१] गुरु लोगन की पट गाँठ दै ठाढ़े करै इक ठीक सों।
न्हात पंवारी सों[२] प्यारी के ओठ तें[३] छूट्यो मजीठ[४] निहारि नजीक[५] सों।
तीकी रँगी अँखियाँ अनुराग सों पी की वहै[६] पिकबैनी की पीक सों ।।१९।।

१ गई—का०। २ एमार से—का० इ०, पमारी सों—भा०। ३ रूठ तें—का० इ०। ४ तमोर—नी० हि०। ५ ननीक—नी० हि०। ६ मतो—का० इ०।

विधु उदाहरण।

दिन द्वैक तें सासुरे आई वधू मन मैं मनु लाज को बीज बयो।

कवि देव[१] सखी के सिखाये मरू कै नह्यो हिय नाह को[२] नेह नयो।
चित चाउ तें[३] चैत की चंद्रिका[४] ओर चितै पति को चित चोरि लयो।
दुलही के बिलोचन बानन[५] कौ ससि आजु को सान[६] समान भयो ॥२०॥

[१] कबहूँ—का० इ०। [२] भयो हित ताहू सो—नी० हि, रह्यो हिय नाह को—ज०। [३] चितवावत—भा०, चित पावत—नी० हि०। [४] चाँदनी—का० सा०। [५] बानक—नी० हि०। [६] सोन—नी० हि०।

वसन्त उदाहरण।

हेरत ही हरि लीनो हियो इन आल रसाल सिरीष[१] जम्हीरनि।
चंपक बेली गुलाब जुही पिचुमंद मधूक कदंब कुटीरनि।
खोलत[२] काम कथा[३] पिक बोलत डोलत चंदन मंद समीरनि।
केसर हारसिंगारनहू करना कचनार कनैर करीरनि ॥२१॥

[१] आली रसाल सिरीष—का०, आली सी दाष रसाल—नी० हि०, आली सी दाष सेरीष—सा०। [२] खोजत—नी०। [३] कला—नी हि० सा०। [४] चन्द्रन—हि०। [५] मोरंसिरी करना किरवार कुदी—इ०।

वन वेलि उदाहरण।

सुनि कै धुनि चातक मोरनि की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागन मैं सखि[१] रागत राग अचूकनि सों।
कवि देव घटा[२] उनई जु नई बन भूमि भई दल दूकनि[३] सों।
रँगराती रही हहराती[४] लता झुकि जाती समीर की झूकनि सों ॥२२॥

[१] बन बागन मैं हरि—नी० हि०, हरि भागिन मैं सखि—इ०। [२] छटा—इ०। [३] टूकनि—का०, दूकन—नी० हि०। [४] हरा हरगाती—इ०।

जिन जिन[१] के संयोग तें रस जिय उपजत[२] होइ।
औरो विविध विभाव बहु ते बरनत कवि लोइ[३] ॥२३॥

[१] निज निज—भा०; [२] उपजत जिय—नी० हि०। [३] बरनै कवि सब कोइ—भा०, बहु बरनहु कवि लोइ—नी० हि०।

अनुभाव लक्षण।

जिनको निरषत[१] परसपर रस को अनुभव होइ ॥
तिनहीं को[२] अनुभाव पद[३] कहत सयाने लोइ ॥२४॥

[१] परसत जिनको—सा०, परप्रति जिनको—का०, जिनको परपति—इ०। [२] तिनहीं सों—नी० हि०, इनही को—भा०। [३] षट—का०, पटु—इ०।

आपुहि तें उपजाय रस पहिले होहिं विभाव।
रसहि जनावै[१] जो बहुरि तो तेऊ[२] अनुभाव ॥२५॥

[१] जगावै—भा०। [२] सो लहिये—सा०।

आनन नयन[१] प्रसन्नता चल चितौनि मुसक्यानि।
ये अभिनय[२] सिंगार के अंग भंग जुत[३] जानि ॥२६॥

[१] वचन—नी० हि० । [२] अभिनव—ज०, अभिन्न—नी० हि० । [३] जिय—का० इ० ।

आनन प्रसन्नता उदाहरण ।

ठाढ़ो[१] चितौत चकोर भयो अनतैं न इतौत[२] कहूँ चित दीजतु ।
सामुहे नन्द किसोर सखी कबके मुसक्यान[३] सुधारस भीजतु ।
भाग तें आइ उवो कवि देव[४] सु देखि भटू भरि लोचन लीजतु ।
तेरेई[५] चन्दमुखी मुखचन्द पै पूरन चन्द[६] निछावर कीजतु ।।२७।।

[१] ठाढ़े—नी० हि० । [२] इनतैं—नी० हि० । [३] कब के मुसक्याइ—नी० हि० । [४] उतावलि देव—नी० हि० का० । [५] तेरे री—भा० इ० । [६] पून्यो को चन्द—इ० ।

नयन प्रसन्नता उदाहरण ।

आई ही गाय दुहाइबे[१] को सु चुषाई[२] चली न बछाहू को[३] घेरति ।
नैंकु डराय नहीं कबकी वह[४] माइ रिसाइ अटा चढ़ि टेरति ।
यों कवि देव बड़े खन की[५] बड़रे दृग बीच बड़े[६] दृग फेरति ।
हौं मुख देखति हौं तबकी जबकी[७] यह मोहन को मुख हेरति ।।२८।।

[१] दुहावन—नी० हि० । [२] समुहाय—नी० हि०, सु चुपाय—का० । [३] न बछान को—भा०, नहिं लैयुवै—का० इ० । [४] यह—नी० हि० । [५] घर की—नी० हि० । [६] बउरे—नी०, बड़ड़े—का० । [७] हौं तबकी तबकी—नी० हि० ।

चल चितवन उदाहरण ।

हरि को इत हेरति हेरि[१] उतै उर आलिन के उर सों परसै[२]।
तन तोरि के जोरि मरोरि भुजा मुख मोरि के बैन[३] कहै सरसै ।
मिस सों मुसक्याइ चितै समुहै कवि देव दरादर[४] सों दरसै ।
दृगकोर कटाछ लगे सरसान[५] मनो सर सान धरे[६] बरसै ।।२९।।

[१] हरी इत हेरत हेरि—नी० हि० सा० । [२] हरि को इतै हेरत हेरत हेरि उतै उर आलिन को परसै—भा० । [३] बात—सा० । [४] दसादर—नी० हि० । [५] सर सेन—नी० हि० । [६] खर सान धरे—नी० हि० ।

मुसक्यान उदाहरण ।

जबतें जदुराइ दई दुहि गाइ गए[१] मुसक्याइ पठै[२] घर कै ।
तबतें तन व्याकुल बालवधू लखि लोग लुगाई सबै घर कै ।
कवि देव न पावत वेदन वैद रहे कुलदेवन के डर[३] कै ।
नहिं जानत कान्ह तिहारे कटाछ की कोरैं करेजन मैं[४] करकै ।।३०।।

[१]दये—नी० हि०, गई—का० । [२] पछे—भा० । [३] के उर—ज० । [४] कोर कभेजिन मैं—ज० ।

अंग भंग उदाहरण ।

चंपक पात से गात मरोरि[१] करोरिक भाइ सुभाइ सचैयत ।
मो मिस भेंटि भटू भरि अंक मयंक से आनन ओठ[२] अचैयत ।
देव कहै बिनु बात चले नवनील सरोज से नैन नचैयत ।

जानति हौं भुजमूल उचाइ दुकूल लचाइ लला ललचैयत[३] ॥३१॥

[१] दिखात—का०। [२] रूँठ—का० इ०, ओट—ज०। [३] तारस सिंधु गई बुधि बूड़ि न बोहित धीरज कैसे बचैयत—नी० हि०।

औरो विविध विभाव के[१] बहु अनुभावनि जानु।
जिनतें रस जान्यो परै ते कवि देव बखानु ॥३२॥

[१] विविध सिंगार के—का० इ०, रस श्रृंगार के—सा०।

आवत जात गली मैं लली हरि हेरि हरे हियराहि हरैगी[१]।
बैरी बसैं घर घाल घरी मैं घरै घर घेरि घरी उघरैगी[२]।
हौं कवि देव डरौं मन मैं मनमोहनी तू[३] मन मैं न डरैगी।
हाहा बलाइ ल्यों पीठ दै बैठु री काहू अनीठ की दीठ परैगी ॥३३॥

[१] हियराह हरैगी—नी० हि० का० भा०। [२] उचरैगी—नी०। [३] पै—सा०।

इति प्रथम विलास।

सात्विक अनुभाव।

स्थिति विभाव[१] अनुभाव तें न्यारे अति अभिराम।
सकल रसनि मैं संचरैं संचारी कहु[२] नाम ॥१॥

[१] स्थिति भावहु—नी० हि०। [२] कउ—भा०।

ते सारीरि अरु आंतरिक द्विविधि कहत भरतादि[१]।
स्तंभादिक सारीर अरु आंतर निरवेदादि ॥२॥

[१] ते सारीर अंतर द्विविधि कहत सबै भरतादि—सा०, ते सारीररु अंतरत विविध कहत भरतादि—का०, ते सारीर अंतर कहत द्वै विधि सब भरतादि—नी० हि०।

आठ भेद स्तंभादि के तिनको सात्विक नाम।
तेई पहिले[१] बरनिये सरस रीति अभिराम ॥३॥

[१] तेई प्रथम अब—नी० हि०।

स्तंभ स्वेद रोमांच अरु वेपथु अरु स्वर भंग।
विवरनता[१] आँसू प्रलय ये सात्विक रस अंग ॥४॥

[१] विवरन ते—हि०।

स्तंभ लक्षण।

रिस विस्मय भय राग सुख दुख विषाद तें होइ।
गति निरोध जो[१] गात मैं तंभ कहत कवि लोइ[२] ॥५॥

[१] जा—नी० हि०। [२] सोइ—सा० का०।

उदाहरण।

गोरी सी ग्वालिनि थोरी सी बैस जगी तन जीवन जोति नई है।
आवत ही अबहीं उततें कवि देव सु नैकु इतै चितई है।
योहि[१] कटाछनु मोहि चितौत चितौतहि मोहन मोहि लई है।
व्याध हनी हरिनी लौं बधू वह वा घर[३] लौं भहरात[४] गई है ॥६॥

[१] वेहि—ज० । [२] चितौनहि मैं हमैं—नी० हि० । [३] वाघ—ज० । [४] ते यहिरात—नी० हि०, लौं भिहरात—भा० ज० ।

स्वेद लक्षण ।

क्रोध हर्ष संताप श्रम घातादिक भय[१] लाज ।
इनतें सजल सरीर सो स्वेद कहत कविराज ।।७।।

[१] भ्रम—नी० हि० ।

उदाहरण ।

हेलन खेलन के मिस सुन्दरि केलि के मन्दिर[१] पेलि पठाई ।
बालवधू विधु सो मुख चूमि लला छल सों छतियाँ सों[२] लगाई ।
लाज तें लोल[३] कपोलनि मैं झलक्यो जल दीपति दीप की झाँई ।
आरसी में प्रतिबिंबित ह्वै[४] मनो देव दिवाकर देत[५] दिखाई ।।८।।

[१] भौन में—नी० हि० । [२] छतिया मों—हि० । [३] लाल के लोल—भा०, लाज तें गोल—नी० हि० । [४] यों—हाशिये पर दूसरे हस्तलेख में "ह्वै"—सा० । [५] देव दिवाकर देव—का० ।

रोमांच लक्षण ।

आलिंगन भय हर्ष अरु सीत[१] कोप तें जानु ।
उठत अंग में रोम जे[२] ते रोमांच बखानु ।।९।।

[१] आलिंगन अरु हर्ष भय भीति—नी० हि० । [२] अंग उठत रोमांच जेहि—नी० हि० ।

उदाहरण ।

कूल चली जल केलि कौ कामिनि[१] भावते के सँग[२] भाँति भली सी[३] ।
भीजे दुकूल मैं देह लसै कवि देव जू[४] चंपक चारु दली सी[५] ।
वारि के बुंद चुवैं[५] चिलकैं अलकैं[६] छवि की छलकैं[७] उछली सी[३] ।
अंचल झीन झकैं[८] झलकैं पुलकैं कुच कुंद[९] कदम्ब[१०] कली सी[३] ।।१०।।

[१] लेवे की सुन्दरि—नी० हि० । [२] सब—नी० हि० । [३] से—नी० हि० । [४] कवि देव सु—सा० । [५] बन्द चुभै—नी० हि० । [६] अलि के—ज० । [७] झलै—नी०, झलकै—हि० । [८] अंचल झीन मैं यों—नी० हि०, झुकै—का० । [९] कंद—भा० ज०, दोऊ—सा० । [१०]—नी० हि० ।

बेपथु लक्षण ।

प्रिय[१] आलिंगन हर्ष भय सीत कोप तें जानु ।
अंग कंप प्रस्फुरन बिनु वेपथु ताहि बखानु[२] ।।११।।

[१] हिय—नी० हि० । [२] अंग स्फुरन बिनु भये एसो वेपथु मानु—नी० हि० ।

उदाहरण ।

देव दुहून के देखत ही उपज्यो उर में अनुराग अनूनो ।
डोलत हैं अभिलाष भरे सुलग्यो बिरहज्वर अंग अभूनो ।
तौ लौं अचानक ह्वै गई भेंट इत उत ठौर निहारत[१] सूनो ।

प्रीति भरे अरु भीति भरे[२] बन कुंज मैं कंपत दम्पति दूनो ॥१२॥

[१] निहार कैं—सा०। [२] प्रेम भरे अरु प्रीति भरे—का०, प्रीति भरे अनुराग भरे—नी० हि०।

स्वरभंग-लक्षण :

जो रिस भय मद मुद भये[१] निकसै गदगद बानि[२]।
ताही सों[३] स्वरभंग कहि कवि कुल कहत बखानि[४] ॥१३॥

[१] रस भय उन्माद भय— नी० हि०। [२] बैन—नी० हि०। [३] को—भा० सा०। [४] बरनत कवि कुल ऐन—नी० हि०।

उदाहरण :

परदेस तें प्रीतम आये री ए इक[१] आइके आली सुनायी यही[२]।
कवि देव अचानक चौंकि परी सुनतै बतियाँ[३] छतियाँ उमही।
तबलौं पिय आँगन आइ गये धन धाइ हिये लपटाइ रही।
अँसुवा ठहरात[४] गरो घहरात मरू करि आधिक बात कही ॥१४॥

[१] है री इक—ज०, रि माइके—नी० हि०, इतो इक—का०। [२] वहीं—नी०, जहीं—हि०। [३] सुनितें बलि वा—भा, सुनिकै बतिया—नी० हि०। [४] ढहरात—नी०हि० का०।

वैवर्ण्य-लक्षण :

भय[१] विमोह अरु कोप तें लाज सीत अरु घाम।
मुख दुति औरै देखिये[२] सो विवरनता नाम ॥१५॥

[१] भव—का०। [२] देखि कै—नी० हि०।

उदाहरण :

सुंदरि सोवति[१] मंदिर मैं कहुँ सापने में निरख्यो[२] नँद नंद को।
त्यों पुलक्यो जल सो झलक्यो उर औचक ही उचक्यो कुच कंदु[३] सो।
तौ लगि चौंकि परी कहि देव[४] सु जानि परचो[५] अभिलाष अमंद सो।
आलिन को मुख देखत ही मुख भावती को भयो भोर को चंद सो ॥१६॥

[१] सोहति—सा०। [२] सापने कहुँ भेंट भई—नी० हि०, कितहूँ सपने निरख्यो—का०। [३] कंद—भा० हि०। [४] तौ लौं अचानक भेंट भई लखि—का०। [५] ज्यों जानि परी—नी० हि०।

अश्रु-लक्षण :

विपल[१] विलोकत धूम भय हर्ष अमर्ष[२] विषाद।
नैनन नीर निहारिये[३] अश्रु कहौ निरवाद ॥१७॥

[१] विकल—नी० हि०, विमल—का०, विपुल—ज०। [२] समर्ष—नी० हि०। [३] चढ़ाइये—नी०, नहाइये—हि०।

उदाहरण :

बोलि उठ्यो पपीहा कहुँ[१] पीउ सु देखिबे को सुनि के धुनि धाई।
मोर पुकारि उठे चहुँ ओर सु देव घटा घिरकी[२] चहुँधाई।

भलि गई तिय को तन की सुधि देखि उतै[३] बन भूमि सुहाई।
साँसनि सों भरि आयो गरो अरु आँसुन सों अँखियाँ भरि आई ॥१८॥

[१] कहि—नी०हि० । [२] घिरकै—नी० हि० का० । [३] देखत ही—का०, देखि तहाँ—ज०।

प्रलय-लक्षण :

प्रिय दर्शन सुमिरन[१] श्रवन होत अचल गति गात ।
सकल चेष्टा[२] रुकि रहै प्रलय कहैं कवि तात[३] ॥१९॥

[१] संभ्रम—नी० हि० । [२] सुद्धि—नी० हि० सा०, सु चेष्टा—का० । [३] बात—सा० का० ।

उदाहरण :

गोरी गुमान भरी गजगामिनि कालिह धौं को[१] वह कामिनि तेरे।
आई हुती[२] सु चितै[३] मुसक्याइ कै मोहि लई मन मोहन मेरे।
हाथ न पाँइ हलै न चलै अंग नीरजनैन फिरै नहिं फेरे।
देव सु ठौर ही ठाढ़ी चितौति लिखी मनु चित्र,विचित्र चितेरे ॥२०॥

[१] काहि किधौं—नी० हि०, काहू किधौं—का० । [२] जुती—भा० । [३] सौ चितै—नी० ।

संचारी भाव-लक्षण :

सात्विक होत सरीर तें ताही ते[१] सारीर ।
अंतर उपजै आंतरिक[२] ते तैंतिस कहि धीर ॥२१॥

[१] जाही तें—नी० हि०, जाहि कहत—सा० । [२] अन्तरहि—नी० हि०, आंतर—का० ।

संचारी नाम :

प्रथम होइ निर्वेद ग्लानि संका सूया कहु[१]।
मद[२] अरु श्रम आलस्य दीनता चिंता बरनहु[३]।
मोह सुमृति[४] धृति लाज चपलता हर्ष बखानहु।
जड़ता दुख आवेग हर्ष उत्कंठा जानहु।
अरु नींद अपस्मृति सुपति बोध क्रोध अवहित्थ मति[५]।
उग्रत्व व्याधि उन्माद अरु मरन त्रास अरु तर्कतति ॥२२॥

[१] संका वितर्क कहि—नी० हि०, संका वितर्क कउ—भा० । [२] मृदु—ज० । [३] बरनउ—भा० । [४] सुमृर्त—भा० । [५] अपस्मृति स्वपन कहि क्रोध बोध पुनि मदन गति—नी०हि०।

निर्वेद-लक्षण :

चिंता अश्रु प्रकाश करि[१] अपनोई अपमान[२]।
उपजहि तत्व ज्ञान जँह[३] सो निर्वेद बखान[४] ॥२३॥

[१] उपजै तत्व ज्ञान कै—का०। [२] अति अनंग उर आन—नी० हि०। [३] चिंता अश्रु प्रकाश जहँ—का०, उपजहि सात्विक भाव जहँ—नी० हि०। [४] अपनोई अपमान—नी० हि० ।

उदाहरण

मोह मढ्यो चतुराइ चढ्यो चित गर्व बढ्यो करि[१] मान सों नातो।
भूलि पर्‌यो[२] तबतो मद मन्दिर सुन्दरता गुन जोवन[३] मातो।

सूझि परी कवि देव सबै जब जानि पर्‌यो सिगरो जग जातो।
नेसुक मो मैं जो होतो सयान तो होतो कहा करि सों हित हातो ॥२४॥

[१] मोह मढ्यो चित गर्व बढ्यो मनमोहन करि—का०। [२] गयो—ज०। [३] नव जोवन—का०।

ग्लानि-लक्षण :

भूष प्यास अरु सुरति श्रम[१] निरबल होत सरीर।
सिथिल होत अवयव[२] सबै ग्लानि कहत सो[४] धीर ॥२५॥

[१] सुरतादि श्रम—का०। [२] अंग जब—का०। [३] सु तब—नी० हि०। [४] सु—नी० हि०।

उदाहरण :

रंग भरे रति मानत दंपति बीति गई रतिया छिन ही छिन।
प्रीतम प्रात उठे अलसात[१] चितै चित चाहत धाइ गह्यो धन।
गोरी के गात सबै अँगरात जु[२] बात कही न परी सु रही मन।
भौंहैं नचाइ लचाइ के लोचन चाहि[३] रही ललचाइ लला तन[४] ॥२६॥

[१] अगिरात—नी० हि० का०। [२] अलसात—नी० हि०। [३] चाय—भा० सा० का०। [४] लला मन—भा० सा० का०।

शंका-लक्षण :

अपराधादि अनीति करि कंपै करै छिपाइ।
ताही को[१] शंका कहैं सबै कविन के राइ ॥२७॥

[१] ताही सों—हि०।

उदाहरण :

या डर ही[१] घर ही मैं रही[२] कवि देव दुर्‌यो नहिं दूतिन[३] को दुख।
काहू की बात कही न सुनी मन माँहि बिसारि दियो सिगरो सुख।
भीर मैं भूले भये सखि मैं जबतें जदुराइ की ओर[४] कियो रुख।
मोंहि भटू तबतें निसि द्यौस चितौतही जात[५] चवाइन को मुख ॥२८॥

[१] डर हौं—भा० सा०। [२] रहौं—भा० सा०। [३] दूतन—भा० सा० ज०। [४] बृजराज की राइ—नी० हि०। [५] चितौत ही नात—नी०।

असूया-लक्षण :

क्रोध कुबोध विरोध तें सहै न पर[१] अधिकार।
उपजै जहँ[२] जिय दुष्टता[३] सो असूया अवधार[४] ॥२९॥

[१] सहै न यह—भा० सा०, सहि न परै—ज०। [२] तहाँ—नी०। [३] दुःख बहु—का०। [४] निरधार—नी० हि० का०।

उदाहरण :

गोकुल गाँव की गोप बधू बनि कै निकसीं दुरि[१] दै दै बुलायो।
सोरहो साज सिंगार सबै बम देखन को बहु भेष बनायो।

राधिका के हिय हेरि हरा हरि के हिय को पिय को पहिरायो[२]।
केती तहाँ तिय ती तिनमौ तिन[३] मोतिन सों तिनको तन तायो ।।३०।।

[१] बनि कै दुरि कै सब—नी० हि०। [२] हरि कं पहिरायो—का०। [३] ते तिन मौतिन—का०, तीनिन मातिन—नी०, नीतिन मोतिन—हि०, ती तिन मैं तिन—सा०।

मद-लक्षण :

सो मद जहँ आसव पिये[१] हरष होय हिय बीच।
नींद हास रोदन करै उत्तम मध्यम नीच ।।३१।।

[१] आसक्त पिय—नी०, आसक्त पिये—हि०।

उदाहरण :

आसव[१] सेइ सिखाये सखीन के सुन्दरि मन्दिर मैं सुख सोवै।
सापने मैं बिछुरे[२] हरि हेरि हरेई हरे हरिनीदृग रोवै।
देव कहै उठि[३] कै बिरहानल आनन्द के अँसुवान समोवै।
आजुही[४] भाजि गई सब लाज हँसै अरु[५] मोहन को मुख जोवै ।।३२।।

[१] आसन—नी०। [२] सोवत मैं सपने—का०। [३] तहीं जगि—का०। [४] ०—नी० हि०। [५] अरु रूप कै—नी० हि०।

श्रम-लक्षण :

अति रति अति गति[१] तें जहाँ उपजै अति तन[२] खेद।
सो श्रम जामैं जानिये निस्सहता प्रस्वेद[३] ।।३३।।

[१] रत—सा०। [२] रति—नी० हि०। [३] निद्रा सहित प्रस्वेद—नी० हि०, विस्सह ताप प्रस्वेद—का०।

उदाहरण :

खरी दुपहरी बीच तरुन[१] तरु नगीच[२] सही परै[३] तरनि[४] के करनि[५] की जोति है।
तामैं तजि धाम[६] चली स्याम पै बिकल बाम काम सर दाम वपु रूपहि[७] बिलोति है[८]।
बड़े बड़े बारन तें हारनि के भारन तें थाकी सुकुमारि अंग स्वेद[९] रंग धोति है।
संग न सहेली सु अकेली केलि कुंजन मैं बैठति उठति ठाढ़ी होति चलि होति है ।।३४।।

[१] तरुनि—सा०। [२] तरुन गावै—नी० हि०। [३] सही न परति—का०, सहि यरे—सा०। [४] रवि—का०। [५] किरनि—नी० हि० का०। [६] धामै—नी० हि०। [७] रुचहि—सा०। [८] चितौति है—नी० हि०। [९] सेत—नी० हि०।

आलस्य-लक्षण :

बहु भूषादिक भार[१] तें कारज कर्यो[२] न जाइ।
सो आलस्य जहाँ[३] रहै तनहि अछमता[४] छाइ ।।३५।।

[१] भाव—भा० सा० ज०। [२] कह्यौ—भा०। [३] जामै—नी० हि०। [४] अछमद तन—नी०, आमद तन—हि०।

उदाहरण :

ऊधो आये ऊधो आये[१] हरि[२] को सँदेसो लाये सुनि गोपी गोप धाये धीर न धरत हैं।

बौरी लगि[३] दौरी उठी भौंरी[४] लौं भ्रमति मति गनति न[५] जऊ[६] गुरु लोग निदरत हैं[७]।
ह्वै गई विकल वाम बालम वियोग भरी जोग की सुनत बात गात त्यों जरत है।
भारे भये भूषन सम्हारे न परत अंग आगे को धरत पग पाछे को परत है ॥३६॥

[१] गोकुल तेरे—का०। [२] स्याम—नी० हि०। [३] बोरी लगि—भा०, बोरी लरि—ज०। [४] भोरी—भा०। [५] मानति न—सा०। [६] जाउ—नी० हि०, जनो—भा०, जनऊ—सा०। [७] लोगन डरति—नी० हि०, लोगन दुरत—भा०।

दीनता-लक्षण :

दुरगति बहु बिरहादि तें उपजै[१] दु:ख अनन्त।
दीन वचन मुख तें कढ़ै कहैं दीनता सन्त[२] ॥३७॥

[१] होत जो—नी० हि०। [२] संग—नी०।

उदाहरण :

रैन दिन नैन दोऊ मास ऋतु पावस के[१] बरसत बड़े बड़े बूंदनि की[२] झरिये।
मैन सर जोर मारे पवन[३] झकोरनि सों आई है उमगि छिति[४] छाती नीर भरिये।
टूटी नेह नाव छूटो स्याम सों सहाउ गुन[५] ताते कवि देव कहै कैसे धीर धरिये।
बिरह नदी अपार बूड़त है माँझ धार[६] ऊधो अब एक बार खेइ[७] पार करिये ॥३८॥

[१] पाख सब—का०। [२] सों—भा०। [३] मोर पौन की—नी० हि०। [४] छिनि—भा० सा०। [५] सनेह गुन—नी० हि०, सहाव गुनु—का०। [६] ही माँझ धार—नी० हि०। [७] फेरि—नी० हि०।

चिंता-लक्षण :

इष्ट वस्तु पाये बिना व्यग्र चित्त अति होइ[१]।
स्वाँस ताप वैवरन जहँ[२] चिंता कहिये[३] सोई ॥३९॥

[१] बहु व्याकुल चित होइ—नी० हि०, एक अग्र चितु होइ—का० सा०। [२] स्याम ताप ह्वै रैन दिन—नी० हि०। [३] बर्नहु—का०।

उदाहरण :

जानति नाहिं रहे[१] हरि कौन के ऐसी धौं कौन वधू मन भावै।
मोही सों रूठि के बैठि रहे किधौं कोऊ कहूँ कछु[२] सोध न पावै।
ऐसिये[३] भाँति भटू कबहूँ अब कोहू[४] मिलै कहुँ कोउ[५] मिलावै।
आँसुनि मोचति सोचति यों सिगरो दिन कामिनि काग उड़ावै ॥४०॥

[१] हरे—भा० सा०। [२] कोऊ कछू कहूँ—नी० हि०। [३] बैसिये—भा० सा०, कैसिये—का०। [४] केहु—हि०, क्योंहू—भा०। [५] कोइ—भा०।

मोह-लक्षण :

अदभुत दरसन वेग भय अति चिंता अति कोह।[१]
जहां[२] मूर्छा विस्मरन[३] स्तंभ ताहि कह मोह[४] ॥४१॥

[१] अदभुत रस आवेग भय चिंता सुमिरन कोह—नी० हि०। [२] होइ—का०। [३] मूर्छा विस्मरनता—नी० हि०। [४] लंमतादि कह मोह—भा०।

उदाहरण :

औरो कहा कोउ बालबधू है नयो तन जोवन तोहि जनायो।
तेरेई नैन बड़े ब्रज में जिनसों बस कीनो जसोमति जायो।
डोलत है मनो [१] मोल लियो कवि देव न बोलत बोल बुलायो।
मोहन को मन मानिक सो[२] गुन सों गुहि तैं उर सों उरझायो[३] ॥४२॥

[१] जनु—नी० हि०। [२] तो—नी० हि०। [३] मैं उरझायो—नी० हि०।

स्मृति-लक्षण :

संसकार[१] संपति विपति अधिक प्रीति अति त्रास।
प्रिय अप्रिय सुमिरन सुमृति इकचित मौन उसास [२] ॥४३॥

[१] संसै करि—नी० हि०। [२] कंप फेन मुख स्वाँस—का०, इकचित मानु नदास—सा०, प्राप्त समै सो देव कवि कहि तामै उदास—नी० हि०।

उदाहरण :

नीर भरे मृग कैसे बड़े दृग देखति नीचे निचाइ[१] निचोलनि[२]।
लै लै उसाँसैं लिखै धरिनी धरि ध्यान रहै करि दीठि अडोलनि[३]।
बैठि रहै कबहूँ चुप ह्वै[४] कवि देव कहै[५] कर चाँपि कपोलनि।
बालम के बिछुरे यह बाल सुनै नहिं बोलनि बोलति[६] बोलनि ॥४४॥

[१] नचाइ—नी० हि०। [२] निचोभनि—सा०। [३] तन कंप अतोलनि—का०। [४] कै—सा०। [५] रहे—नी० हि०। [६] कानन बोलनि—का०, डोलनि बोलै सु—नी० हि०।

धृति-लक्षण :

ज्ञान शक्ति उपजै जहाँ मिटै अधीरज दोष।
ताही सों धृति कहत हैं[१] जथा लाभ संतोष ॥४५॥

[१] जहँ—भा० सा०, कवि—का०।

उदाहरण :

रावरो रूप रह्यो भरि[१] नैननि बैननि के रस सों श्रुति सानौ।
गात[२] मैं देखत गात तिहारोई[३] बात[४] तिहारोई[३] बात बखानौ।
ऊधो हहा[५] हरि सों कहियो तुम हौ न इहाँ यह हौं[६] नहिं मानौं।
या तन तें बिछुरे तो कहा मन तैं[७] अनतै जु बसौ तब जानौं ॥४६॥

[१] रमि—नी० हि०। [२] गाढ़—का०। [३] तुम्हारे ये—भा०। [४] रीति—का०। [५] कहा—नी० हि०। [६] तौ—नी० हि०, ते—सा०। [७] मैं—नी०।

लाज-लक्षण :

दुराचार अरु प्रथम[१] रति उपजै जिय संकोच।
लाज कहैं तासों जहाँ[२] मुख गोपन गुरु सोच ॥४७॥

[१] प्रेन—नी० हि०। [२] सुकवि—नी० हि०।

उदाहरण :

आजु सखी सुख सोई सुतो सखी साँचेहु[१] सोच[२] सँकोच के हाते।

हातो भयो कहु कैसे संकोच बढ़ै निसि नाह सों नेह के नाते।
कैसी कही रति मानि रही रति मंदिर में मदिरा मद माते।
मारि हथेरी हरे हिय देव सु दाबि रही अंगुरी इक दांते ॥४८॥

[१] साँचे ह्वै—का०। [२] साँच—नीं० हि०।

चपलता-लक्षण :

रागरु क्रोध[१] विरोध तें चपल जु चेष्टा होय।
कारज की[२] उत्तालता कहत चपलता सोय ॥४९॥

[१] राग क्रोध सु—नी० हि० सा०। [२] की जु—नी० हि०।

उदाहरण :

खेलत में बृषभानु सुता[१] कहुँ धाइ[२] धँसी बन कुंजन में ह्वै।
डार सों हार तहाँ उरझ्यो सुरझाय रही कवि देव सखी द्वै।
तौ लगि आइ गयो[३] उत तें सु नगीच[४] मनो चित बीच परे च्वै[५]।
छोहर वा हरवा हरवाइ दै छोरि दियो छल सों छतियाँ छ्वै ॥५०॥

[१] इक गोप सुता—का०। [२] जाइ—भा० सा० का०। [३] आय परे—नी० हि०, आप गयो—भा० का०। [४] सु नजीक—हि०, सुनि जीक—नी०। [५] छ्वै—भा० सा०, म्वै—का०।

हर्ष-लक्षण :

प्रिय दर्शन श्रवनादि तें होय जु हिये प्रसाद[१]।
वेग स्वेद[२] आँसू प्रलय हर्ष लखौ[३] निरवाद ॥५१॥

[१] प्रमाद—नी०। [२] स्वाँस—नी० हि०। [३] सुकहु—का०।

उदाहरण :

बैठी ही सुन्दरि मन्दिर मैं पति को पथ पेखि पतिव्रत पोखे।
तौ लगि आए री आइ कह्यो दुरि द्वार तें[१] देवर दौरि[२] अनोखे।
आनँद मैं गुरु की गुरुताहू[३] गनी गुनगौरि[४] न काहु हू[५] ओखे।
नूपुर पाँइ उठे झननाइ[६] सु जाइ लगी धन धाइ[७] झरोखे ॥५२॥

[१] दूरि तें—ज०। [२] आइ—नी० हि०। [३] गुरताइ—ज० सा०। [४] गुनगांठि—का०। [५] काहू है—भा०, काहू के—भा०, काहुहि—ज०, कौनहू—नी० हि०। [६] झनकाइ—भा०। [७] अतुराइ—नी० हि०।

जड़ता-लक्षण :

हित अहितहि देखे जहाँ[१] अचल[२] चेष्टा होइ।
जानि बूझि कारज थके जड़ता बरनै सोइ ॥५३॥

[१] सुनै—का०। [२] अचलन—नी० हि०।

उदाहरण :

कालिंदी के तट काल्हि भटू कहूँ ह्वै गई दोउन भेंट भली सी।
ठौरही ठाढ़े चितौत इतौत न[१] नेकहु[२] एक टकी टहली[३] सी।

देव को[४] देखति देवता सी बृषभान लली न हली न चली सी ।
नंद को छोहरा की छबि सों छिनु एक रही छकि[५] छैल छली सी ॥५४॥

[१] इतै तन--नी० हि० । [२] नेक कही—नी०, नेक हिये—हि० । [३] ठगली—का० ।
[४]देव की—नी०, देव जू—का० । [५] छवि—का० ।

दुःख-लक्षण :

उत्तम मध्यम नीच क्रम लघु चिंता अप्रसाद ।
महा सोक ये घन गये[१] हित[२] संसो सु विषाद[३] ॥५५॥

[१] ये बनुग को--नी० हि० । [२] ह्वै—का० । [३] संतोष विषाद—नी० हि० ।

उदाहरण :

केलि करैं[१] जल मैं मिलि बाल गुपाल तहीं तट गैयनि घेरै ।
चोरि[२] सबै हरवा हरवाह दै दूरि तें दौरि बछान को फेरै ।
हार हरे हहरैं हिय मैं[३] तिय धीर धरैं न करैं इक टेरै ।
राधिका ठाढ़ी हरेई हरे हरिके मुख ओर हँसै अरु हेरै ॥५६॥

[१] करी—का० । [२] चेरी—का० । [३] हो हरे हिय मैं—नी० हि० ।

आवेग-लक्षण :

प्रिय अप्रिय[१] देखे सुने गात पात संवेग[२] ।
होइ अचानक भूरि भ्रम सो बरनहु[३] आवेग ॥५७॥

[१] अपराध—नी० हि० । [२] तैन तपै संवेग—नी० हि०, तैन तपै सवेग—सा०, गात पात अति वेग—का० । [३] कहिए—का० ।

उदाहरण :

देखन दौरीं सबै बृजबाल सु आये गुपाल सुने ब्रज भू पर ।
टूटत हार हिये न सम्हारतीं[१] छूटत बार न किंकिनि नूपुर ।
भार उरोज नितंबन को न धरै[२] कटि को लटिबो दृग दूपर[३] ।
देव ह्वदै[४] पथ आइ मनो चढ़ि धाईं मनोरथ के रथ ऊपर ॥५८॥

[१] सम्हारत--नी० हि० । [२] केन बरै—नी० हि०, कौन डरै—सा० । [३] लटिवा तन दूपुर—नी० हि० । [४] ह्वै दै—नी० हि०, हू दै--का० सा० ।

गर्व-लक्षण :

बहु बल धन कुल रूप तें सिर उन्नत अभिमान ।
गनै[१] न काहू आप सम ताही गर्व बखान ॥५९॥

[१] गुनै—का० ।

उदाहरण :

देव सुरासुर सिद्ध बधून के[१] एतो न गर्व जितो यहि ती को ।
आपने जोवन[२] के गुन के अभिमान सबै जग[३] जानति फीको ।
काम की ओर सिकोरति नाक न लागत नाक को नायक नीको ।
गोरी गुमानिनि ग्वाँरि गँवारि गिने नहिं रूप रतीको[४] रती को ॥६०॥

[१] को,—भा० सा०। [२] जीवन—नी० हि०। [३] ऊपर और सबै रँग—का०। [४] मयंक—का०।

उत्कंठा-लक्षण :

प्रिय सुमिरन तें गात मैं[१] गौरव आरसु होइ ।
देस न काल सह्यो[२] परै उत्कंठा कहु सोइ ॥६१॥

[१] गर्व ये—नी० हि०। [२] कह्यो—नी० हि०।

उदाहरण :

कैधौं हमारीये बार[१] बड़ो भयो कै रवि कौ रथ ठौर ठयो है।
भोर तें भानु की ओर चितौत घरी पल ते गनतैंही[२] गयो है।
आवत छोर नहीं छिन को दिन को न अबै[३] लगि जाम[४] गयो है।
पाइये कैसिक साँझ तुरंतहि देखु री द्यौस दुरंत भयो है॥६२॥

[१] वेर—नी० हि०। [२] हू गनतौ न—नी० हि०। [३] अभै—भा० सा० नी०। [४] जाय—भा०, घाम—ज०।

नींद-लक्षण :

चिंता आरस खेद तें बसे तुचा[१] चितु जाय[२] ।
सुपन दरस अवयव चलन[३] ते कहु[४] नींद सुभाय ॥६३॥

[१] वैस तुचा—सा०, बसे चाह—नी० हि०। [२] चाय—नी० हि०। [३] अध वचन—नी० हि०। [४] ये कहिये—नी० हि०, एकहु—सा० ज०।

उदाहरण :

सोवत तें सखि जान्यो नहीं वह सोवत तें घर आयो हमारे ।
पीत पटी कटि मैं लपटी[१] अरु साँवरो सुन्दर रूप सँवारे ।
देव अबै लगि आँखिन तैं वह बाँकी चितौनि[२] टरै नहिं टारे ।
सापने मैं चित[३] चोरि लियो वहि चोर री[४] मोर पखौवन वारे ॥६४॥

[१] लपटि पटि मैं—का०। [२] सरूप्—नी० हि०। [३] सौ सपने चित्त—का०। [४] उहि चोर री—सा०, चित्त चोर री—नी० हि०, वह चारु री—का०।

अपस्मृति-लक्षण :

अधिक दुःख अति भय असुचि[१] सूनै ठौर निवास।
सु अपस्मृति जहँ भू पतन[२] कंप फेन मुख साँस[३] ॥६५॥

[१] असुधि—नी० हि०। [२] सो अपस्मृति है जहाँ भू पतन—नी० हि०, सु अपस्मृति जहँ मूरतन—का०। [३] कंप स्वसन उसास—नी० हि०।

उदाहरण :

मोहन माइ चले मथुरा तबतें निसिवासर बीतत ठाढ़े।
बौरी भई ब्रज की बनिता बहु भाँतिन देव वियोग के बाढ़े[१]।
भूलि गई गुरु लोग[२] की लाज गए गृह काज ग्रसी[३] ग्रह गाढ़े[४]।
भीतिन सों अभिरे[५] भहराइ गिरैं फिरि धाइ[६] फिरैं मुख काढ़े ॥६६॥

[१] की बाढ़े—नी० हि० । [२] कुल लोक—का० । [३] धँसी—ज०, ग्रही—हि०, गली—भा० । [४] ठाढ़े—नी० हि० । [५] जु भिरै—ज० । [६] झुकि झुकि—का० ।

सुपति-लक्षण :

नींद बढ़ै तब तजि तचा चातुरी ती चितु जाइ ।[१]
अति उसास मुद्रित नयन सुपति[२] कहैं कविराइ ॥६७॥

[१] तचित तनु सुख में चित जो जाहि—नी० हि०, तवनहु चाब रीरि चितु जाइ—भा०, तजित चापु रीति ती चितु जाइ—सा० ज०, तजित चापु रित ताहि चितु जाइ—का० ।
[२] सुमृति—भा०, स्वपन—नी० हि० ज० ।

उदाहरण :

साँवरो सोतु सुन्यो सुख सों कहुँ कालिंदी कूल[१] कदंब के कोरै ।
गोपवधू जुरि[२] आई सबै ब्रजभूषन के सब भूषन चोरै ।
काहू लई कर की बँसरी[३] कवि देव कोऊ[४] कर कंकन मोरै ।
काहू हर्‌यो हिय को हरवा हरवाय कोऊ कटि को पट छोरै ॥६८॥

[१] तीर—सा० । [२] मिलि—का० । [३] बनसी—का० । [४] दोऊ—नी० ।

बोध-लक्षण :

नींद गये मींजै नयन[१] अंग भंग जमुहाइ[२] ।
एक बार इंद्रियं जगै तै कहु बोध[३] सुभाइ ॥६९॥

[१] गई भरि जन्म की—नी० हि०, गये मूँदे नयन—का० । [२] जिय आय—नी० हि० ।
[३] ते अविवोध—का०, ते कउ नींद—भा० ।

उदाहरण :

सापने[१] मैं गई देखन हौं सुनि[२] नाचत नंद जसोमति को नट ।
वा मुसक्याइ कै भाव बताइ कै मेरोई खैंचि खरो पकरो पट ।
तौ लगि गाइ रम्हाइ उठी कवि देव वधून मथ्यो दधि को घट[३] ।
जागि[४] परी तब कान्ह कहूँ न कदंब कौ कुंज न कालिंदी को तट ॥७०॥

[१] सोवत—का० । [२] कौ तहाँ—नी० हि० । [३] मट—नी० हि० । [४] चौंकि—भा० ज० ।

क्रोध-लक्षण :

अधिक्षेप[१] अपमान तें स्वेद कंप दृग राग ।
अहंकार जिय में बढ़ै क्रोध सुनहु बड़भाग ॥७१॥

[१] औधि क्षेप—नी० हि० ।

उदाहरण :

देव मनावत मोहन जू कब के मनुहारि करैं ललचौहैं ।
बातैं बनाइ सुनावैं[१] सखी सब ताती औ[२] सीरी रिसोहैं रसोहैं[३] ।
नाह सों नेह तऊ[४] तरुनी तजि राति बितौति चितौति न सौहैं[५] ।
मानति नाहिं तिरीछेहि तानति[६] बान सी आँखैं कमान सी भौहैं ॥७२॥

[१] सिखावै—का० सा०, सुनाइ—नी० हि० । [२] तातें औ—भा० । [३] रिसोही रसोहै—

हि०, रसोहै रिसोहै—भा०, रिसोही रसी है—नी०, रसौहे रिसौहे—सा०, बुझाय रसौहैं—का०। [४] तजै—का०। [५] मोहै—सा०। [६] तान औ—नी० हि०।

अवहित्थ-लक्षण :

लज्जा गौरव धृष्टता गोपै[१] आकृति कर्म।
और करै औरै कहै[२] सो अवहित्थ को धर्म[३] ॥७३॥

[१] लाज गौर अरु वंधुता गोप—नी० हि०। [२] करै और औरै कहै—का०, और कहै औरै करै—नी० हि० भा०। [३] अवहित्था धर्म—नी०।

उदाहरण :

देखन को बन को निकसीं बनिता बहु बानि[१] बनाइ कै बागे।
देव कहै दुरि[२] दौरि के मोहन[३] आइ गये उत तें अनुरागे।
बाल की छाती छुई छल सों घन[४] कुंजन में रस[५] पुंजन पागे।
पीछे निहारि निहारत नारिन हार हिये के सुधारन लागे ॥७४॥

[१] भाँति—सा०। [२] डरि—ज०। [३] कै सौहन—सा०। [४] छपि कै बन—का०। [५] बस—भा०।

मति-लक्षण :

शास्त्र चिंतना ते जहाँ होइ[१] जथारथ ज्ञान।
करै शिष्य उपदेश जहँ[२] मति कहि ताहि बखान ॥७५॥

[१] साँसति मन में होइ जहँ जहाँ—नी० हि०, शास्त्ररु चिंतन तें जहाँ होइ—का०। [२] को—का०।

उदाहरण :

स्याम के संग सदा बिलसी[१] सिसुता में सुता में[२] कछू नहिं जान्यो।
भूले गुपाल सों गर्व कियो गुन जोवन रूप वृथा अभिमान्यो[३]।
ज्यो न[४] निगोड़ो तबै समझ्यो कवि देव कहा अब जो[५] पछितान्यो।
धन्य जियैं जग में जन ते तिनको मनमोहन सों[६] मन मान्यो ॥७६॥

[१] सदा मिलकै बिलसीं—का०। [२] ०—का०। [३] अरिमानो—भा०। [४] जो न—नी० हि०। [५] फिरि जो—का०। [६] तें—भा०।

उपालंभ-लक्षण :

उपालंभ अनुनय विनय अरु उपदेश बखान।
इनको अंतरभाव कहि देव मध्य मति जान[१] ॥७७॥

[१] उपालंभ द्वै भाँति को बरनत है कविराइ। इनके अंतरभाव कहि मध्यम देव सु जाइ—हि०, नी० प्रति में दोहा त्रुटित है।

उपालंभ द्वै भाँति को बरनि कहें[१] कविराइ।
एक कहावै कोप तें दूजो प्रनय सुभाइ ॥७८॥

[१] बरनत है—नी० हि०, बरनि कही—का०।

कोप उपालंभउ-दाहरण :

बोलत हौ कत बैन बड़े अरु नैन बड़े बड़ ऐन बड़े हौ[१]।
जानति हौं छल[२] छैल बड़े जू बड़े खन के इहि गैल गड़े[३] हौ।
देव कहै हरि रूप बड़े ब्रजभूप बड़े हमपै[४] उमड़े हौ।
जाहु जू जैयै अनीठ बड़े अरु ईठ बड़े पर[५] ढीठ बड़े हौ ॥७९॥

[१] गड़ाइ कै गैल खड़े हौ—का०, बड़े बड़रान अड़े है—भा० हौ। [२] छवि—सा०ज०। [३] पैड़ परे—नी० हि०। [४] हम सों—नी० हि०। [५] अरु—नी० हि०।

प्रणय उपालंभ-उदाहरण :

लाल भले हौ कहा कहिये कहिये तौ कहा कहु काहू[१] कहैयै।
काहू कहूँ न कही न सुनी सु[२] हमैं कहिये कहि काहि सुनैयै।
नैन परै न परै कर मैं नहि[३] चैन परै जु पै बैन बरैयै[४]।
देव कहै नित को मिलि खेलि इतै[५] हित को चित को न चुरैयै ॥८०॥

[१] कहो को हौ—नी० हि०। [२] सुनी रु—नी० हि०। [३] सैन—नी० हि०। [४] जब नैन खरैया—नी० हि०। [५] खेलियतै—नी० हि०, खेले इतै—का०।

अनुनय-उदाहरण :

वे बड़भाग भरे[१] अनुराग इतै अति भाग सुहाग भरी हौ।
देखौ बिचारि समौ[२] सुख को तन जोवन जोतिन सों[३] उजरी हौ।
बालम सौ उठि बोलौ बलाइ ल्यों जो कहि[४] देव सयानी[५] खरी हौ।
हेरत बाट कपाट लगे हरि बाट परी[६] तुम खाट परी हौ ॥८१॥

[१] बड़े—भा०। [२] समै—नी० हि०। [३] जोत महा—का०। [४] जौ कवि—का०, यों कहि—भा०। [५] सयान—नी० हि०। [६] खरे—भा०, परो—नी० हि०।

उपदेश-उदाहरण :

कोपते[१] बीच परै[२] पिय सों उपजावत रंग मैं भंग सु[३] भारी।
क्रोध निधान[४] विरोध निधान सु मान[५] महा सुख मैं[६] दुखकारी।
ताते न[७] मान समान अकारज[८] जाको अयान[९] बड़ौ अधिकारी।
देव कहै कहिहौं[१०] हित की हरि जू सों[११] हितू न कहूँ हितकारी ॥८२॥

[१] कोपसें—भा०। [२] पर्‌यो—नी० हि०। [३] जु—का०। [४] विधान—भा० सा०। [५] समान—नी० हि०। [६] सुख तें—का०। [७] तोत न—का०। [८] अकारन—नी०। [९] अपानु—भा०, अवान—हि०, अजान—ज०। [१०] कहियो—नी० ज०। [११] जैसो—नी०।

उग्रता-लक्षण :

दोष न कीरत[१] चौरता दुर्जनता[२] अपराध।
निरदयता[३] सों उग्रता जहँ तरजन वध वाध[४] ॥८३॥

[१] कीरत न—नी० हि० भा० सा०। [२] सोई है—नी० हि०। [३] निरजनता—भा०,

निदरैता—नी० हि० । [४] तन जन वध वाध—भा० ज०, तरजना व्याधि—सा० ।

उदाहरण :

मोहन भाइ भये मथुरापति[१] देव महा पद सों मदमातो[२] ।
कोरे परे अब कूबरी के हरि[३] याते कियो हमसों हित हातो ।
गोकुल गाँव के गोप गरीब हैं बाँसु बराबर ही को इहाँ तो[४] ।
बैठि रहौ सपनेहू[५] सुन्यो कहुँ राजनि सों परजानि सों नातो ।।८४।।

[१] भये अब भूपति—नी० हि० । [२] मन मातो—का० सा० । [३] अब—भा० । [४] ही के इहाँ तो—सा०, ही को वहाँ तो—नी० हि० । [५] सपने न—नी० हि० ।

व्याधि-लक्षण :

धातु कोप प्रीतम विरह[१] अंतर उपजै आधि ।
जुर विकार बहु[२] अंग मैं ताही[३] बरनै व्याधि ।।८५।।

[१] प्रिय विरह तें—का०, कीतम विरह—नी० । [२] उर—का । [३] ताको—नी० हि०, ताहि सु—का० ।

उदाहरण :

ता दिन तें अति व्याकुल है तिय[१] जा दिन तें पिय पंथ सिधारे ।
भूष न प्यास बिना ब्रजभूषन भामिनि भूषन भेष बिसारे ।
पावत पीर नहीं कवि देव करोरिक मूरि सबै करि[२] हारे ।।
नारि निहारि निहारि[३] चले तजि बैद[४] बिचारि[५] बिचारि बिचारे ।।८६।।

[१] जिय—नी० हि० । [२] जबै करि—नी० हि०, सबै फरि—भा० । [३] ०—का० । [४] तजै उपचारि—का० । [५] बिचारे—नी० हि० ।

उन्माद-लक्षण :

पिय बियोग तें जहँ वृथा वचनालाप[१] विषाद ।
बिन बिचार आचार जहँ[२] सो कहिये उन्माद ।।८७।।

[१] वचनन लाय—भा० सा०, वचन विलाप—नी० हि० । [२] कारज जहाँ—का० ।

उदाहरण :

अरिकै वह[१] आज अकेली गयी[२] खरिकै हरि के गुन रूप लुही ।
उनहूँ[३] अपनो पहिराइ हरा मुसकाइ कै गाइ कै गाइ दुही ।
कवि देव कह्यो[४] किनि कोई[५] कछू तबतें[६] उनके अनुराग[७] छुही ।
सबही सों इहै[८] कहै बालबधू यह देखौ री माल गुपाल गुही ।।८८।।

[१] बहू—नी० । [२] चली—का० । [३] उनही—का० । [४] कहौ—नी० । [५] कोऊ—सा०, काऊ—ज० । [६] तबतौ—सा० । [७] जुअनांग—का० । [८] यही—भा० ।

मरण-लक्षण :

प्रकटहि लक्षन मरन के अरु विभाव अनुभाव ।
जो निदान करि बरनिये तो[१] सिंगार अभाव ।।८९।।

[१] सौ—सा० हि० ।

निर्वेदादिक भाव सब बरने सरस सुभाइ।
ता विधि मरनौ बरनिये जामैं रस न नसाइ[१]।।९०।।

[१] नहिं जाइ—नी०।

उदाहरण :

राधा के[१] बाढ़ी वियोग की बाधा सु देव अबोल अडोल डरी रही।
लोगन की बृषभानु के भौन मैं भोर तें भारीयै भीर भरी रही।
वाके निदान के प्रान रहे[२] कढ़ि औषधि मूरि करोरि करी रही।
चेति[३] मरू करिकै चितई जब चारि घरी लौं मरीयै[४] धरी रही।।९१।।

[१] राधिके—भा०। [२] गये—का० ज०। [३] चेती—ज०। [४] मरी सी—भा०।

त्रास-लक्षण .

घोर स्रवन दरसन[१] सुमृति तंभ[२] पुलक भय गात।
होइ छोभ जो चित्त मैं त्रास कहत कवि तात।।९२।।

[१] देर सब—नी० हि०। [२] थंभ—नी० हि०।

चित्त छोभ द्वै भाँति को एक त्रास अरु[१] भीति।
अकस्मात तें त्रास अरु विचार[२] भय रीति।।९३।।

[१] इक—का०। [२] बिन विचार—नी० हि०, बिचार तें—भा०, अरु अरु विचार—ज०।

त्रास-उदाहरण :

श्री बृषभान लली मिलि कै जमुनाजल केलि को हेलिन आनी।
रोमवली नवली कहि देव[१] सु सोने से गात अन्हात सुहानी।
कान्ह अचानक बोलि[२] उठे उर बाल के ब्याल बधू[३] लपटानी।
धाइ कै[४] धाइ गही ससवाइ[५] दुहूँ कर झारत अंग अयानी[६]।।९४।।

[१] कवि देव—का० सा०। [२] टेरि—सा० ज०। [३] बाल वधू—सा०। [४] कों—भा०।
[५] ससकाइ—का०, सिसिआइ—ज०। [६] अपानी—भा०।

भय-उदाहरण :

आजु गोपाल जू बाल बधू सँग नूतन नूतनि कुंज[१] बसे निसि।
जागर होत उजागर नैननि[२] पाग पै पीरी पराग रही[३] पिसि।
चोज के चंदन खोज खुले जहँ[४] ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि[५]।
बोलत बात[६] लजात से जात सु आये इतौत चितौत चहूँ दिसि।।९५।।

[१] नूतन नूतने कुंज—भा०। [२] मैननि—सा०। [३] परी—नी० हि०। [४] कहुँ—का०।
[५] मैं घिसि—भा०, मैं धँसि—का०, सों धिसि—सा०। [६] बाल—सा०।

तर्क-लक्षण :

विप्रतिपत्ति[१] विचार अरु संसय अध्यवसाइ।
वितरक चौविधि जानियें भूचलनादिय[२] भाइ।।९६।।

[१] विपति विचित्र—नी० हि०। [२] भूवल निंदक—नी० हि०।

विप्रतिपत्ति-उदाहरण :

यह तौ[१] कछु भामती[२] को सो[३] लसै मुख देखत ही दुख जात है ख्वै[४]।
सफरी मद मोचन लोचन ये परिहैं कहुँ मानों चितौत ही च्वै।
कवि देव कहै कहिये जुग जो जलजात रहे जलजात मैं ध्वै[५]।
न सुने न पै[६] काहू कहूँ कबहूँ कि मयंक के अंक मैं पंकज द्वै[७] ॥९७॥

[१] याहु तो—सा०। [२] राधिका—का०। [३] कैसी—नी० हि०, कैसो—सा०। [४] ह्वै—भा०। [५] ढ्वै—ज०, ख्वै—का०, छ्वै—सा०, ह्वै—नी० हि०। [६] तबौ—भा०, तपे—सा०। [७] वर वारिधि मैं विवि खंजन है पै मयंक के अंक मैं पंकज द्वै—नी० हि०।

विचार-उदाहरण :

काम कमान तैं बान उतारिहैं देव नहीं मधु माधव रैहै[१]।
कोकिलऊ[२] कल कोमल बोल बिसारि कै आपु अलोप कहैहै[३]।
मोहि महादुख दै सजनी रजनीकर औ रजनी घटि जैहै[४]।
प्रानपियारेऊ[५] ऐहैं घरे पै प्रान पयान कै फेरि न ऐहैं ॥९८॥

[१] व्याधव रैहै—नी० हि। [२] कोकिल की—सा०। [३] अलीय कहैहै—नी० हि०। [४] सजनीकर औ रजनी घरि जैहै—सा०, रजनीकर बैर बढ़े जरि जैहै—नी० हि०। [५] प्रान पियारे तु—भा०, प्रान पियारे जु—नी० सा०, प्रान पियारे को—हि०।

संशय-उदाहरण :

यह कैधौं कलाधर ही की कला अबला किधौं काम की कैधौं सची।
किधौं कौन के भौन की दीपसिखा सखी[१] कौन के भाग के भौंनि[२] खँची।
तिहुँ लोक की सुंदरताई की एक अनूपम रूप की[३] रासि मची[४]।
नर किन्नर सिद्ध सुरासुरहून की वंचि[५] बधूनि बिरंचि रची ॥९९॥

[१] विधि—नी० हि०, किधौं—का०। [२] ह्वै भाल—भा०, की भौन—नी० हि०। [३] अनूप सरूप की—सा०। [४] रची—नी० हि०। [५] वीचि—ज०।

वितर्क-उदाहरण :

कहु[१] कौन की चंपक चारु लता यह देखि सबै जन भूलि रहे।
कवि देव ए तामैं[२] कहा बिलसैं विवि श्रीफल से[३] धरि धूलि रहे।
तिहि ऊपर को यह सोम उवो[४] तम तोम चहूँ दिसि झूलि रहे।
चितये चित चोरत कोए[५] तहाँ नवनील सरोज से फूलि रहे ॥१००॥

[१] कहि—नी० हि०। [२] तीमैं—भा० सा०। [३] सोहे न से—नी०। [४] उदो—नी०, उद्यो—ज०, नवो—भा०। [५] चित मैं चित चोरत कोए—भा०, चित चोर क्यों धारहि धीर—नी० हि०

भरतादिक सतकवि कहैं बिभचारी[१] तैंतीस।
बरनत छल चौंतीसयों एक[२] कविन के ईस ॥१०१॥

[१] संचारी—का०। [२] चौतीसयें ए—का०, वरनत पुनि चौंतीस ए सकल—नी० हि०।

छल-लक्षण :

अपमानादिक करन को कीजै क्रिया छिपाव।
वक्रउक्ति अंतर कपट सो बरनै छल भाव ॥१०२॥

[१] कृपा—नी० हि० का०। [२] कछू—नी० हि०। [३] बरनहु—ज० सा०, वरणन—नी०, बरनत—हि०।

उदाहरण :

स्याम सयाने कहावत हैं कहौ आजु को[१] काहि सयानु है दीन्हो।
देव कहैं दुरि दौरि[२] कुटीर में आपनो बैर वधू उहि[३] लीन्हो।
चूमि गई मुख औचकही पटु लै गई[४] पै इन वाहि न चीन्हो।
छैल भले छल[५] ही मैं छले दिन ही मैं छबीली भलो छल कीन्हो ॥१०३॥

[१] कहौं काहे धौ—का०। २ टेर—भा० सा०, ०—नी०, टेरि—हि०। [३] तेहि—नी० हि०। [४] द्रग—सा०। [५] छिन—भा० सा० का०।

संका सूया भय[१] ग्लानि धृति सुमृति नींद मति।
चिंता विस्मय व्याधि हर्ष उत्सुकता[२] जड़गति ॥
मद विषाद उन्माद लाज अवहित्थहि जानहु।
सहित चपलता ए विशेष सिंगार बखानहु ॥
अरु समान मत[३] संभोग मैं सकल भाव बरनन करौ।
आलस्य उग्रता भाव द्वै[४] सहित जुगुप्सा परिहरौ ॥१०४॥

[१] गर्व—ज०। [२] उत्कंठा—का०। [३] मति अरु समान—ज०॥ [४] ए—का०।

आलस ग्लानि निर्वेद[१] श्रम उत्कंठा जड़ योग।
संकापसुमृति अवबोधोन्माद बियोग[२] ॥१०५॥

[१] अलस ज्ञान निर्वेद—नी० हि०, अल ग्लानि निर्वेद—ज०। [२] संका सुमृति सु स्वास औ यो उन्माद विशोग—नी० हि०, संका सुमरति सुस्वास औ बोधोन्माद विशोग—सा०।

इति द्वितीय विलास।

जो [१]विभाव अनुभाव अरु व्यभिचारिन[२] करि[३] होइ।
थिति की पूरन वासना[४] सुकवि कहत रस[५] सोइ ॥१॥

[१] जे—नी०हि०। [२] संचारिनि—का०। [३] के—नी०हि०। [४] थिति के पूरन तें सबै—नी०हि०। [५] है—नी०हि०।

जोहि प्रथम[१] अनुराग मैं नहिं पूरब[२] अनुराग।
तो कहिये दंपतीन के जन्मान्तर के भाव ॥२॥

[१] जोर प्रथम—ज०, जे प्रथमे—नी०हि०। [२] पूरन—ज०।

ताहि विभावादिकन तें[१] थिति संपूरन जानि।
लौकिक और अलौकिकहि द्वै विधि कहत बखानि[२] ॥३॥

[१] के—ज० हि० । [२] लौकिक ही द्वै विधि कहत कवि भरतादि बखानि—का० ।

नयनादिक इंद्रियनि[१] के जो गहि लौकिक जान[२] ।
आतम[३] मन संजोग ते होय अलौकिक ज्ञान[४] ॥४॥

[१] पहिचान—नी०हि० । [२] मानु—नी०हि० । [३] उत्तम—नी०हि०, आत्मा—ज० । [४] आन—ज०, जानु—नी०हि० ।

कहत अलौकिक तीन विधि प्रथम स्वापनिक मान[१] ।
मनोरथ कवि देव[२] अरु[३] उपनायक[४] बखान ॥५॥

[१]स्वप्न को नाम—नी०हि०, स्वापनिक जानु—का० । [२] कहि देव—का० । [३] कहि—नी०हि० । [४] उपनायकहि—ज० ।

स्थापनिक-उदाहरण ।

सोइ गई अभिलाख भरी तिय सापने में[१] निरखे नँदनंदन ।
देव कछू[२] हँसि बात कही पुलके सु हिये झलके जल के कन ।
जागि परी नव ऊढ़[३] बधू ढिग ढूँढ़ति गूढ़ सनेह सनी धन ।
सोच सँकोच अगोचर तीय[४] त्रसै बिलसै[५] बिहँसै मन ही मन ॥६॥

[१] अभिलाखन सौं निसि यों सुपने—का०, सपने में तिय—नी०हि० । [२] कहै—नी०हि० [३] है नवोढ़—नी०हि०, तब जेठ—का० । [४] अगोचति यंत्र—नी०हि० । [५] हँसै हुलसै—नी०, हँसै जलसै—हि० ।

मनोरथ-उदाहरण ।

कालिंदी कूल भयो अनुकूल कहूँ घरबार घिरै[१] नहिं घेर्यो[२] ।
मंजुल वंजुल साल[३] रसाल तमालनि के वन लेत बसेर्यो ।
केलि करीर[४] कदंबन बीच जु[५] कानन कुंज कुटीन मैं टेर्यो ।
मोहनलाल की सूरति के सँग डोलत माइ[६] मनोरथ मेर्यो ॥७॥

[१] घरघेर घिरै—नी०हि०, घरबार घिरो—भा०, घरवा घिरै—का० । [२] नाहिन घेरो—का० । [३] बेत ससाल—नी०, बेत रसाल—हि० । [४] करै री—भा० । [५] सु—का० । [६] माय—ज० ।

उपनायक-उदाहरण ।

झूमक दैन[१] जसोमति के जुवतीन[२] कौ आजु समाज सिधायो ।
स्याम को सुंदर भेष बनाइ कै आइ वधू[४] इक बेनु बजायो ।
हास में रास रच्यो कवि देव बिलास कै[५] ही में हुलास बढ़ायो ।
नाचत वाहि[६] सखी सबही के हियें[७] सुख सिंधु को पार न पायो ॥८॥

[१] रैन—भा० । [२] जु अलीन—ज० । [३] रूप—नी० हि० । [४] सखी—नी० हि० । [५] विलास के—भा० । [६] ताहि—का० । [७] सब ही के उर में—का० ।

लौकिक रस ।

कहत अलौकिक[१] त्रिविधि विधि[२] यहि विधि बुध बलसार[३] ।
अब[४] बरनत कवि देव कहि लौकिक नव परकार ॥९॥

[१] सुलौकिक—भा०। [२] रस—ज०, बुध—का० सा०। [३] लौकिक कछु बुधि कुबुधि कहि कहियो बुधि बलसार—नी०हि०। [४] अरु—का०।

प्रथम होइ सिंगार दूसरो हास्य सु जानहु।
तीजो[१] करुना कहौ चतुर्थो रौद्र सु मानहु[२]।
वीर पाँचवों[३] जानि भयानक छठों बखानहु।
सातवों[४] कहि वीभत्स आठवों अदभुत आनहु[५]।
यहि भाँति आठ विधि कहत कवि नाटक मत भरतादि सब[६]।
अरु सांत[७] यूत[८] मत काव्य के लौकिक रस[९] के भेद नव॥१०॥

[१] तीजे—नी०। [२] बहुरि रौद्र रस जानि—हि०, वीर सु जानहु—नी०, रौद्र मानो—सा०, रौद्र जानौ—का०, रौद्रहि मानहु—ज०। [३] बहुरि रौद्र रस—नी०। [४] सप्तम—नी० हि०। [५] मानहु—नी० हि०। [६] नारद भरतादि कहु—नी०हि०। [७] सब अरु—नी०। [८] यतन—भा०, सुरस—नी० हि०, जुते—ज०। [९] अलौकिक रस—का०, लोक कर्म के—नी०हि०।

सकल सार श्रृंगार है सरस माधुरी धाम।
स्यामहि के चरनन बरन[१] दुःखहरन अभिराम॥११॥

[१] स्यामहि के चरनन बरन—का०, सो याही बरनन करौं—नी० हि०।

याही तें[१] सिंगार रस बरनि कह्यो कवि देव।
जाको हैं हरि देवता सकल देव अधिदेव॥१२॥

[१] ताही तें—सा० ज०।

श्रृंगाररस-लक्षण।

आपुस मैं तिय पुरुष के[१] पूरन रति जो होइ।
ताही सों श्रृंगार रस कहत सुकवि सब कोइ[२]॥१३॥

[१] मिलि—नी० हि०। [२] बरनि कहैं कवि लोइ—का०।

उदाहरण।

बारेक[१] द्वार तुम्हें लखि कै सखि लाल के लोइन लोल रहे[२] लुभि।
आजु[३] इतै पर भेंट भई यहि[४] रीझि रहे[५] कवि देव खरी[६] खुभि।
तैसिय तैं चितई हँसि वै सु[७] रहे छकि नैनन की[८] छति सों छुभि।
नेह भरी यह प्यारी तिहारी तिरीछी चितौनि गई चित में चुभि॥१४॥

[१] बारके—ज०। [२] लोल भये—नी० हि०। [३] औजु—नी०। [४] लखि—नी० हि०। [५] रही—सा०ज०। [६] सखी—नी०। [७] हँसि को सु—नी०हि०। [८] नैननमें—नी०हि०।

द्वै प्रकार सिंगार रस हैं[१] संयोग वियोग।
सो प्रच्छन्न प्रकास करि[२] कहत चारि विधि लोग॥१५॥

[१] है रस—नी० हि०। [२] कहि—नी० हि०।

देव कहैं[१] प्रच्छन्न सो जाको दुरो विलास।
जानहि जाको सकल जन बरनै ताहि प्रकास॥१६॥

[१] सु है—नी० हि० ।

प्रच्छन्नसंयोग-उदाहरण ।

बाजी हरै[१] रसना रसकेलि मैं कोमल कै बिछियानि[२] की बानी ।
प्यारी रही परजंक निसंक ह्वै[३] प्यारे के अंक महासुख सानी ।
यौं पग[४] चाँपि चढ़ी उतरी रँगरावटी आवत जात न जानी ।
छोलि छिपाइ[५] न खोलि हियो कवि देव[६] दुहूँ दुरि कै[७] रति मानी ।।१७।।

[१] बाजि रही—भा० सा० । [२] कंज बियानि—ज० । [३] निसंक कै—का० । [४] ज्वै पग—सा०, ज्यों पग—ज० । [५] छोड़ि छिपाइनु—सा० । [६] कहि देव—का० । [७] दुहूँ दरि कै—का० ।

प्रकाश संयोग-उदाहरण ।

सोंधे की सुबास आसपास भरि भौन रह्यौ भरत उसास बास बासन[१] बसात है ।
कंकन झनित[२] अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित[३] मिले मनित[४] सुहात है ।
कुंडल हलत[५] मुखमंडल झलमलात झूलत[६] दुकूल भुजमूल महरात है ।
करत विहार कवि देव बार बार बार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात है[७] ।।१८।।

[१] बसन—नी० । [२] झनक—नी० हि० ज० । [३] झनक—नी० हि० । [४] भनित—नी० हि० । [५] लहत—सा० । [६] झलक—नी० हि० ज० । [७] कवि देव दत्त दोऊ मिलि छूटि जात बार हार टूटि टूटि जात है—नी० हि० ।

हाव-लक्षण ।

नारिन के संयोग तें होत विविध विधि भाव ।
तिनमें भरतादिक सुकवि बरनत हैं दस हाव ।।१९।।

हाव-नाम ।

पहिले लीला हाव बहुरि सुविलास बरनिये ।
ताते कहि[१] विछित्ति बहुरि विभ्रम[२] कहि गनिये ।।
किलकिंचित तब कह्यौ[३] बहुरि[४] मुट्टाइत बरनहु[५] ।
ताते कहु कुटमित बहुरि बिब्बोकहु मानहु[६] ।।
कवि देव कहैं फिरि ललित कहु[७] ताते विहित कहे सरस ।
एहि भाँति विविध विधि विवुधवर[८] बरनत हैं ए[९] हाव दस ।।२०।।

[१] कऊ—भा०, कहु—सा० । [२] विश्रम—नी० । [३] को वरनि—नी० हि० । [४] तबै—भा० । [५] मानहु—भा० । [६] विहित ता कहि सुनि करनहु—नी० हि० । [७] सु कहत विलोक करि कहे—नी० हि० । [८] विधि बरनिये—ज०, विधि कविराज वर—नी० हि० । [९] कवि वर—भा० सा० ।

लीला-उदाहरण ।

कौतुक तें[१] पिय की करै भूषन भेष उन्हार ।
प्रीतम सों परिहास जहँ[२] लीला लेहु[३] विचार ।।२१।।

[१] तिय—का० । [२] यह—नी० हि० । [३] हाव—नी० हि० ।

उदाहरण ।

कान्हि भटू बनसीबट के तट खेल[१] बड़ो इक राधिका कीन्हो ।
साँझ निकुंजनि माँझ बजायो जु स्याम को बेनु[२] चुराइ कै लीन्हो ।
दूरि तें दौरत देव गये सुनिकै धुनि रोस[३] महा चित चीन्हो ।
संग की औरै उठीं हँसि कै तब हेरि हरे हरि जू[४] हँसि दीन्हो ॥२२॥

[१] ख्याल—नी० हि०, हास—का० । [२] बीनु—नी० हि० । [३] रास—का० । [४] जु हरै —का० ।

विलास-लक्षण ।

प्रिय दरसन सुमिरन श्रवन जहँ अभिलाख प्रकास ।
बदन गमन[१] नयनादि कौ जो विशेष सु विलास[२] ॥२३॥

[१] मगन—भा० । [२] जो तु सरस विलास—का० ।

उदाहरण ।

आजु अटा चढ़ि आई घटानु मैं बिज्जुछटा सी बधू बनि कोऊ ।
देव तिया[१] कवि देवन केतिये[२] एतो हुलास बिलास न ओऊ ।
पूरन पूरब[३] पुन्यन तें बड़भागि बिरंचि रच्यो जन[४] सोऊ ।
जाहि[५] लखै लघु अंजन दै दुखभंजन ये[६] दृग खंजन दोऊ ॥२४॥

[१] त्रिया—सा० । [२] देवजू केतिय—नी०, देवन केती पै—का० हि० । [३] पूरब पूरन —नी०, पूरब पूरब—हि० । [४] सखि—का० । [५] वाहि—सा०, ताहि—ज० । [६] दुख-भंजन दै—नी० हि० ।

विच्छित्त-लक्षण ।

सुहाग रिस[१] रस रूप[२] तें बढ़ै गर्व[३] अभिमान ।
थोरेई भूषन जहाँ सो विच्छित्त बखान ॥२५॥

[१] पिय सोहाग—नी० हि०, अति रिस—का० । [२] सो सरूप—नी० । [३] गर्भ बढ़ै—नी० हि० ।

उदाहरण ।

भाग सुहाग को गर्व बढ्यौ सु रहै अभिमान[१] भरी अलबेली ।
बेसरि बेंदी न[२] केसरि खौरि बनावै न[३] सेंदुर सीक[४] सहेली ।
भूलेहू भूषन भेषु न और करै कहि[५] देव विलास की बेली ।
मोहनलाल के मोहन को यह पैन्हति[६] मोहनलाल[७] अकेली ॥२६॥

[१] सु नहै अनुराग—का० । [२] बंदनि—भा० । [३] बनावत—नी० हि० । [४] रंक सुहेली —भा०, सीफ लहेली—नी०, सीफ सहेली—हि० । [५] कवि—नी० हि० का० । [६] पेंधति—भा० सा०, पहिरति—ज०, पहिरे यह—का० । [७] मोतिनमाल—नी० हि० ।

विभ्रम-लक्षण ।

उलटे जहँ[१] भूषन बसन[२] वेष हँसै जन[३] जाहि ।
भाग रूप अनुराग मद विभ्रम बरनहु[४] ताहि ॥२७॥

[१] उलट जाहि—नी० हि० । [२] वचन—भा० सा० । [३] जहँ—का० । [४] बरनै—भा० ।

उदाहरण ।

स्याम सों केलि करी निसि सोत तें[१] प्रात उठी थहराइ कै ।
आपने चीर के धोखे बधू पहिर्‌यो पटु पीत भटू भहराइ कै ।
बाँधि लई कटि सों बनमालन किंकिनी बाल लई ठहराइ कै ।
राधिका की रस रंग की दीपति संग की हेरि हँसी हहराइ कै ।।२८।।

[१] सोवत—नी० हि० ।

किलकिंचित-लक्षण ।

किलकिंचित मैं चपलता नहिं कारज[१] निरधार ।
श्रम मद[२] भय अभिलाष अरु[३] सुमृत गर्व[४] इकबार ।।२९।।

[१] काज—नी० हि० । [२] सम दम—भा०, श्रम मुद—का० । [३] रुख—भा० सा०ज० । [४] नखमित गई—नी० ।

उदाहरण ।

पाँइ परै पलिका पै[१] परी तिय संकति सौतिन होति न सौंही[२] ।
ऐंचि कसी[३] फुफुँदी की फुँदी भुज दाबि दुहूँ छतियाँ हुलसोंही ।
काँपि कपोलनि चाँपि हथेरिन्ह[५] झाँपि रही मुख[६] डीठि[७] लसौही ।
त्यों सकुचोही उचोही[८] रुचोही ससोही हँसोही रिसोही रसोही[९] ।।३०।।

[१] पलगा पै—सा० । [२] संकित कंपत सोतिन सौंही—का०, हीतिन सौंही—नी०हि० । [३] औचकही—नी० हि० । [४] अलसौंही—सा० । [५] रहै थिर—नी० हि० । [६] हाँथि हथेरिन्ह सो मुख—नी० हि० । [७] योंही—नी० हि० । [८] ०—नी० हि० । [९] सिसोही —नी० हि० ।

मोट्टाइत-लक्षण ।

सौति[१] त्रास कुल लाज ते कपट प्रेम मन होइ[२] ।
सुमुख होइ चित विमुख हू[३] कहौ मोटायितु सोइ ।।३१।।

[१] सौह—नी० हि० । [२] प्रमान जु होइ—ज०, प्रेम नहिं होइ—नी० हि० । [३] सनमुख ह्वै चितवै जु मुख—नी० हि०, सन्मुख ह्वै न विमुख ह्वै—का० ।

उदाहरण ।

राधिका रूठी कछू दिन तें कवि देव कछू[१] न सुनै कछू[२] बोलै ।
नैकु चितौति नहीं चितु दै रस हास[३] कियेहू हियेहू न[४] खोलै ।
आवति लोक की लाज के काज यही मिस सौतिन को सुख[५] छोलै ।
स्याम के अंग सों अंग लगावै न[६] रंग मैं[७] संग सखीन के[८] डोलै ।।३२।।

[१] वधू—भा० । [२] नहिं—नी०हि० । [३] हाल—भा० । [४] हियेहू खोलै—सा०, हियो नहिं—नी० हि० । [५] सौतिन को मुख—नी० हि०, सौतिन स्वारथ—का० । [६] अंगु छुआवै न—नी० हि० । [७] रंग सों—का० । [८] सखीन मैं—का० ।

कुट्टमित-लक्षण ।

कुच ग्रहन[१] रददान तें उत्कंठा अनुराग ।
दुखहू मैं सुख होइ जहँ कुटमित कहु[२] सभाग ।।३३।।

[१] कुच ग्राहन—भा०, कुच ग्रहनख—नी० हि० । [२] कुटमित कहैं—भा०, कहि कुट-मित—हि० ।

उदाहरण ।

नाह सों नाही ककै मुख सों[१] सुख सों रति[२] केलि करै रतिया मैं ।
देत रदच्छद सीसी करै कर ना पकरै[३] पै बकै[४] बतिया मैं ।
देव किते[५] रति कूजित कै तन कंप सजै न[६] भजै घतिया[७] मैं ।
जानु भजानहू को[८] भहरावति आवति छैल लगी छतिया मैं ।।३४।।

[१] कढ़ै मुख सों—नी० हि०, ककै सुख सों—भा० । [२] रस—का० । [३] करुना यकरै—सा० ज० हि० । [४] जु बकै—का० । [५] देत किते—नी० हि०; देव हिते—सा० । [६] तजै न—नी० हि० । [७] छतिया—भा० । [८] भुजानहू के—का० ।

बिब्बोक-लक्षण ।

प्रिय अपराध धनादि मद[१] उपजै गर्व विकार[२] ।
कुटिल डीठि अवयव चलन[३] सो बिब्बोक विचार ।।३५।।

[१] अपराधी होइ जब—नी० हि० । [२] किवार—भा० सा० । [३] अवये वचन—नी० हि०, अरु अधवचन—ज०, अवहित्थ जहं—का० ।

उदाहरण ।

स्यामले[१] सौति के सँग बसे निसि अँगन वाहि के रंग रचाइ कै ।
आए इतै परभात लजात से बोलत लोचन लोल लचाइ कै[२] ।
देव को देखि कै दोष भरे तिय पीठि दई उत दीठि बचाइ कै ।
ज्यों चितई अरसोहैं रिसोहैं सु सोहैं[३] सखीन के भौंहैं नचाइ कै ।।३६।।

[१] साँवरे—ज० । [२] चलाइ कै—सा० । [३] सो सौंहैं—नी०, से सोहैं—हि० ।

ललित-लक्षण ।

मन प्रसाद पति बस करन[१] चमत्कार अति[२] होइ ।
सकल अंग रचना ललित ललित बखानै सोइ ।।३७।।

[१] अति वास कर—नी० हि०, पिय बस करत—का० । [२] चित—भा० सा० ।

उदाहरण ।

पूरि रहे पहिले पुर[१] कानन पौन के गौन सुगन्ध[२] समाजनि ।
गान सों गुंज निकुंज उठे कवि देव सु भौरनि[४] की भई[५] भाजनि ।
दूरि तें देखी मसाल सी बाल मिली[६] मुख भूषन वेष बिराजनि[७] ।
जानि परी बृषभान सुता जब कान परी बिछियानि की बाजनि ।।३८।।

[१] पहिले सुर—नीं०, पहिले सुख—हि०, पहिले उर—ज० । २ सगंधि—सा० । [३] बढ़ै—नी० हि० । [४] सु भौर—सा० । [५] की भय—नी०, पय भय—हि०, भई भय—

सा० । [६] बली सु लला—ज० । [७] मुख की दुति चंद बिराजनि— का० ।

विहृत-लक्षण ।

व्याज लाज तें चेष्टा और[१] और व्यवहार[२] ।
पूरै पिय अभिलाष तिय ताही[३] विहृत विचार ।।३९।।

[१] ऊठ अरु—नी० हि० । [२] विचार—भा० सा० । [३] ते ता कह—नी० हि० ।

व्यांजविहृत-उदाहरण ।

बृषभान की जाई कन्हाई के कौतिक[१] आई सिंगार सबै सजि कै ।
रस हास हुलास बिलासनि सौं कवि देव जू[२] दोऊ रहे रँजि कै ।
हरि जू हँसि[३] रंग मैं[४] अंग[५] छुयो तिय संग सखीनहू को[६] तजि कै ।
उठि धाई भटू भय के[७] मिस[८] भावती[९] भीतरे भौन गई भजि कै[१०] ।।४०।।

[१] कौतुक—भा०, केतिक—नी० हि० । [२] कहि देव जू—नी० हि० । [३] हरि हू हरि —नी० हि०, हरि जू हरि—सा० । [४] रंग सों—नी० हि० । [५] रंग—का० । [६] सखीन को ना—नी० हि० । [७] सबके—नी० हि० । [८] बस—ज० । [९] धावती—नी० हि० । [१०] भजि गई भजि कै—नी० हि० ।

लाजविहृत-उदाहरण ।

भेंट भई हरि भावती सों[१] इक ऐसे मैं आली कह्यो बिहँसाइ कै ।
कीजै लला रस केलि[२] अकेली ए[३] केलि के भौन नबेली को पाइ कै ।
भौंहैं भ्रमाइ कछू इतराइ कछूक रिसाइ कछू मुसक्याइ कै ।
खैंचि खरी दई दौरि[४] सखी के उरोजनि बीच सरोज फिराइ कै ।।४१।।

[१] भावते सों—नी० हि० भा० । [२] रस रीति—का० । [३] अकेली कै—नी० हि० । [४] दोरि—ज०, हेरि—का० ।

वियोग-शृंगार ।

सुखद श्रवन दरसन परस जहाँ परस्पर नाहिं ।
सो वियोग शृंगार, जहँ मिलन आस मन माहिं[१] ।।४२।।

[१] श्रवन कदाचित कै दरस परै परस्पर नाहिं । मिलै न सुहृद सनेह सों जहँ सु वियोग बदाहिं—का० ।

वियोग-शृंगार-भेद ।

कहु पूरब अनुराग अरु मान प्रवास बखान ।
करुनातम[१] एहि भाँति करि वियोग चौबिधि जान[२] ।।४३।।

[१] करुणा भूम—नी० हि० । [२] चारि वियोग विधान—का, विप्रलंभ यों जान—नी० हि० ।

पूर्वानुराग-लक्षण ।

दंपतीन के[१] देखि सुनि[२] बढ़ै परस्पर प्रेम ।
सो पूरब अनुराग जहँ मन मिलिबे को नेम ।।४४।।

[१] दंपतीन मैं—का० । [२] देखे सुने—हि० ।

दर्शन-उदाहरण ।

देव जू दोऊ मिले पहिले दुति देखत ही तें[१] लगे दृग गाढ़े ।
आगे ही तें गुन रूप सुने तबहीं तें हिये अभिलाष ह्वै[२] बाढ़े ।
ता दिन तें इत राधे उतै हरि आधे भये जु बियोग के बाढ़े ।
आपने आपने[३] ऊँचे अटा चढ़ि द्वारन दोऊ[४] निहारत ठाढ़े ।।४५।।

[१] देखत ही जु—का० । [२] अभिलाषहि—भा०, अभिलाखनि—ज० । [३] ०—का० । [४] दोऊ कुमार—का० ।

श्रवण-उदाहरण ।

सुंदरता सुनि देव दुहूँ के रहे गुन सों गुहि कै मन मोती ।
लागे हैं देखिबे को दिन-रात गिने गुरुहू नहिं सौ किन गोती[१] ।
देह[२] दुहूँ की दहै बिनु देखे सु देखि दसा निसि सोवत कोती ।
होती कहा हरि राधिका सों कहूँ नैकौ दई पहिचान जो होती ।।४६।।

[१] न हँसै किन गोती—नी० हि०, न हँसौ किन गोती—सा० । [२] देव—भा० सा० ।

कृष्ण-पूर्वानुराग-उदाहरण ।

बाल लतान[१] मैं बाल को बोल सुन्यो कहुँ संग सखीने के टेरत[२] ।
काहू कही हरि राधा यही दुरि[३] देवजू देखि इतै मुख फेरत ।
है तबतें पल एक नहीं कल लाखनि लौं[४] अभिलाखनि घेरत ।
वाही[५] निकुंजहि नंद कुमार घरीक मैं बार हजारक हेरत ।।४७।।

[१] लोल लतान—का० । [२] हेरत—ज० । [३] डरि—ज०, कवि—नी० हि० । [४] लाखनि हू—का० । [५] पाही—भा० सा० का० ।

राधिका-पूर्वानुराग-उदाहरण ।

साँसनि ही सौं समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि ।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तन की तनुता करि ।
देव जियै[१] मिलिबेही की आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि ।
जा दिन तें मुख फेरि हरै[२] हँसि हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि ।।४८।।

[१] जीव रह्यो—नी० हि० का० । [२] हरे—सा० ज० हि० ।

दस दशा-नाम ।

प्रथम कहो अभिलाष बहुरि चिंता सुमिरन कहु ।
ताते हैं[१] गुन कथन बहुरि उद्वेगहि बरनहु ।
फिर[१] प्रलाप उन्माद ब्याधि अरु जड़ता जानौ ।
बहुरि मरन यहि भाँति दसावस्था[२] उर आनौ ।
ए होंइ[३] पूर्व अनुराग मैं दोउन के कवि देव कहि ।
अरु[४] मरन न बरनत एक[५] कवि जो बरनै तो रसहि गहि ।।४९।।

[१] पुनि—नी० हि० । [२] अवस्था दस—भा० सा० । [३] यहि—नी० हि० । [४] अरु एक—भा० । [५] ०—भा० ।

चिंता जड़ता व्याधि अरु सुमिरन मरनुन्माद[1]।
संचारिन मैं हैं कहे दंपति विरह विषाद ॥५०॥

[1] जड़नुन्माद—नी०, ऊ उन्माद—हि०।

अभिलाष-लक्षण।

प्रीतम जन के मिलन की इच्छा मन में[1] होय।
आकुलता संकल्प बहु[2] कहु अभिलाष जु सोय ॥५१॥

[1] मन की—ज०। [2] सकुलय बहु रि—ज०।

उदाहरण।

पहिले सतराइ रिसाइ सखी जदुराइ पै पाइ गहाइये तो।
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक बड़े खन लौं उर लाइये तो।
अपनो दुख औरनि[1] कौ उपहास सबै कवि देव बताइये तो।
घनस्यामहि नेकहु[2] एक घरी कौ इहाँ लगि जो करि पाइये तो ॥५२॥

[1] औरति—ज०। [2] तेकहि—ज०। यायतो—ज०।

गुणकथन-लक्षण।

पिय के सुंदरतादि गुन बरनै प्रेम[1] सुभाइ।
साभिलाष सो[2] गुन कथन[3] बरनत कोविदराइ[4] ॥५३॥

[1] सबै—नी० हि०। [2] साभिलाष जो—भा०। [3] गुन कथा—सा०। [4] कोविद गाइ—हि०।

उदाहरण।

दामिनि ह्वै रहिये[1] मन आवत मोहन को घन सो तन घेरे।
देव[2] को देखिये री दिन रातिहू कोई करौ किन कोटि कटेरे[3]।
स्याम की सुंदरताई कहौं कछु होंहि जो जीभ हजारक[4] मेरे।
केवल वा मुख की सुषमा पर सौक[5] ससी गहि वारि के फेरे ॥५४॥

[1] रहिजो—नी० हि०। [2] वाही—भा० सा०। [3] करेरे—भा०, कहेरे—नी०।
[4] हजारन—भा०। [5] कोटि—भा० सा०।

प्रलाप-लक्षण।

अति उत्कंठा मन भ्रमन पिय जनही को जाप[1]।
देव कहै कोविद सबै बरनत[2] ताहि प्रलाप ॥५५॥

[1] लाप—भा०। [2] वाचहु—का०।

उदाहरण।

पुकारि कही मैं दही कोउ लेहु यही सुनि आइ गयो उत धाई[1]।
चितै कवि देव चलेई चले[2] मन मोहन[3] मोहनी तान सी गाई।
न जानति और कछू तबतें मनमाहि वहीयै[4] रही छवि छाई।
गई तौ हती दधि बेचन बीच[5] गयो हियरा हरि हाथ बिकाई ॥५६॥

[1] इत धाई—नी० हि०, जदुराई—ज०। [2] चितैइ चलै—नी० हि०, चलौई चलौ—

का० सा० । [३] मोहनी—भा० । [४] वही पै—भा० सा० ज० हि० । [५] बीर—भा०, कौसु—का०, नीच—नी० हि० ।

उद्वेग-लक्षण ।

जहँ प्रियजन के अनमिले होइ अनादर प्रान ।
भली वस्तु नागा लगे सो उद्वेग बखान ।।५७।।

उदाहरण ।

बिरह के घाम ताई बाम तजि धाम धाई पाई प्रतिकूल कूल कालिंदी की लहरी ।
याते न अन्हाई[१] जरै जोवत[२] जुन्हाई ताते चितै[३] चहुँ ओर देव कहै यहै हहरी ।
बारिज बरत[४] बिन बारे वारि[५] बारु बीच बीच बीच बीचिका[६] मरीचिका सी छहरी ।
चंड[७] मारुतंड कै[८] अखंड विधु मंडल[९] है कातिक की राति किधौं जेठ की दुपहरी ।।५८।।

[१] या तेज अन्हाति—नी०, याते न अन्हाति—हि० । [२] जोवन—भा० ज० । [३] तन्नि-लकै—नी०, न चिलकै—हि० । [४] बरज—नी० हि०, बरन—ज० । [५] बीर—नी० हि० । [६] कामरी—ज०, कामकी—सा० । [७] चंद्र—ज० । [८] सों—का० । [९] ब्रज मंडल—भा० का० ।

मान-लक्षण ।

पति परपतिनी रति करत[१] पतिनी करति जु मान ।
गुरु मध्यम लघु भेद करि ताहू त्रिविधि[२] बखान ।।५९।।

[१] करन—ज० । [२] ताहि अवध्य—नी० हि० ।

मान-भेद ।

पति पर परतिय[१] चिन्ह लखि करति त्रिया गुरु मान ।
मध्यम ताको नाम सुनि ता दरसन[२] लघ जान ।।६०।।

[१] रति तिय—नी० हि०, पति तिय—ज० । [२] दरसन ता—नी० हि० ।

गुरु मान-उदाहरण ।

सौति की[१] माल गुपाल गरे लखि बाल किये मुख रोष[२] उज्यारो ।
भौंही भ्रमी करिकै[३] अधरा निकस्यो रँग नैननि के मग न्यारो ।
यों[४] कवि देव निहारि निहोरि दोऊ कर जोरि पर्‌यो पग प्यारो ।
पी को उठाइ के प्यारी कह्यो तुमसे कपटीन को काहि[५] पत्यारो ।।६१।।

[१] मोती की—नी० हि० । [२] रोजु—नी० हि० । [३] भ्रमै फरकै—नी० हि० । [४] ज्यों—का०, त्यों—भा० । [५] कौन—नी० हि० ।

मध्य मान-उदाहरण ।

बाल के संग गोपाल कहूँ निसि सोवत[१] सौति को नाम उठे पढ़ि ।
यों[२] सुनि के पटु तानि परी तिय[३] देव कहै मन[४] मान गयो बढ़ि ।
जागि परी[५] हरि जानी रिसानी सी सौंहैं प्रतीति करी चित मैं चढ़ि ।
आँसुन सों संताप[६] बुझ्यो अरु साँसन सों सब कोप गयो कढ़ि ।।६२।।

[१] मिस सोत मैं—भा० सा० । [२] प्यो—सा० । [३] कवि—का० । [४] इमि—भा० ।

[५] परे—सा० । [६] तन ताप—नी० हि० ।

लघु मान-उदाहरण ।

बैठे हुते रँगरावटी मैं जिनके अनुराग रँगी ब्रजभूम्यो ।
किंकिनी काहू कहूँ झनकाई सु झाँकन कान्ह[१] झरोखा ह्वै भूम्यो ।
देव परत्रिय देखत देखि कै[२] राधिका को मन मान सों घूम्यो ।
बातैं बनाइ मनाइ कै लाल हँसाइ के बाल हरे मुख चूम्यो ॥६३॥

[१] काहू—भा० सा० का० । [२] दोष कै—नी० । [३] कामिनी—नी० हि०, भावती—का० ।

मान-मोचन-उपाय ।

साम दाम अरु भेद करि[१] प्रनति उपेच्छा भाइ ।
अरु प्रसंग विभ्रंस[२] ये मोचन मान उपाइ ॥६४॥

[१] पुनि—का०, अरु—ज० । [२] विध्वंस—नी० हि० सा० ।

साम छमापन सों[१] कहै इष्ट दान[२] सो[१] दान ।
भेद सखी सम्मत[३] मिलै प्रनति नम्रता[४] जान ॥६५॥

[१] को—भा० सा० । [२] हर्ष दान—नी० हि०, दंष्ट्र दान—ज० । [३] समते—का०, समता—नी० हि०, सम्मति—ज० । [४] ऊनता—का० ।

वचन अन्यथा अर्थ जहँ सो उपेक्षा की रीति[१] ।
सो प्रसंग विभ्रंस[२] जहँ अकस्मात[३] सुख भीति ॥६६॥

[१] होइ उपेक्षा रीति—ज०, सुनुपेक्षा की रीति—भा० । [२] विध्वंस—नी० हि० का० सा० । [३] अकर्मादि—का० ।

उदाहरण ।

आपनोई अपमान कियो पहिराइबे को मनिमाल मँगाई ।
लै मिलई मिस सों कुसखी[१] करि[२] पाय परेहू न[३] प्रीति जगाई ।
केतिक कौतिक[४] बातैं कहीं[५] कवि देव तऊ तिय[६] तोरी सगाई[७] ।
आजु अचानक आइ लला डरवाइ कै[८] राधिका कंठ लगाई ॥६७॥

[१] सौ सौ सखी—नी० हि० । [२] फिरि—सा०, यह—ज० । [३] परेऊ न—भा०, दुहुन की—नी० हि० । [४] कौतुक—ज० हि०, कौतिग—सा० । [५] कहै—नी० हि० । [६] तिया तब—नी० हि० । [७] तारी सजाई—नी० हि० । [८] उरलाइ कै—ज० ।

या विधि छऊ[१] उपाय हैं न्यारे न्यारे जान ।
लाघव तें एकत्रही[२] सबको कियो बखान ॥६८॥

[१] घनै—ज०, छुवै—हि० । [२] लाघवता इकबार ही—नी० हि० ।

देसकाल सविशेष लखि देखि नृत्य सुनि गान ।
जात मनाये हू बिना माननिनीनु को मान ॥६९॥

[१] माननि तिय—नी० हि० ।

उदाहरण।

रूठि रही दिन द्वैक तें भामिनि मानी[१] नहीं हरि हारे मनाइ कै।
एक दिना कहुँ कारी[२] अँध्यारी घटा घिरि आई घनी घहराइ कै[३]।
ओर चहूँ पिक चातक मोर के सोर सुनी सु उठी अकुलाइ कै।
भेंटी भटू[४] उठि भावते को धन[५] धोखे ही धाम अँधेरे मैं धाइकै ॥७०॥

[१] मानै—नी० हि० का०। [२] राति—सा०। [३] गहराइ कै—सा०। [४] बहू—भा०। [५] इन—का०।

प्रवासवियोग-लक्षण।

प्रीतम काहू काज दै अवधि गयो[१] परदेस।
सो प्रवास जहँ दुहुन को[२] कष्ट कहैं[३] विवुधेस ॥७१॥

[१] कियो—नी० हि०। [२] दुहू तन—का०। [३] दुःख कहैं—नी० हि०।

उदाहरण।

लाल विदेस सु बालबधू बहु भाँति बरी[१] बिरहानलही मैं।
लाज भरी गृहकाज करै कहि[२] देव परै न कहूँ[३] कल ही मैं।
नाथ के हाथ के हेरि हरा हिय लागि गई हिलकी गलही मैं।
आँखिन के अँसुवा लखि लोग न लीलि लजीली लिये पलही मैं ॥७२॥

[१] बह जात जरी—नी० हि०। [२] कवि—नी० हि०। [३] कहैं न परै—नी० हि०। [४] बाल—का०।

देव कहै बिन कंत बसंत न जाहु कहूँ घर बैठि रहौंरी।
हूक हिये[१] पिक कूक सुने[२] विष पुंज निकुंजनि[३] गुंजति[४] भौंरी।
नूतन नूतन के बन बेषन देखन जाति तौ हौं[५] दुरि दौरी।
बीर बुरो मति मानौ बलाइ ल्यों होहुँगी बौर[७] निहारत बौरी ॥७३॥

[१] हों कहिये—ज०। [२] कूकन सां—सा०। [३] कुंजनि के जनि—नी० हि०। [४] बोलति—का०। [५] हो तौ—नी० हि०, हु हौं—सा०। [६] जनि—नी० हि०। [७] बौरी—नी० हि०, बौर—ज०।

जागी न जुन्हैया यह आगी[१] मदनज्वर की[२] लागी लोक तीनो हियो हेरे[३] हहरतु है।
पारि[४] परजारि जल जंतु जारि[५] बारि बारि बारिधि ह्वै[६] बाड़व पताल पसरतु है।
धरनि तें[७] धाइ झर फूटी[८] नभ जाइ[९] कहै देव जाहि जोवत[१०] जगत ज्यों जरतु है।
तारे चिनगारे ऐसे चमकत चारौ ओर बैरी विधु मंडल भभूको सो बरतु है ॥७४॥

[१] जुन्हाई लागी आगि—नी० हि०। [२] मनोभव की—नी० हि०, मदन की—का०। [३] हेरि हेरि—नी० हि०, हियो हेरे—सा०। [४] वारि—नी० हि०, पीर—सा०। [५] जरे जलजात जरि—नी० हि०, जारि जलजंत जारि—ज०। [६] वारिद के—नी० हि०, वारिधि ह्व—सा०। [७] धरती तें—भा० सा०। [८] झुर रवि फूटी—ज०, लाई झरि छूटी—नी० हि०। [१०] जाहि जोवन—ज०, याहि जियत—नी० हि०।

व्याकुल ही[१] बिरहज्वर[२] सों सुभ पावन जानि जनीनु[३] जगाई।
घोरि[४] घनो रंग केसरि कौ[५] गहि बोरी गुलाल के रंग रँगाई[६]।
त्यों तिय[७] साँस लई गहरी कहि री उनसों[८] अब कौन सगाई।
ऐसे भये निरमोही महा हरि हाय हमैं बिनु[९] होरी लगाई॥७५॥

[१] है—नी० हि०। [२] विरहानल—का०। [३] सखीन—नी० हि०। [४] घेरि—नी० हि०। [५] केसरि की—सा०। [६] गुलाल में बाल लगाई—नी० हि०। [७] सौतिय सांस—सा०, ०—नी० हि० का०। [८] उनसों हमसों—नी० हि० का०। [९] हरि—नी० हि०।

नायकवियोग-उदाहरण।

सुधाकर[१] से मुख बानि सुधा मुसक्यानि सुधा बरसै रदपाँति।
प्रवाल से पानि मृनाल भुजा कहि देव लता तन[२] कोमल कांति।
नदी त्रिवली कदली जुग[३] जानु सरोज से नैन रहे रस माति।
छिनो भर ऐसी तिया बिछुरे[४] छतिया सियराइ कहौ केहि भाँति॥७६॥

[१] सुधासर—का०। [२] लतान की—भा० सा०। [३] जनु—नी०। [४] छिनो भरि ऐसी छबीली छुटे—का०, जुपै बिछुरै छिन ऐसी तिया—नी० हि०।

करुणात्मक वियोग-लक्षण।

दंपतीन मैं एक को विषम मूरछा होइ।
जहँ अति व्याकुल दूसरौ[१] करुनातम कहि[२] सोइ॥७७॥

[१] दूजो अति व्याकुल जहँ—का०। [२] कहि करुणा रस—नी० हि०।

उदाहरण।

कंत की वियोगिनि बसंत की सुनत बात व्याकुल ह्वै जाति विरहज्वर[१] सों जरिकै।
देव जू दुरंत[२] दुखदाई देखो आवतु सो तामैं तुम्हैं[३] न्यारी भई[४] प्यारी जैहै[५] मरिकै।
ऐती सुनि प्यारे कह्यो हाय हाय ऐसी होय[६] अपराधी कौन कहौ सों[७] सुधरि कै।
हरि जू तों हेरे जौ लौं फेरि कहै दूती[८] कछु टेरि उठी तूती तौ लौं[९] तुही तुही करि कै॥७८॥

[१] विरहानल—नी० हि०। [२] दुरत—नी० हि०। [३] तिन्हैं—ज०। [४] न्यारी होत—नी० हि०। [५] जैसे—ज०। [६] ऐसी भई—ज० सा०, ऐसी ह्वै—नी० हि०। [७] कहो जू—नी० हि०। [८] कहौ दूरही तें कछू—नी० हि०। [९] ०—नी० हि०।

गोकुल गाँव तें गौन गुपाल को बाल कहूँ सुनि आई अली पर।
व्याकुल ह्वै[१] बिरहानल सों तचि[२] घूमि गिरी गुनगौरि गली पर।
हाइ पुकारत आइ[३] गए न सम्हारत वे थिरु नाहि[४] थली पर।
जानि न काहू की कानि करी हरि आनि[५] गिरे बृषभान लली पर॥७९॥

[१] देव कहै—का०। [२] तब—नी० हि० ज०, तजि—भा०, बरि—का०। [३] धाइ—भा०। [४] ताहि—सा० हि०। [५] हाय—नी० हि०।

कालिय काल महा विष ब्याल[१] जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिनु।
ऊरध के अध के उबरे नहिं जाकी बयारि बरै तरु ज्यों तिनु[२]।

ता फनि की फन फाँसिनु पै फँदि जाइ फँसे उकसे[३] न कहूँ[४] छिनु।
हा[५] ब्रजनाथ सनाथ करौ हम होती हैं नाथ अनाथ[६] तुम्हैं बिनु ।।८०।।

[१] महा विकराल—सा०। [२] तनु—का०। [३] फँस्यो उकस्यो—नी० हि०। [४] अजौं—नी० हि०। [५] हे—सा०। [६] अनाथ पै नाथ—भा०।

जहाँ आस जिय जियन[१] की सो करुनातम[२] जानु।
जामैं निहचै[३] मरनु को करुना ताहि बखानु[४] ।।८१।।

[१] जान—नी० हि०। [२] करुणारस—नी० हि०। [३] परचै—का०। [४] सो करुणा रस जानु—नी० हि०।

करुणातम[१] सिंगार जहँ रति अरु सोक निदान।
केवल[२] सोक जहाँ तहाँ भिन्न[३] करुण रस जानु ।।८२।।

[१] करुणात्मक—सा०। [२] रति बिनु—का०। [३] सुद्ध—का०।

या विधि[१] बरनत चारि विधि रस वियोग सिंगार।
याते कहे न और रस बाढ़त[२] बहु विस्तार ।।८३।।

[१] याते—का०। [२] बाढ़ै—भा०।

रस संयोग वियोग को यहि विधि करहुँ बखान।
या रस बिनु सब रस विरस कवि सब[१] नीरस जान ।।८४।।

[१] सो—ज०।

इति तृतीय विलास।

भाव सहित सिंगार को जो कहियत[१] आधार।
सो हैं[२] नायक नायिका ताको करत विचार[३] ।।१।।

[१] कहियतु है—सा०, ता कहियतु—का०। [२] सोई—सा०। [३] कहत उचार—नी० हि०।

नायक कहियतु चार विधि सुनत जात सब खेद[१]।
चौरासी अरु तीन सै कहत नायिका भेद ।।२।।

[१] कहत सुनत श्रुति खेद—का०।

नायक-भेद।

प्रथम होइ[१] अनुकूल अरु दक्षिन अरु सठ धृष्ट।
या विधि नायक चार विधि बरनत ज्ञान[२] गरिष्ट ।।३।।

[१] कहौं—सा०। [२] बुद्धि—का०

अनुकूल-लक्षण।

निज नारी सनमुख सदा विमुख बिरानी बाम।
नायक सो अनुकूल है ज्यों सीता को राम[१] ।।४।।

[१] श्री सीताराम—का०।

उदाहरण।

पीत पटी लौं कटी[१] लपटी रहै छैल छरी लौं खरी पकरी है।
कान्ह के कंठ की कंठी भई बनमाल ह्वै बाल हिये पसरी है।
कान लगी कवि देव ह्वै कुंडल[२] बाँसुरी लौं[३] अधरान धरी है।
मूड़ चढ़ी सिरमौर ह्वै री[४] गहनो सब ग्वालि गोपाल करी है ॥५॥

[१] ल कुटी—ज०, लै कुटी—भा०। [२] देव जू कुंडल ह्वै लगी कानिन—नी० हि०। [३] बांसुरी लै—नी०। [४] सिर मोहन ह्वै री—ज०।

दक्षिन-लक्षण।

सब नारिन अनुकूल सो[१] यही दक्ष की रीति।
न्यारे[२] ह्वै सब सों मिलै करै एक सी प्रीति[३] ॥६॥

[१] अनुकूल लौ—नी०। [२] न्यारी—भा०। [३] रमै दक्षिण की यह प्रीति—नी०।

उदाहरण।

सौगुने सील सुभाइ भरे जिनके जिय औगुन एक न पावै।
मेरियै बात सुनै समुझै मनभावन मोहि महा मन भावै।
देव कौ चित्त चितौनि न चंचल चंचलनैनी कितौ चितवावै[१]।
आँखिहू राखेहू ना खरकै[२] हरि क्यों तिन्हैं लोक अलोक[३] लगावै ॥७॥

[१] ये चंचलनैनी कितोक चितावै—सा०। [२] आँखिहू आँखि नहीं खरकै—नी०। [३] लीक अलीक—भा०।

शठ-लक्षण।

आगे आपुन[१] ह्वै रहै पीछे करै चवाव।
दोष भरो कपटी कुटिल सठ को यही[२] सुभाव ॥८॥

[१] अपनो—नी०। [२] याको यहै—नी०।

उदाहरण।

राति रहै रति मानि कहूँ अरु दोष[१] भरो नित ही इत आवै।
जो कहिये कि कहा है कहौं[२] तब झूठी हजारक बातैं बनावै।
और सी[३] और के आगे कहै कवि देव जू मोरी सी मोहि सुनावै।
या[४] सठ को हटको न भटू उठि भोर कौ[५] बार किवार खुलावै[६] ॥९॥

[१] अपराध—का०। [२] कहा बक हौं—का०। [३] और से—नी०। [४] वा—का०। [५] भोरहि—का०। [६] ऐसौ सुभाव परौ हरि कौ अब युक्ति अनैकन आइ बतावै—नी०।

धृष्ट-लक्षण।

दोष[१] भरो प्रत्यक्ष ही सदा कर्म अपकृष्ट।
सहै मार गारी रहै[२] निलज पाँइ परि धृष्ट ॥१०॥

[१] दो नष—नी, दोषन—हि०। [२] लहै—नी० हि०।

उदाहरण ।

द्वार तें दूरि करौं[१] बहु बारनि हारनि बाँधि मृनालनि मार्‌यो ।
छाँडत[२] ना अपनो[३] अपराध असाधु सुभाव[४] अगाध[५] निहार्‌यो ।
बैरिनि मेरी हँसै[६] सिगरी [जब पाँइ परै सु टरै नहिं टार्‌यो ।
ऐसे अनीठ सों[७] ईठ कहै यह ढीठ बसीठिनि हो की बिगार्‌यो ॥११॥

[१] दौरि कह्यौ—नी० हि० । [२] मानतु—का० । [३] ०—ज० । [४] असाधु कुभाव—ज० । [५] असाधु—नी० हि० । [६] मे हमै—नी०, मेरी हमें—हि० । [७] अनीठ को—नी० हि० ।

नर्म सचिव-लक्षण ।

नर्म सचिव[१] नायक सखा[२] तीन भाँति[३] को सोइ ।
पीठ मर्द अरु विट कहे और विदूषक होइ ॥१२॥

[१] मर्म सचिव—का० । [२] सदा—का० । [३] संघातन—का० ।

पीठ मर्द-लक्षण ।

दूर होइ जा बात मैं माननीन[१] को मान ।
सोई सोई जो कहै[२] पीठि मरद सु बखान ॥१३॥

[१] मानिनिहू—नी०, मानवतिन—हि० । [२] करै सदा—का० ।

उदाहरण ।

देखि जिन्हैं उमगै अनुराग सु फूलि रह्यो बन बाग चहूँ है[१] ।
मानु तजौ री पुकारि पिकी कहै[२] जोवन की करिबे न अहूँ है[३] ।
सोर करैं सब ओर[४] अलीगन कोप कठोर हिये अजहूँ है ।
देखौ जु बूझि[५] मनै अपनेहू को ऐसौ समौ सपनेहू कहूँ है ॥१४॥

[१] बहू है—सा० । [२] मान तजोरि पुकेरि पुकी कहै—ज० । [३] करिये नृपहू है—नी० हि०, करिबे न कहू है—सा० । [४] कुंज गलीनु मैं गुंजैं—का० । [५] जौ वाहि—नी० हि० । अपनेहू—नी० हि० ।

विट-लक्षण ।

वचन चातुरी को रचै जानै सकल कलानि ।
ताही सो विट सचिव कहि कविवर कहत बखानि ॥१५॥

उदाहरण ।

जाहि जपैं त्रिपुरारि मुरारि[१] सबै असुरारि सुरारि हने हैं ।
जाके प्रताप त्रिलोक तचै न बचैं[२] मुनि[३] सिद्ध समाधि सने हैं ।
ताहि डरै नहिं तू सजनी[४] उत[५] आतुर वे कवि देव घने हैं ।
मेरो मनायो तू मानि लै मानिनि मैन महीप के मान मने हैं ॥१६॥

[१] सुरारि—नी० हि० सा० । [२] नचै न—ज० । [३] सुर—नी० हि० । [४] सजनी न तुही—नी० हि० । [५] अरि—सा० ।

विदूषक-लक्षण।

अंग भेष भाषानुकरि[१] करै अन्यथा भाइ[२]।
ताहि विदूषक कहत जो देइ हास कै दाइ॥१७॥

[१] भूषननुकरि—सा०। [२] करि अन्यथा सुभाइ—का०।

उदाहरण।

ऊक जो ह्वै रहिहै[१] अबै[२] इंदु विलोकत[३] भूमि पै घूमि[४] गिरौगी।
तीर सों सीरो समीर लगे तें सरीर मैं पीर घनीये घिरौगी।
मेरो कह्यो किनि मानती मानिनि आपुही तें उतको उनरौगी[५]।
भौन के भीतर ही भ्रमि भौंरी लौं बौरी लौं नेक मैं दौरी फिरौगी॥१८॥

[१] ऊक सो है वै रही है—ज०, ऊग सो वो रहिहै—भा० सा०, इकसो विरहै रहिहै—का०, ऊक सो वै रहि है—नी० हि०। [२] अभई—भा०। [३] ऊं विलोकत—भा०, इंदु निहारत—नी० हि०। [४] पै भूमि के घूमि—का०। [५] उतरौगी—का०।

नायक-भेद।

नायक नर्म सचिव कहे यहि विधि सब कविराइ[१]।
अब बरनत हौं नायका लक्षण भेद सुभाइ[२]॥१९॥

[१] सबहि कराइ—ज०। [२] बनाय—नी०, बताय—हि०।

तीन भाँति कहि नाइका प्रथम स्वकीया होइ।
परकीया सामान्या बहुरि[१] कहत सुकवि सब कोइ[२]॥२०॥

[१] सामान्य पुनि—सा०। [२] लोइ—सा०।

स्वकीया-लक्षण।

जाके तन मन वचन करि निजि नायक सों प्रीति।
विमुख सदा पर पुरुष सों सो स्वकीया[१] की रीति॥२१॥

[१] यह सुकिया—का०।

उदाहरण।

कवि[१] देव हरे बिछियानु[२] बजाइ लजाइ रहे[३] पग डोलनि पै।
गुरु डीठ बचाइ लचाइ कै लोचन सोचनि[४] सौं मुख खोलनि पै[५]।
हँसि हौंस भरे अनुकूल बिलोकनि लाल के लोल कपोलनि पै।
बलि हौं बलिहारी हौं बार हजारक बाल की कोमल बोलनि पै॥२२॥

[१] कहि—का०। [२] छविपानि—नी०। [३] हरे—का० ज०। [४] लोचन सोच सकोचन—का०। [५] लोचन सो मन सोमन सो मुख खोलनि बोलनि पै—नी०। [६] हौं सिगरे—नी० हि०।

स्वकीया-भेद।

मुग्धा मध्या प्रगल्भा स्वकीया त्रिविधि बखान।
सिसुता में जोवन मिले[१] मुग्धा सो उर आन॥२३॥

[१] झलक—नी० हि०।

मुग्धा-भेद ।

वय:संधि[१] अरु नव वधू नवजोवना विचार ।
नवल अनंगा सलज रति[२] मुग्धा पाँच प्रकार ॥२४॥

[१] वय संधित—नी० हि । [२] तिय—नी० हि० ।

वय:संधि-उदाहरण ।

औरन के अंग भूषन देखि[१] सु हौंसनि भूषन भेष सकेलै[२] ।
मंद अमंद चलै चितवै कवि देव[३] हँसै बिलसै[४] बपु बेलै ।
फूल बिथोरि कै बारनु छोरि कै हारन तोरि उतै गहि[५] मेलै ।
भूरि[६] के भाव बिसूरि सखीन को[७] दूरि तें दौरि के[८] धूरि मैं खेलै ॥२५॥

[१] पेखि—नी० हि० । [२] निकेलै—का० । [३] चितवै चितवै सु—नी० हि । [४] बिहँसै—नी० हि० सा० । [५] उतै महि—नी० हि० । [६] मूरि—भा० । [७] सखीन सों—सा० । [८] दूरि तें दूरि—भा०, दूरि तें घेरि—नी० हि० ।

नववधू-उदाहरण ।

गोकुल गाँव की गोपसुता कवि देव न[१] केतिक कौतिक ठानै ।
खेलत मोही पै नंद कुमार री[२] बारहि बार बड़ाई बखानै ।
मोरीये छाती छुवै[३] छिपि कै मुखि चूमि कहै कोइ और न[४] जानै ।
काहे ते माई कछू दिन तें मन मोहन को मन मोही सों मानै ॥२६॥

[१] को तकै नहि० —नी० हि० । [२] नंद कुमार सु—का० । [३] छुई—नी० । [४] कोई दूजो न—नी० हि० का० ।

नवयौवना-उदाहरण ।

जानति ना बहू कौ बड़ भाग[१] बिरंचि रच्यो रसिकाई कसी[२] है ।
देव कहै नव वेष[३] बसंत लता फल[४] जाके नखक्षत छीहै[५] ।
मेटि वियोग[६] समेटि सबै सुख सों भटू[७] भेंटि भटू[८] जुग जीहै[९] ।
या मुख सुद्ध[१०] सुधाधर तें अधरा रस धार सुधारस[११] पीहै ॥२७॥

[१] जौन दिना वहि कौ वय भाग—नी० हि० । [२] रसिकाई बसी—भा० सा० का० । [३] बैस—सा० ज० । [४] फुल—सा० । [५] नवक्षत दीहै—भा० । [६] भेंटिवी अंग—नी० हि० । [७] भरि—भा० सा० । [८] भले—नी० हि० । [९] जुग लीहै—नी० हि०, जग जीहै—ज० । [१०] जो मुख—नी० हि० । [११] सुधार से—भा० ।

नवल-अनंगा उदाहरण ।

कालि परौं लगि[१] खेलतही कबहूँ न कहूँ यह[२] घूँघट काढ्यो ।
आजुही भौंह[३] मरोरि चली तनु तोरि जनावत जोवन[४] गाढ्यो ।
नैननि कोटि[५] कटाक्ष करै कवि देव सु बैननि को रस बाढ्यो ।
नैकु चितै चितवै चितु दै[६] तित मैन मनो दिन द्वैक तें ठाढ्यो[७] ॥२८॥

[१] पिय कालि परों लखि—नी० हि० । [२] इन—सा० । [३] भाइ—नी० । [४] लोचन—का० । [५] कोरि—नी०, कोर—हि० । [६] चितदै चितवै—सा० । [७] बाढ्यो—का०

चाढ़ो—नी० हि० ।

सलज्जरति-उदाहरण ।

कूजत हैं कल हंस कपोत सुकी सुक सोर[१] करैं सुनि ताहू[२] ।
नैकहू क्यों न लला सकुचौ[३] जिय जागत है[४] गुरु लोग लजाहू ।
हाथ गहौ न कहौ न[५] कछू कवि देव जू भौन में देखौ दियाहू ।
हाहा रहौ हरि हाथ[६] छुऔ जिनि[७] बोलत बात लजात न काहू ।।२९।।

[१] सुकी रसु सोर—ज० । [२] सुर ताहू—का० । [३] अली सकुचै—नी०हि० । [४] जात है जु—ज० । [५] गह्यो न कह्यो न—भा० । [६] मोहि—भा०, छाती–सा०, गात—का० । [७] छिनि—का० ।

मुग्धा सुरत-उदाहरण ।

खाट की पाटी रहै लपटाइ करौंट की ओट[१] कलेवर काँपै ।
चूमत चौंकति चंदमुखी कवि देव कपोल निचोलनि[२] चाँपै ।
बाल बधू बिछियानि के बाजतै लाज तें मूँदि रहै अँखिया पै ।
आँसू भरे सिसकै रिसकै मिसकै[३] करि भारि[४] भुकै मुख भाँपै ।।३०।।

[१] ओर—भा० । [२] सु लोल कपोलनि—भा० सा० । [३] खिसकै रिसकै—का० । [४] बर-धारि—नी० ।

मुग्धा सुरतांत-उदाहरण ।

मनभावन के ढिग तें उठि भामिनि[१] भोरही भूषन हाथ लिये ।
रँगभौन के भीतर भाजि परी भय भार भरी अति लाज हिये ।
सजनी जन तें[२] दुरि कै कवि देव[३] निहारति हार विहार किये ।
तिय बारहिबार सँवारहि के[४] निरवारति वार[५] केवार दिये ।।३१।।

[१] भावती—का० । [२] सजनी जब तें—ज० । [३] सब वै—नी० हि०, सब—का० । [४] निरवारहि के—नी०हि०, सँवारति ही—भा०, सँवारहि की—का० सा०, सँवारहि केश—ज० । [५] निरवारहि वार—नी० हि० का०, निरजुरति वार—सा० ।

मान-उदाहरण ।

सौति को नाम[१] लियो सपने कहुँ सौति को संग कियो पिय जाइकै ।
देव कहै उठि प्यारे की सेज तें न्यारी परी[२] पिय प्यारी[३] रिसाइ कै ।
नाह निसंक गही भरिअंक सु लै[४] परजंक धरी धन धाइ कै ।
आँसुन पोंछि उरोज अँगोछि लई मुख चूमि हिये सों लगाइ कै ।।३२।।

[१] सोतुष मानि—ज० । [२] भई—का० । [३] जिय जाय—नी०हि । [४] सुतो—सा० ।

मध्या-लक्षण ।

जाके होंहि[१] समान द्वै एक लज्जा अरु काम ।
ताको कोविद कवि सबै[२] बरनत मध्या नाम[३] ।।३३।।

[१] होत—नी० हि० । [२] ताही को कोविद सबै—नी० हि० । [३] वाम—नी० हि० ।

मध्या-भेद ।

रूढ़यौवना नाम[१] प्रादुर्भूत मनोभवा ।
प्रगल्भवचना वाम[२] कहि[३] विचित्रसुरता बहुरि ॥३४॥

[१] आरूढ़ यौवना वाम—नी० हि० । [२] नाम—नी० हि० । [३] अति—ज०, है—भा० सा०, ०—नी० हि० ।

मध्या चार प्रकार की यहि विधि बरनत लोइ ।
उदाहरन तिनको सुनौ जाको जैसो होइ ॥३५॥

रूढ़यौवना-उदाहरण ।

राधिका सी सुर सिद्ध सुता नर नाग सुता कवि देव[१] न भू पर ।
चंद करौ मुख देखि निछावर केहरि कोटि लटी कटिहू पर[२] ।
काम कमानहू को भृकुटीन पै मीन मृगीनहू को दृग दू पर ।
वारौ री[३] कंचन कंज कली पिकबैनी के ओछे उरोजन ऊपर ॥३६॥

[१] कहि देव— का० । [२] लची कटिहू पर—नी० हि०, लटो कटि ऊपर—भा० । [३] वारौ हौं—का । [४] मृगनैनी—का० ।

प्रादुर्भूत मनोभवा-उदाहरण ।

बाल वधू के विचार यही जु गोपाल की ओर बिलोकिबो[४] कीजै ।
त्यों चितवै[२] चित चातुरी सों रुचि की रचना वचनामृत पीजै ।
भूषन भेष बनावै सबै अरु केसर के रँग सों अँग मीजै[३] ।
आपने आगे औ पीछे तिरीछे ह्वै[४] देह को देखि सनेह सों भीजै ॥३७॥

[१] चितैबोई—भा० । [२] चितवै चित त्यों—नी० हि० । [३] लीजै—ज० । [४] तिरीछे कै—सा० ।

प्रगल्भवचना-उदाहरण ।

मेरेहू अंक जो आवै निसंक तौ हों उनके परजंकहि जैहौं ।
पान खवाइ उन्हें पहिले तब नाथ के हाथ के पानिनि खैहौं ।
ऐसी न होइ[१] जो देह की दीपति देव को दीप समीप दिखैहौं ।
मोहन को मुख चूमि भटू तब हौं अपनो मुख चूमन दैहौं ॥३८॥

[१] होउ—का०, हौ हु—सा० ।

विचित्रसुरता-उदाहरण ।

केलि करै रस पुंज[१] भरी नव कुंज मैं[२] प्यारे सों प्रीति की पैनी ।
झिल्लिनि सों झहनाइ कै[३] किंकिनि बोलै सुकी सुक लौं सुखदैनी ।
यों बिछियानि बजावति बाल मराल के बालनि ज्यों मृगनैनी[४] ।
कोमल कूजि[५] कपोत के पोत[६] लौं कूकि उठै पिक लौं पिकबैनी ॥३९॥

[१] रसवंत—नी० हि० । [२] बन कुंजन—भा०, बन कुंज मैं—सा० । [३] सों झनकाइ कै—का०, लौं झहराइ कै—नी० हि० सा० । [४] बाल सु बाल मरालनि कै मृगनैनी—का० । [५] कुंज—भा०, कूकि—नी० हि० । [६] किपोत—नी० हि० ।

मध्या सुरत-उदाहरण ।

जागतही सब जामिनि जाइ जगाइ महा मदनज्वर[१] पावक ।
अंजन छूटि लगे अधरान मैं लोइन लाल रँगे जनु जावक ।
कामिनि केलि के मंदिर मैं कहि देव करैं रति मानत रावक[२] ।
संगहि बोलि उठे तजि कावक लावक पोत[३] कपोत के सावक ।।४०।।

[१] मदनांकुर—नी० हि० । [२] मानस रावक—नी० हि०, मानहु रावक—ज० ।
[३] छावक छावक पोत—नी० हि० ।

मध्या सुरतांत-उदाहरण ।

रँगरावटी तें उतरी परभातही भावती[१] प्यारी के प्रेम पगी ।
अलसाति जम्हाति सु देव सुहाति रदच्छद मैं रदपाँति लगी[२] ।
सब सौतिन की[३] छतियाँ छिनही मैं सुहागिलु की[४] दुति देखि दगी[५] ।
उतराति सी वै[६] उत राति भई इतराति बधू इतराति जगी ।।४१।।

[१] भामिनि—का० । [२] अलखाति जम्हाति सुहाति रदच्छद गाल मैं बाल के है जु लगी —का० । [३] सौतिन को—नी० । [४] सुहागिन की—भा०, सुहागकला—नी० हि० ।
[५] देखि रँगी—ज० । [६] सी के—नी० । [७] इतराति भई—नी० हि० ।

प्रौढ़ा-लक्षण ।

मति गति रति पति सों रचै रतिपति सकल कलान ।
कोविद अति मोहित[१] महा प्रौढ़ा ताहि बखान ।।४२।।

[१] मोहन—ज० ।

प्रौढ़ा-भेद ।

लब्धापति रतिकोविदा क्रान्तनाइका[१] सोइ ।
सविभ्रमा[२] यहि भाँति करि प्रौढ़ा चौविधि होइ ।।४३।।

[१] आक्रतिगुप्ता—नी० हि० । [२] सभ्राता—नी० हि० ।

लब्धापति-उदाहरण ।

स्याम के संग सदा हम डोलैं जहाँ पिक बोलैं[१] अलीगन गुंजैं ।
छाहन माहँ उछाहनि सों छहरैं जहाँ पीरी[२] पराग की पुंजैं ।
बेलिन मैं रस केलिन कै[३] कवि देव करी[४] चित की गति लुंजैं ।
कालिंदी कूल महा अनुकूल तैं फूलति मंजुल बंजुल[५] कुंजैं ।।४४।।

[१] बोलो—सा० । [२] बीरी—भा० । [३] केलिन मैं रस केलि चुकै—सा०, बोलनि मैं रस केलिन कै—भा० । [४] कछू—नी० हि० । [५] मंजुल मंजुल—भा० ।

रतिकोविदा-उदाहरण ।

केलि मैं केतिक कौतिक कै रस हास हुलास बिलासनि सोहै[१] ।
कोमल नाद कथा रसवादनि काम कला करिकै मन मोहै ।
छेदि कटाछ की कोरनि सों गुन सों पति को मन मानिक पोहै ।
जानति तू रति की सिगरी गति तोसी बधू रतिकोविद को है ।।४५।।

[१] सौं अति सोहै—ज० ।

आक्रान्तनायिका-उदाहरण ।

हार बिहार मैं टूटि परे[१] अरु भूषन छूटि परे हैं समूलनि ।
जोरि सबै पहिरायो[२] सम्हारि के अंग सम्हारि[३] सुधारि दुकूलनि ।
सीतल सेज बिछाइ कै बालम बाल मृनालनि के दल मूलनि[४] ।
वैसिये बेनी[५] बनाइ लला गहि गूँध्यो गोपाल गुलाब के फूलनि ॥४६॥

[१] छूटि परै—भा०, टूटि गये—ज० । [२] पहिरावै—नी० हि० । [३] सँवारि—नी० हि० का० । [४] बिछाइ कै बाल मृनालनि के दल कोमल मूलनि—का० । [५] बेली—ज० । [६] गुह्यो—का०, गूधी— नी० हि० ।

सविभ्रमा-उदाहरण ।

हँसत हँसत आई भावते के मन भाई देव कवि[१] कवि छाई सोने[२] से सरीर सों ।
तैसी[३] चंद्रमुखी के वा चंद्रमुख चंद्रमा सों होड़ परै[४] चाँदनी औ चाँदनी[५] से चीर सों ।
सोधे की सुबास अंग बास औ उसास बास आसपास बासि रही सुखद समीर सों ।
कुंज तजि[६] गुंजत गंभीर गिरि[७] तीर तीर रह्यो रंग भौन भरि भौरनि की भीर सों ॥४७॥

[१] कहै—नी० हि० । [२] छाई वर सोने—भा० । [३] तैती—नी० । [४] ह्वै हौ परै—भा०, होय परै—हाशिये पर—सा०, होय परै—का० । [५] सूँ चादनी से—सा० । [६] कुंजत सी—भा० । [७] गीर—भा० ज०, वीर—नी० हि० ।

प्रौढ़ा सुरत-उदाहरण ।

साजि सिंगारनि सेज चढ़ी तबहीं तें सखी सब सुद्धि भुलानी ।
कंचुकी के बंद टूटत[१] जाने न नीवी की डोरि न छूटत[२] जानी ।
ऐसी विमोहित ह्वै गई हौं जु न[३] जानति राति कितै[४] रति मानी ।
साजी कबै रसना रस केलि मैं बाजी कबै बिछुवानि की बानी ॥४८॥

[१] छूटत—भा० । [२] डोरि न टूटत—भा०, गाँठिओ छूटत—नी० हि०, गाँठि न छूटत —का० । [३] जनु—भा० ज० का० । [४] राति कै मै—ज०, राति कबै—सा०, राति कै मैं—भा० ।

प्रौढ़ा सुरतान्त-उदाहरण ।

आगे धरि अधर पयोधर सधर जानि जोरावर जघन सघन लरे लचिकै ।
बार-बार देति बकसीस जैतवारनि को बारनि को बाँधै जे[१] पिछारे दुरे बचिकै[२] ।
उरुनि[३] दुकूल दै उरोजनि[४] को फूलमाल[५] ओठनि उठाए पान धाइ खाइ[६] पचि कै ।
देव कहै आजु मानो[७] जीत्यो है अनंग रिपु पी के संग संगर सुरति रंग रचिकै[८] ॥४९॥

[१] जौ—भा० । [२] से सु बचिकै—भा०, डरे बचिकै—ज०, जोर दुरे जात बचिकै—का० । [३] दसन—हाशिये पर—का० । [४] द्रूरैयन—का० । [५] फूलमनि—भा० । [६] खाइ खाइ—का० भा० । [७] इहि—सा० । [८] पी के संग प्यारी सुरति रंग रचिकै—का०, पी कें संग संग रस सुरत रंग रचिकै—भा० ।

मध्या प्रौढ़ा मान-लक्षण ।

मध्या औ प्रौढ़ा दुऔ होंहि त्रिविधि[1] करि मान ।
धीरा अरु मध्या कहै[2] और अधीरा[3] जानु ।।५०।।

[1] विविध—भा० । [2] अधीर जहँ—नी० हि० । [3] सभीता धीरा—का० ।

वक्र उक्ति[1] पति सों कहै मध्या धीरा नारि ।
मध्या देहि[2] उराहनौ वचन अधीरा गारि[3] ।।५१।।

[1] वक्र युक्ति—भा० । [2] धीराधीरा—नी० हि० । [3] अधीरा नारि—ज० ।

मध्या धीरा-उदाहरण ।

भारे हौ[1] भूरि भराई भरे अरु[2] भाँतिन भाँतिन[3] के मन भाए ।
भाग बड़ो वहि भामती[4] को जिहि भामते लै रँगभौन[5] बसाए ।
भेष भलोई भली विधि सों करि[6] भूलि परे किधौं काहू भुलाए ।
लाल भले हौ भलो सुख दीनो भली भई आजु भले बनि आए ।।५२।।

[1] भारे हू—सा० । [2] उर—का० । [3] भाँति सभाँतिन—भा० । [4] वही भामते—का० ।
[5] रँगभौन के भीतर जाय —का० । [6] कहि—का० ।

मध्या मध्या-उदाहरण ।

आजु कछू अँसुवान भरे दृग देखिये सो न कहौ जिय जो है[1] ।
चूक परी हमही तें कछू किधौं जापर[2] कोप कियो वह को है ।
चूक अचूक हमारियै है कहौ[3] को नहिं जोवन के मद मोहै ।
स्याम सुजान सुजानै[4] बलाइ ल्यों[5] जोइ करौ सु तुम्है सब[6] सोहै ।।५३।।

[1] कहे जिय जाहै—नी०, करे जिय जो है—हि० । [2] चूक परै किधौं दोस इतैही को कापर—नी० हि० । [3] चूक अचूकहू कूक करै कहा—नी० हि० । [4] सुजान—सा० ।
[5] भली विधि—नी० हि० । [6] सग सोई तौ—नी० हि० ।

मध्या अधीरा-उदाहरण ।

भोरही भौन मैं भावतो आवत प्यारी चितै कै इतै दृग[1] फेरे ।
बाल बिलोकि कै लाल कह्यो कहु[2] काहे तें लाल बिलोचन[3] तेरे ।
बोलि उठी सुनि कै[4] तिय बोल सु देव कहै अति कोप[5] करेरे ।
काहू के रंग रँगे दृग रावरे रावरे रंग रँगे दृग मेरे ।।५४।।

[1] चष—का० । [2] कही कहि—नी० हि० । [3] लोचन लाल भे—ज० । [4] तबही—नी० हि० । [5] सु क्रोध परी कवि देव—का० ।

प्रौढ़ा मान-भेद ।

उदसीन रति कोप अति[1] पति सों प्रौढ़ा धीर ।
तजै मध्य उदास ह्वै[2] ताड़न[3] करै अधीर ।।५५।।

[1] राति के समै—नी० हि० । [2] बरजै धीर अधीर तिय—नी० हि०, तजै मध्यम उदास कहै—सा० । [3] तोउन—ज०, ताहि न—भा० ।

प्रौढ़ा धीरा उदाहरण।

क्रोध कियो मनभावन सों सु छिपाइ लियो[१] पिकबैनी[२] के बोलनि।
राख्यो हियो अति[३] ईर्षा बाँधि खुल्यो उन घूँघट को पट खोलनि।
ज्यों चितई इत[४] आली की ओर सु गाँठि छुटी भरि भौंह बिलोलनि।
लोइन कोइन ह्वै उझक्यो[५] सु बताइ दियो कँपि कोप[६] कपोलनि ॥५६॥

[१] सुद्धि पाइ ठियो—सा०। [२] इक बैनी—भा०। [३] तेहि—नी० हि०। [४] अति—का०। [५] उचक्यो—ज०। [६] कँपि गोल—नी० हि०, कवि कोप—भा०।

प्रौढ़ा मध्यमा-उदाहरण।

सूधिये बात सुनौ समुझौ[१] अरु सूधी कहौ करि[२] सूधौ सबै अंग।
ऐसी न काहू के चातुरता[३] चित जो चितवै[४] कवि देव ददै संग।
वाही के जैयै[५] बलाइ ल्यों[६] बालम हौं तुम्हैं नीको[७] बतावति[८] हौं ढंग।
देव कहै[९] यह जाको सनेह महा उर बीच महाउर को रंग ॥५७॥

[१] सुनै समुझै—नी० हि०। [२] कहै कहि—नी०, करै कहि—हि०। [३] आतुरता—सा०। [४] चतुराइ चितै—का०। [५] बोलै—ज०, जाव—नी० हि०। [६] ज्यों—नी०। [७] तुम पै जु—का०। [८] बताय है—सा०। [९] प्यारो लगै—भा०, करौ न कहौ—नी०, क्यों न कहै—हि०।

प्रौढ़ा अधीरा-उदाहरण।

पीक भरी पलकैं झलकैं अलकैं[१] जु गड़ी सु लसैं भुज[२] खोज की।
छाइ रही छवि छैल की छाती मैं[३] छाप बनी कहुँ[४] ओछे उरोज की।
ताही चितौति बड़ी[५] अँखियान तें ती की चितौनि चली अति ओज की।
बालम ओर बिलोकि कै बाल दई मनो खैंचि[६] सनाल सरोज की ॥५८॥

[१] अलकैं अबकैं—नी०। [२] सु से सुज—सा०, सु लसै भय—ज०। [३] कै—ज०। [४] लगी—का०। [५] चितै बड़री—नी० हि०। [६] चोट—नी० हि०।

मध्या प्रौढ़ा दोय विधि ज्येष्ठा और कनिष्ट।
अधिक नून पिय प्यार करि[१] बरनत बुद्धि गरिष्ट[२] ॥५९॥

[१] दुहुन पिय प्यार करि—का०, अधिक प्यार ज्येष्ठा कहै—नी०। [२] बरनत ज्ञान गरिष्ट—भा०, है हित थोर कनिष्ट—नी०, बरनत बुद्धि वरिष्ट—का०।

उदाहरण।

खेलत फाग खिलार खरे अनुराग भरे[१] बड़भाग कन्हाई।
एकहि भौन में दोउन देखि कै[२] देव करी इक चातुरताई।
लाल गुलाल सों लीनी मुठी भरि बाल के भाल की ओर चलाई।
वा दृग मूँदि उतै[३] चितयौ इन भेंटी इतै[४] बृषभान की जाई ॥६०॥

[१] खरे—नी०। [२] देखि कै दोउन—नी० हि०। [३] इतै—सा०। [४] उतै—सा०।

परकीया-लक्षण ।

जाकी गति[१] उपपति[२] सदा पति सों रति मति[३] नाहिं ।
सो परकीया जानिये ढकी[४] प्रीति जग माहिं ॥६१॥

[१] रति—ज० । [२] उपजै—नी० हि० । [३] रति गति—भा० । [४] जासु—नी०, तासु—हि० ।

परकीया-भेद ।

ताहि परोढ़ा[१] कन्यका द्वै विधि कहत प्रवीन ।
गुपित चेष्टा परोढ़ा[२] कन्या पितु आधीन ॥६२॥

[१] ताही ऊढ़ा—नी० हि० । [२] गूढ़ की—नी०, रूप सौं—ज० ।

परोढ़ा-उदाहरण ।

मोहन मोहि न जान्यो इहाँ बलि बाल को बोल सुनायो नजीक तें ।
चौंकि परी चहुँ ओर चितै गुरुलोगनि देखि उठी नहिं ठीक तें ।
देखियो बात चलै न कहूँ यह छूटिहैगी कुल लोक की[१] लीक तें ।
घूमति है घरही मैं घनी यह घायल लौं घर घाल घरीक तें ॥६३॥

[१] छूटिगी लाज लखी कुल—ज०, कुला कानि की—नी० हि० ।

परोढ़ा-भेद ।

तामैं गुप्ता विदग्धा लक्षितारु[१] कुलटानु ।
अंतरभूत बखानिये अनुसयना मुदितानु ॥६४॥

[१] पुनि सुलछिता—ज० ।

गुप्ता-उदाहरण ।

झँझरी के झरोखनि[१] ह्वै कै झकोरति रावटीहू मैं[२] न जाति सही ।
कवि देव तहाँ कहौ[३] कैसै कै सोइये[४] जी की[५] बिथा सु परै न कही ।
अधरानु को फोरति[६] अंग मरोरति हारनि तोरति जोर यही[७] ।
घर भीतर बाहिरहू[८] बन बागनि बैरिनि[९] बीर बयारि बही ॥६५॥

[१] झकोरन—नी० हि० । [२] झकौर बढ़ी हियहू मैं—नी० हि०, झुकोर तिए उठिहू मैं—ज० । [३] कहौ कहि—ज० । [४] कैसिक सोइये—भा०, कैसै कै आइये—नी० हि० । [५] जाकी—सा० । [६] चोरति—का०, कोरति—भा० सा०, फेरति—ज० । [७] जोय रही—सा० । [८] घर बाहिर जाहिर भीतरहू—भा० । [९] ०—भा० ।

विदग्धी-भेद ।

कहत विदग्धा भाँति द्वै सकल[१] सुमति वर लोइ[२] ।
वाक्विदग्धा एक अरु[३] क्रियाविदग्धा दोइ ॥६६॥

[१] सुकवि—सा० । [२] सब कोइ—ज० । [३] बहुरि अरु—भा० सा०, कहि बहुर—ज० ।

वाग्विदग्धा-उदाहरण ।

ब्याह की बीधि[१] बुलाये गये सब लोगन लागि गये दिन दूने ।
देव तुम्हारी[२] सौं बैठि अकेलियै हौं[३] अपने उर आनति ऊने ।

क्यों तिन्हैं[४] बासर बीतत बीर बनाये हैं जे बिधि बंधु बिहूने[५]।
कौन घरी घर के घर आवैं लगै घर घोर घरीक के सूने ।।६७।।

[१] ब्याह कौ बंधु—नी० हि०, ब्याह को न्यौति—का०। [२] तिहारी—नी० हि०। [३] अकेली अहो—नी०। [४] रोहिन्है—सा०। [५] बिना रजनी बितवे बिध वंधु बिहूने—का०।

क्रियाविदग्धा-उदाहरण।

बँसुरी सुनि देखन दौरि चली[१] जमुनाजल के मिस बेग तबै।
कवि देव सखी के सकोचन सों[२] करि ऊढ़ सु औसर[३] को बितवै।
बृषभान कुमारी मुरारी की ओर बिलोचन कोरनि सों चितवै।
चलिबे को घरै न करै मन नैक धरै[४] फिरि फेरि भरै रितवै ।।६८।।

[१] दोर चले—ज०, बाल चली—नी० हि०। [२] को—नी०। [३] ऊदम औसर—सा०, ऊढम औसर—नी० हि०, रूठन औसर—ज०। घड़ै—भा०, घटै—नी० हि०।

लक्षिता-उदाहरण।

जौ लगि जीवन[१] है जग मैं नहिं तौ लगि जीव सुभाव टरैगो[२]।
देव यहै जिय जानिये जू जन[३] जो करि आयो है सोई करैगो।
कोटि[४] करौ कोउ प्रान हरे बिनु[५] हारिल की लकड़ी न हरैगो।
भूलेहू भौंर चलावै न चित्त जो चंपक चौगुने फूल फरैगो ।।६९।।

[१] जीवत—का०। [२] डरैगो—ज०। [३] धन—ज०। [४] कोरि—नी० हि०। [५] नर | नी० हि०

कुलटा-उदाहरण।

छोरि दुकूल सकोरि कै अंग मरोरि कै[१] बारनि हारनि[२] छूटै।
मीड़ि नितंबहि पीड़ि[३] पयोधर दाबत दंत रदच्छद फूटै।
ज्यों कररी करि[४] केलि करै[५] निकरै न कहूँ कुल सों[६] किनि[७] टूटै।
तौ लगि जानै कहा जुवती[८] सुख जो न जुवा[९] दिन जामिनि जूटै ।।७०।।

[१] बगारि कै—नी० हि०। [२] हारति—का०। [३] पीन—नी० हि०। [४] यों कवि कीरति—नी० हि०, यों करके तिर—सा०। [५] बोलि कहै—ज०। [६] घरतें—का०। [७] कुल कानि को—नी० हि०, कवि—सा०। [८] जबही—ज०। [९] जोवन वा—ज०।

अनुशयना-भेद।

थान हानि तिहि हानि भय[१] प्रिय आगम अनुमान[२]।
अनुसयना एहि विधि त्रिविधि बरनत सकल सुजान ।।७१।।

[१] भय है तहाँ—ज०, भय जहँ हहाति—सा०। [२] सु मान—सा०, प्रिय गम अनुमान—मा०, प्रिय अगमन मान—नी० हि०।

उदाहरण।

सब ऊजरे[१] भौन बसे तबतें[२] तरुनी तनताप रही भरिकै।
सुनि चेत अचेत सी ह्वै चित सोचति[३] जैहै[४] निकुंज घने झरिकै।
ततकालहि देव गुपाल गये बन तें[५] बनमाल नई[६] धरिकै।
जदुनाथहि जोवत ज्वाल भई जुवती बिरहज्वर[७] सों जरिकै ।।७२।।

[१] सब ऊ तहाँ—नी० हि०। [२] जबतें—का०। [३] ह्वै रही चित सों—नी० हि०। [४] जोहै—सा०, निकुंज सों पत जैहै—ज०। [५] बन है—ज०। [६] लई—सा० ज०। [७] बिरहानल—नी० हि०, बिरहाझर—हाशिये पर 'बिरहाजर'—का०।

मुदिता-उदाहरण।

साँझहि[१] कारी घटा घिरि आई महाझर सो बरसे भरि सावन।
धोरिय कारिय[२] आइ गई सु रम्हाइ कै[३] धाइ कै लागी चुखावन।
माइ कह्यो कोइ जाइ कहै[४] किनि मोहूँ सों आज कह्यो उन आवन।
यों सुनि आनंद तें उठि धाई[५] अकेलियै बाल गुपाल बुलावन ॥७३॥

[१] साँझ की—भा०। [२] धोरिए गाय जु—नी० हि, धोरिहू कारियै—सा०, धोरिय को जु पि—का०, धोरह कोटिए—ज०, धोरिहू कोरियै—भा०। [३] सु फनाइ के—हि०, सु पन्हाइ के—नी०, सुनि माइके—ज०, सु रझाइ कै—सा०। [४] कहै जाइ कोऊ—नी० हि०। [५] दौरि—का०।

कन्यका-उदाहरण।

भूमि घटा उझकै कहुँ देव सु दूरि तें दौरि[१] झरोखनि झूली।
हास हुलास बिलास भरी मृग खंजन मीन[२] प्रकासनि तूली[३]।
चारिहू[४] ओर चलै चपलै सु[५] मनोज के तेज[६] सरोज सी फूली।
राधिका की अँखियाँ लखि कै सखियाँ सब संग की कौतुक[७] भूलीं ॥७४॥

[१] देखि—का०। [२] सीन—ज०। [३] लूली—नी०। [४] बाहिर—का। [५] जु—भा० ज०, सो—नी० हि०। [६] मनोज की तेगैं—भा० सा०, मनोज की मानो—का०, मनोज की मौज—नी० हि०। [७] अंग के कौतुक—नी० हि०।

चित्र स्वप्न[१] परतच्छ करि दरसन त्रिविधि बखानु।
देस काल भंगीनु[२] करि श्रवन[३] तीनि[४] विधि जानु ॥७५॥

[१] स्वप्न चित्र—नी० हि०। [२] गंभीर—नी० हि०, भागीन—का०, भृंगीन—ज०। [३] वचन—सा०। [४] चारि—नी० हि०।

दर्शन-उदाहरण।

चारु चरित्र विचित्र बनाइ कै चित्र में जे निरखे अवरेखे।
चोरि लियो जिन चित्त चितौतही त्योंही बने सपने महिं पेखे।
आजु ते[१] नंद के मंदिर तें निकसे घनसुंदर[२] रूप विसेषे।
हौंहूँ[३] अटारी भटू चढ़ी[४] भागतें मैं हरिजू भरिजू[५] दृग देखे ॥७६॥

[१] तो—नी० हि०। [२] बन सुंदर—का०। [३] देव—नी० हि०। [४] हौंहू अटा भरी भारी भटू चढ़—सा०। [५] ०—सा०।

श्रवण-उदाहरण।

ऊँचे अटा चढ़ि[१] सेज सजी[२] तो कहा हरि जो न इहाँ[३] निसि जागे[४]।
फूलि रहे बन कुंज कहा तौ बसंत मैं जो न लला अनुरागे[५]।

देव[६] सबै गहने पहिरे चुनि[७] चाइ सों चारु[८] बनाये हैं बागे[९]।
सुंदरि सुंदर[१०] लागिहै तौ कहिहैं जब[११] सुंदर स्याम सभागे ॥७७॥

[१] सजि—भा०। [२] चढ़ी—नी० हि०। [३] पछितातति कहो री कहा—नी० हि०। [४] अनुरागे—का०। [५] लखि पागे—का०। [६] दाव—नी० हि०। [७] पुनि—नी० हि०। [८] चाव—सा०। [९] इहि भागे—का०। [१०] मंदिर—का०। [११] तब—नी० हि०।

वेश्या-लक्षण।

रीझ नहीं गुन रूप की सामान्या के जीय[१]।
जौहीं लौं धन देहि जो तौ लौं ताकी तीय ॥७८॥

[१] जाय—सा०, पीय—ज०।

उदाहरण।

सोहति किनारी लाल बादले[१] की सारी गोरे अंगनि उज्यारी कसी कंचुकी बनाइ कै।
जेवर[२] जड़ाऊ[३] जगमगत जवाहिर के जूती जोति[४] जावक की जीती[५] पग पाइ कै।
भौंहनि भ्रमाइ भूरि[६] भाइ करि नैननि सों[७] सैननि सों बैननि कहति मुसक्याइ कै[८]।
चीकनी चितौनि चारु चेरे करि चतुरनि[९] वितु[१०] लियो चाहै चित लियो है चुराइ कै ॥७९॥

[१] बादला—भा० सा०। [२] भूषन—का०। [३] जराव—ज०। [४] जुही होत—नी० हि०, होति जोति—का०। [५] जाती—सा०, जोत—का०। [६] भरि—का०। [७] भायक बताइ करि—नी० हि०। [८] बिहंसाइ कै—का०। [९] चोर होत चातुरी सों—नी० हि०। [१०] चितु—नी० हि०।

स्वकीया-भेद।

पर रति दुखिता[१] प्रेम अरु रूपगर्विता जान।
मानवती अरु चारि विधि स्वीयादिकन बखान ॥८०॥

[१] पोखित दुखिता—का०।

पररतिदुःखिता-उदाहरण।

साँझही स्याम को लेन गई सु बसी बन मैं सब जामिनि जाइ कै।
सीरी बयार छिदे अधरा उरझे उर झाँखर झार मझाइ कै[१]।
तेरी सी[२] को करिहै करतूत हुती[३] करिबे सो करी तैं[४] बनाइ कै।
भोरही आई भटू इत मो[५] दुखदाइनि काज इतौ दुख पाइ कै ॥८१॥

[१] झा मझाइ कै—नी० हि०, झार झराइ कै—का०। [२] सौं—भा०। [३] हती—भा० ज०। [४] करि बेग—ज०। [५] को—का०, नो—ज०।

प्रेमगर्विता-उदाहरण।

ये बिनु गारी दये गुरुलोगन टेरेई सैनन नैन नटेरेई[१]।
देव कहै दुरि द्वार लौं जात कितौ करि हारी तऊ हरि हेरेई।
पाय[२] यही घर बैठि रहौ[३] जु तौ वे मिल खेलन आवत मेरेई।
घेरु करैं[४] घर बाहिर के अरु ये सु फिरै घर बाहिर घेरेई ॥८२॥

[१] टेरिये नैनन सैनन नेरेइ—ज०। [२] आपु—नी० हि०। [३] रही—नी० हि० का०। [४] घरै—नी० हि०। [५] तो फिरै—नी० हि०।

रूपगर्विता-उदाहरण।

हरि जू सों हहा हटकोरी[१] भटू जनि बात कहै जिय सोचनि की।
कहि[२] पंकजनैनी बुलाइ कै मोहि दई सुषमा[३] दुख मोचन की।
उनही सों उराहनो देऊँ ततौ उमगै उर रासि सकोचन की।
बलि बारौं री वीरजु[४] बारिज कौ जु बराबरि बीर[५] बिलोचन की ॥८३॥

[१] टकटोरि—ज०। [२] कहै—का०। [३] उममा—सा०। [४] और जु—नी, बार जु—हि०। [५] होय—सा०।

है संयोग वियोग मैं बरन्यो मान[१] प्रकार।
ताही के मत मानिनी कविवर करहु[२] विचार ॥८४॥

[१] नाम—नी०। [२] करत—भा०।

अवस्था-भेद।

स्वाधीना उत्कंठिता वासकसज्जा बाम।
कलहंतरिका खंडिता विप्रलब्धिका नाम[१] ॥८५॥

[१] बाम—भा० सा०।

ताते प्रोषितप्रेयसी अभिसारिका बखान।
आठ अवस्था भेद ये एक एक प्रति जान[१] ॥८६॥

[१] अष्ट नायका ये बिधा बरनै सुकवि सुजान—नी० हि०।

स्वाधीना-लक्षण।

बँध्यो रहै गुन रूप सों[१] जाके पति आधीन।
स्वाधीना सो[२] नाइका बरनत परम[३] प्रवीन ॥८७॥

[१] मैं—का०। [२] स्वाधीनपतिका—नी० हि०। [३] सकल—नी० हि०।

उदाहरण।

मालिन ह्वै हरि[१] माल गुहै चितवैं मुख चेरी[२] भये चितचाइन।
पान खवावैं खवासिन ह्वै कै सवासिन ह्वै सिखवैं[३] सब भाइन[४]।
बेंदी दै देव दिखाइ कै[५] दर्पन जावक देत भए अब नाइन।
प्रेम पगे पिय पीत पटी पर[६] प्यारी के पोंछि पमारी से[७] पाँइन ॥८८॥

[१] रहै—ज०। [२] चोरी—ज०। [३] निखवै—ज०। [४] सिखवै सब भूषन भेष सुभाइन—का०। [५] दिखावत—का०। [६] पीत पिछौरी सों—नी० हि०। [७] पोंछि यमारी से—भा०, पोंछिय वारी से—ज०।

उत्कंठिता-लक्षण।

पति को गृह आये बिना सोच बढ़ै चित जाहि।
हेतु विचारै चित्त में उत्कंठिता कहु ताहि[१] ॥८९॥

[१] उत्कंठा कहु ताहि—भा० ज० सा०, उत्कंठिता सुभाइ—नी० हि०।

उदाहरण ।

मारग हेरति हौं कब की कहौ[१] काहे ते आये नहीं अबहूँ हरि ।
आवत हैं किधौं ऐहैं अबै कवि देव कै राखे है काहू कछू करि[२] ।
मोहूँ तें न्यारी को[३] प्यारी गुपाल की हाय[४] बिचारिये री चित मैं धरि ।
जो रमनी रमनीय लगै बसि वाके[५] रहै सजनी रजनी भरि ।।८०।।

[१] कहि—नी० हि० । [२] आवत हैं किधौं आए न देव कै राखै है काहू तिया ने कछू करि—नी० हि० । [३] कै—भा० सा० ज० । [४] के—भा० सा० ज० । [५] ताके—नी० हि० ।

वासकसज्जा-लक्षण ।

जानै पिय को आइबो निहचै वार[१] विचारि ।
मग देखै भूषन सजै वासकसज्जा नारि ।।८०।।

[१] चारु—भा० सा० ज० ।

उदाहरण ।

घोरि घनी घनसार सों केसरि चंदन गारि कै अंग सम्हारै[१] ।
मोतिन माँग कै बार गुहै[२] अरु[३] हार गुहै बलि बेगि[४] सँवारै ।
देव कहै सब भेष बनाइ कै आइ कै फूलनि सेज सुधारै ।
बैठी कहा उठि देखौ भटू हरि आवत हैं[५] घर आज हमारे ।।८२।।

[१] संवारै—नी० हि० । [२] चारु गहे—सा० । [३] किन—का० । [४] केस—नी०, केलि—हि० । [५] आवन हैं—ज० ।

कलहंतरिका-लक्षण ।

पहिले पति[१] अपमान[२] करि फिर पीछे पछताइ ।
कलहंतरिका नाइका ताहि कहैं कविराइ ।।८३।।

[१] पिय—नी० हि० । [२] सों कोप—का० ।

उदाहरण ।

पिय जा हित प्यारे ही के[१] पदपंकज पूजिबे को पकर्‌यो पन सों ।
सु बिसारि दियो तेहि मोहि निरादर[२] घोर पति गृह को धन सों ।
यह पापन ही[३] विष बौरी[४] भई अरु सीरी[५] बयारि बरै तन सो ।
कहि क्यों न अँगार सो हार लगै हिय मैं घनसार घनो घन सो ।।८४।।

[१] पिय जाय अप्यारी के वे—नी० हि०, पिय जा हित प्यारी के—भा०, पिय जा हित प्यारि ही के—सा०, पिय जानहि प्यारिहि के—का०, पजाइ के प्यारि ही के—ज० । [२] तिहि मेहि निरादरे—भा०, हित मोहि निरादर—नी० हि० । [३] इन पायन ही—भा० सा०, या पापिनि हौ—नी०, यह पापिनि ही—हि०, यह पायन ही—का० । [४] विष बीरी—भा०, विष बीर—नी० हि । [५] सोच— नी० ।

खंडिता-लक्षण ।

जाके[१] भवन न जाइ पति रहै कहूँ रति मानि ।
खंडितवारि सु खंडिता[२] कविवर[३] कहत बखानि ।।८५।।

[१] पीके—सा०। [२] खंडिवार सु खंडिता—का०, बनिता वाहि सु खंडिता—ज०। [३] पंडित—नी० हि०।

उदाहरण।

सेज सुधारि सँवारि सबै अंग आँगन[१] के मग मैं पग रोपै।
चंद की ओर चितौत[२] गई निसि नाह की चाह चढ़ी चित चोपै।
प्रातही प्रीतम आये कहूँ बसि देव कही[३] न परै छवि मोपै।
प्यारी के[४] पीक भरे अधरा तें[५] उठी मनौ कंपत कोप की[६] कोपै ॥९६॥

[१] आवन—का०, अंगनि—ज०। [२] चितौनि—ज०। [३] बेष कढ़ी—सा०। [४] प्यारे के—नी० हि०। [५] अँगराते—का०। [६] कंप की—ज०।

विप्रलब्धा-लक्षण।

जाको[१] पति की दूतिका[२] लै[३] पहुँचै रति धाम।
तहँ पति मिलै न जाहि[४] सो विप्रलब्धिका वाम[५] ॥९७॥

[१] जाके—ज०। [२] दूती संग निज—नी० हि०, पति संकेत बदि—का०। [३] नहि—का०। [४] तहँ न मिलै पति खेद अति—नी० हि०। [५] विप्रलब्ध कहु नाम—का० नी०, विप्रलब्ध तेहि नाम—हि०।

उदाहरण।

दूती लेवाइ गई तहँ बाल को[१] जा बन बालम[२] सों मिलि खेल्यो।
भेषु बनाइ कै भूषन साजि सुगंधि तमोर को साज[३] सकेल्यो।
आनंद ही तें इहाँ तें गई तिय[४] देखि उहाँ रति कुंज[५] अकेल्यो।
बीरी बगारि[७] सखीन सों रारि कै[७] हार उतारि उतै गहि मेल्यो ॥९८॥

[१] बाम को—सा०। [२] बालहि—ज०। [३] जास—नी० हि०, समूह—का०। [४] वह—नी० हि०। [५] त्यों तह राति कुंज—नी०। [६] बिगारि—भा० सा०। [७] गारि दै—का०।

प्रोषितप्रेयसी-लक्षण।

सो तिय प्रोषित प्रयसी जाको पति परदेस।
काहू कारन तें गयो दैकै[१] अवधि प्रवेस ॥९९॥

[१] कहि कै—का०।

उदाहरण।

होरी हरे हरे आइ गई हरि आए न हेरि हियो हहरैगी।
बानि[१] बनी बन बागनि की कवि देव बिलोकि बियोग बरैगी।
नाउ न लेहु[२] बसंत कौ री सुनि हाय कहूँ पछिताय मरैगी।
कैसे कै जीहै[३] किसोरी जो केसरि नीर सों बीर अबीर भरैगी ॥१००॥

[१] बेनी—नी० हि०। [२] नहिं नाम तु लेउ—ज०। [३] कैसिक जीहौ—सा०, कैसे कहै तु—ज०, कैसे को जीहै—हि०।

अभिसारिका-लक्षण ।

जो घेरी[१] मद मदन करि आपुहि पति पर जाइ[२] ।
वेष अंग अभिसारिका समै[४] समान बनाइ ॥१०१॥

[१] पेरी—नी० का० । [२] प्यारे पह तिय जाइ—ज० । [३] सजे—भा० ज० ।

उदाहरण ।

घटा घहराति बिज्जु छटा छहराति आधी राति हहराति[१] कोटि कीट रति[२] मंज लौं ।
हूकत उलूक बन कूकत फिरत[३] फेरु भूकत जु भैरौं भूत[४] गावैं अलि गुंज[५] लौं ।
भिल्ली मुख मूँदि तहाँ[६] बीछीगन गूँदि बिष ब्यालनि को रूँदि कै मृनालनि के पुंज[७] लौं ।
जाई बृषभान की कन्हाई के सनेह बस आई उठि ऐसे मैं अकेली केलि कुंज लौं ॥१०२॥

[१] अति आत—ज० । [२] कीट रवि—भा०, कोटि रितु—नी० हि०, कोटि रुति—सा० । [३] मयूर—ज० । ४ हूदै—ज० । [५] अति गुंज—सा० । [६] भिल्ली मुख कूँ दिखावै तहाँ—ज० । [७] मुनारनि के—का०, मृनाल पुंज—ज० ।

स्वीया तेरह भेद अरु[१] दोइ भेद परनारि ।
एक वेस्या ये[२] सबै सोरह कहौं विचारि ॥१०३॥

[१] करि—भा० । [२] एक एक प्रति ये—सा० ।

एक एक प्रति सोरही आठ[२] अवस्था जान ।
जोरि सबै ये एक सौ अट्ठाईस बखान ॥१०४॥

[१] भेद—ज० ।

उत्तम मध्यम अधम करि[१] ये सब त्रिविधि विचार[२] ।
चौरासी अरु तीन सै जोरे सब विस्तार ॥१०५॥

[१] कहि—नी० हि० । [२] बखान—ज० । [३] ज्यों ज्यों सब विस्तार—नी० हि०, सकल नाइका जान—नी० हि० ।

उत्तमा-लक्षण ।

सापराध पति देखि कै करै न[१] मन में मान ।
दोष जनावै सहज ही[२] सो उत्तमा बखान ॥१०६॥

[१] करै जु—भा० सा० । [२] सहचरी —नी० हि० ।

उदाहरण ।

केसर सों उबटचो सब अंग बड़े मुकतान सों माँग सँवारी[१] ।
चारु सु[२] चंपक हार हिये उर[३] ओछे उरोजन की छवि न्यारी ।
हाथ सों हाथ गहे[४] कवि देव सु साथ तिहारेई नाथ निहारी[५] ।
हाहा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती[६] छोहरी छीवर वारी ॥१०७॥

[१] सम्हारी—भा०, समारी—सा० । [२] से—नी० हि० । [३] अरु—नी० हि० । [४] गुहे—सा० । [५] हाथ निहारै हौ आज निहारी—नी० हि० । [६] वह कौन ही—नी०, वह कौन सी—हि०, वह थी—भा० ।

मध्यमा-लक्षण ।

जाहि जानि जिय मानिनी कंत करै मनुहारि।
पाँइ परै कोपहि तजै कहौ[१] मध्यमा नारि ।।१०८।।

[१] वहै—नी०हि० ।

उदाहरण ।

नेह सों नीचे निहारि निहोरत[१] नाही कै नाह की ओर चितैबो।
पीठ दै मोरि[२] मरोरि कै दीठि सकोरि कै सौंह सों भौंह[३] चढ़ैबो।
प्रीतम सों कवि देव रिसाइ कै पाइ लगाइ हिये[४] सों लगैबो।
तेरो री मोहि महा सुख देत सुधारसहू तें[५] रसीलो रिसैबो[६] ।।१०९।।

[१] निहोरनि—ज० । [२] तोरि—नी०हि० । [३] भौंह सों सौंह—का० । [४] लिये—नी० ।
[५] सुधाधर हूँ तें—क०। [६] रसीलो चितैबो—का० ।

अधमा-लक्षण ।

बिनु दोषहि रूठै तजै बिना मनाये मानु ।
जाको रिस रस हेतु[१] बिनु अधमा ताहि बखानु ।।११०।।

[१] होत—नी० हि० ।

उदाहरण ।

आजु रिसोहीं न सौंही[१] चितौति कितौन सखी पति प्रेम पढ़ावै[२] ।
नाह सों नेह को नातौ[३] न नेकु जऊ पर[४] पाइ प्रतीति बढ़ावै।
पीठ दै बैठी अमैठि सी डीठ कै कोइन कोप की[५] ओप कढ़ावै।
तीर से तानि तिरीछे कटाछ कमान सी भामिनि भौंहैं चढ़ावै[६] ।।१११।।

[१] सी सोहैं—नी०हि० । [२] प्रति प्रीत बढ़ावै—भा०, पुनि ताको पढ़ावै—नी० हि० ।
[३] मोहन सों सखि नातो—ज० । [४] तऊ पर—नी० हि० । [५] को बकि—नी० हि० ।
[६] बढ़ावै—ज० ।

सखी-लक्षण ।

बहु[१] बिनोद भूषनं रचै करै जु चित्त प्रसन्न।
प्रियहि मिलावै[२] उपदिसै रहै सदा आसन्न[३] ।।११२।।

[१] बन—ज० । [२] प्रियहि मनावै—का०, ऐसी सखी बखानिये—सा० । [३] सखी कहत तिय बात जिय राखै कछू न भिन्न—ज० ।

पति को देइ उराहनो करै बिरह[१] आस्वास।
ऐसी सखी बखानिये जाके जी बिश्वास ।।११३।।

[१] सदा—नी० हि० । सा० प्रति में द्वितीय चरण त्रुटित है ।

उदाहरण ।

बाल बधू के बिनोद बढ़ाइ भली विधि भूषन भेष बनावै[१] ।
चाइ सों चित्त प्रसन्न करै रस रंग मैं संग सयान[२] सिखावै[३] ।

दै कै[४] उराहनो दोउन को मन राखि कै देव[५] दुहून मिलावै ।
नाह सों नेह ततो[६] निबहै जब भाग तें ऐसी सखी करि पावै ।।११४।।

[१] बनाइ कै—ज० । [२] सयानि—भा० सा० । [३] सिखाइ कै—ज० । [४] ०—भा० । [५] राखि कहै कवि देव—भा० । [६] तबै—नी० हि० का० ।

दूती-भेद ।

धाइ सखी दासी नटी ग्वालि सिल्पिनी[१] नारि ।
मालिनि नाइनि बालिका बिधवा बधू विचारि ।।११५।।

[१] ग्वालिनि सिलिपनि—नी० हि० ।

सन्यासिन भिक्षुक वधू संबंधी[१] की बाम ।
ऐती होती दूतिका दूतप्पन[२] अभिराम ।।११६।।

[१] अरु संबंधी—नी० हि० । [२] दूत प्यार—ज० ।

उदाहरण ।

देव जू की दूती बृषभान जू के भौन जाइ राधिका बुलाइ[१] बहु बातनि[२] खिलाइ कै ।
हास रस सानी[३] दुरि आँगन तें द्वार आनी हित की कहानी कहि हिय[४] सों मिलाइ[५] कै ।
हरे[६] हँसि कह्यो कैसे[७] सह्यो धौं परतु है[८] जै है[९] नंदनद तौ बियोग सी[१०] बिलाइ कै[११] ।
बिरह बढ़ाई प्रेम पद्धति पढ़ाइ[१२] चित चोपहि चढ़ाइ दीनी[१३] मोहनै मिलाइ कै ।।११७।।

[१] जगाय—का० । [२] भाँतिन—नी० हि० का० । [३] हासन ससानी—का०, हास रस मानी—नी० हि० । [४] हाय—का० । [५] हिलाइ—भा० का० । [६] हरि—सा०, हारे—का० । [७] केस—सा० । [८] परतु हू—नी० हि० । [९] है—नी० हि० । [१०] वह—ज० । [११] बिताइ कै—नी० हि० । [१२] बढ़ाइ—नी० हि० । [१३] चली—नी० हि० ।

इति चतुर्थ विलास ।

कविता कामिनि सुखद पद सुवरन सरस सुजाति[१] ।
अलंकार पहिरे निकट अदभुत रूप लखाति[२] ।।१।।

[१] सुजान—का० । [२] बखान—का० ।

ताही ते कवि देव कहि अलंकार की भाँति[१] ।
मुनि मत के अनुसार तें लै कछु लक्षन जाति[२] ।।२।।

[१] के भेद—का० । [२] दूरि होंहि जिनके सुनत श्रवननि के सब खेद—का० ।

अलंकार-नाम ।

प्रथम स्वभावउक्ति उपमेय उपमान संशय[१] अनन्वय अरु रूपक बखानिये ।
अतिसय औ[२] समास वक्रउक्ति परयायउक्ति सहित सहोक्ति सविशेषउक्ति[३] जानिये ।
ताते व्यतिरेक औ विभावना[४] उतप्रेक्षा क्षेप दीपक उदात औ[५] अपन्हुत को आनिये ।
पीछे असलेखा न्यास अर्थान्तिर व्याजस्तुति अप्रस्तुत अस्तुति सु अलंकार मानिये[६] ।।३।।

[१] उपमेयोपमेय संस—भा० । [२] ०—भा० । [३] ये विशेष—नी० । [४] है विभाव—भा० सा० । [५] हैं—भा० सा० । [६] अरु असलेखा व्याजस्तुति अर्थांतर अस्तुति परिकर द्विविधि

अलंकृत मैं मानिये—नी० हि० ।

आवृत्ति निदर्सना विरोध[१] परिवृत्ति हेतु रसवत ऊरज ससूछम[२] बताइये ।
प्रेय क्रमा[३] समाहित तुल्ययोगिता औ लेस भाविक औ संकीरन आसिख सुनाइये ।
अलंकार मुख्य उनतालिस ये[४] देव कहैं येई पुराननि मुनिमतनि मैं पाइये ।
आधुनि[५] कविन के सम्मत अनेक और[६] इनहीं के भेद और विविध विधि गाइये[७] ।।४।।

[१] विरोधता—नी०, विरोधा—हि० । [२] प्रेयस्वलमा—नी० हि० । [३] प्रेमक्रम—नी० हि० । [४] हैं—भा० । [५] आधुनिक—नी० हि० । [६] भिये—नी० हि० । [७] विविध बताइये—भा० सा० ।

स्वभावोक्ति-लक्षण ।

जहाँ स्वभाव बखानिये स्वभावोक्ति सो[१] नाम ।
सुकवि जाति वर्णन करत कहत सुनत अभिराम[२] ।।५।।

[१] सु स्वभावोक्ति—सा० । [२] काव्य सुमत अभिराम अति शास्त्रन मैं सनमान—नी० हि०, शास्त्रन मैं मान्यो यही कवि मति अति अभिराम—का० ।

उदाहरण ।

आगे आगे आसपास फैलति बिमल[१] बास पीछे पीछे भारी भीर भौंरनि के गान की ।
तातें अति नीकी किंकिनी की झनकार होति मोहनी है मानो मन[२] मोहन के कान की ।
जगमग होति जात जोति[३] नवजोवन की देखे गति भूले[४] मति देव देवतान की ।
सामुहे गली के जु अली के संग भलीभाँति चली जाति देखो वह[५] लली बृषभान की ।।६।।

[१] विविध—नी० हि० । [२] मद—भा० । [३] जगरमगर होति जोति—भा० सा० । [४] गात भूले—सा०, गति भूली—नी० हि० । [५] चली जाति देखी वह—भा०, देखौ वह चली जाति—नी० हि० ।

उपमा-लक्षण ।

जेहि जेहि[१] भाँति बराबरी जहाँ वस्तु[२] मैं होय ।
सो उपमा कवि देव कहि बरनत हैं कवि लोय ।।७।।

[१] जेहि तेहि—का० । [२] अर्थ—का० । भा० सा० प्रतियों में दोहे का पाठ है :

"नून गुनहि जहँ अधिक गुन कहिये बरनि समान ।
अलंकार उपमा कहत ताही सुमति सुजान ।।"

उदाहरण ।

राति जगी[१] अँगिरात इतै यहि[२] गैल गई गुनकी निधि[३] गोरी ।
रोमवली त्रिवली पै लसी[४] कुसुमी अँगियाहू लसी उर[५] ओरी ।
ओछे[६] उरोजनि पै हँसि कै कसिकै पहिरी गहरी रंग बोरी ।
पैरि सिवार[७] सरोज सनाल चढ़ी मनौ इंद्रबधूनि की जोरी ।।८।।

[१] सखी—नी० हि० । [२] गहि—भा० । [३] विधि—भा० का० । [४] भली—नी० हि० । [५] दुति—नी० हि० । [६] ऊँचे—का० । [७] सिवाल—का० ।

उपमेयोपमा-लक्षण ।

उपमा अरु उपमेय जहँ क्रम तें[१] एकै होइ ।
सोई उपमेयोपमा कहत सुकवि[२] सब कोइ ।।९।।

[१] कौ जहं क्रम—भा०, जहं जहं क्रम—का० सा० । [२] करनि कहैं—भा० सा० ।

उदाहरण ।

तेरी सी बेनी है स्याम अमा अरु तेरीयै बेनी है स्याम अमा सी ।
पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोसी उज्यारी है पूरनमासी ।
तेरो सो आनन[१] चंद लसै तुअ आनन मैं सखि चंद समासी[२] ।
तोसी वधू रमनीय रमा कवि देव है[३] तू रमनीय रमा सी ।।१०।।

[१] तियानन—नी० हि० । [२] अभा सी—नी०, प्रकासी०—हि० । [३] कि—का० ।

संशय-लक्षण ।

जहँ उपमा उपमेय को आपुस मैं संदेहु ।
ताही सो संसय उकति[१] सुमति जानि सब[२] लेहु ।।११।।

[१] कहत—हि० । [२] सुचि—हि० । नी० प्रति में संपूर्ण दोहा त्रुटित है ।

उदाहरण ।

श्री बृषभानु कुमारी के रूप की न्यारी कै को उपमा उपजावै ।
चंचल नैन कि मैन के बान कि खंजन मीन न[१] कोइ बतावै ।
आनँद सों बिहँसाति जबै कवि देव तबै बहुधा मन धावै ।
कै[२] मुख कैधौं कलाधर है[३] इतनो निहचोई नहीं[४] चित आवै ।।१२।।

[१] एती न—का०, से इन—नी० । [२] तो—नी० हि० । [३] कै—सा० । [४] निहचो इतनो—नी०, निहचो जु नहीं—सा० ।

अनन्वय-लक्षण ।

तैसो सोई[१] बरनिये जहाँ न और समान ।
ताहि अनन्वय नाम कहि बरनत देव[२] सुजान ।।१३।।

[१] तैसोई तहँ—का० । [२] सुकवि—नी० हि० ।

उदाहरण ।

केस सों केस लसै मुख सों मुख नैन से नैन रहे रंग सों छकि ।
देव कहै सब अंग से अंग सुरंग दुकूलनि मैं[१] झलकै झकि[२] ।
और नहीं उपमा उपजै जग ढूँढ़ौ सबै सब भाँतिन सों थकि ।
श्री बृषभान कुमारी[३] री तेरी सों तोसी तुही अरु कौन मरै[४] बकि ।।१४।।

[१] सै—हि०, सो—नी०, मैं यों—का० । [२] झुकि—का० । [३] राधिका श्री बृखभान कुमारी—भा० । [४] सरै—भा० ।

रूपक और अतिशयोक्ति-लक्षण ।

सम समान जैसे जनो[१] जिमि ज्यों[२] मानो तूल ।
और सदृश[३] कवि देव ए पद उपमा के मूल ।।१५।।

[१] जहां—का०, जतौ—नी०, जतै—हि०। [२] तिमि त्यों—का०। [३]सरिस—भा०, सदा—नी० हि०।

जहँ उपमा मैं ये न पद[१] सोई रूपक ज्ञान।
सीमा तें[२] अति बरनिये अतिसय ताहि बखान।।१६।।

[१] जहँ उपमा ये नहीं—नी० हि०, जहँ उपमा मैं ये नहीं—का०। [२] सोभा तें—नी० हि०।

रूपक-उदाहरण।

मंदहास चंद्रिका कौ मंदिर बदन चंद सुन्दर मधुर बानि सुधा सरसाति[२] है।
इंदिरा के ऐन नैन[३] इंदीवर फूलि रहे विद्रुम अधर दंत मोतिन की पाँति है।
ऐसो अदभुत रूप भावती[५] को देखौ देव जाके बिनु देखे छिन छाती न सिराति है।
रसिक कन्हाइ बलि पूछन[७] हौं आई तुम्हैं ऐसी प्यारी पाइ कैसे न्यारी राखी जाति है।।१७।।

[१] के—नी० हि०। [२] रसमाति—नी० हि०। [३] नैन ऐन—नी० हि। [४] धुन मालिनि—नी०। [५] राधिका—भा० सा०। [६] जाहि देखे रावरीयो छतिया सिराति है—सा०, जाहि देखे कौन की न छतिया सिराति है—नी० हि० का०। [२] बूझन—नी० हि०।

अतिशयोक्ति-उदाहरण।

राधे के रूप निहारि सबै कवि मूक भये उपमा नहिं आवै।
को करि कुंभनि केहरि कीर री[१] कुंद कली कदलीन गनावै[२]।
कंवन[३] कंचन कीन्हो अकंचन को चित चंपक चोप बढ़ावै।
देव जू निंदित इंदीवरै सब[४] इंदिरा इंदु न आदर पावै।।१८।।

[१] कीरनि—का०। [२] गवावै—नी०। [३] कचन—नी०, पंचन—का०। [४] देव सुतौ कल कोकिला से वच—का०।

समासोक्ति-लक्षण।

कछू वस्तु चाहै कहौ[१] ता सम बरनै और।
समासोक्ति सो[२] जानिये अलंकार[३] सिरमौर।।१६।।

[१] बरन्यो चहै—नी० हि०। [२] सु—समासोक्ति—भा० सा०। [३] बरनत कवि—नी० हि०।

उदाहरण।

मालती सों मिलये[१] निसि द्यौसहू या[२] सुखदानि ह्वै[३] ज्यौ समझैयै।
प्रीति पुरानी पुरैनि के रैनि रहौ नियरे न विपत्ति बहैयै।
ऊपरही गुन रूप अनूप निरंतर अंतर मै न पत्यैयै।
ये अलि दूलह[५] भूलेहू देवजू चंपक फूल के मूल न जैयै।।२०।।

[१] मलिये—भा०। [२] द्यौसहि प्यौ—हि० सा०। [३] कै—सा०। [४] पुरैन करैन—हि०। [५] हूलहू—सा०।

वक्रोक्ति-लक्षण।

काकु वचन श्लेष करि[१] और अरथ ह्वै जाइ।
सो वक्रोक्ति सु बरनिये[२] बरनि कहत कविराइ।।२१।।

[१] काकु वचनल्लेश करि—सा०, वचन रचना श्लेष करि—का० । [२] बखानिये—नी० हि० [३] उत्तम काव्य सुभाइ—भा० सा० ।

उदाहरण ।

मति कोप करै[१] पति सों कबहूँ मति को पकरे पति सों निबहै ।
कवि देव न मान वधू रत है[२] सब भाषत आन वधू रत है ।
अब लौं न कहूँ[३] अवलोकि तुम्हैं अब लोक तुम्हैं सुख देत रहैं ।
किनि नाम कहौं हमसों तिनको हम सौतिन को किहि भाँति कहैं ।।२२।।

[१] करौं—नी० हि० । [२] तु कहा हम मान वधू बस हैं—का० । [३] अवलोकनहू—नी० ।
[४] दै रहौ—हि० ।

पर्यायोक्ति-लक्षण ।

मन की कहे न ताल[१] ये बरने और प्रकार ।
परजायोक्ति सु नाम सो[२] अलंकार निरधार ।।२३।।

[१] बाल—का०, ताप—हि० । [२] सु नाम जो—भा०, बखानि जो—हि० । बखानिये जो—हि०

उदाहरण ।

मैं सुनी काल्हि परौं लगि सासुरे[१] साँचेहूँ जैहौ[२] कहौ सखि[३] सोऊ ।
देव कहै केहि भाँति मिलै जाने को[४] काहि[५] कहा कब[६] कोऊ ।
खेलि[७] तो लेहु भटू सँग[८] स्याम के आजु ही की निसि आये हैं ओऊ ।
हौं अपने दृग मूँदति हौं धरि धाइ के धाय दुरौ[९] तुम दोऊ ।।२४।।

[१] सासुरे कालि परौं लगि—का० । [२] जैहौं सु साँची—भा० सा० । [३] किनि—भा० सा० । [४] को जानै—भा० सा० । [५] काल्हि—सा० । [६] अब—का० । [७] भेंटि—भा० सा० । [८] उठि—भा० सा० । [९] आज मिलो—भा०, धाइ मिलो—सा० ।

सहोक्ति-लक्षण ।

जहाँ सहज गुण सो सहित[१] कीजे वस्तु वखान[२] ।
अलंकार कवि देव कहि सो सहोक्ति उर आन[३] ।।२५।।

[१] सो सहोक्ति जहँ सहित गुन—भा० । [२] वस्तु विचार—नी० हि, सहज बखान—भा० । [३] सो सहोक्ति पहिचानिये देव कहै लंकार—नी० हि० ।

उदाहरण ।

प्यारी के प्रान समेत[१] पिया परदेस पयान की बात चलावै ।
देव जू छोभ समेत[२] छपा छतिया मैं छपाकर की छवि छावै ।
बोलि अली बन बीच बसंत कौ मीचु समेत नगीच बतावै[३] ।
काम के तीर समेत[४] समीर सरीर मैं लागत पीर बढ़ावै ।।२६।।

[१] समीप—का० । [२] द्यौस समान—का० । [३] भौंर समेत नगीच न आवै—हि०, भौंर समेत रगोचन आवै—नी० । [४] समान—नी० हि० का० ।

विशेषोक्ति-लक्षण।

जाति कर्म गुन भेद की विकलपता करि जाहि[१]।
वस्तुहि बरनि दिखाइये विशेषोक्ति कहि ताहि ॥२७॥

[१] विकल्यान करि जाइ—हि०, विकल्पना करि जाय—नी०।

उदाहरण।

जोवन ब्याध[१] नहीं[२] अरु बैननि मोहनी मंत्र नहीं अवरोह्यो।
भौंह कमान न बान विलोचन तानि तऊ पति को चितु पोह्यो[३]।
देव घृताची[४] सची न रची तू दियौ नहिं देवता को तन तोह्यौ[५]।
तापर बीर अहीर की जाई री तैं मनमोहन को मन मोह्यो ॥२८॥

[१] व्याधि—नी० हि०। [२] नदी—सा०। [३] चोह्यौ—हि०। [४] छताची—का०, धूतची—सा०, घृनाची—हि। [५] तोर्‌यो—नी० हि०।

व्यतिरेक-लक्षण।

जहँ समान विधि[१] वस्तु कौ कीजै भेद बखान।
अलंकार व्यतिरेक सो देव सुमति पहिचान[२] ॥२९॥

[१] ह्वै—हि०, ०—नी०, द्वै—का०। [२] व्यतिरेक को देवदत्त उर आनि—नी० हि०, व्यतिरेक सो देवदत्त कवि जान—का०।

उदाहरण।

कौन के होइ न ही मैं हुलास[१] सु जात[२] सबै दुख देखतही दवि।
जाहि लखे बिलखे यहि भाँति परै मनु सौति सरोजनि पै पवि[३]।
याही तें प्यारी तिहारी मुखद्युति चंद समान बखानत हैं[४] कवि।
आनन ओप न होत मलीन[५] पै छीन ह्वै[६] जाति छपाकर की छवि ॥३०॥

[१] विलास—का०। [२] जो जात—नी० हि०। [३] मैं पवि—नी०, पै फवि—का०। [४] तो—का० सा०। [५] मलीन न होति—भा०। [६] कै—भा०।

विभावना-लक्षण।

हेतु प्रसिद्ध निरास करि कहिये हेतु सुभाउ।
अलंकार सो देव कवि विभावना कहि गाउ[१] ॥ ३१॥

[१] सो विभावना गाउ—भा०।

उदाहरण।

ये अँखियाँ बिनु काजर कारी अन्यारी[१] चितै चित मैं चपटै सी।
मीठी लगैं बतियाँ मुख सीठिओ[२] सुनै सब सौतिन को दपटै सी।
अंगहूराग बिना अंग अंग[४] झकोरैं सुगंधन की झपटै सी[५]।
प्यारी तिहारी ये एड़ि लसै बिनु जावक पावक की लपटै सी ॥३२॥

[१] अयाँरी—भा०। [२] सु अमीठिअै बातैं—का०, अनमीठिओ बातैं—नी०, अन ईठिओ बातैं—हि०। [३] सौतिन को सुन कै दपटै सी—सा०, यों सौतिन के उर मैं दपटै सी—भा०। [४] अंगनि ते बिन अंगहू राग—नी०, अंगहि मैं सु बिना अँगराग—का०। [५] राग

सुगंधहू के लपटै सी—नी०, सुगंध झकोरै हिए झपटै सी—का०।

उत्प्रेक्षा-लक्षण।

और भाँति की वस्तु को कीजै और बखान[१]।
सो कहिये उत्प्रेक्षा बहु वितर्क जहँ जान[२]॥ ३३॥

[१] और वस्तु को तर्क करि बरनै निहचै और—भा०, और वस्तु को त्याग करि करनै निहचै और—सा०। [२] अनुमानादिक दौर—भा० सा०, जहँ वितर्क जू जान—नी० हि०।

उदाहरण।

हियो हरे लेती पसुपच्छी बस करे लेती छिनौ बिछुरे तें[१] छिदि छिदि उठैं छतियाँ[२]।
सुनि सुनि मोही हौं न[३] जानति हौं कोही अब ओही रूप रहौ[४] अवरोही[५] दिन रतियाँ।
पलौ ना[६] परत मौन मान को करै री कौन भूल्यो भौन गौन नई लोक लाज घतियाँ[७]।
मेरे मन आवत मुनिन मन[८] मोहिबे को मोहनी के मंत्र हैं री मोहन[९] की बतियाँ॥३४॥

[१] बिछुरे ही—भा०सा०। [२] लेत छीन छतियाँ—का०। [३] हिय—भा०। [४] रही—नी० हि०। [५] अतिरूही—का०। [६] रह्यो न—भा सा०। [७] ज्ञान भूलो जात भई लोक छलियाँ—नी०, ज्ञान भूलो जात भई लोक लाज मतियाँ—हि०। [८] मही के मन—नी० हि०। [९] मोहिनी—भा० सा०।

आक्षेप और उदात्त-लक्षण।

करत कहत कछु वस्तु को[१] वर्नन है[२] आक्षेप।
उदात्त मैं[३] अति वरनिये संपति दुति अवलेप॥३५॥

[१] फेर सों—भा० सा०। [२] वर्जन वच—भा० सा०। [३] ये—नी० हि०।

आक्षेप-उदाहरण।

नूतन गुलाल[१] नूत मंजरी की मालनि सौं कीजे गजमुख सनमुख सनमान कौ।
करिहैं[२] सकल सुख विमुख वियोग दुख न्यारे जनि जानौ प्यारे प्यारी हू के प्रान कौ[३]।
बायैं बोलैं मोर पिय सोर[४] करैं सामुहेहूँ दाहिने सुनो जु मत्त मधुकर[५] गान कौ।
सगुन भले हैं चलिबे को जो चलौ हौं कंत[६] आर्वत बसंत कंत[७] करिये पयान कौ॥३६॥

[१] गुलाब—का०। [२] करिकै—नी० हि०। [३] जानिये न प्यारे ये हमारे प्रिय प्रान को—भा० सा०। [४] सगुन भले पै बोलै मोर—नी० हि०। [५] भौंर भीर—नी० हि०। [६] चलौ चितु—भा० सा०। [७] चित—नी० हि०।

उदात्त-उदाहरण।

बाल को न्योति बुलाइबे को बरसाने लौं हौं पठई नँदरानी।
श्री बृषभानु की संपति देखि थकी गति औ मति औ अति बानी[१]।
भूलि परी मनि मंदिर[२] में प्रतिबिंबन देखि विसेष भुलानी।
चारि घरी लौं चितौत चितौत मरू करि चंदमुखी पहिचानी॥३७॥

[१] अति ही गति औ मति बानी—भा०, अति ही मति औ अति बानी—का०। [२] रंग मंदिर—नी० हि०।

दीपक-लक्षण ।

अरथ कहै एकै क्रिया जहाँ आदि मधि अन्त ।
अथवा जहँ प्रतिपद क्रिया दीपक कहत सु संत ।।३८।।

उदाहरण ।

मोहि लई लखि कै हिरनी[१] हरि नीरज सी बड़री अंखियानि सों ।
सारिका सारसिका रसिका सु[२] कपोत कपोती पिकी मृदुबानि सों[३] ।
देव कहैं सब भूप सुता अनुरूप अनूपम[४] रूप कलानि सों ।
गोप वधू[५] विधु से मुख की, मधुसूदन वा मधुरी[६] मुसक्यानि सों ।।३९।।

[१] हिरनी लखि कै—भा० सा० । [२] सार सुवा सो कपोती—नी० हि० । [३] हू सुवारे सुबानि सों—नी० हि० । [४] अरूपक—हि० । [५] पै न बधू—सा०, गोप सुता—का० । [६] घन सुन्दर हेरि हरी—भा०, घन सुन्दर मंद मुरे—सा० ।

अपह्नुति-लक्षण ।

मन को अरथ छिपाइ कै[१] औरै अर्थ प्रकास ।
देव कहै कीजै तहाँ नाम अपन्हुति तास[२] ।।४०।।

[१] छिपाइये—भा० सा० । [२] श्लेष वचन काकु स्वरनि कहत अपन्हुति तास—भा० सा० ।

उदाहरण ।

हौंही हौं और कि ये सब और कि डोलत आजु को औरै समीरौ ।
याते इन्हें तन ताप[१] सिरात पै मेरे हिये न थिरातु है धीरौ ।
ये कहैं[२] कोकिल कूक भली सु तौ[३] कान सुने जम[४] आवत नीरौ ।
लोग ससी को सराहत हैं[५] तब ताहू लगै सखी साँचेहू सीरौ ।।४१।।

[१] सनताप—नी० हि० का० । [२] कही—नी० हि० । [३] मुहि—भा० सा० । [४] परे-जनु—नी० हि० । [५] री—भा०, है री—सा० ।

श्लेष-लक्षण ।

जहाँ कवित्त के पदँन मैं[१] उपजै अन्त अनन्त ।
अलंकार अश्लेष सो[२] बरनत हैं मतिमन्त[३] ।।४२।।

[१] जहाँ काव्य के पदन मैं—भा०, जो है काव्य कछून मैं—सा० । [२] सब—नी० हि० [३] बरनत संत विहंत—नी० हि०, बरनि कहैं मतिमंत—का० ।

उदाहरण ।

ऐसी गुनी गरे लागत ही न रहै तन मैं सनताप[१] री एकौ ।
देव महारस वास निवास[२] बड़ो सुख वा उर वास किये को[३] ।
रूप निदान अनूप विधान सु प्राननि कौ फल जासो जिये को[४] ।
साचेहूँ है[५] सखी नन्दकुमार कुमार नहीं यह[६] हार हिये को ।।४३।।

[१] तनताप—हि० । [२] अवास—का० । [३] बड़ो मुख जो सुख जा उर वास किये को—हि० । [४] मूरतिमंत वसंत विलास बढ़ावत ही मैं हुलास हिये को—का० । [५] साँचेहूँ री

—हि० । [६] सखि—सा० ।

अर्थान्तरन्यास-लक्षण ।

उक्त[१] अर्थ दृढ़ करन को वाक्य जु कहिये और[२] ।
अर्थान्तर को न्यास सो अलंकार सिरमौर[३] ।।४४।।

[१] युक्त—भा० । [२] आनै अर्थ जु और—का० । [३] सो अर्थान्तर न्यास कहि बरनत बस कवि रस भौंर—सा०, सो अर्थान्तरन्यास कहि बरनत रस बस भौंर—भा० हिं० ।

उदाहरण ।

चैन के ऐन[१] ये नैन निहारत मैन के को[२] कर मैं न परै री ।
तापर नैसिक अंजन देत निरंजन ह्वै के हिये कौ हरै री ।
साधुओ होहि असाधु कहूँ[३] कवि देव जो कारे के संग परै री ।
स्याह हियो[४] अरु स्याम[५] सुतौ[६] सखी आठहू जाम कुकाम[७] करै री ।।४५।।

[१] राय—हि० । [२] कोउ—भा०, क्यों—का० । [३] कोऊ—हि० । [४] स्याह रह्यो—हि०, स्याही रह्यो—भा०, स्याही भरो—का० । [५] स्याह—भा० सा० हि० । [६] सखा—हि० । [७] अकाम—का० ।

अप्रस्तुतप्रशंसा और व्याजस्तुति-लक्षण ।

जहाँ सु अप्रस्तु अस्तुति निंदा की अचान[१] ।
निंदा अप्रस्तुत करै जहाँ[२] सो व्याजस्तुति जान ।।४६।।

[१] अप्रस्तुति ता स्तुतिल निंद अचान—सा० । [२] निंदै और जहाँ सराहिये—भा० सा० ।

अप्रस्तुतप्रशंसा-उदाहरण ।

बड़भागिनि येई विरंचि रची न इतौ[१] सुख आन कहूँ[२] तिय के ।
बिछुरै न छिनौ भरि बालम तें कवि देव जू संग रहै[३] जिय के ।
तृन[४] चारु चरै रुचि सों चहूँ ओर चलै चितवै सुचि सों[५] हिय के ।
सब तें सब भाँति भली हरिनी निसि वासर पास[६] रहै पिय के ।।४७।।

[१] रुष तो—हि० । [२] किहूँ—का० । [३] बीच बसै—का० । [४] बन—हि० । [५] सुव सों—हि० । [६] संग—का० ।

व्याजस्तुति-उदाहरण ।

को हमको तुमसे तपसी बिनु जोग सिखावन आइहै[१] ऊधौ ।
पै यहि पूछिये जू[२] उनको सुधि पाछिली[३] आवति है कबहूँ धौ ।
एक भली भई भूप भये अरु भूलि गये दधि माखन दूधौ ।
कूबरी सी अति सूधी वधू को मिल्यौ वर देव जू स्याम सो सूधौ[५] ।।४८।।

[१] आए है—हि० । [२] अब एती कहौ—का० । [३] पाछिली सुधि—का० । [४] जउ—का० । [५] वर पायो त्रिभंगीयै स्याम सो सूधो—का०, कहु पायो भलो घनस्याम सो सूधो—हि० ।

आवृत्तिदीपक-लक्षण ।

आवृत्ति दीपक भेद कै ताहू त्रिविधि बखान ।
आवृति अर्थावृति अरु परपदार्थावृति जानु[१] ।।४६।।

[१] वृत्ति अर्थ आवृत्ति अरु पद पदार्थ जुत जान—हि० ।

उदाहरण ।

बेलि लसै बिलसै नव[१] पल्लव फूल[२] खिले उखिलै[३] नव[४] कोरै ।
मोरत[५] मन को गान अलीन के कूकि पिकी मुनि कौ मन मोरै ।
डोलत पौन सुगंध ललै[६] अरु मैन के बान सुगंध के डोरै ।
चंचल नैननि सों तरुनी अरु नैन कटाछनु सों चितु चोरै ।।५०।।

[१] बन—का० । [२] भूलि—का० । [३] नखिलै—भा० । [४] मोरन—हि० । [५] चलै—भा०, तलै—हि०, मलै—'म' हाशिये पर—का० ।

निदर्शना-लक्षण ।

औरै वस्तु बखानिये फल तब ताहि[१] समान ।
जहाँ दिखाइये और कहि ताहि निदर्शन जान[२] ।।५१।।

[१] फूलत ताहि—सा० । [२] जहां दिखाइय निदरसन कहत सु ताहि सुजान—का०, जहां दिखाइय और कह ताहि निदर्शन ज्ञान—हि० ।

उदाहरण ।

देखिबे को जिनको दिन राति रहैं उर मैं अति आतुर ह्वै हरि ।
कोरि उपाइन पाइये जे न रहे जिनके बिरहज्वर सों जरि[१] ।
पार न पैयतु[२] आनंद कौ तिनि आनि भटू उठि भेंटे[३] भुजा भरि ।
जानि परै नहिं देव दया विष देत मिली विषया जु मया करि[४] ।।५२।।

[१] खाइ पियै न कहै न सुनै अकुलाइ महा विरहज्वर सों जरि—का० । [२] पाइये पार न—का० । [३] अबहीं तिन्ह आइकै भेंटे—का०, उठि भेंटि भटू सु—हि० । [४] भातिन भाग वही मन भावती मीत मिलै जु दया करि—का० ।

विरोध-लक्षण ।

जहाँ विरोधी पदारथ[१] मिलैं[२] एकही ठौर ।
अलंकार सु विरोध बिनु विष पियूष विष कोर[३] ।।५३।।

[१] पद अरथ—हि० । [२] होंहिं—का० । [३] हैं बरनत कवि सिरमौर—का०, यह विषय पूष विष कोर—हि० ।

उदाहरण ।

आयो बसंत लग्यो बरसावन नैननि तें सरिता उमहै री ।
कौ लगि जीव छिपावै छपा मैं छपाकर की छवि छाइ रहै री ।
चंदन सों छिरके छतियाँ अति आगि उठै दुख[१] कौन सहै री ।
सीतल मंद सुगंध समीर बहै दिन दूगनी देह दहै री[२] ।।५४।।

[१] उर—का० । [२] देव जू सीतल मंद सुगंध सु 'गंधवहौ लगि देह दहै री—भा० ।

परिवृत्त-लक्षण ।

जहाँ वस्तु[१] वरनति पदनि[२] फिरि आवतु[३] है अर्थ ।
ताही सो परिवृत्त कहि बरनत सुमति समर्थ ॥५५॥

[१] भाव—का० । [२] विषय—का० । [३] आनतु—सा० ।

उदाहरण ।

केवली[१] समूढ़ लाज ढूँढ़त[२] ढिठाई पैयै[३] चातुरी अगूढ़ गूढ़ मूढ़ता[४] के खोज हैं ।
सोभा सील[५] भरत अरति[६] निकरत सब मुरि[७] चले खेल पुरि[८] चले चित्त चोज हैं ।
हीन होति कटि तट पीन होत जघन सघन सोच लोचन ज्यों नाचत सरोज हैं[९] ।
जाति लरिकाई तरुनाई तन आवत सु[१०] बैठत मनोज देव[११] उठत उरोज हैं ॥५६॥

[१] कै चली—हि० । [२] ऊढ़ती—सा० । [३] पाइ—सा० । [४] गढ़त—का० । [५] साल—हि० । [६] अरत—हि०, अरुति—सा० । [७] मुहि—भा० । [८] जुरि—का०, पुर—हि० । [९] खीन होति कटि तब पीन होत जघन वदेत सुख नैन लेत उपमा सरोज हैं—का० । [१०] है—का० । [११] है री—हि० ।

हेतु और रसवत-लक्षण ।

हेतु सहित जहँ अरथ पद[१] हेतु बरनिये सोइ ।
नौहू रस मैं सरसता जहाँ सु रसवत होइ[२] ॥५७॥

[१] बरनिये—का० । [२] अधिक सरस जो बरनिये सो रसवत होइ—का० ।

हेतु-उदाहरण ।

देव यहै दिन राति कहै हरि कैसेहूँ राधे सो[१] बान कहैबी ।
केलि के कुंज अकेली मिले कबहूँ भरिकै भुज भेंटि न पैबी ।
आठहू सिद्धि नवो निधि की निधि है बिरची बिधि सान्निधि ऐबी[२] ।
मेटि वियोग समेटि हियो भरि भेंटि कबै सुखचन्द अँचैबी ॥५८॥

[१] वापर—का० । [२] छोरि छिपाइ बिछोरि बिछोह छिनो छतिया तिया सों छवैबी—का० । [३] चूमि सो चंपक सी चिबुकै कर चाँपि कै मुखचन्द अँचैबी—का० ।

रसवत-उदाहरण ।

बेली नबेली लतानि सों केलि कै प्रात अन्हाइ सरोवर पावन ।
पिंजर मंजरिका छहराइ[१] रजच्छत छाइ छपाइ छपावन ।
सीतल मंद सुगंध महा वपुरे विरही वपुरीनि तपावन ।
आजु को आयो समीर सखी री सरोज कँपाइ करेजो कँपावन ॥५९॥

[१] जछराइ—सा० । [२] जुवरैनि तपावन—सा०, बिरहीनि तपावन—हि० ।

ऊर्जस्वल और सूक्ष्म-लक्षण ।

अहंकार गर्वित वचन सो ऊर्जस्वल होइ[१] ।
संज्ञा सों प्रगटै अरथ सूछम कहिये[२] सोइ ॥६०॥

[१] जहाँ सु ऊरज होइ—का०, ऊर्जस्वत सो होइ—हि० । [२] बरनहु सूछम—का० ।

ऊर्जस्वल उदाहरण ।

देव दुरंत दवा[१] अँचयो जिहि कालिय कीलै[२] धर्‌यो सु वहै है ।
कौ लौं बकौ हौं बकी बक बच्छ अघादिक[३] को अँघु कै कै[४] अवैहै ।
कान्ह[५] के आगे न काहू को कोप कहूँ कबहूँ निबह्यो न निबैहै ।
छाँड़ि दै मान री मान कह्यो कहुँ भानु पै तेज कृसानु को रैहै[६] ॥६१॥

[१] दमा—सा०, दमी—भा० । [२] केलि—का०, कील—हि० । [३] बक बछ नघारक—हि०, बकबक्ष अघारिक—भा० । [४] कै को—सा० । [५] कोप—हि० । [६] भानु को तेज कृसानु कै रहै—भा० ।

सूक्ष्म-उदाहरण ।

बैठी बहू गुरलोगनि में लखि लाल गये करि के कछु ओल्यो[१] ।
ना चितई न भई तिय चंचल देव इतै न उतै[२] चित डोल्यो ।
चातुर आतुर जानि उन्हैं[३] छलही छल चाहि सखीन[४] सों बोल्यो ।
त्योंही[५] निसंक मयंकमुखी दृग मूँदि कै घूँघट को पट[६] खोल्यो ॥६२॥

[१] बोल्यो—हि० । [२] उनतें—भा० । [३] ज्ञान वहै—का० । [४] सखान—हि० । [५] सौंही—हि० । [६] तें मुख—का० सा० ।

प्रेय और क्रम-लक्षण ।

कहिये जो अति प्रिय वचन प्रेय[१] बखानौ ताहि ।
उपमा अरु उपमेय को क्रम सु क्रमोक्ति आहि[२] ॥६३॥

[१] प्रेम—भा० । [२] सु कहै क्रम जाहि—का०, क्रम सु क्रमोक्ति जु आहि—हि० ।

उदाहरण ।

केस भाल भृकुटि[१] नयन श्रुति औ कपोल नासिका अधर दंत[२] चिबुक बिचारिये ।
कंठ कुच नाभी त्रिवली औ रोमावली कटि भुज कर जानु पग प्यारी के निहारिये ।
कुहू[४] तम चंद चाप खंजन कनक पुट पत्र सुक बिंब मोती चंपकली[५] वारिये ।
कंबु[६] निंबु कूप नदी सैवाल मृनाल लता पल्लव कदलि कंज चेरे करि डारिये ॥६४॥

[१] त्रिकुटी—सा० । [२] देत—भा० । [३] त्रौली रोमावली और—भा० । [४] कहूं—भा० । [५] कुंद कली—का० । [६] कुच—हि० ।

समाहित-लक्षण ।

जहँ कारज कर्तव्य को साधन विधि बल होइ ।
अकस्मात ही देव कहि कहौ समाहित सोइ ॥६५॥

उदाहरण ।

गुनगौरि कियो गुरु मान सु मैन लला के हिये लहराइ उठ्यो ।
मनुहारि के हारी सखीगन[१] रँगभौनहि तें[२] भहराइ[३] उठ्यो ।
तब लौं चहुँधाई घटा घहराइ कै बिज्जु छटा छहराइ उठ्यो ।
कवि देव जू भाग तें भावती को भय तें हियरा हहराइ उठ्यो ॥६६॥

[१] सखी गुन—भा० सा० । [२] रँगभौनहि मैं—हि० । [३] हहराइ—सा० । [४] झहराइ—सा०

तुल्ययोगिता-लक्षण ।

जहँ सम करि गुन दोस कै[1] कीजै वस्तु बखान।
स्तुति निंदारथ[2] जहाँ तहाँ[3] तुल्ययोगिता जान ॥६७॥

[1] समान करि उत्कर्ष गुन—का० ।[2] स्तुतिन पदारथ कौ—भा० ।[3] तहाँ ही—हि० ।

उदाहरण ।

एक तुही बृषभानसुता अरु तीनि हैं[1] वै जु समेत सची हैं।
देवी रमा[2] कवि देव उमा ये त्रिलोक मैं रूप की रासि मची हैं।
औरन केतिक राजन के कविराजन की रसना पै[4] नची हैं।
पै[5] वर नारि महा सुकुमारि ये चारि विरंचि विचारि रची हैं ॥६८॥

[1] तीयन है—हि० । [2] उमा—का० । [3] रमा—का० । [4] रसना यै—भा० । [5] यै—हि० । [6] चारु—का० । [7] विचारि विरंचि—हि० ।

श्लेष-लक्षण ।

प्रगट अरथ[1] जु लेस करि कीजे ताहि निगूढ़।
लेस कहत तासों सुकवि जे बुधि बल आरूढ़[2] ॥६९॥

[1] अर्थ जु प्रगटै—का० । [2] सु अगूढ़—हि० ।

उदाहरण ।

बाल बिलोकत ही झलकी सी[1] गुपाल गरै जलबिंदु[2] की मालैं।
आपुस मैं मुसक्यानी सखी हरिदेव[3] जु बात बनाइ बिसालैं।
साँप ज्यों पौन गिलै[4] उगिलै विष ज्यों रवि ऊषम[5] आगि[6] उगालै।
जात घुस्यो[7] घर ही में घने तप छीन भयो[3] तनु घाम के घालै ॥७०॥

[1] सो—सा०, जु—का० । [2] अरविंद—हि० । [3] सब देव—का० । [4] पौ निगलै—हि० । [5] विष ग्रीषम ज्यों रवि—का० । [6] आनि—भा० । [7] घन्यो—का० । [7] तपघी उभयो—हि० सा०, तप घीन भयो—भा० ।

भाविक-लक्षण ।

भूतरु भावी[1] अरथ को बर्तमान सु बखान[2]।
भाविक वस्तु गंभीर को सोई भाविक जान[3] ॥७१॥

[1] भूतहु भावी—हि०, भूत भाविक—का० । [2] जहँ कवि करत बखान—का० । [3] कै गंभीर जो वस्तु को भाव सो भाविक ज्ञान—का० ।

उदाहरण ।

जा दिन तें बृजनाथ[1] भटू इह गोकुल तें मथुराहि गये हैं।
छाकि रही तबतें छबि सो[2] छिन छूटति ना छतिया में छये[3] हैं।
वैसिय भाँति निहारति हौं हरि नाचति कालिंदी कूल ठये हैं।
शत्रु संहारि कै छत्र धरयो सिर देखति द्वारिकानाथ भये हैं ॥७२॥

[1] जदुराइ—हि० । [2] छवि सें तब तें—का० । [3] गए—हि० ।

गंभीरोक्ति-उदाहरण ।

सबही के मनो मृग वा गुरजे[१] दृग मीनन को गुन[२] जाल[३] लिये ।
वसुधा सुख[४] सिंधु सुधारस[५] पूरन जात[६] चले दृग की गलिये ।
कवि देव कहै एहि भाँति उठी कहि काहू की कोई कहूँ अलिये ।
तबलौं[७] सबही यह सोर परचो कि चलौ[७] चलिये जु चलौ चलिये ।।७३।।

[१] उरियै—को० । [२] दुति—का० । [३] जानि—हि० । [४] बसुधा धर—हि० । [५] सुधा-धर—का० । [६] जीति—हि० । [७] तब तौ—हि०, तब ही—का० । [८] कब लौं—का० ।

संकीर्ण और आशिष-लक्षण ।

अलंकार जामें बहुत सो संकीरन[१] होइ ।
चाह चित्त[२] अभिलाष को[३] आसिख बरनै सोइ ।।७४।।

[१] संसरता—सा० । [२] प्रारथना—का०, चारु चित्त—हि० । [३] की—हि० सा० ।

संकीर्ण-उदाहरण ।

डोलति है जहँ काम लता[१] सु लची कुच गुच्छ[२] दुरूह दुधा की[३] ।
कौंलसनाल कि बाल[४] कै हाथ छिपी कटि[५] काँति की[६] भाँति मुधा की[७] ।
देव यही मन आवति है सविलास वधू विधि है बहुधा की[८] ।
भाल[९] गुही मुक्तालर माल[१०] सुधाधर मैं मनो धार सुधा की ।।७५।।

[१] कोमलता—का० । [२] लचि कंचन गुच्छ—का० । [३] न कै बरुधा की—का०, दरूह उधा की—भा० । [४] कीधौं प्रवाल कि बाल—का० । [५] छपी करि—हि० । [६] कातिकी—सा० हि०, काँति कै—का० । [७] भुजा की—का० । [८] कि प्रकास रही तहि रासि प्रभा की—का० । [९] भाग—हि० । [१०] भाल में मोती की माल लसै—का० ।

आशिष-उदाहरण ।

भाग सुहाग भरी अनुराग सों राधे जू मोहन को मुख जोवै ।
भूषन भेष बनावै नये निंत सोतिन के चित वांछित खोवै ।
रोधन गोधन पुंज चरौ पय दास दुहौ दधि दासी बिलोवै ।
पूरन काम ह्वै[१] आठहू जाम जु स्याम की सेज सदा सुख सोवै ।।७६।।

[१] है—सा० का० ।

अलंकार ये मुख्य हैं इनके भेद अनंत ।
आन ग्रंथके पंथ लखि[१] जानि लेहु[२] मतिमंत ।।७७।।

[१] मतन तें—का० । [२] जाहु—का० ।

अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार ।
ताते मोपर करि कृपा लैहैं सुमति सुधार ।।७८।।
या साहित्य समुद्र को बड़ेन न पायो पार ।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार ।।७९।।

द्योसरिया कवि देव को नगर इटाए बास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनों भाव विलास ।।८०।।

इति पंचम विलास ।

इति भावविलास ।।

रस विलास

प्रतियाँ : प्रतियों की बहिरंग परीक्षा : पाठ-संपादन में प्रयुक्त 'रसविलास' की विभिन्न प्रतियों का विवरण इस प्रकार है :

१ ब्र०—अर्थात् श्री ब्रजवल्लभ की प्रति : यह प्रति काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के संग्रह में है। सभा के सूचीपत्र में इसकी संख्या ४९७।१२ है। प्रति लगभग १३ इंच लम्बी तथा ७ इंच चौड़ी है। प्रति में १०६ पत्र तथा प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पंक्तियाँ हैं। इसके अक्षर आकार में साधारण से अधिक बड़े हैं। इसकी प्रतिलिपि भरतपुर के श्री ब्रजवल्लभ ने संवत् १८९७ में अपने लिए की थी। यत्र-तत्र प्रति में पहले के पाठ पर हरताल फेरकर पाठ-संशोधन भी किया गया है। ध्यान से परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि प्रति में पीली तथा गेरुए वर्णों की हरताल का प्रयोग हुआ है। इनमें से पीली हरताल का उपयोग प्रतिलिपिकार ने तथा गेरुए रंग की हरताल का उपयोग किसी अन्य संशोधनकर्ता ने किया है। इस प्रति के षष्ठ विलास में भा० मो० शाखा की किसी प्रति से पाठान्तरों की तुलना तथा पाठ-संशोधन हुआ है। ऐसे सभी पाठ-संशोधन गेरुए रंग की हरताल की सहायता से हुए हैं। प्रति में आठ विलास तथा भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द मिलते हैं। प्रति की अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री रस विलास सम्पूर्ण संवत् १८९७ मिती आसाढ़ कृष्ण १ भौम वासरे लिष्य कृतं ब्रजवल्लभ बहस्ते स्वातम पठनार्थम् भरतपुर मध्ये राज्ये बलवंत सिंघजी शुभं। श्रीरस्तु"

प्रति का पाठ अत्यन्त विश्वसनीय है।

२ मो०—अर्थात् मोहनजी की प्रति : यह प्रति भी नागरी-प्रचारिणी सभा के संग्रह में है। इसकी सूचीपत्र-संख्या ४९६।१२ है। प्रति में कुल ४० पत्र हैं तथा प्रत्येक पृष्ठ पर २१ पंक्तियाँ हैं। प्रति की लम्बाई लगभग १२ इंच तथा चौड़ाई लगभग ८ इंच है। संवत् १८८१ में बालमुकुन्द मिश्र ने मोहनजी फौजदार के निमित्त यह प्रतिलिपि तैयार की थी। इस प्रति में अनेक स्थलों पर पाठ के एकाध वर्ण प्रमादवश छूट गए हैं। भोगीलाल-सम्बन्धी छन्द तथा अष्टम विलास इस प्रति में नहीं है। अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री रस विलास कवि देवदत्त कृतौ सकल वियोग दसा वर्णनो नाम सप्तमो विलासः ७ मिती श्रावण वदि २ भौमवासरे संवत् १८८१ पोथी फौजदार श्री मोहनजी : लिखितं मिश्र बालमुकुन्दजी : शुभं भवतुः श्री ।।"

प्रति का पाठ सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

३ भा०—अर्थात् भारतजीवन प्रेस द्वारा प्रकाशित 'रस विलास' का संस्करण : सन् १९०० में भारतजीवन प्रेस के संचालक श्री रामकृष्ण वर्मा ने 'रस विलास' का स्वसंपादित संस्करण प्रकाशित किया था। मो० प्रति के समान इस प्रति में भी भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द तथा अष्टम विलास नहीं है। मुखपृष्ठ पर ज्ञापित सूचना के अनुसार श्री वर्मा जी को यह ग्रंथ सिहोर-निवासी, गुजरात के प्रसिद्ध कवि श्री गोविन्द गीलाभाई की सहायता से प्राप्त हुआ था। श्री वर्मा जी ने अपनी आधार-प्रति के विषय में अन्य सूचनाएँ नहीं दी हैं।

सम्पादक ने अपनी ओर से पाठ में अधिक परिवर्तन नहीं किया है अतः इस संस्करण का पाठ भी विश्वसनीय है।

४ सा०—अर्थात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की हस्तलिखित प्रति : सम्मेलन-संग्रहालय के सूचीपत्र में इसकी संख्या १३४६।२११२ है। प्रति आकार में लगभग ७ इंच चौड़ी तथा १२ इंच लम्बी है। प्रति में केवल ३४ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर ३४ पंक्तियाँ हैं। प्रति जिल्दबंद नहीं है, यद्यपि पत्रों के फर्मे बगल से एक-दूसरे से सिले हुए हैं। अन्तिम पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि नागपुर-निवासी सीताराम ने बाजीराव भोंसले के समय में संवत् १८९२ में इसकी प्रतिलिपि की थी। इस प्रति में भोगीलाल-सम्बन्धी छन्द अधिक तथा अष्टम विलास मिलते हैं। प्रति में पंचम विलास के अन्त में पुष्पिका नहीं है किन्तु षष्ठ विलास में छन्दों का संख्या-क्रम १-२ से प्रारम्भ होता है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति रस विलास ग्रंथ सम्पूर्ण संवत् १८९२ सके १७५७ आषाढ़ कृष्ण तेरह त्रयोदसी शुभ वासरे भृगु वासरे सीताराम मोतीरामात्मज तेन स्वहस्तेन लिखित पठन पाठनार्थ आत्मा अर्थ परोपकारार्थ। मुकाम नागपुर सहर राजे बाजीवा भोंसले। सन् फसली १२४५।"

सा० प्रति का पाठ सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

५ नी०—अर्थात् नीलगाँव, जिला सीतापुर की अपूर्ण प्रति : इस प्रति के आरम्भ में ग्रंथ-नाम 'रस विलास' न होकर 'जाति विलास' है। मध्य के विलासों की पुष्पिका में ग्रंथ-नाम का उल्लेख नहीं है। मुझे यह प्रति राजा नीलगाँव के राजपुस्तकालय से प्राप्त हुई थी। प्रति आकार में लगभग १० इंच लम्बी तथा ७ इंच चौड़ी है। प्रति में कुल २१ पत्रे तथा प्रत्येक पृष्ठ पर २१ पंक्तियाँ हैं। प्रति का अन्तिम अंश खंडित होने के कारण इस प्रति के प्रतिलिपिकार का नाम, उसका स्थान अथवा प्रतिलिपि-संवत् इस प्रति में नहीं है परन्तु 'भाव प्रकाश' तथा 'उमराव कोष' आदि जिन अन्य ग्रंथों के साथ यह प्रति एक जिल्द में बँधी है उनमें से अन्तिम, 'उमराव कोष' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि श्री गौरीशंकर दुबे ने संवत् १९४३ में इन सभी ग्रंथों की प्रतिलिपि की थी। इस प्रति में पाठ केवल 'केरल वधू' ५:४७ तक मिलता है। भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द इस प्रति में नहीं हैं।

प्रति का पाठ अत्यन्त विश्वसनीय है।

६ गं०—अर्थात् श्री ब्रजराज पुस्तकालय, गंधौली, जिला सीतापुर की हस्तलिखित प्रति : 'रस विलास' की यह प्रति आकार में लगभग १४ इंच लम्बी तथा ९ इंच चौड़ी है। पत्रों की संख्या ५१ तथा प्रति-पृष्ठ पंक्तियों की संख्या २२ है। प्रति 'रस सारांश'—दास, 'कोष'—ब्रजराज, 'उमराव कोष'—सुवंश, आदि ग्रंथों के साथ एक मोटे रजिस्टर में बँधी है। कहीं-कहीं पैंसिल से हाशिये पर पाठान्तर भी संग्रहीत हैं। गं० प्रति में पंचम विलास के अन्त में पुष्पिका नहीं है एवं षष्ठ विलास में छन्दों का संख्या-क्रम १-२ से प्रारम्भ नहीं होता। (देखें सा० प्रति का विवरण) अन्तिम पुष्पिका के अनुसार स्वयं युगलकिशोर मिश्र ने संवत् १९४२ में इस ग्रंथ की प्रतिलिपि की थी। ग्रंथ में भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द तथा अष्टम विलास मिलते हैं। प्रति की अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री नृप भोगीलाल हित बानी देव प्रकास रस विलास शृंगार रस नायिका नायक हाव भाव दस हाव वर्णनों नाम सप्तमो विलासः ॥७॥

समाप्त शुभमस्तु। श्री संवत् १९४२ चैत्र शुक्ल १३ शनौ। लिखितं मिदं पुस्तकं जुगलकिशोर मिश्रेण स्वार्थे।।"

गं० प्रति के पाठ में एकाधिक शाखाओं की अनेक प्रतियों से पाठ-मिश्रण हुआ है अतः यह प्रति अविश्वसनीय है।

७ गंजा—अर्थात् गंधौली की 'जाति बिलास' की अपूर्ण प्रति : इस प्रति के आदि में तथा मध्य में विलासों की पुष्पिका में ग्रंथ-नाम 'जाति विलास' दिया है। यह प्रति आकार में 'रस विलास' की गं० प्रति के प्रायः समान है। इस प्रति में ३० पत्र तथा प्रति-पृष्ठ पंक्तियों की संख्या १९ है। प्रति का अन्तिम अंश अपूर्ण होने के कारण प्रति में प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि-संवत् नहीं दिये हैं।

इस प्रति के पाठ में अन्य प्रतियों के पाठ का मिश्रण होने के कारण इस प्रति का पाठ भी अधिक विश्वसनीय नहीं है।

अन्य प्रतियाँ : 'रस विलास' की ऐसी प्रतियों का विवरण जिनका उपयोग ग्रंथ के पाठ-संपादन में आंशिक रूप में हुआ है अथवा जिन्हें अप्रयुक्त छोड़ दिया गया है, इस प्रकार है :—

८ आ०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय में इस पोथी की सूचीपत्र-संख्या १२२ है। प्रति कुल ४४ पत्रों की है तथा इसके प्रत्येक पृष्ठ पर ११ पंक्तियाँ हैं। प्रति का आकार लगभग १५ इंच तथा ४ इंच है। प्रति की अंतिम पुष्पिका खंडित होने के कारण प्रतिलिपिकार की असावधानी से वर्ण तथा मात्रा अनेक स्थलों पर छूट गए हैं। प्रति के पाठ में संशोधन भी कम हुआ है। हाशिये पर पाठान्तर भी एक-दो स्थलों पर ही है तथा हरताल का प्रयोग भी कम हुआ है। भा० मो० प्रतियों में तथा इस प्रति में पाठान्तर तथा पाठ-विकृतियाँ समान मिलने के कारण हमने इस प्रति का आंशिक उपयोग किया है।

संक्षेप में इस प्रति की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

आ० प्रति में भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द नहीं हैं परन्तु अष्टम विलास मिलता है। प्रत्येक विलास के अन्त में भोगीलाल के नाम सहित अधिक छन्द भी आ० प्रति में नहीं हैं तथा अष्टम विलास के अतिरिक्त किसी भी विलास के अंत की पुष्पिका में भोगीलाल का उल्लेख नहीं मिलता। प्रति में षष्ठ विलास के अंत में पुष्पिका नहीं दी है परन्तु इसके पश्चात् छन्दों का संख्या-क्रम १-२ से प्रारम्भ होता है। सप्तम विलास के आरम्भ में 'रानी राधा हरि सुमिरि' दोहा नहीं है यद्यपि अब तक प्रथम, द्वितीय आदि विलासों के आदि में यह दोहा आया है। इस प्रति में भोगीलाल का नामोल्लेख केवल अष्टम् विलास के प्रथम 'देव जिन्हें मिलि' छन्द में, अष्टम विलास के अंतिम दो छन्दों में तथा प्रति की अंतिम पुष्पिका में हुआ है।

इस विवरण से यह प्रगट है कि प्रति का षष्ठम विलास तक का पाठ भा० मो० प्रतियों की शाखा से एवं इस स्थल के पश्चात् ग्रंथ के अंत तक का पाठ ब्र०, गं०, सा० प्रतियों की शाखा की किसी प्रति से लिया गया है। इस प्रकार यह प्रति विभिन्न शाखाओं की प्रतियों से पाठ-मिश्रण द्वारा तैयार हुई है। पाठ-मिश्रण के आधार वाली इन दोनों ही शाखाओं की प्रतियों का संपादन-कार्य के निमित्त चयन हो चुका है अतः हमने आ० प्रति से पाठान्तर केवल द्वितीय

विलास के अंत तक दिया है यद्यपि हमने इसके आगे भी पाठान्तरों की तुलना करके देख लिया है।

९ आर०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की 'रसविलास' की प्रति : पुस्तकालय में प्रति की सूचीपत्र-संख्या ११५ है। प्रति आकार में लगभग ७ इंच लम्बी तथा ६।। इंच चौड़ी है। प्रति में ११४ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर १५ पंक्तियाँ हैं। प्रति बिलकुल आधुनिक है क्योंकि संवत् १९७७ में गं० प्रति से इसकी प्रतिलिपि हुई थी। गं० प्रति की सभी विशेषताएँ तथा पाठ-विकृतियाँ इस प्रति में मिलती हैं एवं गं० प्रति संपादन-कार्य में प्रयुक्त हुई है, अतः इस प्रति को महत्त्वहीन जानकर हमने छोड़ दिया है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—"समाप्तम शुभ-मस्तु। श्री संवत १९७७ श्रावण सुदि पूर्णिमा १५।।"

१० हिर०—अर्थात् हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद की 'रस विलास' की प्रति : प्रति आकार में लगभग १३ इंच लम्बी तथा ८।। इंच चौड़ी है। प्रति में ७९ पत्र तथा प्रति पृष्ठ ३२ पंक्तियाँ हैं। यह प्रति भी अत्यन्त आधुनिक है। प्रति के अन्तिम पृष्ठ पर प्रतिलिपिकार की टिप्पणी है, "नागरी-प्रचारिणी सभा ने हिन्दुस्तानी एकेडमी के निमित्त यह प्रतिलिपि कराई।" इस प्रति के पाठ की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि यह प्रति भी आर० प्रति की प्रतिलिपि है अतः इसे भी अनावश्यक जानकर छोड़ दिया गया है। इस प्रति की तथा आर० प्रति की अंतिम पुष्पिकाएँ बिलकुल समान हैं।

११ आजा०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की 'जाति विलास' की अपूर्ण प्रति : पुस्तकालय में प्रति की सूचीपत्र-संख्या ११७ है। प्रति में ५४ पत्र हैं तथा प्रति पृष्ठ पर पंक्तियों की संख्या १५ है। प्रति का आकार ७ इंच लम्बा तथा ६।। इंच चौड़ा है। प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि-संवत् यद्यपि प्रति में नहीं हैं परन्तु आर्यभाषा पुस्तकालय की देवकृत 'भाव-विलास'—सूचीपत्र-संख्या ११४, 'शब्द रसायन'—सूचीपत्र-संख्या ११२, ग्रन्थों की प्रतियों का लेख तथा आजा० प्रति का हस्तलेख एक ही है। इन पूर्वोल्लिखित प्रतियों की पुष्पिका में प्रति-लिपिकार का नाम बटुकप्रसाद कायस्थ है इसलिए आजा० प्रति के प्रतिलिपिकार भी यही सिद्ध होते हैं। आजा० प्रति अत्यन्त आधुनिक है। इस प्रति में गंजा० प्रति के समान केरल-वधू तक ही पाठ है। इस प्रति के पाठ की तुलना गंजा० प्रति से करने पर यह गंजा० प्रति की प्रतिलिपि सिद्ध होती है। गंजा० प्रति संपादन-कार्य में स्वीकृत हो चुकी है अतः आजा० प्रति का उपयोग नहीं किया जा रहा है।

१२ हिजा०—अर्थात् हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, की 'जाति-विलास' शीर्षक खंडित प्रति : हिजा० प्रति में ३९ पत्र तथा प्रतिपृष्ठ ३२ पंक्तियाँ हैं। प्रति आकार में १३ इंच लम्बी एवं ८।। इंच चौड़ी है। इस प्रति में भी गंजा० प्रति के समान केवल 'केरल वधू' तक ही पाठ मिलता है। हिर० प्रति के समान इस प्रति की प्रतिलिपि भी नागरी-प्रचारिणी सभा काशी, ने एकेडमी के लिए कराई थी। गंजा० प्रति की सभी पाठ-विकृतियाँ इस प्रति में मिलती हैं एवं गंजा० प्रति पाठ-संपादन के निमित्त स्वीकार हुई है अतः हमने इस प्रति को भी छोड़ दिया है।

प्रतियों की अंतरंग परीक्षा : भा० मो० प्रतियाँ : पाठ-विकृति

१ : १६ देवी।

"आठहू पहर कर आठो आठौ सिद्धि लिये **संकट में सेवक** सहाइ सदा दाहिनी।"

अर्थात् सिंहवाहिनी देवी सर्वदा अपने भक्तों के संकट में उनकी सहायिका होती है। भा० मो० प्रतियों में लेखन-प्रमाद से **सेवक मैं सेवक** पाठ है। 'सेवक मैं सेवक' का कोई संगत अर्थ नहीं है अतः 'संकट मैं सेवक' पाठ, जो 'सुखसागर तरंग' में १६ तथा २४६ संख्याओं पर आये इसी छन्द में भी मिलता है, यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ : २६ **धाय-लक्षण।**

"**वारे पालै** प्याइ पै स्यानी करै सिखाय।"

'वार' का अर्थ है बाल अर्थात् 'बालिका'—**वारेई** बैस बड़ी चतुरै हौ—।' जो स्त्री बालिका को पयपान करावे, उसे सिखा-पढ़ा कर सयानी बनावे, उसे धाय कहते हैं। भा० मो० प्रतियों में '**वारे पीछें**' पाठ है, जिससे 'बाल्यावस्था के पश्चात् जो अपना पयपान कराये—' आदि भ्रान्त अर्थ निकलता है।

१ : ३३ सखी नायक से।

"कुंजनि के कोरे **मनु** केलि रस बोरे लाल तालनि के खोरे बाल आवति है नित को।"

भा० मो० प्रतियों में प्रतिलिपिकार ने कदाचित् 'मनु' के 'मन' रूपान्तर को पाठ-विकृति जान कर '**मैन**' पाठ-संशोधन अपनी ओर से किया है। 'मैन केलि रस' पाठ असंगत है। कवि का अभीष्ट भाव है, 'मानो केलि-रस में निमज्जित होकर बाला कुंज में आती है।' 'काव्य रसायन' में ६ : ३४ संख्या पर भी '**मनु**' पाठ स्वीकृत है।

इसी छन्द के तृतीय चरण में 'थोरे थोरे **जोवन**' के स्थान पर भा० मो० प्रतियों में 'जवन' विकृत पाठ है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण विकृत माना गया है।

१ : ४४

"नन्द कुमार **उतै अति** ठाकुर राधे इतै अति ही ठकुराइनि।"

भा० मो० प्रतियों में '**इतै उतै**' पाठ है, तदनुसार चरण का अर्थ होगा, "नन्द कुमार यहाँ वहाँ ठाकुर हैं और राधिका यहाँ (—ही) अति ठकुराइन हैं।" इस पाठ की निरर्थकता स्पष्ट है।

१ : ४५

"श्री बृषभानु के भौन को **दीपक एई है** राधिका राजकुमारी।"

भा० मो० प्रतियों में विकृत पाठ है **दाइ कराइ है**। 'एई' से 'राई' पाठ-विकृति 'ए' के प्राचीन रूपान्तर में भ्रम होने से सम्भव है। सर्वथा निरर्थक होने के कारण हमने इस पाठ को विकृत माना है।

२ : २८

"सोने से सोहने गातन सोहै सुहागिनि की अति **सूही** सुहाई।"

'सूही' का अर्थ होता है लाल रंग की साड़ी। यहाँ चूनरी की ओर भी कवि का संकेत हो सकता है। भा० मो० प्रतियों में पहले आये 'सोहै' पाठ के कारण लेखन-प्रमाद से **'सोहै'** 'सुहाई' पाठ हो गया है। पद-विन्यास करने पर इस पाठ की असंगति प्रगट होती है।

२ : ३१ **तमोरिनि।**

"रंगित चोली तें ढोली खरी चुनि चाइ **सों गाँठि** उचेरि अमैठी।"

'चोली' पान रखने की डलिया को कहते हैं—"फेरि फेरि फननि फनीस पलटत जैसे **चोली** खोलि ढोली ज्यों तमोली पाके पान की"—गुमान। तमोलिन अपनी डलिया से पान की एक अच्छी ढोली चुनती है और पान निकालने के लिए काँसे की डोर का लिपटा हुआ सिरा खींचकर उसकी फेर खोलती है—इसी भाव को कवि ने 'चाइ सों गाँठि उचेरि अमैठी' शब्दों में प्रगट किया है। भा० मो० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर 'सों आछे' पाठ है। 'आछे' का अर्थ 'अच्छे' होने के कारण इस पाठ की चरण में संगति नहीं बैठती। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरंग' में २६८ संख्या पर आये इसी छन्द में भी मिलता है।

३ : ११

"...प्रेमररस पागी अनुरागी **सखियनि** मैं।"

प्रतिलिपिकार के दृष्टि-भ्रम से प्रथम चरण के 'रंग रखियनि में' पाठ पर जाने से भा० मो० प्रतियों में 'सखियनि' के स्थान पर 'रखियनि' पाठ मिलता है।

३ : १९

"राखै समाधान समाधान कै दिखैयनि को ईंगुर **सी अंगनि गुराई** है गँवारि में।"

भा० मो० प्रतियों में **'से अंगनि आँगुरी'** पाठ है। निरर्थक होने के कारण यह पाठ-विकृति अग्राह्य मानी गई है।

३ : ३३

"मोहे महा पन्नग अनेक **अग नग खग** कान दै दै कोल भील केते झीझि रहे हैं।"

योगिन ने अपने मंत्र-बल से अनेक विकराल सर्पों, पर्वतों तथा पक्षि-पल्लवों तक को वशीभूत कर लिया है। 'अग' तथा 'नग' समानार्थी शब्द हैं, दोनों ही का अर्थ है—'वृक्ष, पर्वत, सूर्य, साँप'। भा० मो० प्रतियों में वर्णों के विपर्यय से **'अनेक अनगन खग'** पाठ है। अनेक तथा 'अनगन' का अर्थ एक ही होने से हमने इस पाठ को वर्ण-विपर्ययजन्य पाठ-विकृति माना है। तुलना, "अग नग नाग नर किन्नर असुर सुर"—'सुमिलविनोद' ८ : २ : १।

४ : १०

"अनगिने दिनन अनूप दुति आनन की देखत ही **उपजै** अनूठो अनुराग है।"

भा० मो० प्रतियों में 'उपजै' के स्थान पर **'उपजत'** पाठ होने से चरण में एक वर्ण की नियम-विरुद्ध पाठ-वृद्धि होती है अतः हमने इस पाठ को भी विकृत माना है।

४ : २७

"आपने **ओक** रहै अवलोकि तिलोक की लीक की लीक सदा निरजोसी।"

'ओक' का अर्थ है 'घर'; उदा० संग 'ससोक बसी बन **ओक'**—काव्यरसायन ६:८६। परन्तु लेखन-प्रमाद से भा० प्रति में 'ऊकि' तथा मो० प्रति में **'ऊक'** पाठ मिलता है। कुलवती नायिका को प्रस्तुत संदर्भ में 'घर में' रहने के अर्थ में 'ओक' पाठ 'ऊक' अर्थात् 'उल्का' की अपेक्षा अधिक संगत है। 'ओक' से 'ऊक' पाठ-विकृति प्रतिलिपिकार के दृष्टिभ्रम से अथवा सामान्य लेखन-प्रमाद से सम्भव है।

५ : २

"जाति कर्म गुन देस अरु काल वहिक्रम जानु।
प्रकृति सत्व नायिका के आठौ **भेद** बखानु॥"

भा० मो० प्रतियों में रेखांकित स्थल पर **'आठौ बेद'** तथा ब्र० प्रति में 'आठौ अंग' पाठ है। इनमें से ब्र० प्रति की पाठ-विकृति पिछले विलास में नायिका के अष्टांग का वर्णन होने के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से हुई है। भा० मो० प्रतियों का 'आठौ वेद' पाठ भी अशुद्ध है क्योंकि वेदों की संख्या आठ नहीं है। कवि ने प्रस्तुत विलास में जाति, कर्म, गुण आदि जिन आधारों पर नायिका-भेद किया है, प्रस्तुत दोहे में कवि ने उनकी नामावली गिनाई है। इनकी संख्या भी आठ है अतः हमने यहाँ 'भेद' पाठ को मूल का माना है। भा० मो० प्रतियों की यह पाठ-विकृति प्रतिलिपिकार के सामान्य लेखन-प्रमाद से संभव है।

५ : १५

"काइक वाचिक पतिहि रति मनसा **उपजति** जुक्त।
गुप्त तजै कुल धर्म को सौ परकीया उक्त॥"

स्वकीया नायिका रति के अवसर पर तन, मन और वचन से अपने स्वामी में अनुरक्त होती है परन्तु परकीया तन-वचन से अपने पति के लिए अनुराग प्रगट करते हुए भी मनसे किसी अन्य पुरुष में लिप्त होती है। इस संदर्भ में 'उपपति जुक्त' पाठ संगत है किंतु 'जुक्त' के नैकट्य के कारण लेखन-प्रमाद से 'उपपति' के स्थान पर भा० प्रति में **'उपजत'** तथा मो० प्रति में **'उपजिति'** पाठ मिलता है। ये दोनों ही पाठ निरर्थक होने के कारण पाठ-विकृति की कोटि में आते हैं।

५ : ४३

"**बोलनि चालि** बिलोकनि सों दिन ही दिन दूगुन नेह बढ़ावै।"

अर्थात् मालवदेश की सुन्दरी स्त्री अपनी मधुर वाणी, अपनी सुंदर चाल तथा अपनी मनोहारी चितवन से दर्शक के मन में दिन-प्रतिदिन दूना स्नेह उत्पन्न करती है। 'बोलनि' पाठ इस प्रकार संगत है; परन्तु लेखन-प्रमादवश मात्रा छूट जाने से भा० मो० प्रतियों में **बेलनि चालि**' पाठ मिलता है। यह पाठ किसी प्रकार भी संगत नहीं है।

५ : ५९

"काम हय **मन्दरा** सी देव काम कंदरा सी इंदिरा को मंदिर सु सुंदरी सुवीर की।"

'मन्दरा' एक प्रकार के वाद्य-यंत्र का नाम है—"मंदरा तबल सुमरु खंजरी ढोलक धामक"—सूदन। हिन्दी-शब्द-सागर में ही 'मंदिरा' का अर्थ 'मंजीर' दिया है। अस्तु। वाद्य यंत्र के अर्थ में उद्‌धृत चरण का 'मंदरा' पाठ संगत है परन्तु भा० मो० प्रतियों में प्रति-लिपिकार ने कदाचित् 'मंदरा' को निरर्थक जानकर इसके स्थान पर '**सुंदरा**' पाठ अपनी ओर से रख दिया है—'सुंदरी' पाठ वह आगे आकारान्त 'कंदरा' शब्द होने के कारण नहीं रख सका। 'सुंदरा' पाठ निरर्थक होने के कारण पाठ-विकृति की कोटि में आता है।

६ : २९

"ऐसी तरुनाई आई ता सुरतरंगिनि सों सिसुता ज्यों **सूरसुता** मिलि चली चपि कै।"

वय प्राप्त करने पर मुग्धा नायिका के शरीर में तरुणाई का संचार होता है तो ऐसा लगता है जैसे शिशुता-रूपी गंगा से तरुणाई-रूपी सूर्यसुता यमुना का संगम हो रहा हो। आलोच्य स्थल पर भा० मो० प्रतियों में प्राप्त '**सूरासत**' पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत है।

६ : ५०

"तिनके लच्छन भेद सब जानहु **नाम** समान।
है प्रसिद्ध संसार में जाति सुभाइ प्रमान॥"

यहाँ 'नाम समान' से कवि का तात्पर्य इस दोहे से ठीक पहले आये सत्त्व भेद दोहे में प्रयुक्त खर, कपि, काग आदि संज्ञाओं से है परन्तु मो० प्रति में लेखन-प्रमाद से '**नीम**' तथा भा० प्रति में संपादक अथवा प्रतिलिपिकार द्वारा इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण '**नीव**' पाठ मिलता है। प्रसंगानुसार ये दोनों ही पाठ असंगत हैं।

७ : १६

"औचक ही **ऐंचि कै** निसंक भरि अंक प्यारी **पारी परजंक सो ससंक** अकुलाति है।"

भा० मो० प्रतियों में चरण का पाठ विकृत रूप में इस प्रकार मिलता है—"औचक ही **औच कै** निसंक भरि अंक प्यारी **पाटी परजंक साँस सकि** अकुलाति है।" 'औंच कै' पाठ-विकृति 'औचक ही' पाठ के कारण लेखन-प्रमाद से हुई है। 'औचक ही' का समानार्थी होने के कारण इन प्रतियों का यह पाठ अग्राह्य है। इसी प्रकार 'सकि' अर्थात् सशंकित होने एवं अकुलाने के परस्पर-विरोधी भावों का एक समय पर होना असंगत है, अतः हमने 'साँस सकि' पाठ को भी

विकृत माना है। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरंग' में भी ७४१ संख्या पर इसी छन्द में मिलता है।

७ : ६२

"घोर लगै घर बाहरिहू डर नूत पलास **लगैं पजरे से।**"

चरण के डर, नूत आदि शब्द वृक्षवाची हैं; देखें—"चंपक दाड़िम नूत महाडर पाडर डार डरावनी फूली।" ध्यान रहे कि इन दोनों ही स्थलों पर भय के अर्थ में डर शब्द नहीं आया है क्योंकि पहले उद्धृत चरण में इसी अर्थ में 'घोर' तथा द्वितीय चरण में 'डरावनी' शब्द हैं ही, अतः मेरे विचार से 'डर' का अर्थ भय मानना अनुचित होगा। 'नूत' शब्द भी न तो 'नवीन' के अर्थ में आया है, जैसाकि पंडित कृष्णविहारीजी का विचार है ('देव और बिहारी, पृष्ठ २७४) और न यह आम्रवाची ही है, जैसा कि मिश्रबंधु मानते हैं ('देव-सुधा', पृष्ठ १२८)। मेरे विचार से संस्कृत के 'नुत्त' अथवा 'नूद' से 'नूत' शब्द की व्युत्पत्ति सम्भव है। मॉनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत-अंग्रेजी कोष में 'नुत्त' का अर्थ 'एक प्रकार का वृक्ष' तथा 'नूद' का अर्थ 'शहतूत का एक भेद' दिया है। शहतूत का फल जब पककर कुछ काला होता है तो शहतूत का वृक्ष वास्तव में जला हुआ-सा मालूम देता है। पलाश के फूलने पर उसकी लाली सर्वप्रसिद्ध है; अनेक कवियों ने जलते अंगारों से इसकी समता की है। (स्मरण रहे कि शहतूत तथा पलाश के वृक्ष प्रायः एक ही ऋतु में फलते-फूलते हैं।) कवि कहता है कि ये वृक्ष प्रज्वलित हुए-जैसे दिखलाई देते हैं। 'पजरे' यहाँ 'जले हुए, प्रजज्वलित हुए' के अर्थ में आया है। ('ज्यों पजरे पर लोन।') भा० मो० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'लगै उजरे से'** पाठ मिलता है। लाल पलास का 'उजरे' दिखलायी देना असंगत है एवं चतुर्थ चरण के "—मनि मन्दिर आज अहो उजरे-उजरे से" पाठ में यही शब्द आने के कारण भी प्रथम चरण में 'उजरे से' पाठ नहीं होना चाहिए।

लिपिजन्य विकृति :

१ : ५८

"नख नग जाल लाल अँगुरी **विद्रुम** माल नूपुर मराल ये अपार रस आउड़े।"

नायिका की अँगुलियों के रक्ताभ छोर मूँगे की माला-जैसे लगते हैं अतः 'विद्रुम' पाठ संगत है; परन्तु भा० मो० प्रतियों में 'विद्रुम' के स्थान पर लिपि-भ्रम से **'विधुप'** पाठ मिलता है। यह निरर्थक पाठ-विकृति 'द्र' तथा 'म' वर्णों में क्रमशः 'ध' तथा 'प' का भ्रम होने से हुई है। 'सुखसागरतरंग' में २५७ संख्या पर इस छन्द के पाठ में 'विद्रुम' का पर्याय 'प्रवाल' मिलता है।

५ : ७

"...देखि देखि **दूनो** दिख साथ उपजति है।"

केवल भा० मो० प्रतियों में 'न' में 'त' का भ्रम होने से 'दूती' विकृत पाठ मिलता है। स्वीकृत पाठ 'सुजानविनोद' में ५ : ६, 'सुखसागरतरंग' में १७३ संख्या पर तथा अन्य ग्रंथों में आये इसी छन्द में मिलता है।

५ : ५२

"रति लागै बौनी जाकी रंभा **रुचि पौनी** लोचननि ललचौनी मुख जोति अवदात की।"

'पौनी' का अर्थ हिन्दी-शब्दसागर में इस प्रकार दिया है : (१) गाँव में काम करने वाले वे लोग जिन्हें अनाज की राशि में से कुछ अंश मिलता है। (२) नाई, बारी, धोबी आदि काम करने वाले जो विवाह-आदि अवसरों पर इनाम पाते हैं। उ०··· (ख) "चलीं **पौनि** सब गोहने फूल डार लै हाथ। विश्वनाग कइ पूजा पदुमावति के साथ।"—जायसी। ध्यान रहे कि यहाँ प्रश्न रंभा की रुचि का नहीं 'जाकी' अर्थात् नायिका की रुचि का है अतः 'रुचि' को रंभा से संलग्न करते हुए पद का अर्थ इस प्रकार करना कि "रंभा की रुचि भी पौनी अर्थात्, अपूर्ण अथवा अधूरी है।" अनुचित होगा। अतः यहाँ 'पौनी' रंभा के लिए तुच्छ, हीन जाति वाली सामान्य स्त्री के अर्थ में आया है। अर्थ होगा, "जिसकी रुचि के आगे रंभा भी पौनी ही लगती है।" परन्तु 'प' में 'ब' का भ्रम होने से भा० मो० प्रतियों में '**रुचि बौनी**' पाठ है। 'बौनी' पहले ही आ चुका है इसलिए यहाँ इस शब्द की आवृत्ति असंगत है।

६ : १२

"गरे पटु **डारि** करै केती मनुहारि..."

मो० प्रति में 'डारि' पाठ लिपि-रूपान्तर से यों मिलता है '**गरि**'। भा० प्रति के प्रतिलिपिकार ने कदाचित् इससे भ्रमित होने के कारण रेखांकित स्थल पर अपनी प्रति में '**रारि**' पाठ रक्खा है। झगड़ने के अर्थ में यह पाठ 'मनुहार करने' के साथ स्पष्ट रूप से असंगत है।

६ : ३७ **प्रथम तथा तृतीय चरण।**

"वे दिन नाहिं भटू भय के जब **भीतैं भई** झुकि कै झिखई हौ।"

ढीठ भई ढिग **सोवत** स्याम के काम कला **लिपि** ज्यों लिखई हौ।"

'भीतैं भई' के स्थान पर मो० प्रति में '**भातैं नई**' तथा इसे सार्थकता प्रदान करने के हेतु भा० प्रति के सम्पादक ने 'बातें नई' पाठ-संशोधन किया है। इन प्रतियों में 'सोवत' के स्थान पर '**सोवन**' एवं 'लिपि' के स्थान पर '**लिखि**' विकृत पाठ भी मिलता है। अन्तिम दो पाठ-विकृतियाँ लिपि में दृष्टि-भ्रम के कारण संभव हैं। 'लिपि' से 'लिखि' पाठ-विकृति सन्निकट के 'लिखई हौ' शब्द के कारण लेखन-प्रमाद से भी हो सकती है। स्वीकृत पाठ 'भवानीविलास' में २ : ८ तथा 'सुखसागरतरंग' में ४४९ संख्या पर इस छन्द में भी मिलता है।

७ : ७

"लघु मंडन विच्छित्त मैं मन अभिमान विसेष।
विभ्रम सो जु **प्रमाद तें** उलटैं भूषन भेष॥"

'म' में 'स' का भ्रम होने के कारण भा० मो० प्रतियों में '**प्रसाद तैं**' पाठ मिलता है। नायक-नायिका जहाँ प्रमादवश वस्त्राभूषण धारण करने में कोई भूल कर जाते हैं तो वहाँ विभ्रम हाव होता है। अतः 'प्रमाद तैं' पाठ संगत है। (देखें, विभ्रम-उदाहरण ७ : १५)

त्रुटि पाठ :

१ : ४७

"तबही तैं देव देखी देवता सी हँसति सी **खीझति सी रीझसि सी** रूसति रिसानी सी ।।"

भा० मो० प्रतियों में शब्दों के विपर्यय से तथा एक वर्ण त्रुटित होने के कारण **'रीझति खीझति सी'** पाठ है। मनहरण छन्द के ३१ वर्णों के चरण में एक वर्ष न्यून होने से छन्दभंग दोष होता है।

५ : २३ से ३३ तक संख्या के छन्द भा० मो० प्रतियों में नहीं हैं। इनमें से २५ से २७ संख्या तक मध्यमा तथा अधमा नायिकाओं के उदाहरण-छन्द हैं। कवि ने ५ : १९, २० दोहों में सत्त्व, रज तथा तम, इन गुणत्रय के आधार पर नायिकाओं को क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि में विभाजित किया है। भा० मो० प्रतियों में ५ : २२ संख्या पर केवल उत्तमा नायिका का उदाहरण है अतः इन प्रतियों में अन्य भेदों के उदाहरण-छन्द भी होने चाहिए। फिर कवि ने २७ से ३३ संख्या के दोहों में मगध, कोसल आदि उन देशों की सूची दी है जिनकी कामिनियों का वर्णन उसने देश-भेद के अन्तर्गत पंचम विलास में किया है। भा० मो० प्रतियों में ये दोहे भी नहीं मिलते हैं। अन्यत्र भी कवि किसी विषय का सभारंभ करने के पूर्व उसकी रूपरेखा अथवा भेद-प्रभेद की सूची देता आया है। इसलिए हमने यहाँ भी देशों की नामावली के इन दोहों को कविकृत माना है। भा० मो० प्रतियों का समान आदर्श इस स्थल पर खंडित था, इस कारण ये सभी छन्द इन प्रतियों में त्रुटित हैं।

५ : ४८

"चाहै सनमान को सराहै सदा प्रीतमहि प्रीति को निबाहै रति रीति अति आगरी।"

मो० प्रति में संपूर्ण चरण त्रुटित है एवं भा० प्रति में इस चरण के स्थान पर पाठ है— "सुन्दर सुबास बास कोमल कलानिधान जानत तहाँ न ताहि चाहि चित आगरी।" गं० प्रति में पार्श्व पर यही पाठ दूसरे हस्तलेख में 'द्वितीय पाठ' के रूप में दिया है। भा० प्रति के पाठ की स्वीकृत पाठ से तुलना करने पर इसमें रचनाकार की आत्मीयता नहीं मिलती अतः हम इस पाठ को भा० प्रति के सम्पादक द्वारा प्रक्षिप्त मानते हैं।

६ : ३८

सखी शिक्षा उदाहरण-छन्द केवल भा० मो० प्रतियों में त्रुटित है। ६ : ३६ संख्या पर आये दोहे में कवि मध्या-उराहनो तथा मुग्धा-शिक्षा के प्रसंग की सूचना पहले ही दे आया है, "मध्यनि संग उराहनो मध्यनि शिक्षा जानि।—" तथा ६ : ३७ संख्या पर 'उराहनो'—उदाहरण-छन्द आ चुका है अतः हम मान लेते हैं कि प्रतिलिपिकार के प्रमाद से इन दो प्रतियों में यह छन्द छूट गया है।

७ : ३६

"**चित** कोटि कला उलटै पलटै पल ही पल ज्यों मृग बागरि के।"

भा० मो० प्रतियों के पाठ में २४ वर्णों वाले दुर्मिल सवैया के उपर्युक्त चरण से 'चित' शब्द त्रुटित होने के कारण छन्द भंग-दोष होता है।

नी० गं० गंजा प्रतियाँ : पाठ-विकृति

१ : ५२

"चेटक सी चालि चित चोट सी चितौनि हाँसी
ठक की मिठाई भौंह फाँसी की सी लागरी।"

नी० गं० गंजा० प्रतियों में चरण का पाठ इस प्रकार मिलता है—"**ठग की सी फाँसी फाँसी फँसी लागरी।**" इस पाठ में 'ठग फाँसी' प्रयोग तक तो ठीक है—देव ने अन्यत्र भी ऐसा प्रयोग किया है—परन्तु दूसरी 'फाँसी' लगाना अनावश्यक है अतः हमने इस पाठ को विकृत माना है। घोड़े की तेज चाल के साथ नायिका की चाल तथा हृदय में हूक उठाने वाली उसकी हँसी के साथ ठग की मिठाई के समान उसकी हँसी तथा उसकी भौंह-फाँसी की संगति नहीं बैठती है। मेरे विचार से नी० गंजा० प्रतियों में यह असंगत पाठ-प्रक्षेप इन प्रतियों के समान आदर्श में चरण का यह अंश त्रुटित होने के कारण हुआ है क्योंकि भा० प्रति में यह सम्पूर्ण छन्द नहीं है और मो० प्रति में केवल यही तृतीय चरण त्रुटित है और इसी कारण प्रतिलिपिकार ने भा० तथा मो० प्रतियों में सम्पूर्ण छन्द तथा सम्पूर्ण चरण का पाठ छोड़ दिया है। नी० गं० गंजा० प्रतियों के पाठ में एक वर्ण कम भी है।

१ : ५४

"**जाती हौं जौ उत बै जौ** मिलै कहूँ पावौ समौ कहिबे को ठिकानै।"

नी० प्रति में '**उत वा जु**' तथा इसी पाठ को संशोधित करके गंजा० प्रति में '**उत बीजु**' पाठ मिलता है परन्तु दोनों ही पाठ असंगत हैं। सम्भवतः गं० प्रति में भी '**बै जौ**' पाठ बाद में प्रतिलिपिकार द्वारा संशोधित होने के कारण मिलता है।

४ : २८

"पार न लहत गहिराई न गहत देव केवल सुधाई **मधु जैसे मखियन मैं।**"

इस कुलवंती नारी में मधुमक्खियों से मिलने वाले मधुर मधु के समान केवल सरलता ही सरलता है। इस अर्थ में 'मधु जैसे मखियान मैं' पाठ संगत है परन्तु नी० गं० गंजा प्रतियों में 'मधु' के सान्निध्य के कारण लेखन-प्रमाद से हुआ '**मैधु मेसे भखियनि में**' विकृत पाठ मिलता है। हमने इस पाठ को निरर्थक होने के कारण विकृत माना है।

पर्याय :

१ : ४६

"काम की दूती पढ़ावत तूती **चढ़ी** पग जूती बनात लपेटा।"

नी० गं० गंजा० प्रतियों में '**लसै** पग जूती...' पाठ है।

१ : ५३

"**आपने ओछे हिये मैं दुराइ** दयानिधि देव बसाय लिये मैं।"

नी० गं० गंजा० प्रतियों में प्राय: इन्हीं शब्दों के भिन्न संयोजन से पाठ इस प्रकार मिलता है—'**ओछे हिये अपने दिन राति**'।

लिपिजन्य विकृति :

१ : २७

"राई-नौन **वारति** गुराई देखि अंगनि की **दुरै न दुराई** त्यों भुराई सों भिरति है।"

मुहावरा 'राई नोन वारना' है, परन्तु नी० गं० गंजा० प्रतियों में 'राई नोन **करति**' पाठ मिलता है। 'वा' में 'क' का भ्रम होने से यह विकृति संभव है। इसी प्रकार 'न' में 'त' का भ्रम होने से नी० प्रति में '**दुरैत दुराई**' पाठ है। इसी पाठ को संशोधित कर '**दुरत दुराई**' पाठ गं० गंजा० प्रतियों में मिलता है। दोनों ही पाठ अशुद्ध हैं। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरंग' में २५१ संख्या पर तथा 'सुजानविनोद' में २ : १५ संख्या पर मिलता है।

१ : ५१

"जो कहिये तो कह्यो नहिं जात कहैंही बिना घर **केते घले जू**।"

नी० गं० गंजा० प्रतियों में '**केतो खले जू**' पाठ मिलता है। 'केते खले जू' का अर्थ खींच-तान कर किया जा सकता है 'कितना कष्ट दिया', फिर भी 'घर के साथ इस पाठ की असंगति यथावत् बनी रहती है। कितनों के घर नष्ट करने के 'घर केते घले जू' अनुप्रास-युक्त पाठ संगत है।

२ : २

"पुनि अनेक करि **हटवइनि** कही अनेक प्रकार।
गनिका गनै न सत असत चाहै धनी उदार॥"

'हटवइन' दूकानदार अथवा अनाज तौलने वाले की स्त्री को कहते हैं।

नी० गं० गंजा० प्रतियों में 'इ' में 'र' का भ्रम होने से निरर्थक पाठ है '**हटवरन**'।

२ : १६

"चंदमुखी मुरि मंद हंसै मुख मोतिन को गहि खोल्यो **डबा सो**।"

चंद्रमुखी नायिका इधर मुँह फेर कर धीरे से हँसती है तो मोतियों के समान उज्ज्वल उसकी दंत-पंक्ति चमक उठती है। ऐसा लगता है जैसे किसी ने मोतियों से भरा डिब्बा खोल दिया हो। परन्तु 'ड' में 'उ' का भ्रम होने से नी० गंजा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर निरर्थक पाठ है 'खोल्यो उबा सो'।

५ : १६ परकीया।

"मीत की चितौनि चित बीच चुभि खुभी रहै उभी रहै आंखिनु करेजनि कसकती।"

विपत्ति की मारी नायिका पलंग पर अपने पति के साथ पड़ी है, परन्तु मन ही मन वह अपने किसी प्रेमी के साथ रमण कर रही है। उसी प्रेमी का चित्र नायिका के सम्मुख खड़ा है, उसी की सुन्दर चितवन नायिका के हृदय में पीड़ा उत्पन्न कर रही है। इस प्रसंग में हृदय में कसकने के अर्थ में 'करेजनि कसकती' पाठ संगत है परन्तु 'ज' में 'त' का भ्रम होने से नी० गं० गंजा० प्रतियों में 'करेजिन' के स्थान पर **'करेतिन'** विकृत पाठ मिलता है। पद-भंग करने पर भी इस पाठ की संगति नहीं बैठती, अतः हमने इस पाठ को अग्राह्य माना है।

५ : २५ द्वितीय-तृतीय चरण—

"मोहन मान करै तो गरे परि देव मनैबे को **जाइ अरूझै**।
काको भयो सबसों बिगरै यह **जाको** मरै सु तौ वात न बूझै।"

नी० गं० गंजा० प्रतियों में द्वितीय चरण में **'आप अरूझै'** तथा तृतीय चरण में **'याको'** पाठ है। इन प्रतियों के समान आदर्श में विद्यमान 'आय' पाठ से 'आप' तथा 'ज' तथा 'य' में उच्चारण-साम्य होने के कारण भ्रमवश 'जाको' से 'याको' पाठ-विकृति सम्भव है। स्वीकृत पाठ 'सुजानविनोद' में ४ : ५७ एवं ५ : ५२ संख्या पर तथा 'सुखसागरतरंग' में ४८६ संख्या पर भी मिलता है।

५ : ३७

"चंचल दृगंचल चपल चितवति चोरि चितवति **चाइ** चढ़ी चारुता प्रगट ही।"

नी० गं० गंजा प्रतियों में **'चाप चढ़ी'** पाठ मिलता है। 'चाप' का अर्थ धनुष होने के कारण यह पाठ यहाँ असंगत है। यह पाठ-विकृति 'चाइ' के 'चाय' रूपान्तर में दृष्टि-भ्रम होने से सम्भव है।

५ : ४५ मालव-वधू।

"बोलनि चालि बिलोकनि सों दिन ही दिन **दूगुन नेह** वढ़ावै।"

दिन-प्रतिदिन अपने प्रिय के हृदय में अधिकाधिक प्रेम उत्पन्न करने के प्रसंग में यह पाठ सर्वथा संगत है परन्तु नी० गं० गंजा० प्रतियों में 'दू' को भ्रम से 'इ' समझने के कारण **'ईगुन नेह'** पाठ मिलता है। 'ईगुन' पाठ निरर्थक है।

नी० गंजा० प्रतियाँ

नीचे केवल नी० गंजा० प्रतियों में प्राप्त समान विकृतियों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। हमारा विश्वास है कि इन प्रतियों में और भी अधिक समान विकृतियाँ रही होंगी परन्तु गंजा० प्रति के पाठ में उसके प्रतिलिपिकार ने गं० प्रति की सहायता से अत्यधिक पाठ-संशोधन किया है। इस कारण समान विकृतियों के स्थल गंजा० प्रति से लुप्त हो गए हैं।

अधिक छन्द :

केवल नी० गंजा प्रतियों के द्वितीय विलास में नागर-नागरी के प्रसंग में कसहेरिन, पसारिन, चुरहेरिन, धुनिन, जुलाहिन आदि के अधिक उदाहरण-छन्द मिलते हैं। (देखें, २ : ६ छन्द की पाद-टिप्पणी) हमने 'जाति विलास' की प्रमाणिकता' शीर्षक के अन्तर्गत इन प्रतियों में इन अधिक छन्दों की प्रमाणिकता पर विस्तार से विचार किया है। (देखें, पृष्ठ ५६)

पाठ-विकृति :

१ : ६४

"देवल रावल नागरी एहि विधि बरनौं **देव**।
राजनगर नागरि कहौं न्यारे लच्छन **भेव**॥"

नी० प्रति में 'देव' के स्थान पर **'देख'** पाठ 'व' में 'ष' का भ्रम होने के कारण मिलता है। यही पाठ गंजा० प्रति में भी है परन्तु गंजा० प्रति के प्रतिलिपिकार ने दोहे के अगले पद में सम-तुकान्त पाठ लाने के हेतु 'भेव' के स्थान पर **'भेष'** पाठ-संशोधन किया है। 'भेद' के अर्थ में 'भेव' पाठ ही यहाँ संगत होगा।

२ : १२

"घाट बाटहू मैं घट निपट बटोहिन के **नेक** ही निहारे नेह भरे हेरियतु है।"

नी० गंजा० प्रतियों में लेखन-प्रमाद से **'नेह की'** पाठ मिलता है। नायिका के 'किंचित् देखने मात्र' के अर्थ में 'नेक ही' पाठ संगत है तथा 'सुख सागर तरंग' में २६७ संख्या पर इसी छन्द में भी प्राप्त होता है।

४ : १२

"देखत ही जो **मन हरै** सुख अँखियनि को देइ।
रूप बखानै ताहि जो जग चेरो कर लेइ॥"

आलोच्य स्थल पर नी० गंजा प्रतियों में **'जो बन रहै'** पाठ मिलता है। जो देखने मात्र से (लज्जित होकर ?) वन-प्रान्त में भाग जाय उसे यदि रूप कहते हैं तो यह रूप की विलक्षण परिभाषा है। इन प्रतियों में यह विकृति भ्रमवश 'जो मन' को 'जोवन' का विकृत रूप मानने के कारण हुई है।

गं० गंजा० प्रतियाँ

१ : ४१

"जोबन बजार बैठ्यो जौहरी मदन **सब** लोगन को हीरा वाके हाथ ह्वै बिकात है।"

गं० गंजा० प्रतियों में **'रस'** पाठ है। 'हीरा' में श्लेष है—हियरा अर्थात् हृदय तथा हीरा नामक बहुमूल्य रत्न। चरण में मदन जौहरी का जो रूपक है उसके अनुरूप केवल 'सब' पाठ ही संगत है—सभी लोगों के हीरे-जैसे बहुमूल्य हृदय का उसी मदन जौहरी के द्वारा एक-दूसरे के हाथ क्रय-विक्रय होता है। गं० गंजा० प्रतियों के 'रस' पाठ की संगति न 'लोगनि' के साथ बैठती है न 'मदन' के साथ, इसलिए यह पाठ अग्राह्य है।

१ : ४२

"आई निछावर के मन मानिक गोरस दै रस **लै अधरान को।**"

गं० गंजा० प्रतियों में **'रस से अधरान'** पाठ मिलता है। यह छन्द इसी ग्रंथ में ७ : ५७ संख्या पर भी आया है तथा यहाँ भी गं० प्रति में 'रस से अधरान' पाठ ही है। 'रस से अधरान' पाठ की संगति नहीं बैठती अतः इसे पाठ-विकृति मानना उचित है।

१ : ४२

"काहू की बंक चितबै की संक न लागै कलंक **बिसै किन बीसौ।**"

केवल गं० गंजा० प्रतियों में **'बिसौ किन वीसौ'** पाठ मिलता है। इस पाठ के **'बिसौ'** तथा **'बीसौ'** शब्द समानार्थी होने के कारण यह पाठ असंगत माना गया है। मुहावरा है **'बीसौ बिसे'**—'बीसौ बिसे बिसवासिन के—' अतः 'बिसै किन वीसौ' पाठ ही संगत है। यही पाठ **'सुख सागर तरंग'** में २५८ संख्या पर भी इसी छन्द में मिलता है।

१ : ५२

"**चेटक सी चालि चित चोट** सी चितौनि हाँसी ठग की मिठाई भौंह फाँसी की सी लाग री।"

केवल गं० गंजा० प्रतियों में 'चेटक सी **चाल अरु चिलचोट**' पाठ है। इस पाठ में 'अरु' के दो वर्ण अधिक होने से नियम-विरुद्ध पाठ-वृद्धि होती है तथा 'त' में 'ल' का भ्रम होने से इसका 'चिलचोट' पाठ निरर्थक भी है। इन कारणों से हमने इस पाठ को विकृत माना है।

२ : ६

"मोहति सी मन पोहति सी **जन छोहति सी** तनि भौंह लचावै।"

अर्थ होगा, 'पटविन दर्शकों का मन मोहती है, मानो उन्हें ही पिरोती है जब वह किंचित् क्षुब्ध होते हुए अपनी भौंहें बंकिम कर लेती है।' 'सुख सागर तरंग' में २६४ संख्या पर इसी छन्द में **'तन चोहतिसी'** निरर्थक पाठ मिलता है और इस ग्रंथ से पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप यही पाठ गं० गंजा० प्रतियों में भी विद्यमान है।

३ : १० वैस्यानी ।

"नव जोवनी की जोवनी की जोति **जीति** रही कैसी बनीनीकी बनी नीकी छवि छाती में ।"

अर्थात् नवयौवना बनीनी के, जिसने यौवन की दीप्ति प्राप्त कर ली है, उरोजों की कैसी सुन्दर छवि है। यहाँ 'जीति' प्राप्त करने अथवा अर्जित करने के अर्थ में आया है। 'सुख सागर तरंग' में २८३ संख्या पर आये इसी छन्द में प्रमादवश मात्रा में छूट जाने से **'जाति'** पाठ मिलता है और इस ग्रंथ से यही पाठ गं० गंजा० प्रतियों में भी प्रक्षिप्त हुआ है। नव यौवना की जोवन-ज्योति का 'जाना' उसके ढलते यौवन की ओर संकेत करता है। हमने इस पाठ को कविकृत भाव के प्रतिकूल होने के कारण विकृत माना है।

३ : १५ धोबिन ।

"जोवन की ऐंठ अठिलात सी उठौहैं कुच ओठनि अमेठि पट **ऐंठि के धरति है ।**"

भाव स्पष्ट है—घाट पर कपड़े धोने वाली धोबिन धुले हुए कपड़ों को ऐंठ कर, ताकि वे बिखर या उड़ न जायँ, किनारे रखती जाती है। 'सुख सागर तरंग' में २८९ संख्या पर **'ऐंठि पकरति है'** पाठ मिलता है। यद्यपि वस्त्रों को ऐंठ कर पकड़ना कोई विशेष चित्ताकर्षक मुद्रा नहीं है तथापि इस ग्रंथ से प्रक्षिप्त होकर यही पाठ गं० गंजा प्रतियों में भी विद्यमान है।

३ : २४ मुनि-त्रिया ।

"चौंर करैं चमरी **चय मोर** चकोर मृगी मृग चाकर भारी ।"

चमरी अर्थात् सुरागाय अपनी पूँछ मुनि-पत्नी के ऊपर डुला रही है और मोर, चकोर आदि सेवकों का भारी समूह उनकी सेवा में तत्पर हैं। 'चय' का अर्थ है 'समूह', परन्तु 'सुखसागर, तरंग' में २९७ संख्या पर लिपि-भ्रम से विकृत **'चम मोर'** पाठ मिलता है। 'चम' पाठ निरर्थक है, फिर भी इस ग्रंथ से पाठ-मिश्रण करने में तत्पर गं० गंजा० प्रतियों के प्रतिलिपिकार ने यही पाठ अपनी प्रतियों में रक्खा है।

स्थान-विपर्यय :

१ : ५३

"कानन तानन **भूलत** ना खिन आँखिन रूप अनूप पिये मैं ।"

गं० गंजा० प्रतियों में प्रमादवश वर्णों का विपर्यय होने से **'भूतल'** पाठ है। प्रसंग स्पष्ट है, पाठ 'भूलत' ही होना चाहिए। धरती के अर्थ में 'भूतल' पाठ यहाँ असंगत है।

३ : १९ काछिन ।

"राखै समाधान समाधान के दिखैयनि को ईगुर सी अंगनि गुराई है गँवारि मैं ।
देव कहै जगमग्यो जोवन जुन्हाई ऐसी एते पै जुन्हाई पैठी सरोवर वारि में ।
बारनि सुखावति उघारे सीस गावति लुभावति सी लोगन फिरति चहूँ पारि मैं ।
अंचल अँगौछै ओछे ओछे कुच पोछैं लिये कोछे में कमल डोलै काछिनि कछार मैं ।।"

काछिन का यौवन यों ही ज्योत्स्नामयी रात्रि के समान सुन्दर है। और जो उसने सरोवर में स्नान किया तो उसका सौंदर्य कई गुना अधिक हो गया है ! स्नान करने के पश्चात् वह अपने गीले केश सुखाती है, अंचल से देह पोंछती है। 'सुख सागर तरंग' में २६३ संख्या पर इसी छन्द में चरणों का क्रम १-३-२-४ है। इस ग्रंथ में पाठ-मिश्रण होने के कारण गं० गंजा प्रतियों में भी चरणों का यही क्रम मिलता है। चरणों के विपर्यय के कारण छन्द में असंगति आती है—नायिका के स्नान करने के पहले ही बाल सुखाने के कारण दुष्क्रम स्पष्ट है।

पर्याय :

१ : ४०

"......समाय गई **ब्रजराज** के रूप मैं।"

गं० गंजा० प्रतियों में '**रंगराइ के**' पर्याय मिलता है।

गं० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

६ : ३०

"औरन को गौनो होत विरह को **औनो** होत तुमही अगौनो दुख देखनि दुखाई यह।"

गं० सा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर भी प्रमादवश '**गौनो**' पाठ हो गया है। स्नेही प्रिय नायक के गमन पर विरह का आगमन होता है, इसी विरोधाभास की ओर कवि का संकेत है। किंतु गं० सा० प्रतियों के अनुसार उसके जाने के साथ ही विरह-व्यथा के भी समाप्त होने पर तो नायिका में परकीयत्व की भ्रान्ति उत्पन्न होती है अतः इन प्रतियों का पाठ विकृत है।

७ : ४ हाव नाम

"लीला और विलास भनि औ विच्छित्त विलोक।
विभ्रम किलकिंचित बहुरि मोट्टाइत बिब्बोक ॥"

'हाव के अन्तर्गत एक भेद का नाम है विच्छित्त। जहाँ थोड़े-से अलंकार से ही नायिका के मन में सुन्दर होने का अभिमान जाग उठे वहाँ विच्छित्ति हाव होता है—'लघु मंडन विच्छित्त मैं मन अभिमान विशेष'—७ : ७। (देखें, ७ : १४ पर विच्छित्ति का उदाहरण)। गं० सा० प्रतियों में लेखन-प्रमाद से 'विक्षिप्त' विकृत पाठ मिलता है।

विच्छित्ति हाव के कवि देव कृत उपरोक्त लक्षण के साथ केशव तथा मतिराम द्वारा निरूपित लक्षण की तुलना करना रोचक होगा—

"भूषण भूषव को जहाँ होहि अनादर आन।
सो विच्छित्त विचारिये केशवदास सुजान ॥

—केशव 'रसिकप्रिया', ६ : ४५

"थौरे ही भूषन बसन जहँ सोभा सरसाय।
ताहि कहत विच्छित्ति हैं जै प्रवीन कविराय।।"

—मतिराम, 'मतिराम-ग्रंथावली', पृष्ठ ७४,

लिपिजन्य विकृति :

६ : १७

"खरी दुपहरी हरी भरी **फरी** कुंज मंजु गुंज अलि पुंजन की देव हियो हरि जाति।"

'फरी कुंज' का अर्थ है 'फल-युक्त' ('देव-सुधा', पृ० १५४), परन्तु 'कुंज' संज्ञा पुंल्लिग है, यहाँ 'फरी' को उपरोक्त अर्थ में कुंज का विशेषण मानने पर लिंग-दोष होगा, अतः हम 'फरी' को संस्कृत 'फलिन', अर्थात् फल देने वाले वृक्ष, से सम्बद्ध मानते हैं। गं० सा० प्रतियों में 'फ' में 'क' का भ्रम होने से 'करी कुंज' विकृत पाठ मिलता है। कहना न होगा कि यहाँ 'करी' पाठ असंगत है।

स्थान-विपर्यय :

६ : ५७

केवल गं० सा० प्रतियों में चरणों का क्रम १-३-२-४ है, यद्यपि इस चरण-विपर्यय से छन्द का अर्थ करने में कोई असंगति नहीं उत्पन्न होती।

व्याधि कामदशा का लक्षण तथा उसके अनेक भेदों के नाम सप्तम विलास के, क्रमशः ८१वें तथा ८२वें दोहों में मिलते हैं। केवल गं० सा० प्रतियों में पहले व्याधि भेद वाला ८२ वीं संख्या का दोहा, उसके पश्चात् ८१वीं संख्या का लक्षण-दोहा आने से स्पष्ट दुष्क्रम उत्पन्न होता है। सामान्य रूप से पहले लक्षण पश्चात् उसके भेदों का वर्णन होता है।

त्रुटित पाठ :

७ : ६८

"बोर्‌यो बंस बिरद मैं बौरी भई बरजति मेरे
बार बार बार बीर कोऊ पैठो जिनि।"

एक गोपिका, जो श्रीकृष्ण के सन्मुख संपूर्ण आत्मसमर्पण कर चुकी है, अपनी किसी सहचरी को समझाती है, "मैं तो बावली थी, मैंने कुल-मर्यादा नष्ट की और मुझे लोकापलोक मिला। मैं तुम्हें रोकती हूँ, तुम मेरे द्वार से बार-बार न आया-जाया करो, नहीं तुम्हें भी लोकनिन्दा का भागी बनना पड़ेगा।" तीसरा 'बार' अनावश्यक न होकर द्वार के अर्थ में संगत है, परन्तु गं० सा० प्रतियों के प्रतिलिपिकार ने इसे अनावश्यक जानकर निकाल दिया है तथा इन दो वर्णों की क्षतिपूर्ति 'पास' शब्द के प्रक्षेप द्वारा इस प्रकार की है, **"बार बार बीर कोऊ पास पैठो जनि।"** 'पास पैठना' अर्थ के विचार से असंगत है एवं अंतिम चरण में—"कोऊ मोहि

मिलि बैठो जिनि" पाठ होने के कारण भी यहाँ पास पैठने में पुनरुक्ति-जैसी लगती है।

ब्र० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

५ : ३१

"**कहौ विंधवन** मालवा और अभीर विराट।
कुंकुन केरल द्रविड़ अरु कहि तिलंग करनाट।।"

कवि ने प्रस्तुत दोहे में विंध्यवन, मालवा आदि जिन देशों का उल्लेख किया है, उसने इस विलास के ४२, ४३ आदि संख्याओं के छंदों में इसी क्रम से उस देश की नारियों का वर्णन किया है। ५ : ४२ वें छंदों में विंध्यवन-वधू का वर्णन है—"महोषधि की बूटी सी बधूटी विंध बन की।" इस प्रकार उपर्युक्त दोहे का 'कहौ विंध बन' पाठ संगत है, परन्तु केवल ब्र० सा० प्रतियों में इसके स्थान पर '**झारखंड अरु मालवा**' पाठ है। पंचम विलास में झारखंड-कामिनी का कहीं वर्णन नहीं मिलता, न ही इन दो प्रतियों में झारखंड-वधू का कोई पृथक् उदाहरण-छंद है अतः हमने इस पाठ को प्रक्षिप्त माना है।

६ : ४२

"प्रकृति भेद करि नायिका **त्रिविध** कहत कवि लोइ।
ताते सो कफ़ पित्त अरु वात प्रकृति तिय होइ।।"

केवल ब्र० सा० प्रतियों में 'त्रिविध' के स्थान पर 'त्र' में 'व' का भ्रम होने से '**विविध**' विकृत पाठ मिलता है। संगत पाठ 'त्रिविध' ही है क्योंकि कवि ने नायिका की प्रकृति के आधार पर कफ-प्रकृति नायिका, वात-प्रकृति नायिका तथा पित्त-प्रकृति नायिका—ये तीन ही भेद किये हैं।

प्रौढ़ा सुरतान्त :

८ : २६

"**उतरत सोच तें** सखीन सुखदैनी थाँभी वेनी
लाँबी लखे लाज भरे कुल फनि के।"

सुरतान्त पर नायिका सेज पर से उतरने लगती है तो उसकी सखियाँ उसे सहारा देती हैं—इस अर्थ में केवल गं० प्रति का ऊपर-उद्धृत पाठ प्रसंग-संगत है। इसके स्थान पर ब्र० प्रति में '**उरतम सेज तें**' तथा सा० प्रति में '**उरतम सेज लै**' पाठ मिलता है। ब्र० सा० प्रतियों की समान पाठ-विकृति 'उरतम सेज' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। निरर्थक होने के कारण हमने इन पाठों को अस्वीकृत किया है। 'सुख सागर तरंग' में २०९ तथा ५०४ संख्याओं पर इस छंद में भी ऊपर-स्वीकृत पाठ मिलता है।

८ : ४३ प्रथम-द्वितीय चरण

"**बाल** लतान मैं **बाल** को बोल सुनो कहुं संग सखीन के टेरत ।
काहू कही हरि राधा यही कहि देव जू देखी इतै **मुख फेरत** ।"

यह पाठ केवल गं० प्रति में, 'सुख सागर तरंग' में ९८ संख्या पर एवं 'भाव विलास' आदि अन्य ग्रंथों में इसी छन्द में मिलता है । प्रथम स्थल पर ब्र० प्रति में लेखन-प्रमाद से "**लाल** लतान मैं बाल को बोल" पाठ हो गया है । 'लाल लतान' पाठ असंगत है । इस प्रति से सा० प्रति अथवा उसके आदर्श की तुलना होने के कारण 'लाल' पाठ सा० प्रति की शाखा में कदाचित् पार्श्व पर आया होगा और फिर यही पाठ भूल से सा० प्रति में 'बाल' के स्थान पर आ गया है—सा० प्रति में पाठ है, "बाल लतान मैं **लाल** को बोल...।" लाल का अपनी सखियों (!) को टेरने की अपेक्षा बाल अर्थात् बाला नायिका का अपनी सखियों को हेरना अधिक संगत है अतः हमने केवल गं० प्रति में प्राप्त तथा अन्य ग्रंथों द्वारा पुष्ट पाठ यहाँ स्वीकार किया है ।

इसी प्रकार द्वितीय चरण का 'मुख फेरत' पाठ जो केवल गं० प्रति में एवं उपर्युक्त अन्य ग्रंथों में मिलता है, ब्र० प्रति के **मुख फेरति** तथा सा० प्रति के **सुख केरति** विकृत पाठों की अपेक्षा अधिक संगत होने के कारण ग्राह्य है । 'मुख' से 'सुख' पाठ-विकृति प्रतिलिपिकार के भ्रम से संभव है ।

लिपिजन्य विकृति :

८ : ११

"देव कहै **सोवत** निसंक अंक भरी परजंक मैं मयंक मुखी सुषमा सचति है ।"

'व' में 'च' का भ्रम होने से ब्र० सा० प्रतियों में **सोचत** पाठ है । निःशंक होकर पर्यंक में सोना ही संगत पाठ है अतः केवल गं० प्रति में प्राप्त 'सोवत' पाठ प्रस्तुत स्थल पर स्वीकृत हुआ है ।

८ : ६०

पोटि भटू तट ओट कुटी के लपेटि पटी सों कटी पट छोरत ।

नायिका वन-कुंज में थी तभी अचानक जल-वृष्टि होने लगी । श्रीकृष्ण ने उसे भींगते देखा तो वह तुरन्त वहाँ जा पहुँचे और उसे कुटी के पीछे अपने शरीर के निकट समेटते हुए अपने पीताम्बर में उसे लपेट कर उसकी कटि से लिपटा हुआ गीला वस्त्र उतारने लगे ! 'समेटने' के अर्थ में 'पोटि' शब्द सर्वथा संगत है । यह पाठ केवल गं० प्रति में तथा 'सुजानविनोद' में ५ : ५५ तथा 'सुख सागर तरंग' में १५३ संख्या पर इसी छन्द में मिलता है । प्रस्तुत ग्रंथ की ब्र० सा० प्रतियों में कदाचित् इस शब्दार्थ से अपरिचित होने के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से **'ओढ़** भटू तट...' पाठ मिलता है । यदि श्रीकृष्ण अपना वस्त्र ही ओढ़ते हैं तो फिर आगे 'लपेटि पटी सों' पाठ किस प्रकार संगत होगा ? इस प्रकार 'पटी' का एक साथ ओढ़ना तथा लपेटना असंगत होने के कारण केवल गं० प्रति में प्राप्त 'पोटि' संगत पाठ उपर्युक्त अन्य ग्रंथों के साक्ष्य पर यहाँ स्वीकृत हुआ है ।

नी० गं० गंजा० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

१ : ४१

"त्रिवली तरंगिनि निकट नाभि **हृद** तट सोमराजी बन धँसि मुकत अन्हात हैं।"

कदाचित् 'हृद' के अर्थ से अपरिचित होने के कारण तथा 'तट' के सामीप्य से सा० आ० प्रतियों के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रति में **नद** पाठ रखा है। इसी 'नद' में दृष्टिभ्रम होने से **'नट'** पाठ नी० गं० गंजा० प्रतियों में भी मिलता है। 'नद' पाठ इसलिए असंगत है क्योंकि पहले ही समानार्थी शब्द 'तरंगिनि' आ चुका है, अतः यहाँ इसकी आवृत्ति अनावश्यक है। 'नट' पाठ इसी से निःसृत होने तथा असंगत होने के कारण अग्राह्य है। ताल के अर्थ में आया 'हृद' शब्द 'ह्रद' का रूपान्तर है जो गोल नाभि के लिए उचित उपमान है। हमने इसी पाठ को मूल प्रति का माना है।

३ : २१ कहारिन

"चाहेऊ न चाहे चहूँ ओर तें **गहत बाहैं गाहक उमाहै रोकि राहै चित हार की।"**

मनोहारिणी कहारिन अपने ग्राहक का मार्ग रोक लेती है, उसे बाँहों में चारों ओर से घेरती है और अपना कार्य सिद्ध करती है। सा० प्रति में 'गहत बाहैं' के स्थान पर लिपि-भ्रम से **कहत चाहै** तथा नी० गंजा० प्रतियों में भी **गहन चाहै** पाठ मिलता है। यद्यपि ये दोनों ही पाठ अशुद्ध हैं फिर भी 'बाहैं' के स्थान पर 'चाहै' की समान विकृति महत्त्वपूर्ण है। निश्चय ही गं० प्रति में भी मूल में यही विकृत पाठ रहा होगा। परन्तु इस प्रति को 'सुख सागर तरंग' में २६४ संख्या पर आये इसी छन्द के पाठ से संशोधित करने के कारण अब यहाँ शुद्ध पाठ मिलता है। इसी प्रकार आलोच्य स्थल के शेष अंश का पाठ नी० सा० प्रतियों में इस प्रकार है—**ग्राहक घनेरी दोरि चित अपहार की।** 'दोरि' को 'दोरि' के समान मान लेने पर भी 'घनेरी' पाठ असंगत ही रहता है। यहाँ गं० गंजा प्रतियों में 'सुख सागर तरंग' से लेकर यह पाठ रखा गया है, **'गाहक उमाहै राहै रोके सु विहार की।'**

३ : २६ भीलनी

"उरझति झारनि मैं **'मुरझि'** पहारनि मैं गाढ़ी गूढ़ गैल छैल भीलनी छकी फिरै।।"

भीलनी पर्वतीय मार्ग पर स्वच्छन्द विचरण करते हुए कहीं झाड़ियों में उलझती है, थक कर मूर्च्छित होती है फिर भी उसका आनन्द कम नहीं होता। नी० सा० प्रतियों में 'उरझति' की संगति पर अथवा 'म' में 'स' का भ्रम होने से **'सुरझि'** पाठ मिलता है। मेरा अनुमान है कि इस स्थल पर गं० गंजा० प्रतियों भी पहले 'सुरझि' पाठ रहा होगा परन्तु बाद में 'सुखसागर-तरंग' में २६६ संख्या पर आये इस छन्द के पाठ की सहायता से इन प्रतियों में पाठ-संशोधन हुआ है।

३ : ३० :

"गाहक बुलावै सैन करै दैन करै **'सौदा'** नैननि मुकरि जाइ मुकरि मुकेरनि की।"

सा० प्रति में 'सौदा' का एक वर्ण त्रुटित होने से केवल 'सो' पाठ मिलता है। नी० प्रति में 'दैन करै **सोस** नैन मुकराइ जाइ...' पाठ मिलता है। यहाँ 'सोस' अफ़सोस के लिए भी प्रयुक्त नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ खेद का कोई प्रसंग नहीं है। 'सुखसागरतरंग' में ३०२ संख्या पर इस छन्द के पाठ की सहायता से गं० गंजा० प्रतियों में 'सौदा' पाठ संशोधन हुआ है।

भा० मो० नो० गं० गंजा० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति

५ : ३८

"प्रीतम के रूप को **सुधा** सो अँचवति **तऊ** प्यासीयै रहति जो लहति सुख संग ना।"

कवि कहता है कि कलिंग देश की कामिनी में कामोद्वेग की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वह अपने प्रियतम की रूप-सुधा का पान करने पर भी प्यासी ही रहती है, सुरति-सुख प्राप्त किये बिना उसे तृप्ति नहीं होती। नी० गं० गंजा० भा० मो० प्रतियों में 'सुधा' के स्थान पर '**मया**' तथा 'तऊ' के स्थान पर '**तन**' विकृत पाठ मिलता है। इनमें से प्रथम पाठ 'मया' का अर्थ माया आदि होने के कारण असंगत है। इसी प्रकार प्रीतम के तन को अंचवना तथा रति-सुख प्राप्त करना प्रायः समान हैं, यद्यपि 'तन अंचवना' स्वयमेव असंगत पाठ है। 'तऊ' से 'तन' पाठ-विकृति 'उ' के प्राचीन रूपान्तर में भ्रम होने के कारण 'तऊ' से 'तनु' होते हुए संभव है अतः हमने 'तऊ' पाठ मूल का माना है।

५ : ४०

"तीनिहूँ लोक नचावति **ओक** मैं मंत्र के सूत अभूतगती हैं।
आपु महा गुनवंत गुसाइनि पाइनि पूजत प्रानपती है॥"

नी० गं० गंजा० भा० मो० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर '**ऊक**' पाठ है। घर के अर्थ में 'ओक' शब्द इसी ग्रंथ में अन्यत्र भी आया है—"आपने **ओक** रहै अवलोकि तिलोक की लीक सदा निरजोसी।"—४ : २७। स्मरण रहे कि यहाँ भी भा० मो० प्रतियों में 'ऊक' विकृत पाठ मिलता है। 'ऊक' का अर्थ है 'उल्का', अतः इस अर्थ में यह पाठ यहाँ भी असंगत है। उपर्युक्त दोनों ही प्रसंगों में नायिका स्वकीया है—पहले प्रसंग में नायिका का स्वकीयत्व छंद के दूसरे चरण में प्रगट होता है अतः 'ऊक' की अपेक्षा 'ओक' पाठ अपने घर में रहते हुए त्रैलोक्य को नचाने के प्रसंग में, मूल प्रति का पाठ है।

भा० मो० नी० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति :

३ : ४७

"कटक बसैं ते सेन्या तीन भाँति कहु ताहि।
इक बृषली अरु वेस्या कहत **मुकेरिन** जाहि॥"

'मु' में 'स' का भ्रम होने से भा० मो० नी० प्रतियों में '**सुकेरिन**' विकृत पाठ मिलता

है। 'मुकेरिन' पाठ ही शुद्ध है, क्योंकि यही पाठ ३ : ३०वें छंद के शीर्षक पर भी है तथा छंद के अन्तिम चरण में भी 'मुकरि मुकेरनि की' पाठ मिलता है।

३ : २८

"कानन करन फूल सोहत जरी दुकूल नथ मैं अथक लटकन लटकायो है।"

'अथक लटकन' से कवि का तात्पर्य नथ में पड़े उस मोती-लटकन से है जो नासिका के थोड़ा भी हिलने पर निरंतर झूमता रहता है। लिपिभ्रम से 'अथक' का 'अधक' होने हुए तथा इसे सार्थकता प्रदान करने के लिये केवल भा० मो० नी० प्रतियों में 'अधिक' पाठ मिलता है।

४ : २५

"तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि।
हारी पाँई परि परि तौ न कीन्ही तैं सम्हार।"

'तैं' भा० मो० नी० प्रतियों में त्रुटित होने के कारण रूप घनाक्षरी के चरण में ३२ वर्णों के स्थान पर ३१ वर्ण ही मिलते हैं।

भा० मो० ब्र० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

५ : ५६ पर्वत वधू

"पंकज से नैन बैन मधुर मयंक जैसे अधरनि **धरी धार** सुधा सरवत की।"

पर्वतीय रमणी के नेत्र कमल के समान सुन्दर तथा उसके मधुर बोल भी चन्द्रमा के समान अत्यन्त सुखकारी हैं। जैसे उसी के अधर पर अमृत-रस की धार गिरी हो! केवल भा० मो० ब्र० प्रतियों में '**धराधर**' पाठ मिलता है। 'धराधर' का अर्थ 'शेषनाग, पर्वत, विष्णु' होने के कारण यह पाठ यहाँ असंगत है।

६ : २८

"आछी उनमील नील सुभग सरोजन की **तरल तनाइयत तोरन** तितै तितै।"

चरण का यही शुद्ध पाठ 'सुजानविनोद' में २ : ११ पर, 'काव्यरसायन' में १ : ४० पर तथा 'सुखसागर तरंग' में ३७१ संख्या पर इसी छन्द में भी मिलता है। हमने 'सुजानविनोद' की भूमिका में इस छन्द के अर्थ पर विस्तार से विचार किया है। चरण में रेखांकित पाठ के स्थान पर भा० मो० प्रतियों में '**तरल तनाइमति तोरति**' पाठ है—मो० प्रति में अन्तिम 'ति' पार्श्व पर है, ब्र० प्रति में '**तरल तनैनी मति तोरति**' पाठ मिलता है। इन प्रतियों की '—मति तोरति' समान पाठ-विकृति, जो 'य' तथा 'न' में क्रमशः 'म' एवं 'त' का भ्रम होने से संभव है, विशेष रूप से दृष्टव्य है। जैसा कि इस चरण पर विचार करते हुए हमने अन्यत्र स्पष्ट किया है, '**तनाइयत तोरन**—' का अर्थ है 'कमलों की माला से निर्मित बंदनवार।"

७ : २३

"इहि विधि दसौ प्रकार के हाव होत संयोग।
अब दंपति की दस दसा बरनौ बीच वियोग ।।"

आलोच्य स्थल पर मो० ब्र० प्रतियों में **'बिचित'** तथा कदाचित् संपादक अथवा प्रति-लिपिकार द्वारा इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण भा० प्रति में **'विहित'** पाठ मिलता है। वियोगावस्था के मध्य दस कामदशाओं की स्थिति मानी गई है अतः 'बीच वियोग' पाठ ही संगत है।

७ : ४८

"**भौंर भरे** भीतर सरोज फरकत ऐसी अधखुली अँखियानि उपमा बढ़ाइयतु।"

भा० मो० ब्र० प्रतियों में **'भौंर भौंर'** पाठ मिलता है। प्रकृत भाव कुछ इस प्रकार है— अर्धोन्मीलित नेत्र उस फरकते संपुटित कमल के समान लगते हैं जिसके भीतर एक भ्रमर बंदी होकर पुनः स्वतन्त्र होने के लिए कुलबुला रहा है। अतः 'भौंर भौंर भीतर' की अपेक्षा 'भौंर भरे भीतर' पाठ अधिक संगत है। यहाँ 'भौंर' की पुनरुक्ति भी अनावश्यक है।

७ : ६४ प्रलाप-लक्षण

"दंपति कै **'उद्वेग ह्वै बढ़े'** विरह संताप।
उत्कंठित चित प्रेम पिय पेख्यो प्रगट प्रलाप ।।"

दोहे का यही पाठ 'भवानीविलास' में ७ : ३७ संख्या पर भी मिलता है परन्तु यहाँ केवल भा० मो० ब्र० प्रतियों में **'उद्वेग हू बैठि'** पाठ है। उद्वेग तथा उत्कंठा आदि विरह-दशा के उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करने पर प्रलाप की दशा प्रगट होती है अतः 'बैठि' की अपेक्षा **'बढ़े'** पाठ अधिक संगत है।

७ : ७९ विक्षेपोन्माद-उदाहरण

"चलि चलि मोसों कहै चलि चलि होति कित
विचलि विचलि चलि परति उचकि चकि।
काहि तकि तकि चित कितहि पठायो आजु
देव कहै रहैं कौन बिथा सों बिथकिथकि ।।"

प्रथम चरण में भा० मो० ब्र० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर **'बिथकि थकि'** पाठ है। यही पाठ तृतीय चरण में भी है एवं पीड़ा से व्यथित होने के प्रसंग में संगत है। इसके विपरीत थककर चल पड़ने के अर्थ में प्रथम चरण में 'चलि परति बिथकि थकि' पाठ की असंगति स्वयं-सिद्ध है।

७ : ७८

"कमल सुनैन जोरे **जबतें** सुनैन तुम तबतें सुनै न स्यामा सखिन के सोरए।"

जबसे तुमने उसके कमल के समान सुन्दर नेत्रों से अपने सुन्दर नेत्र मिलाये हैं तब से वह तुम्हारे ध्यान में इतनी तल्लीन रहती है कि सखियों के पुकारने पर भी नहीं सुनती। 'जबतें' की संगति 'तबतें' से भी सिद्ध है अतः 'जबतें' के स्थान पर भा० मो० ब्र० प्रतियों में प्राप्त **'जियत'** पाठ असंगत माना गया है।

प्रतियों का प्रतिलिपि—सम्बन्ध :

'रसविलास' की प्रतियों का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त उलझा हुआ है क्योंकि इसकी एक-दूसरे समूह की विभिन्न प्रतियों में परस्पर तथा देव-कृत अन्य ग्रन्थों की प्रतियों से भी अबाध मात्रा में पाठ-मिश्रण हुआ है। फिर भी प्रतियों में प्राप्त विभिन्न प्रकार की समान विकृतियों के आधार पर प्रतियों का सम्बन्ध इस प्रकार निर्धारित होता है—

भा० मो० प्रतियाँ ग्रंथ के प्रथम संस्करण की वंशज तथा एक ही आदर्श की दो प्रतिलिपियाँ हैं। इन दोनों प्रतियों में स्वतन्त्र विकृतियाँ भी मिलती हैं अतः ये एक-दूसरे की प्रतिलिपि नहीं हो सकतीं।

नी० गंजा० प्रतियाँ भी ग्रन्थ के प्रथम संस्करण की खंडित प्रतियाँ हैं। इन दोनों प्रतियों में भी स्वतन्त्र विकृतियाँ मिलने के कारण ये एक-दूसरे की प्रतिलिपि नहीं सिद्ध होतीं। (देखें, 'जातिविलास की प्रामाणिकता' शीर्षक)

गं० सा० प्रतियाँ ग्रंथ के दूसरे संस्करण की वंशज, एक ही शाखा की दो प्रतियाँ हैं। गं० प्रति में नी० गंजा० प्रति से कल्पनातीत मात्रा में पाठ-मिश्रण हुआ है।

सा० प्रति की शाखा तथा नी० गंजा प्रतियों की शाखा में ऊपर कहीं पाठ-मिश्रण हुआ है।

ब्र० प्रति दूसरे संस्करण की स्वतन्त्र शाखा की प्रति है, यद्यपि इस प्रति में भी, गं० प्रति के समान, अन्य प्रतियों से पाठ-मिश्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है। यह पाठ-मिश्रण विशेष रूप से ग्रन्थ के अन्तिम अंश में अधिक हुआ है।

ब्र० तथा सा०, भा० मो० तथा ब्र०, भा० मो० तथा नी०, नी० गं० गंजा० तथा भा० मो० प्रतियों के समुच्चय संदिग्ध प्रतिलिपि-सम्बन्ध के उदाहरण हैं अर्थात् इन प्रतियों का परस्पर सम्बन्ध प्रतिलिपि-परम्परा के माध्यम से नहीं अपितु पाठ-मिश्रण के द्वारा निर्धारित होता है।

रेखाओं के माध्यम से 'रसविलास' की सभी उपलब्ध प्रतियों के परस्पर सम्बन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :—

संपादन-सिद्धान्त

"रसविलास की सभी उपलब्ध प्रतियों में अत्यधिक पाठ-मिश्रण होने के कारण इस ग्रंथ का पाठ-चयन करने में गहरी सतर्कता की आवश्यकता है। पाठ-मिश्रण के कारण ही केवल कुछ प्रतियों के समुच्चय ऐसे हैं जिनमें समान विकृतियाँ नहीं मिलती हैं। इस प्रकार के केवल निम्नलिखित समुच्चय निर्विवाद रूप से विश्वसनीय हैं :—सा० भा० तथा मो० प्रतियाँ, ब्र०
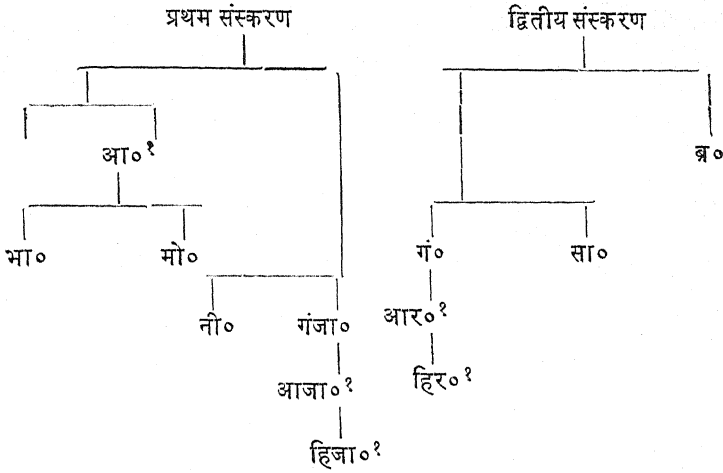
तथा गं० प्रतियाँ। सहायक सामग्री के रूप में अन्य ग्रंथों में प्राप्त समान छंद के पाठ का उपयोग भी व्यापक रूप में हुआ है। ऐसे स्थलों का निर्देश भूमिका में कर दिया गया है।

अपवाद

मान्य संपादन-सिद्धान्त के अपवादस्वरूप कुछ स्थल इस प्रकार हैं :

केवल ब्र० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

६ : १५ खंडिता।

"लालन लजात से जम्हात बिहँसात प्रात **आए अलसात आली** देत पेंच पाग के।"

यह पाठ केवल ब्र० प्रति में है, अन्य पाठान्तर इस प्रकार हैं—**आए आली मेरे गृह—भा० मो; आली उठि आए देखि—गं०**। इन सभी प्रतियों में 'आए आली' पाठ समान है अतः इतना पाठ निर्विवाद रूप से स्वीकृत किया जा सकता है। शेष अंश में भा० मो० प्रतियों का 'मेरे गृह' तथा गं० सा० प्रतियों का 'उठि देखि' पाठ अर्थहीन न होने पर भी ब्र० प्रति के 'अलसात' पाठ की तुलना में प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त मालूम देता है। नायिका का पति रात्रि-पर्यन्त किसी अन्य रमणी के साथ विलास कर अपने शरीर पर सुरति के स्पष्ट चिह्न लिये मुस्कराता, जमुहाता हुआ घर वापस लौटा है। जिस प्रकार जमुहाना आलस्य संचारी का अनुभाव है उसी प्रकार अलसाते हुए आना श्रम संचारी का अनुभाव हो सकता है, अतः कवि की शैली पर ध्यान देते हुए हमने ब्र० प्रति का 'आए अलसात आली' पाठ स्वीकृत किया है।

८ : १५ मुदिता-उदाहरण

"आरस सों रस सों अँगिरात दसौ अँगुरी कर **अंजन** काढ़ी।"

---

[1] अंकित प्रतियों का उपयोग पाठ-संपादन में नहीं हुआ है।

यह पाठ केवल ब्र० प्रति में है, गं० सा० प्रतियों में इसके स्थान पर **अंजुलि** पाठ है। मुदिता नायिका आँखों में अंजन लगने के हेतु एक या दो अंगुलियों पर नहीं, आनंदातिरेक में अपने हाथ की सभी उँगलियों पर अंजन निकाल लेती है। अतः 'अंजन' पाठ की संगति स्पष्ट है। वह अपना कसा हुआ नीवी-बंध खोलकर फिर से कसकर बाँधती है एवं कंचुकी का बंधन भी ठीक करती है। नायिका के इस चित्रण से भी उसके उल्लास का आधिक्य प्रकट होता है। इस प्रकार 'अंजन' पाठ संगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है। तुलना, "अंजन नैनी उठी अकुलाइ धरे अंगुरी पर अंजन बूंदी।"—'सुमिलविनोद' ५ : ११ : २।

केवल गं० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ

७ : ६२

"**धूम घटागरु धूपनि की** निकसे नव जालनि व्याल भरे से।"

यह पाठ केवल गं० प्रति में तथा 'सुख सागर तरंग' में ५६८ संख्या पर इसी छन्द में मिलता है, भा० मो० ब्र० प्रतियों में इस स्थल पर '**धूम जठागरु धूमन के**' तथा सा० प्रति में '**धूम जठागरु धूपनि की**' पाठ है। 'जटागरु' तथा 'जठागरु' पाठ शब्दार्थ के विचार से अग्राह्य हैं। भा० मो० ब्र० प्रतियों का 'धूमनि' विकृत पाठ भी, जो लिपि-भ्रम से संभव है, 'धूम' की पुनरुक्ति होने के कारण असंगत है। यहाँ ऊपर उठते हुए धूप, अगर चंदनादि के धुँए की टेढ़ी लकीर की ओर, जो वक्राकार सर्प के समान लगती है, कवि का संकेत है अतः 'अगर तथा धूप की धूम-घटा' के अर्थ में सर्वप्रथम उद्धृत 'धूम घटागरु धूपनि की' पाठ संगत है।

८ : १०

"रँग लाल जरी पट घूँघट ओट लसै मुकतालर की लरक्यो।
प्रभात प्रभाकर मंडल मैं विधु मंडल **बिंब सुधाधर को**।
रदपाँति चुनी चमकै हँसि बोलत देव कछू अधरा फरक्यो।
मनो कातिक पून्यो की राति सुधाकर मध्य सुधा भरिकै ढरक्यो।।"

नायिका के लाल वस्त्र के नीचे से झलकती हुई मोतियों की माला पर कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि यह माला प्रभात के समय की लालिमा में विलम्ब से उदित होने वाले चंद्रमंडल का प्रतिबिम्ब है। इसके स्थान पर सा० ब्र० प्रतियों में प्राप्त '**बिंदु सुधा ढरक्यो**' पाठ, अर्थहीन न होने पर भी, चतुर्थ चरण के अन्त में यही पाठ होने के कारण, अग्राह्य है।

८ : ३५

"रावरे **पायन ओट** लसै पग गूजरी वार महावर ढारे।"

यह पाठ केवल गं० प्रति में तथा 'काव्यरसायन' में २ : ५४ तथा देवकृत अन्यान्य ग्रन्थों में इसी छन्द में मिलता है। ब्र० प्रति में सामान्य लेखन-प्रमाद से वर्णों का विपर्यय होने से '**पाय अनौठ**' पाठ है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण अस्वीकृत तथा केवल गं० प्रति में प्राप्त पाठ

अन्य ग्रंथों के साक्ष्य पर स्वीकृत हुआ है।

८ : ५० कुलटा उदाहरण।

"ठान कुठान अठान ठनी ठहकीली रहै गुरु लोग रुठाये।"

कुलटा परकीया नायिका इधर-उधर रुककर अथवा बैठकर अकरणीय कार्यों में लगी रहती है इसीलिए उसके गुरुजन उससे रुष्ट रहते हैं। 'ठहकीली' शब्द 'ठहना' (सं० स्था०, प्रा० ठा) अर्थात् 'किसी काम को करते हुए बीच-बीच में ठहरने' के अर्थ में इस प्रकार संगत सिद्ध होता है। तुलना—"पूरब पौन के गौन गुमानिनि नंद के मंदिर में ठहकाई।" —काव्यरसायन ८:४८। 'ठहकीली' पाठ केवल गं० प्रति में मिलता है। यही पाठ वर्ण-विपर्यय से ब्र० प्रति में **'हठकीली'** एवं सा० प्रति में **'हटकीली'** हो गया है। 'हठकीली' का सम्बन्ध खींचतान कर 'हठ' से जोड़ने पर भी चरण का कोई विशेष संगत अर्थ नहीं निकलता। इसी प्रकार सा० प्रति का 'हटकीली' पाठ स्पष्ट रूप से अग्राह्य है क्योंकि 'हटकना' का अर्थ 'रोकना, वर्जन करना' आदि है एवं प्रसंग से 'हटकीली' नायिका के लिए प्रयुक्त है तथा नायिका का हटकना अथवा रोकना भी संगत नहीं है।

विशेष संशोधन :

५:५४ आभीर वधू।

"कर पद पदम पदमनैनी पद्मिनी पदम सदम सोभा संपद सी आवती।"

आभीर देश की पद्मिनी नायिका, जिसके हाथ, पाँव तथा नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं और जो कमल-महल में शोभा तथा संपत्ति के समान सुशोभित है, वह चली आ रही है। यहाँ ऐश्वर्य तथा संपदा के अर्थ में 'संपद' शब्द का प्रयोग हुआ है। विभिन्न प्रतियों में आलोच्य स्थल का पाठ इस प्रकार मिलता है : सेपद सी—ब्र०, संपति सी—सा०, सबद-सी—गं० गंजा०, सुखद सी—नी०, सेखद सी—मो०, सबै देखन मैं—भा०। इनमें से सा० तथा भा० प्रति में प्राप्त पाठ के अतिरिक्त अन्य पाठ निरर्थक तथा प्रसंग में असंगत होने के कारण अग्राह्य हैं। इन सभी प्रतियों के विकृत पाठों पर सूक्ष्मता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इस विवादास्पद स्थल में मूल प्रति में स, प तथा द वर्णों-सहित कोई पाठ रहा होगा। सा० प्रति का 'संपति' पाठ चरण की 'द' अनुप्रास-माला के अनुकूल न होने के कारण मूल का नहीं माना जा सकता। इसी कारण भा० प्रति का पाठ भी असंगत है अतः संपादक ने चरण की वर्ण-योजना पर ध्यान देते हुए 'संपद सी' पाठ-संशोधन अपनी ओर से किया है। मो० प्रति की 'सेखद' तथा ब्र० प्रति की 'सेपद' पाठ-विकृति भी इसी पाठ से संभव है।

७:६९ प्रथम दो चरण

"प्रेम की पीर न जानी तैं वीर जु छैल कटाछहूँ सों कहुँ छ्वैहै।
देव तुही त्रसिहै हँसिहै बलि बावरी ह्वै रस रूसिहै र्‌वैहै॥"

यह पाठ केवल 'देवशतक—प्रेमपचीसी' में २४वीं संख्या पर इसी छन्द में मिलता है।

'रसविलास की विभिन्न प्रतियों में पाठ की स्थिति इस प्रकार है—रस ही रस चैहै—भा०, रस है रस चैहै—मो०, रस है रस च्वैहै—ब्र०, रस रूसी सी ह्वै है—सा०, को रवि सूचि बिसैहै—गं०। 'भवानीविलास' में ८:१६ संख्या पर इसी छन्द में 'रस रूसिहै चैहै' पाठ मिलता है। इनमें से 'भवानीविलास' तथा 'रसविलास' की भा० प्रकाशित प्रतियों में प्राप्त 'चैहै' विकृत पाठ परस्पर पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप अथवा दोनों ग्रन्थों में सम्पादक को 'र्‌वै' के प्राचीन रूपान्तर में 'च' का भ्रम होने के कारण स्वतन्त्र रूप से सम्भव है। इन प्रतियों का 'चैहै' अथवा ब्र० प्रति का 'च्वैहै' पाठ शब्दार्थ के विचार से अग्राह्य है क्योंकि नायिका के रुष्ट होने तथा उसके 'चू पड़ने' में कोई संगति नहीं है। गं० प्रति का 'सूचि बिसैहै' पाठ तो और भी भ्रष्ट है। 'चैहै', 'च्वैहै' तथा 'ह्वैहै' आदि पाठ-विकृतियाँ 'र्‌व' के प्राचीन रूपान्तर में भ्रम होने से संभव हैं अतः इन पाठों को अस्वीकृत करते हुए देवकृत उपर्युक्त अन्य ग्रंथ से 'र्‌वैहै' पाठ यहाँ विशेष संशोधन के रूप में स्वीकृत हुआ है।

८ : ६२ कुलगर्विता-उदाहरण

"बोलत बातें बड़ी बन मैं मन मैं बृषभान बबा सों **अरूझत**।"

आलोच्य स्थल पर गं० प्रति में '**अनूझत**' तथा ब्र० सा० प्रतियों में '**अबूझत**' पाठ है। 'भवानीविलास' में ७:२१ संख्या पर इसी छन्द में 'अरूझत' पाठ तथा 'सुखसागरतरंग' में ३४१ संख्या पर 'अनूझत' विकृत पाठ मिलता है। यहाँ यह अर्थहीन पाठ-विकृति 'र' के प्राचीन रूपान्तर में 'न' का भ्रम होने से सम्भव है एवं इस ग्रन्थ में पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप गं० प्रति में भी यही विकृत पाठ आ गया है। ब्र० सा० प्रतियों का 'बृषभान बबा सों **अबूझत**' पाठ भी न मानने अथवा अवज्ञा करने के अर्थ में, 'अरूझत' के स्थान पर कविकृत पाठ-परिवर्तन नहीं हो सकता, क्योंकि इस अर्थ में पाठ 'सों बूझत' न होकर 'को अबूझत' होता। अतः हमने उपर्युक्त स्थल पर 'भवानीविलास' के 'अरूझत' पाठ को स्वीकार किया है।

'जातिविलास' की प्रामाणिकता

मैंने 'रसविलास' के पाठ-संपादन में 'जातिविलास' शीर्षक की नीलगाँव एवं गंधौली से प्राप्त (भूमिका में क्रमशः नी० तथा गंजा० संज्ञा से अभिहित) जिन दो प्रतियों का उपयोग किया है उनके अतिरिक्त 'जातिविलास' शीर्षक की केवल कुछ ही अन्य प्रतियाँ अब तक प्राप्त हुई हैं। यद्यपि इन सभी प्रतियों का विस्तृत परिचय हमने 'रसविलास' की प्रतियों के साथ दे दिया है फिर भी यहाँ इतना स्मरण दिलाना अप्रासंगिक न होगा कि 'जातिविलास' शीर्षक से प्राप्त इन प्रतियों में केवल नी० तथा गंजा० प्रतियाँ संवत् १६४२-४३ के निकट प्रतिलिपि होने के कारण कुछ प्राचीन हैं एवं नागरी-प्रचारिणी सभा तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी में संग्रहीत इसकी अन्य प्रतियाँ गंजा० प्रति से संवत् १६७७ के बाद प्रतिलिपि होने के कारण केवल साधारण महत्त्व की सामान्य आधुनिक प्रतिलिपियाँ हैं। गंजा० प्रति में 'रसविलास' की गंधौली की गं० प्रति से तथा अन्यान्य प्रतियों से पाठ-मिश्रण तथा प्रतिलिपिकार द्वारा अत्यधिक पाठ-संशोधन हुआ है, अतः इस प्रति में अपनी आदर्श प्रति का पाठ भी सुरक्षित रह सकने की बहुत

कम आशा है। इसके विपरीत नी० प्रति में अन्य स्रोतों से पाठ-मिश्रण नहीं हुआ है इस कारण गंजा० प्रति की तुलना में यह प्रति 'जातिविलास' शीर्षक प्रतियों की परम्परा का यथासम्भव शुद्धतम पाठ देती है। इसी कारण हमने 'रसविलास' के पाठ-संपादन में इस प्रति का उपयोग किया है तथा इसी कारण यह प्रति 'जातिविलास' के सम्बन्ध में किसी संगत निष्कर्ष तक पहुँचने में सर्वाधिक सहायक हो सकती है।

'जाति विलास'—शीर्षक की नी० प्रति सहित सभी प्रतियाँ "केरल वधू" ५ : ४७ वें छंद से आगे खण्डित हैं यद्यपि पंचम विलास में देश-भेद का विषय-प्रवर्तन करते हुए कवि देव ने जिन देशों की सूची दी उसके अनुसार केरल वधू से आगे, द्राविड़, तिलंग आदि वधुओं का भी वर्णन होना चाहिये। इस सूची में विज्ञापित सभी देश-भेद 'रस विलास' में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रंथ का "जाति विलास" नाम नी० प्रति में केवल प्रति के प्रारम्भ में ही मिलता है 'अथ जाति विलास लिख्यते—' एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस प्रति में विभिन्न विलासों के अन्त में जो पुष्पिकाएँ दी हैं परन्तु उनमें ग्रंथ-नाम नहीं है यद्यपि रीतिकालीन अन्य कवियों में प्रचलित परिपाटी के अनुसार देव के सभी ग्रंथों में निरपवाद रूप से प्रत्येक विलास अथवा अध्याय के अन्त में ग्रंथ एवं उसके रचयिता का नाम तथा यदि ग्रंथ किसी को समर्पित है तो उस आश्रयदाता का नाम अवश्य मिलता है। नी० प्रति के विपरीत गंजा० प्रति (तथा उसकी सभी प्रतिलिपियों) के प्रथम, द्वितीय आदि प्रत्येक विलास के अंत की पुष्पिका में कवि देव का नाम भी मिलता है। आश्रयदाता का नाम नी० सहित किसी प्रति में नहीं है क्योंकि यह ग्रंथ देव कवि ने किसी को समर्पित नहीं किया है। गंधौली के जिन स्वर्गीय श्री युगल किशोर मिश्र के परिवार के संग्रह से यह प्रति प्राप्त हुई है उस परिवार में कई पीढ़ियों से कवि तथा काव्य-मर्मज्ञ विद्वान होते आए हैं। मेरे विचार से इसी परिवार के किसी काव्य-रीति से परिचित विद्वान ने अपनी आदर्श प्रति के आदि में 'जाति विलास' नाम देख कर यही नाम तथा देव का नाम सभी विलासों के अन्त की पुष्पिका में भी दे दिया होगा और इससे प्रतिलिपि होने के कारण यह विशेषता उनकी वर्तमान प्रति में आ गयी है।

'जाति विलास' के इस भिन्न नाम से भ्रमित होकर अब तक के विद्वान इसे 'रस विलास' से पृथक्, देवकृत स्वतन्त्र ग्रन्थ मानते आये हैं यद्यपि किसी ने 'जाति विलास' को स्वतन्त्र ग्रन्थ मानने का कोई भी कारण नहीं दिया है। आश्चर्य है कि एक बार 'जाति विलास' को पृथक् एवं स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लेने के कारण विद्वानों ने इस ग्रन्थ की रचना के सम्बन्ध में विचित्र-विचित्र कल्पनाएं भी की हैं। उदाहरण के लिए श्री मिश्र बंधुओं का अनुमान है कि 'जाति विलास' देव की देशव्यापी यात्रा का परिणाम है :—

"इस समय देव जी अच्छे गुणज्ञ की खोज में, अथवा तीर्थयात्रा के लिए देश भर में बराबर घूमते रहे। यह महाराज जहाँ गये वहाँ के मनुष्यों की चाल-ढाल रीतियों और अन्यान्य दर्शनीय पदार्थों पर पूरा ध्यान देते रहे। जान पड़ता है उन्होंने काश्मीर, पंजाब, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास, बम्बई, गुजरात, राजपूताना, बरार आदि सब देशों को घूम-घूम कर देखा। इन महाकवि ने अपने भ्रमण द्वारा प्राप्त अपूर्व ज्ञान को वृथा नहीं खोया वरन अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर उसका उपयोग किया है। 'जाति विलास' नामक ग्रन्थ रचकर उन्होंने सब देशों की स्त्रियों

का बड़ा ही सच्चा वर्णन किया है।---इन महाकवि ने इन सब देशों की स्त्रियों का ऐसा सच्चा वर्णन किया है कि जान पड़ता है ये वहाँ गये अवश्य थे। इस समय इनका कोई भी आश्रयदाता न था; यहाँ तक कि इन्होंने 'जाति विलास' किसी को भी समर्पण नहीं किया।"

—"हिन्दी नवरत्न" पृ० २७३

इसमें संदेह नहीं कि जाति-भेद का यह प्रसंग कवि देव की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है परन्तु इस चित्रण में ऐसी कोई विशेषता नहीं मिलती जिसे देखकर यह स्वीकार करना पड़े कि उस प्रदेश में स्वयं जाए बिना कवि ऐसा सच्चा वर्णन नहीं कर सकता था। इसके विपरीत समग्र रूप से देखने पर कवि के वर्णन में प्रदेश के स्थानीय वातावरण (Local colour) का अभाव प्रकट होता है। मैं केवल एक उदाहरण देता हूँ, देखें, क्या इस सुदूर कोंकण देश की वधू के चित्रण में कोई ऐसी विशेषता है जिसका वर्णन कवि उस प्रदेश में जाए बिना नहीं रह सकता था :—

"गोरी गजराज गति गुननि गहीर मति भारे भाग ही रमति सुरति सकोचनी।
आलिंगन चुंबन अधर पान नलदान मान सौं बचन रचना सौं रूचि रोचनी।
जाने रीति जी की पहिचाने प्रीति नीकी सुखदानि सबही की प्यारी पी की दुख मोचनी।
केसरि करै न सरि को कनक जाकी दरि कोंकनदरी की नारि कोकनद लोचनी॥

—'रस विलास' ५ : ४६।

इसी प्रकार देश-भेद के अन्य उदाहरणों में भी, समकालीन चेतना के अनुरूप कवि की दृष्टि नारी के रूप-लावण्य पर पहले जाती है, प्रदेश के आधार पर विभाजन तो उसने केवल नाम लेने भर को, गौण रूप में किया है।

आश्चर्य है कि देव की रचनाओं पर प्रथम बार आधुनिक, वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हुए डा० नगेन्द्र ने भी देव की देशव्यापी यात्रा के उपर्युक्त काल्पनिक मत का विस्तार कर अपनी ओर से यह भी मान लिया है कि देव को इस यात्रा में कम से कम १५ वर्ष लगे होंगे :—

"जैसा कि सभी पंडितों का मत है—जाति विलास एक देशव्यापी यात्रा के फलस्वरूप लिखा गया है। यह यात्रा काफी लंबी थी और दस-पन्द्रह वर्षों में अवश्य समाप्त हुई होगी। अतएव, संभवतः संवत् १७६५ के लगभग राजा कुशलसिंह के आश्रय से किसी कारण विमुख होकर देव देशाटन के लिए चल पड़े होंगे। इस यात्रा में देव ने समस्त भारत में पर्यटन किया और वहाँ के सौन्दर्य का, सौंदर्य से तात्पर्य उस समय केवल नारी-सौंदर्य का ही था, अवलोकन किया।"

—'देव और उनकी कविता' पृ० ४६

परन्तु 'जाति विलास' प्रति की 'रस विलास' के साथ तुलना करने पर, प्रतियों के प्रतिलिपि-सम्बन्ध के अपेक्षाकृत शुष्क साक्ष्य को छोड़ देने पर भी, केवल समान छन्दों की स्थिति ही स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में 'जाति विलास' की पृथक् सत्ता के विरुद्ध सबसे सशक्त प्रमाण मालूम देता है। 'जाति विलास' की प्रति में कुछ अधिक छंदों को छोड़कर 'रस विलास' के ५ : ४७ संख्या तक के सभी छंद समान हैं। इस तथ्य से मिश्र बंधु भी अवगत हैं—"हमारी कापी में केरल वधू तक का वर्णन लिखा है। उसके आगे पुस्तक अपूर्ण है।—जहाँ तक ग्रन्थ हमारे पास

है वहाँ तक इसकी रचना रस विलास से बहुत कुछ मिलती है, यहाँ तक कि दोनों ग्रन्थों में प्रति सैंकड़े नब्बे छन्द एक ही हैं—'हिंदी नवरत्न', और डॉ० नगेन्द्र भी इस सत्य से अपरिचित नहीं— "वास्तव में रस विलास को जाति विलास का संशोधित और परिवर्धित संस्करण कहना चाहिए। जाति विलास और भवानी विलास की अपेक्षा उसमें इतने कम नवीन छंद हैं कि उनकी रचना में कवि को बहुत ही थोड़ा समय लगा होगा।"

—'देव और उनकी कविता' पृ० ४८।

'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों के केवल इन थोड़े से अधिक छन्दों के कारण 'जाति विलास' को 'रस विलास' से स्वतन्त्र ग्रंथ माना गया है—यद्यपि किसी विद्वान ने यह कारण नहीं दिया है परन्तु 'जाति विलास' प्रति में 'रस विलास' से इतनी समानता देखते हुए भी इसे पृथक् ग्रंथ मानने का फिर दूसरा और क्या कारण हो सकता है ?

'जाति विलास' शीर्षक प्रति में 'रस विलास' से जहाँ तक छन्द समान है, उन पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है अतः हम केवल 'जाति विलास' शीर्षक प्रति के अधिक छन्दों पर यहाँ विचार करेंगे। इस समूह की प्रतियों में अधिक छन्द नगर नागरी भेद के अन्तर्गत 'रस विलास' २ : ६ से आगे मिलते हैं। नगर नागरी भेद के ये छन्द 'रस विलास' के अतिरिक्त देव-कृत 'सुख सागर तरंग' में भी मिलते हैं। स्मरण रहे कि इस 'सुख सागर तरंग' ग्रंथ के कविकृत दो संस्करण हैं। एक, जो पिहानी के अकबर खाँ को समर्पित है, इस लेख में सुसा० (अली०) संकेत से तथा दूसरा, जो महाराज जसवंतसिंह के नाम समर्पित है, इस लेख में सुसा० (जस०) संकेत से उल्लिखित है। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों, 'रस विलास', सुसा० (जस०) एवं सुसा० (अली०) ग्रंथों में इस प्रसंग के सभी छन्दों की प्रतीक-सूची प्रत्येक ग्रंथ में छन्द के स्थल निर्देश-सहित इस प्रकार हैं :—

नगर-नागरी भेद—रस० २ : ५

'जाति विलास' शीर्षक प्रतियाँ		'रस विलास'	सुसा० (जस०)	सुसा० (अली०)
जौहरिनी	'सींची सुधा' ——	यही २ : ७ —	यही १०७ —	यही २६२
छीपिनी	'सोने से' ——	यही २ : ८ —	यही १०८ —	यही २६३
कसहेरिन	'बेला यही' ——		—	—
सुनारि	'देव दिखावत' ——	यही २ : १० —	यही ११० —	यही २६५
हलवाइन	'मीठे महामृदु' ——	यही २ : १४ —	यही ११३ —	यही २६६
बनैनी	'मदन के मोद' ——	यही २ : १५ —	यही ११४ —	यही २७०
पटविन	'रेसम के गुन' ——	यही २ : ६ —	यही १०६ —	यही २६४
पसारिन	'पीपरी सुपारी' ——		—	—
गंधिन	'अरगजे भीजी' ——	यही २ : ११ —	यही १११ —	यही २६६
मालिन	'बीनत फिरत फूल' ——	यही ३ : १४ —	यही	यही २८८
तमोलिन	'रंगित चोलीं तैं' ——	यही २ : १३ —	यही ११२ —	यही २६८
बढ़इन	'बंक निहारनि' ——		— 'भौंहें अराले —	यही २७६

			अरेरति' ११७ —	
लुहारी	'लागी तचावन' ——		— 'लहलहे जीवन— ११८" —	यही २७७
दरजिन	'अन्तर पैठि' ——	यही २ : १७ —	यही ११६ —	यही २७२
तैलिन	'तिल है अमोल' ——	यही २ : १२ —	यही ११२ —	यही २६७
कुम्हारी	'चंदमुखी मुरि' ——	यही २ : १६ —	यही ११५ —	यही २७१
भरभूजिन	'साँवरे अंग लसै' ——		— 'बिज्जु छटा— सी' १२१	
चुरहेरिन	'हाटकलतासी' ——		—	—
धुनिन	'पीतम पास कपास' —		—	—
जुलाहिन	'लाज जजीरन' ——		—'बाँकुरी भौंहनि'— ११९	यही २७४
कटेरिन	'जीति लियो सिगरो'—		—	—
खटकिन	'मोहत हजारन' ——		—	—
भठियारी	'चाउ परै भठियारी'—		—	—
सिकलीगरनि	'चित चोरति सी' ——		—	—
चूहरी	'चीकने कपोल ——	यही २ : १८ —	यही १२४ —	यही २७८
चमारि	'जोवन जोम से' ——		'मोचिन' रंगित पीठी' १२०	— यही २७५
गनिका	'चाट उचाट' ——	यही २ : १९	यही १२५	यही २७९
		कँगहेरिन 'कँघी से कटाछनि'	१२१	
		कुँजरी 'कूजरी ऊजरी बाल'	१२२	यही २७३
		मनिहारि 'मानै नहीं मनुहारि'	१२३	
	नोट :— 'रस विलास तथा नी० गंजा० प्रतियों में ये छन्द परस्पर स्वतन्त्र क्रम से आए हैं।		नोट :— दरजिन उदाहरण छंद तक 'रस विलास' एवं 'सुसा० (जस०) में छंदों का क्रम समान है। इससे आगे के अन्य उदाहरण सुसा० अन्य उदाहरण सुसा० (जस०) तथा सुसा० (अली०) में समान हैं परन्तु नी० गंजा० प्रतियों के अन्य उदा-	नोट :— सुसा० (जस०) तथा सुसा० (अली०) में समान छंद एक ही क्रम से मिलते हैं।

हरण छन्द अन्यत्र
कहीं नहीं मिलते।

इस तुलनात्मक प्रतीक-सूची के अनुसार 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में कसहेरिन, पसारिन, चुरहेरिन, धुनिन, कटेरिन, खटकिन, भठियारी तथा सिकलीगरनि—ये कुल आठ उदाहरण अन्य ग्रंथों की अपेक्षा अधिक हैं एवं इन प्रतियों में बढ़इन, लुहारि, भरभूजिन जुलाहिन तथा चमारि के उदाहरण-छन्द अन्य ग्रंथों में इन्हीं शीर्षक के अन्तर्गत आए उदाहरण छन्द से भिन्न हैं।

इन प्रतियों में तथा 'रस विलास' में दूसरा अन्तर 'रस विलास' ३ : १३ से आगे है, जहाँ 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में बारिन 'नेह भरी नख', डोमिन 'तान सुजान की' तथा चंडारी 'साँवरी साँट की', ये तीन छन्द अन्य ग्रंथों की अपेक्षा नए हैं। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में तथा 'रस विलास' में केवल इन्हीं सोलह छन्दों का अन्तर है, इन प्रतियों के २१० छन्दों में से शेष छन्द 'रस विलास' से समान हैं !

इन अधिक छन्दों के विषय में केवल दो संभावनाएँ हो सकती है—एक ये छन्द कवि देवकृत हैं। तथा दो, इन्हें इन प्रतियों में कवि ने रखा है।

इन प्रतियों के अधिक छन्दों में कटेरिन, सिकलीगरनि, भरभूजिन, लुहारिन तथा बढ़इन उदाहरणों में देव कवि की छाप मिलती है। उदाहरण स्वरूप सिकलीगरनि में यह इस प्रकार है। 'कवि देव कहें छिन देखत ही कहि का न कहो छतिया दरकी।' भाषा तथा शैली के आधार पर छन्द का विश्लेषण कर उसकी प्रामाणिकता का निर्णय विद्वान दे सकते हैं, अतः यह भार मैं उन पर छोड़ता हूँ।

यदि ये अधिक छन्द देवकृत हैं तो इन प्रतियों में इनकी उपस्थिति से सम्बन्धित दूसरा प्रश्न महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी प्रश्न के साथ स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में 'जाति विलास' की प्रामाणिकता का प्रश्न भी संलग्न है। इस विषय में निम्नलिखित संभावनाएँ विचारणीय हैं:—

एक, कि कवि ने 'रस विलास' की रचना करते समय ग्रंथ का आकार संक्षिप्त करने के हेतु इन अधिक छन्दों को 'रस विलास' में नहीं रखा। डा० नगेन्द्र आदि विद्वान भी यही मानते हैं कि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पूर्व हुई थी। संक्षेप की यह संभावना फिर भी संदेहपूर्ण है क्योंकि कवि संक्षेप केवल एक स्थल क्यों करेगा, एवं वह संक्षेप करते हुए अन्यत्र भी मिलने वाले छन्दों को छोड़कर केवल ऐसे ही छन्दों को क्यों वहिष्कृत करेगा जो अन्य-अन्य ग्रंथों में कहीं नहीं मिलते। ऐसा केवल संयोगवश नहीं हो सकता। फिर, 'रस विलास' के अनेक छन्द 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में नहीं मिलते। इस प्रकार भी ग्रंथ के आकार में संक्षेप करने की कवि-प्रवृत्ति संगत नहीं सिद्ध होती।

दो, कि तथाकथित 'जाति विलास' ग्रंथ की रचना 'रस विलास' के पश्चात् हुई एवं 'जाति विलास' के अधिक छन्द कवि द्वारा इस दूसरे ग्रंथ की आकार-वृद्धि के कारण मिलते हैं। परन्तु यह संभावना इसलिए अमान्य ठहरती है क्योंकि 'जाति विलास' ग्रंथ किसी आश्रयदाता को समर्पित नहीं है अतः इसकी रचना का कोई प्रयोजन नहीं है। कोई भी कवि, और फिर देव-जैसा कवि, एक ग्रंथ से उन्हीं-उन्हीं छन्दों को लेकर छन्दों के उसी क्रम से दूसरा ग्रंथ न तो निरू-

द्देश्य तैयार करेगा और न केवल इन १५-१६ अधिक छन्दों को सम्मिलित करने के लिए एक नए 'ग्रंथ' की रचना करेगा। स्मरण रहे कि 'प्रेम तरंग' तथा 'कुशल बिलास' में कुछ छन्द न्यूनाधिक होते हुए भी अधिकतर छन्द समान हैं परन्तु दोनों ग्रंथों में छन्दों का संयोजन एवं विलासों का विभाजन स्वतन्त्र रीति से हुआ है, साथ ही ये सभी विशेषताएँ संगत भी हैं इसलिए हमने उन दो ग्रंथों को एक दूसरे से स्वतन्त्र तथा 'प्रेम तरंग' को 'कुशल बिलास' का आधार ग्रंथ माना है। 'जाति विलास' के सभी छन्द 'रस विलास' में उसी क्रम से मिलते हैं। इस कारण इन ग्रंथों की स्थिति पहले उदाहरण से भिन्न है।

इन सम्भावनाओं के अमान्य होने पर हम इन अधिक छन्दों को 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों के प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त मानते हैं। इन प्रक्षिप्त छन्दों को छोड़ देने शेष छन्द इसी क्रम से 'रस विलास' में भी मिलते हैं अतः 'जाति विलास' शीर्षक ये प्रतियाँ किसी स्वतन्त्र ग्रंथ की प्रतियाँ न होकर 'रस विलास' की किसी खंडित प्रति की प्रतिलिपि अथवा 'रस विलास' की अपूर्ण प्रतिलिपि सिद्ध होती हैं। इसका एक प्रमाण नी० प्रति के अनुसार इसके विभिन्न विलासों की पुष्पिका में रचनाकार का नामोल्लेख न होना भी है।

इस खंडित शाखा में ये अधिक छन्द क्यों प्रक्षिप्त हुए, इसका कारण भी स्पष्ट है। 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियों में भी, जो श्लेष लक्षण दोहे से आगे खंडित हैं, इसी प्रकार लगभग ९० छन्द प्रक्षिप्त हैं। हमने माना है कि आदर्श प्रति खंडित तथा उसका पाठ नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में होने के कारण प्रतिलिपिकार ने 'भाव विलास' की इन प्रतियों में प्रक्षेप किया है। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में प्रक्षेप होने का एकमात्र कारण यह न भी हो कि इसकी आदर्श प्रति का पाठ अत्यन्त नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में था, तो भी इसकी आदर्श प्रति के खंडित होने के कारण भी प्रक्षेप की संभावना हो सकती है। मैं केवल एक संभावना के रूप में इस ओर संकेत कर रहा हूँ।

यदि ये प्रक्षिप्त छन्द देवकृत हैं तो इन अधिक छन्दों का प्रक्षेप कहाँ से हुआ ? ऊपर दी गई तुलनात्मक तालिका से यह प्रगट है कि प्रक्षिप्त छन्दों के बढ़इन, लुहारिन जैसे कुछ ऐसे शीर्षक हैं जो 'रस विलास' में न मिल कर 'सुख सागर तरंग' के दोनों संस्करणों में मिलते हैं। इनमें भी सुसा० (जस०) संस्करण में सुसा० (अली०) की अपेक्षा इस प्रसंग के कुछ अधिक छन्द हैं। इसलिए 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों के अधिक छन्द 'सुख सागर तरंग' के दोनों संस्करणों से भी प्रक्षिप्त हैं और इनमें से ऐसे छन्द जो 'सुख सागर तरंग' की अपेक्षा भी अधिक हैं, जाति-वर्णन विषयक देवकृत किसी अन्य ग्रंथ अथवा संग्रह से आए मालूम देते हैं। इस अन्य स्रोत की उपस्थिति हमने इसलिए मानी है क्योंकि सुसा० (जस०) संस्करण में भी कुछ ऐसे छन्द हैं जो सुसा० (अली०) में नहीं मिलते।

हस्तलिखित ग्रंथों की खोज रिपोर्ट में देवकृत 'जाति वर्णन प्रकाश' शीर्षक ग्रंथ की सूचना है। (१९२३-२५, पृष्ठ ४५४-५६) परन्तु इसे 'जाति विलास' के समान देवकृत जाति-विषयक नवोपलब्ध स्वतन्त्र ग्रंथ समझ कर चौंक न पड़ना चाहिये। यह 'सुख सागर तरंग' की गंधौली वाली प्रति से २४६ छन्द—संख्या से ३०६ संख्या तक के जाति-विषयक अंश की प्रतिलिपि है। इस प्रति से प्रतिलिपि होने का केवल एक प्रमाण दिया जाता है। इस तथाकथित 'जाति वर्णन

प्रकाश' ग्रंथ में तथा गंधौली की व उपर्युक्त प्रति में 'सैन्य वासिनी' के स्थान पर **सैन्यो वासिनी** शीर्षक मिलता है !

इन प्रतियों में ग्रंथ का 'जाति विलास' नाम आदर्श प्रति के खंडित होने के कारण तो आया ही है परन्तु इस भ्रांति के उत्पन्न होने का कारण निम्नलिखित दोहा भी है:—

"देवल रावल राजपुर नागरि तीति निवास।
तिनके लच्छन भेद सब बरनत जाति विलास।।"

—रस विलास १ : १४

प्रतिलिपिकार को भ्रान्ति हुई कि कवि नागरी स्त्रियों का लक्षग तथा भेद इस 'जाति विलास' नामक ग्रंथ में कर रहा है। फिर अपने खण्डित आदर्श के अंतिम अंश, पंचम विलास में जाति-भेद वर्णित देखकर उसकी धारणा पुष्ट हुई इसलिए उसने ग्रंथ का शीर्षक 'जाति-विलास' दे दिया। मेरे विचार से उपर्युक्त दोहे का अर्थ इस प्रकार करना उचित नहीं है। इस दोहे में कवि ने नागरी-स्त्रियों के प्रसंग का केवल विषय-विस्तार अथवा उसके विभाजन की रूप-रेखा स्पष्ट की है। कवि सर्वदा विषय-विवेचन के पूर्व उसका विभाजन करते हुए उसकी रूप-रेखा देता आया है। इस प्रकार दोहे का अर्थ बिलकुल स्पष्ट है, "देवल नागरी, रावल नागरी तथा राजपुर नागरी,नागरियों के केवल ये तीन भेद हैं। मैं उनके लक्षण तथा भेद एवं जाति-भेद के आधार पर उनका वर्णन यहाँ कर रहा हूँ।"

यहाँ 'जाति-विलास' को 'जाति विलास' ग्रंथ का नाम समझने की भ्रांति डा० नगेन्द्र को भी हुई है। इसीसे उन्होंने अनुमान लगाया है कि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पहले हुई थी। परन्तु डा० नगेन्द्र के ध्यान में 'रस विलास' का निम्नलिखित दोहा नहीं आया जो 'जाति विलास' की प्रतियों में भी मिलता है और जिसमें 'रस विलास' का स्पष्ट नामोल्लेख है :—

"रस विलास रचि ग्रंथ सो कहत दूसरी बार।
वही नायिका भेद सब सुनहु नवीन प्रकार।।"

—रस विलास ४ : ४०

यदि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पहले हुई तो 'जाति विलास' में 'रस विलास' का यह स्पष्ट नामोल्लेख कैसे ?

इसी भ्रांति के कारण डा० नगेन्द्र ने 'रस विलास' को 'जाति विलास' का संशोधित और परिवर्धित संस्करण मान लिया है ! 'जाति विलास' की सभी उपलब्ध प्रतियाँ ५ : ४७ पर खण्डित हैं अत: यह कैसे जाना जा सकता है कि इस स्थल से आगे इस 'ग्रंथ' में पाठ कहाँ तक था और 'देव' ने किस स्थल से आगे पाठ-परिवर्धन कर 'रस विलास' का परिवर्धित 'संस्करण' तैयार किया। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियाँ केरल वधू ५:४७ पर खण्डित हैं तथा 'रस विलास' की प्रतियों में इससे आगे भी पाठ मिलता है। केवल इसीलिए इस बड़े आकार वाले ग्रन्थ को छोटे आकार वाले ग्रंथ का सीधे-सीधे परिवर्धित संस्करण मान लेना उचित नहीं है।

इन समस्त तथ्यों पर विचार कर हमने 'जाति विलास' को देवकृत पृथक ग्रन्थ न मानते हुए इस शीर्षक की प्रतियों का उपयोग 'रस विलास' की खण्डित प्रतियों के रूप में किया है एवं

इसके प्रक्षिप्त छन्द परिशिष्ट में दे दिया है।

कवि देव द्वारा 'रस विलास' की आकार-वृद्धि

'रस विलास' की उपलब्ध प्रतियों की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि स्वयं कवि देव ने "सुख सागर तरंग" की तरह इस ग्रंथ के भी दो संस्करण किये थे। ग्रंथ के पाठ-संपादन में प्रयुक्त प्रतियों में से भा० मो० नी० गंजा० प्रतियाँ ग्रंथ के प्रथम संस्करण की एवं ब्र० सा० गं० प्रतियाँ ग्रन्थ के परिवर्धित रूप, उसके द्वितीय संस्करण की वंशज प्रतियां हैं।

प्रथम संस्करण के निम्नलिखित छन्द से प्रगट होता है कि यह संस्करण किसी आश्रयदाता के नाम समर्पित नहीं था :—

"बीच मरीचनु के मृग लौं अब धावे न रे सुन काहू नरिंद के।
ओस की आस बुझ नहिं प्यास बिसास डसे विनि काल फनिंद के।
भूलै न देव निहारी असारनि प्यास निसारत तार के विंद के।
इंदु लौं आनन तू जु चितै अरविंद के पायन पूजि गुविंद के।।

—'रस विलास'—परिशिष्ट १।

इस संस्करण की प्रतियों में प्रत्येक विलास के प्रारंभ में आए "रानी राधा सुमिरि…" दोहों से भी कवि की सांसारिक अवलंब के प्रति उदासीनता एवं अपने आराध्य देव के प्रति अनन्याश्रय की भावना पुष्ट होती है।

कदाचित् इस ग्रंथ की रचना पूर्ण हो चुकने पर सुल्तानपुर के राजा श्री भोगीलाल से देव की भेंट हुई। इस समय उनके पास एक 'रस विलास' ही ऐसा ग्रंथ था जिसे वह भोगीलाल को समर्पित कर सकते थे। परन्तु देव सर्वदा अपने पूर्वरचित ग्रंथ की पर्याप्त आकार-वृद्धि कर तब उसे आश्रयदाता को समर्पित करते आये हैं। 'प्रेम तरंग' एवं 'कुशल विलास', 'सुखसागर तरंग' के दो संस्करणों एवं 'सुजान विनोद' की ऐसी ही आकार-वृद्धि से यह मान्यता पुष्ट होती है। तदनुसार देव ने ग्रंथ के प्रथम विलास में भोगीलाल सम्बन्धी "भूलि गए भोज बीर विक्रम बिसरि गए—" जैसे छंद सम्मिलित कर, प्रत्येक विलास के प्रारम्भ में आए "रानी राधा हरि सुमिरि—" दोहों के स्थान पर (जिनसे आश्रयदाता के प्रति कवि की यदि अवज्ञा नहीं तो उदासीनता प्रकट होने का भ्रम हो सकता था।) उसके पहले वाले विकास के अन्त में भोगीलाल के नामोल्लेख सहित एक छन्द सम्मिलित कर एवं ग्रंथ के अन्त में नायिकाओं के प्राचीन शास्त्रीय विभाजन का ९४ छन्दों का एक सम्पूर्ण अष्टम विलास जोड़कर यह ग्रन्थ भोगीलाल को समर्पित किया।

इस द्वितीय संस्करण की प्रामाणिकता में संदेह के लिए अधिक स्थान नहीं है। 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियों में प्रक्षिप्त छन्दों की परीक्षा करते हुए हमने देखा है कि प्रतिलिपिकार के अधिक से अधिक सतर्क होते हुए भी प्रक्षिप्त पाठ में कोई न कोई ऐसी असंगति अथवा न्यूनता रह जाती है जिससे पाठ-प्रक्षेप ग्रंथ के मूल-आकार से स्वयमेव अलग हो जाता है। 'रस विलास' के द्वितीय संस्करण में निरूपित विषय तथा उसका कविकृत विवेचन न प्रसंग की दृष्टि से असंगत है न उसमें कहीं अनौचित्य दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, ग्रंथ में विस्तार से

वर्णित नायिका-भेद की आवृत्ति ग्रंथ के अष्टम विलास के रूप में किये गए पाठ-परिवर्धन में कहीं नहीं हुई है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत है, अष्टम विलास में मुग्धा आदि का वर्णन-विस्तार ग्रंथ के नायिका-भेद निरूपण को और भी पूर्णता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त ग्रंथ के पाठ में अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं जो कवि द्वारा इस अंश की पाठ-वृद्धि किये जाने के प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ऐसे केवल दो उदाहरण दिये जाते हैं:—

"कहे नायिका भेद सब आठ अंग के भाइ।
अब भेदांतर कहत हों मत प्राचीन सुभाइ॥" —रस विलास ८ : १

"उक्तिगर्विता आठ विधि आठौ अंग सगर्व।
कहे नायिका भेद मैं जोवनादि अंग सर्व॥"—रस विलास ८ : ५६

उपर्युक्त दोहों में 'नायिका भेद' तथा 'जोवनादि—आठौ अंग' का उल्लेख ग्रंथ के चतुर्थ विलास में ४ : ७ से आगे के नायिका के अष्टांग वर्णन की ओर संकेत करता है। ग्रंथ के एक-दूसरे अंश में तारतम्य अथवा परस्पर-सम्बन्ध की ऐसी विशेषता स्वयं कवि द्वारा किये जाने पर संभव है, प्रक्षेपकार द्वारा नहीं। स्वयं कवि द्वारा इस अंश की पाठ-वृद्धि करने का दूसरा महत्व-पूर्ण प्रमाण इस अंश में कवि के ऐसे अनेक लक्षण-उदाहरण छन्दों का संगत प्रसंग में प्राप्त होना है जो छन्द देवकृत किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलते।

अष्टम विलास के अतिरिक्त ग्रंथ में यत्र-तत्र हुए पाठ-परिवर्धन के भी कवि कृत होने में मुझे संदेह नहीं है। ऐसे छन्दों में अधिकतर छन्द भोगीलाल से सम्बन्धित हैं। इनमें से अनेक छन्दों में कवि की छाप भी मिलती है। ग्रंथ का यह संस्करण भोगीलाल को समर्पित है। अतः भोगीलाल के नामोल्लेख एवं कवि की छाप-सहित इन छन्दों का रचयिता हमारे विचार से स्वयं कवि है, कोई प्रक्षेपकार नहीं।

इन छन्दों की प्रामाणिकता के विपक्ष में केवल एक तर्क हो सकता है कि ये अधिक छन्द जिन प्रतियों में मिलते हैं उनमें समान पाठ-विकृतियाँ भी मिलती हैं। अतः यह संभव है कि ये सभी छन्द किसी एक पूर्वक प्रति में प्रक्षिप्त होकर अन्य दो प्रतियों में आए हों। परन्तु यह तर्क अधिक पुष्ट नहीं है क्योंकि प्रथम तो 'रस विलास' की न केवल इन प्रतियों में वरन् सभी उप-लब्ध प्रतियों में परस्पर तथा अन्य ग्रंथों से इतना अधिक पाठ-मिश्रण हुआ है कि इन प्रतियों में प्राप्त विकृति-साम्य का तर्क निर्णायक नहीं माना जा सकता। दूसरे, जैसा कि ऊपर के विश्लेषण से प्रगट है, हमने प्रबल अंतर्साक्ष्य के आधार पर इस पाठ-वृद्धि को कविकृत पाया है अतः प्रक्षेप की यह संभावना मान्य नहीं।

हमने प्रथम संस्करण की भा० मो० प्रतियों में प्राप्त 'रानी राधा—' दोहों एवं सप्तम विलास में आए ग्रंथ-समापन के दो-तीन छन्दों का पाठ 'रस विलास' के अन्त में परिशिष्ट १ में दे दिया है। विस्तार भय से कविकृत आकार-वृद्धि के समस्त छन्दों के कथ्य पर पृथक रूप से विचार करना असंभव है अतः हम नीचे की सूची में ऐसे छन्दों का केवल स्थल-निर्देश कर रहे हैं:—

१ : २—८, १ : १७—१८, १ : ६५, २ : २०, ३ : ३७, ४ : ४१, ७ : ६०, ८ : १—६४।

रस विलास

पायनि नूपुर मंजु बजे कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसे पट पीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जै जग मंदिर दीपक सुन्दर श्री ब्रजदूलह देव सहाई[1] ॥१॥

१ कन्हाई-आ० सुहाई-भा०

गिरा गौरि गनपति सुमिरि गुरु गिरीस के पाँइ।
रस विलास कवि देव यह रच्यौ सरस रस राइ॥२॥
भूलि गये भोज वीर विक्रम बिसरि गए जाके आगे और तन दौरत न[1] दीदे हैं।
राजा राइ राने उमराउ उनमाने निज गुन के गरब गिरवी दैहैं॥
सुजस बजार जाके सौदागर सुकवि चलेई आवै दसहूँ दिसान के उमीदे[2] हैं।
भोगीलाल भूप लाख पाखर लिवैया[3] जिहि लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं॥३॥

१ और तन—गं०। २ उनमीदे—गं०, उनीदे—ब्र०। ३ लिखैया—गं० सा०।

पावस घन[1] चातक तजै चाहि स्वाति जल विंदु।
कुमुद मुदित नहिं मुदित मन जौ लौं उदित न इंदु॥४॥

१ बन—ब्र० सा०।

देव सुकवि ताते तजे राइ रान सुलतान।
रस विलास करि रीझिहैं भोगीलाल सुजान॥५॥

पूरन पुन्यनि को महिमा भुव भिक्षुक भौंरन को मकरंद है।
साधक मोद को मोदक भोगिभुवाल भयो अरि कंज निकंद है॥
दिल्ली है सुद्ध सुधा को सरोवर तौमैं लसै वसुधा को अनंद है।
कीरति कातिक पून्यो की रीति में दून्यो विराजत पूनो को चंद है॥६॥

साँझ कैसो चंद भोर को सो अरविंद स्वाति बिंदु कैसो बादर विसाति बसुधा ही की।
मधु कैसो तरवर शरद को सरवर है गरीबपरवर प्रीति गुनगाही की॥
जोगीदास नंद जुग जियो जगबंद चंद चंदन[1] सी कीरति चलाई चित चाही की।
दीन को दयाल देव मूरति विसाल भोगीलाल भूमिपाल है मसाल पातसाही की॥७॥

१ चाँदनी—सा०।

पृथ्वी मैं पृथित पृथु पुण्यन अमृत भीज्यो पृथु सो पुरुरवा सो त्रिपुर प्रतीप सो।
मनु सो मनीषी मनधाता सम दाता रघु नहुष ययाति शूर सगर[1] महीप सो॥
जदु सो जुधिष्ठिर सो भीषम भगीरथ सो तीरथ नदीपति सो दीपति[2] मैं दीप सो।
राजतु है आज भोगीलाल देव राज मँहि[3] नवल दुलहिया को दूलह दिलीप सो॥८॥

१ सूर सागर—०। २ दीपनि—गं०।

३ देव देवराज—गं०। १:२ से १:८ संख्या के छंद केवल ब्र० सा० गं० प्रतियों में हैं, नी० गंजा० भा० तथा मो० प्रतियों में नहीं।

युक्ति सराही मुक्ति हित मुक्ति भुक्ति[1] को धाम।
युक्ति मुक्ति अरु[2] भुक्ति को मूल सु कहिए काम॥९॥

१ भुक्ति मुक्ति—नी० गं० गंजा०। २ उर—मो०।

रमनी राका ससिमुखी पूरै काम समुद्र।
बिना वाम पूरन भये लगै परमपद छुद्र॥१०॥

ताते त्रिभुवन सुर असुर नर पशु कीट पतंग।
राक्षस जक्ष पिशाच अहि सुखी सबै तिय संग॥११॥

कोटि कोटि बिधि कामिनी[1] तिनके कोटिन भेव।
तिनमें माया मानुषी बरनत हैं कवि देव॥१२॥

[1] कामना—भा० मो०।

कामिनी भेद।

सो नारी कहु नागरी पुरवासिनि ग्रामीन।
वन्या सैन्या[1] पथिक तिय षट विधि कहत प्रबीन॥१३॥

[1] वन सयना अरु०—भा० मो०।

नागरी।

देवल रावल राजपुर नागरि तीनि[1] निवास।
तिनके लच्छन भेद सब बरनत जाति विलास॥१४॥

[1] नागरि तरुनि—भा० मो०।

देवल देवी नागरी दूजी पूजनहारि।
द्वारपालिका तीसरी बरनहु त्रिबिधि बिचारि॥१५॥

देवी।

पूरन सरद ससिमण्डल बिसद जोति मंडल वितान में अखंड गुन गाहिनी।
अमल अमोल मनि रतननि रच्यौ महा सुन्दर सुमन्दिर अमन्द सुख[1] चाहिनी।
आठहू पहर कर आठौ आठौ सिद्धि लिये संकट में सेवक[2] सहाइ सदा दाहिनी।
रूप रस एवी महादेवी देव देवनि की सिंहासन बैठी सोहै सो है सिंहबाहिनी॥१६॥

[१] मुख—भा०, मो० प्रति में दूसरे हस्तलेख से "मुख" से "सुख" पाठ संशोधन हुआ है। [२] संकट में सब की—सा० आ०, सेवक में सेवक—भा० मो०।

शूरन को रन को विजया मन कूरन को अजया भयभीता[१]।
योगिन को गति ज्ञानिन को मति विप्रन वेद विवेक विनीता।
स्वर्ग सची तल भोगवती भुव भीषम भूप सुता गुणगीता।
भारथ जुद्ध की भारथी सुद्ध रती वर तीन सतीन में सीता ॥१७॥

[१] भयतीता—सा०।

आदि ब्रह्म विद्या वेद कहत प्रकृति जासो जोगमाया जानियोई योगिनि समाधी है[१]।
भारती भवानी भुवनेश्वरी मतंगी मात काली[२] अन्नपूर्णा कपाली अंग आधी है।
एक तें अनेक जानी जल थल में समानी[३] अगनित बानी सिद्ध साधकनि साधी है।
साधारन देवी जो असाधारन रूप सोई[४] बाधा हरिबे को देव राधा अवराधी है ॥१८॥

[१] प्रकृति कहत जाहि सोइ ध्यान जोगिन समाधी है—सा०। [२] का सी—सा०। [३] बखानी—ब्र०। [४] साधा—गं०, धार्‌यो—ब्र०।

पूजकिन।

केसरि कपूर मृगमद चोवा चन्दन चरिच[१] रचि पहुप चढ़ावति महानी के।
धूप दीप भोजन समीपही निवेदन के वेदन जताइ जपै नाम वर बानी[२] के।
जानत न जीकी तन जी की कोई देव कहै वाहि रट पीकी[३] भट बाहिर कहानी के।
कही जदुराइ[४] जदुदाइ बर पाइबे को रुकिमिनि रानी पग पूजत भवानी के ॥१९॥

[१] रुरुचि—भा०। [२] वरदानी—भा० मो०। [३] जानत न जाकी तन जाकी नहीं देव कोई वाहि रटवी की—नी० गं० गंजा०। [४] ०—सा०।

द्वारपालिका।

जगमगै जोतिन के मोतिन के हार हिये करत बिहार[१] मृदु मालती की मालिका।
केसर की खौर देव पौरि पर मोहनी[२] सी देव मुनि मोहै बिधुबदन बिसालिका[३]।
नवला चतुर नवला सी लिये हाथ[४] अबलानि जान देति जब देति[५] कर तालिका।
एवी[६] अद्‌भुत वह कैसी ह्वै है[७] देवी जाके मन्दिर[८] के द्वार देखी ऐसी[९] द्वारपालिका ॥२०॥

[१] उलहत भार—भा०, लसति भार—मो०। [२] मोहन—मो०। [३] बिलासिका—मो०। [४] संग—गं० गंजा०। [५] देवी—ब्र०। [६] एक—गं० गंजा०। [७] गृह—गं० गंजा०। [८] महल—गं०। [९] सोहे ऐसी—भा०, ऐसी सोहे—मो०, ऐसी देखी—नी० गं० गंजा०।

रावल-नागरी भेद।

रावल नागरि पाँच बिधि पहले राजकुमारि।
तासु धाय दूती[१] सखी दासी कहौं सम्हारि ॥२१॥

[१] दूजी—भा०।

राजकुमारी।

ठकुराइन[१] सब नगर की सुख सम्पति की मूल।
गुन गरबीली मानिनी पति जाको अनुकूल ॥२२॥

[१] राजकुँअरि—व्र०।

उदाहरण।

पावरिन पावड़े परे हैं पुर पौरि लगि धाम धाम धूपन के धूम धुनियत हैं।
कस्तूरी अतर सार[१] चोवा रस घनसार दीपक हजारन अँध्यार[२] लुनियत हैं।
मधुर मृदंग राग रंग की तरंगनि में अंग अंग गोपिन के गुन गुनियत हैं।
देव सुख साज महाराज वृजराज आज राधा जू[३] के सदन सिधारे सुनियत हैं ॥२३॥

[१] अगर अतर सार—गं०, अगर सार—भा०। [२] हजार ते अँधार—भा० मो०
[३] राधा जी—नी०, राधा—गंजा०, राधिका—गं०।

उज्वल[१] अखंड खंड सातयें महल महा मंडल चौवारी चंद्र मंडल के चोटही।
भीतर हू लालन के जालन बिसाल जोति बाहिर जुन्हाई जगी जोति नके जोटही[३]।
बरनत बानी चौर ढारत भवानी कर जोरे रमारानी ठाढ़ी रमन के[४] ओटही।
देव दिगपालनि की देवी सुखदाइनि ते राधा ठकुराइनि के पाइनि पलोटही ॥ २४ ॥

१ मंजुल—भा० भो। [२] चंड—भा० मो०। [३] चोट ही—मो०।
४ रमनी की—सा० गं० गंजा०।

धाय-लक्षण।

राजनगर जे बसत जन ते राजन के मीत।
तिनकी तिय नृतसुतनि की होतीं धाइ पुनीत ॥ २६ ॥
वारे पाले[१] प्याइ पै[२] स्यानी करे सिवाय।
जेहि जाने जननी कुंवरि ताहि बखानो धाय ॥ २६ ॥

१ वारे पीछे—भा० मो०। [२] प्याइ के—सा०।

उदाहरण।

राइ नोन वारति[१] गुराई देखि अंगनि की[२] दुरे न दुराई[३] त्यों भुराई सों भिरति है[४]।
ज्यों ज्यों सुघराई[५] सोन उघरन देति[६] त्यों-त्यों खुंदरि सुघर घर घेरी न घिरति है।
निठुर डिठौना दीन्हे नीठि निकसन कहै दीठि लागिवे के डर पीठि दे गिरति है।
जिन जिन और चितचोर चितवत त्योंही तिन तिन और तृन तोरति फिरति है ॥ २७ ॥

१ करति—नी० गं० गंजा। [२] अंगनि में—भा० मो०। [३] दुरैंत दुराई—नी०, दुरत दुराई—गं० गंजा०। [४] पै भुराई सी भरति है—भा० मो०। [५] तरुनाई—सा०। [६] उघरत देह—भा०।

धाय-भेद

धाइ सखी दासी[१] नटी ग्वालि सिलिपनी नारि।
मालिनि नाइनि बालिका बिधवा[२] वधू विचारि ॥ २८ ॥

[१] दूती—गं०। [२] पटवा—भा० मो०।

सन्यासिनि भिक्षुकबधू सम्वन्धी की वाम।
एती होती दूतिका दूतपन्य अभिराम ॥ २९ ॥

छल सों पैठे राजगृह मोहे राजसुतानि।
हिलवे मिलवे दम्पतिनि कहे सँदेसो आनि ॥ ३० ॥

रुचि[१] उपजावे परसपर नित नित[२] नेह बढ़ाइ।
रहे दुहुनि[३] चित मैं चढ़ी दूती चतुर सुभाइ ॥ ३१ ॥

[१] रस—भा० मो। [२] नित नव—गं० गंजा०। [३] दुवी—नी० गं० गंजा०।

उदाहरण

लेहु लली उठि लाई हों बालहि[१] लोक की लाजहि सो लरि राखी।
फेरि इन्हें सपनेंहु न पैयतु ले अपने उर में धरि राखौ।
देव लला अबला नवला यह चन्दकला कठुला करि राखौ।
आठहु सिद्धि नवो निधि[२] ले घर बाहर भीतरहूँ भरि राखो[४] ॥ ३२ ॥

[१] लेहु लला उठि लाइ हों बाल हि—भा०, लेहु लला उठि लाई हो बात को—मो०।
[२] नेत्र निधि मो०। [३] धरि राख—आ०।

कुंजनि केकोरे मनु[१] केलि रस खोरे लाल तालनि के खोरे बाल आवति है नित को।
अमृत निचनेरे कल बोलत निहोरे नेक सखिनि के डोरे[२] देव डोले जित तित को।
थोरे थोरे जोवन[३] बिथोरे देति[४] रूपरासि गोरे मुख भोरे हँसि जोरे लेत[५] हित को।
तोरे लेति रति दुति भोरे लेति मति गति छोरे लेति लोकलाज चोरे लेति चित को ॥ ३६ ॥

१ कुंजन के कोरे मैंन—भा० मो०। [२] जोरे—गं०।
३ जवन—भा० मो०। [४] देखि—नी० [५] गोरे गोरे मुख भोरे भोरे लेत—भा० मो०।

बन्धु बिप्र कुल गुरू सुता औ गुनवन्ती कोइ।
सोइ राजसुतानि की सखी सहचरी[१] होइ ॥ ३४ ॥

१ सहेली—भा०।

दुहुन सुहावन दुहुन गुन उपजावन रस भाव।
विरहास्वास दिखावना दोउन[१] विरह जताव ॥ ३५ ॥

[१] दिखाय पुनि दोऊ—भा०, हित उपजावन भूषनन दोउन—सा०, विरहास्वान दिखरावनन दोउन—आ०।

इत को उतहि उराहनो इत उत को[१] संदेस।
दुहू मिलावन परसपर रचिबो भूषनबेस ॥ ३६ ॥

[१] उत को इत—ब्र०, उत को इतहि—सा०।

देस काल गुन रूप[१] बिधि करिबो सदा प्रसन्न।
ए दस कर्म सखीनि के करै रहै[२] आसन्न ॥ ३७ ॥

[१] अनुरूप—भा० मो०, अरु रूप—गं०। [२] रहौ—गं०।

समै समै के काज पै सखी अनेक प्रकार।
धाइ कहूँ दूती कहूँ दासी कबहुँ की बार[१] ॥ ३८ ॥

[१] कहूँ विचार—भा०, कहै विचार—मौ०।

दस कर्म-उदाहरण।

आई हौं देखि वधू इक देव सु देखत भूली सबै सुधि मेरी।
राख्यो न रूप कछू विधि के घर ल्याई है लूटि लुनाई की ढेरी।
एरी अबै वह ऐवै है बैस मरेंगी महा विष घूँटि घनेरी।
जे जे गनी गुनआगरि नागरि ह्वैहैं तै वाके[१] चितौतही[२] चेरी ॥ ३९ ॥

[१] होंहिगी वाकी—भा० मौ०। [२] चितौनि की—ब्र०।

देव न देखति हौं दुति दूसरी देखे हैं जा दिन ते[१] यदुभूप[२] में।
पूरि रही री वही पुर कानन[३] कानन आनन[४] ओप अनूप में।
ये अँखियाँ सखियानि तिहारिये जाइ मिली जलबुंद[५] ज्यों कूप में।
कोटि उपाइन पाइये फेरि[६] समाय गई ब्रजराज[७] के रूप में ॥ ४० ॥

[१] जा दिन ते निरखे—नी०। [२] ब्रजभूप—आ०। [३] छाइ रही री वहै छबि कानन—भा० मो०, पुर तानन—सा०। [४] आनन आनन—गं० गंजा०। [५] रस विंदु-भा० मो०। [६] कोरि करै अब क्यों निकसेगी—भा० मो०, कोरि करौ नहि पाइये फेंरि-सा०। [७] रँगराइ के—गं० गंजा०, सुभ साँवरे—भा० मो० जदुराइ—के—आ०।

रस उपजाइबौ–उदाहरण।

त्रिबली तिरंगिनि निकट नाभि ह्रद[१] तट रोमराजी वन धँसि मुकत अन्हात हैं।
नेह नगरीमैं गुन गेह[२] उर ऊँची पौरि देव कुच कंचन के कलस लखात हैं।
लोचन दलाल ललचावत बटोहिन कौ लाल चलि देखौ लाल मोलनि लहात है।
जोवन बजार बैठ्यो जौहरी मदन सब[३] लोगनि को हीरा[४] वाके हाथ ह्वै बिकात हैं ॥ ४१ ॥

[१] नट—नी० गं० गंजा०, नद—सा० आ०। [२] मग गेह—गं० गंजा०, गुरु गेह—सा०। [३] रस—गं० गंजा०। [४] हिय—नी०।

ग्वालि गई इक ह्याँ की उहाँ मधि[१] रोकि सुती मिसु के दधिदान कौ।
वा तो भटू वह भेंटी भुजा भरि नातो निकासि कछू पहिचान कौ।

आई निछावर के मनमानिक गोरस दे रस ले अधरान[२] कौ।
वाही दिना ते हिय में गड़ो वह ढीठ बड़ो बड़री[३] अँखियान कौ॥ ४२॥

[१] मग—भा०। [२] रस से अधरान—गं० गंजा०। [३] री बड़ी—भा० मो०।

विरहास्वासन।

काहू की बंक चितैबे की संक न लागे कलंक बिसे किन[१] बीसौं।
वा ठकुराइनि की अब देव बिरंचि रची रुचि रावरे जी सौं।
दैहौ मिलाई तुमैं हौं तुम्हारिये आन करौ वृषभानलली सौं।
बाम्हन की सौं बबा की सौं मोहन मोहि गऊ की सौं गोरस की सौं॥ ४३॥

[१] बिसौ किन—गं० गंजा०।

नन्दकुमार उतै अति[१] ठाकुर राधे इतै अतिही ठकुराइनि।
देव संयोग तिहारो दुहुँ को बन्यो कुल सम्पति सील सुभाइनि।
पाँय न लागिये मेरी भटू नित लागत[२] हाँही लगी इन पाइनि।
आज तुम्हें ब्रजराज मिलाऊँगी राज करौ गृहकाज[३] गुसाइनि[४]॥ ४४॥

[१] इतै उतै—भा०मौ०। [२] चाहत—भा०। [३] लुगाइन पाइन—गं० गंजा०। [४] ब्रज-राज—ब्र०, रहि आजु—सा०। [५] सुसायनि—नी० गं० गंजा०।

परस्पर दिखावन।

सील की सागरि रूप उजागरि है गुन आगरि नागरि नारी[१]।
वा बरसाने के बासिन की निसि बासर सोम समान समारी।
थोड़िये बेस बड़ी सुखदाइनि ए ठकुराइन[२] है जु हमारी।
श्री वृषभानु के भोन को दीपक एई है[३] राधिका राजकुमारी॥ ४५॥

[१] भारी—भा० मो०। [२] नागरी बेस बड़ी ठकुराइन मो सुखदाइन—भा०। [३] दाइ कराइ है—भा० मो०, दंपति एई हैं—सा०।

कानन कुंडल माल गरे सँग मंडित[१] ग्रोपन के कुँवरेटा।
देव गयन्द से आवत मन्द से देखुरी चन्द से नंद के बेटा[२]।
काम की दूती पढ़ावत तूती चढ़ी[३] पग जूती बनात लपेटा।
पीरो झगा[४] पटुका बिन छोर छरी[५] कर लाल जरी सिर फेटा॥ ४६॥

[१] राजत—गं०। [२] ढोटा—सा०। [३] लसै—नी० गं० गंजा०। [४] झीन झगा—सा०। [५] कसे—गं० गंजा०। केवल सा० प्रति में चरणों का क्रम १-२-३-४ है।

जब तें कुंवरकान्ह रावरी कला निधान कान परी वाके कहूँ[१] सुजस कहानी सी।
तबही तें देव देखी[२] देवता सी हँसति सी खीझति सी रीझति सी[३] रूसति रिसानी सी।
छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी सी छीन[४] जकी सी टकी सी लगी थकी[५] यहरा सी।
बीधी सी बधी सी बिध बूड़ी सी[६] बिमोहित सी बैठी वह[७] बकति बिलोकति बिकानी सी॥ ४७॥

[१] वाके कहूँ कान परी—सा०, वाके कान परी कहूँ—मो०, दरीक वाके कान कहूँ—बु०। [२] देखौ—सा०, आ०। [३] रीझति खीझति सी—भा० मो०। [४] छान—आ०। [५] ०—मो०, हाशिये पर उसी हस्तलेख से—ब्र०। [६] बूढ़ति—भा० मो०। [७] बाल—भा०।

दंपति को बिरह-जनावन।

ऐपन की ओप इन्दु कुन्दन की आभा चम्पा केतकी को गाभा जीति[१] जोतिन सो जटियत।
जगरमगर होत सहज[२] जवहर से अतिही[३] उजारे जब नैसक उबटियत[४]।
वैसेई सुघर[५] सुकुमार अंग सुन्दरि के लालन[६] तिहारे पास नेह खरे लटियत।
देव तेव गोरी के बिलात गात बात लगे ज्यों ज्यों सीरे पानी पीरे पान से पलटियत ॥ ४८॥

[१] पीत—नी० गं० गंजा०। [२] सहन—नी०। [३] नग से—नी० गं० गंजा०। [४] उलटियत—भा०। [५] सुठार—भा०, सहज—गं०। [६] मोहन—नी० गं० गंजा०।

बरुनि बघंबर में गूदरी पलक दोऊ कोए राते बसन भगोहै भेष रखियाँ।
बूड़ी जलही में दिन जामिनिहूँ जागे भौंहें घूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ।
आँसू ज्यों[१] फटिक माल लाल डोरे सेली पैन्हि[२] भई हैं अकेली तजि चेली[३] संग सखियाँ।
दीजिये दरस देव[४] कीजिये सँयोगिनि ये[५] जोगिन ह्वै बैठी हैं बियोगिनि की अँखियाँ ॥४९॥

[१] अँसुवा—भा०। [२] लाल दोरे सेल्ही साजि—सा०, सेली पैधि—नी० आ०, सेली सम—मो०। [३] चली—नी०। [४] नेकु—सा०। [५] जस गनिये—मो०, सजोगिनि जू—सा०, सँजोगिन के०—ब्र० नी०।

दंपति को उराहनो।

तो गुन देव देव सुने जब तें तब तें सुधिऊ न उन्हें उर की है।
पीर नहीं पहिचानत लोग बखानत बेद बिथा[१] जुर की है।
लोभ चढ़ी अति मोहन की मति मोह महागिरि तें ढुरकी है।
थोरिये बैस बिथोरी भटू ब्रज भोरी सी बातनि तैं भुरकी है ॥५०॥

[१] कथा—ब्र०।

ह्याँ सुधियो बिसरी उत ह्याँ सु घरी पल[१] जात हैं प्रान चले जू।
जो कहिये तो कह्यो[२] नहिं जात[३] कहे ही बिना घर केते घले जू[४]।
देव दुहूँ बिधि बूड़ उलैंही की रावरे बातन ही[५] बदले जू।
और उराहनो देत बनै न[६] कहा कहौं कान्ह भले हो[७] भले ज ॥५१॥

[१] पल ही पल—भा० मो०। [२] कलो—सा०। [३] मानत—भा० मो०। [४] केतो खले—नि० गं० गंजा०। [५] बातन ये—भा० मो०। [६] बदै न—मो०, चैन न—आ०। [७] भले जू—गं० गंजा०।

देव कामदेव ही को कमल[१] हथ्यार हौ जू अंग अंग गुननि हियो[२] गुननि आगरी।
नेह की निकाई देह[३] दुति मधुराई नख सिख तें मधुर मधु घृत[४] की सी सागरी।
चेटक सी चालि[५] चित चोट[६] सी चितौनी हाँसी ठग की मिठाई भौंह फाँसी की सी लाग री[७]।
भली हौ जू भली हौ सलोनी धात मीठो विष सीरी आँचि सरबस चोरन उजागरी[८] ॥५२॥

[१] कोमल—सा०। [२] गुनन के ओ—मो०, गुनन कीओ—ब्र०। [३] देव—सा०।

[4] मधुव्रत—सा० । [5] चली—सा० । [6] चान अरु चिलचोट—गं० गंजा०, चितचोर—सा० । [7] ठग की सी फाँसी फाँसी फँसी लाग री—नी० गं० गंजा० । [8] सलोनी बात मीठी मुख विष सीरी आँखि सरबस चोरन उजागरी—सा० भा० प्रति में सम्पूर्ण छन्द तथा मो० प्रति में छन्द का केवल तृतीय चरण त्रुटित है ।]

राधे कही है कि तैं छमियो ब्रजनाथ जिते[1] अपराध किये मैं ।
कानन तानन भूलत ना खिन[2] आँखिन रूप अनूप पिये मैं ।
आपने ओछे हिये में दुराई[3] दयानिधि देव बसाय लिये मैं ।
हौंही[4] असाध बसी न कहूँ पल आध अगाध तिहारे हिये मैं ।।५३।।

[1] किते—भा० मो० । [2] भूल नाचनी—नी० भूतल नाखिन—गं० गंजा० । [3] ओछे हिये अपने दिन राति—नी० गं० गंजा०, मैं यहीं अपने ओछे हिये में—सा० आ० । [4] होय—मो० ।

जाती हो जो उत वे जो[1] मिलै कहूँ पावौ समौ कहिबे को ठिकाने ।
ह्याँ की दशा तुम देखिये है कहियो समुझाइ जो पै[2] जिय आने ।
या मन की बिन पाये विथा तनकी[3] कवि देव जू कौन बखाने ।
तोसी हितू हित की बिन और सु को इत की[4] चित की गति जाने ।।५४।।

[1] जा उत वाजु—नी०, जा उत वीजु—गंजा० । [2] जो वै—भा० मो० । [3] तीन की—भा० मो० । [4] इन की—नी० गंजा० ।

दंपति को मिलाइबो ।

जा दिन तें हित जान्यो इतै[1] तब ते नहिं तू कहि काहू सों बोले ।
तेरेई ह्वै रहे[2] भाट भटू सब सों गुन रूप[3] सराहत डोलै ।
देव इन्हें सुख[4] सों सजि के रस सों रजिके[5] तजि लाज के ओले ।
राधे अहो हरि भावते को भरि के भुज भेंटिये मेटि मलोले ।।५५।।

[1] जोर्‌यो इतै—सा० नी० गं० गंजा । [2] तेरे ह्वै रहैं—नी०, तेरेई ह्यौ रहे—सा० । [3] सौगुनो रूप—भा० । [4] मुख—गं० । [5] रचि के—भा० मो०, रसि के—सा०, रजि पै—नी० गं० गंजा० ।

देव तज्यो गुन गौरव औ गुरु लोगनि सों[1] छल छिद्र करे मैं ।
धाय धसी बृषभान के भौन सभान के गोप[2] सबै निदरे मैं ।
तो हित जाय हितू हित की भई[3] दूती के दाइनि पाँय परे मैं ।
लाल इन्हें उर माल करो गहि डारि है ग्वालि[4] गुपाल गरे मैं ।।५६।।

[1] मैं—गं० गंजा । [2] समान के गोप—भा० मो०, सभामत गोप—आ०, समान के लोग—गंजा० । [3] हित के भई—भा० मो० । [4] गहि डारा है ग्वालि—नी०, गहि डारिहौं ग्वाल—सा०, गहि डारहुँ बाल—भा० मो० ।

दम्पति को भूषण ।

चोबा मिलै मृग मैद घसे घनसार सों केसर गारत डोलै ।
देव जू फूल फुलेलन की घर बाहर बास बगारत[1] डोलै ।

भूषन वेष बनाइ नये पहिराइ पुराने बिगारत डोलै।
राधे के अंगनि ही सिगरौ दिन संगही संग सिंगारत डोलै ॥ ५७ ॥

[१] लगारत—ब्र० नी०।

प्रसन्न करन।

भरे गुन भार[१] सुकुमार सरसिज सार सोभा पर सागर अपार रस[२] आउड़े।
नख नग जाल लाल अँगुरी विद्रुम[३] माल नूपर मराल[४] ये अनूप रव[५] नाउड़े।
धरिये न पाँव बलि जाँव राधे चन्दमुखी वारों मंद गति[६] पै गयन्दपति छाउड़े।
छितिहि छुवत देव दूनी होति झलक पलक छूजे ठाढ़ी हो पलक करौं पाँउड़े ॥ ५८ ॥

[१] रुचि भार—गं०। [२] गुन—भा० मो०। [३] विद्युप—भा० मो०, प्रवाल—गं०। [४] मदाल—गं०। [५] अनूप रस—सा०। [६] गति मंद—भा० मो०।

सखिन को सुख सुने सौतिनि को महादुख होत गुरुजनन के गुन को गरूर है।
देव कहै लाख लाख भाँति अभिलाषा पूरि पी के उर गमगत प्रेम रस पूर है।
तेरो कलबोल कल भाषिन को स्वाति बुंद जहाँ जाइ पर्‌यो तहाँ तैसोई समूर है।
व्याल मुख विष ज्यों पियूष ज्यों पपीहा मुख सीप मुख मोती कदली मुख कपूर है॥ ५९ ॥

नी० गंजा० प्रतियों में ५८, ५९ संख्या के छन्द नहीं हैं। इन प्रतियों में इन छन्दों के स्थान पर "देव ब्रज जीवन" छन्द है।

धाइ सखी के दूतिका के दासी[१] अभिराम।
जासों दम्पति हित करै सिक्षा ताको[२] नाम[३] ॥ ६० ॥

[१] सो दासी—नी० गं० गंजा०। [२] तासौ ताको—नी० गं० गंजा०।
[३] काम—ब्र०।

वारेई[१] बैस बड़ी चतुरी हो बड़े गुन देव बड़ीये बनाई।
सुन्दरी हो सुघरी हो सलोनी हो सील भरी रसरूप सनाई।
राजबहू बलि राजकुमारि अहो सुकुमारि न मानौ मनाई।
नैसिक नाह के नेह बिना[२] चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई ॥६१॥

[१] वारि हौं—भा०, वारे हौं—मो०, ही—ब्र०। [२] नेह के नेह बिना—सा०। (केवल सा० प्रति में चरणों का क्रम १-२-४-३।)

दासी।

दम्पति आयसु[१] करन को सनमुख रहति चितौति[२]।
दासी नागरि[३] सेवकिनि कहूँ ह्वै रहति है सौति[४] ॥६२॥

[१] आयसु—भा० मो०, आपुस—नी० गं०। [२] विनीत—नी०। [३] कहिये—नी० गं० गंजा०। [४] कहूँ रहति है सौति—सा०, कहुँ ह्वै रहति सोति—मो०, कहूँ ह्वै रही सौति —भा०।

दम्पति एकहि सेज परे पग पींडुरी दाबि दहूँ को रिझावति।
आपने ऊँचे[१] उठौहैं कठोर उरोजन कोमलै एड़ि मिलावती।

भौंहें अमेंठि रहै ठकुराइनि ठाकुर के उर काम जगावति।
लौंड़ी अनोखी लड़ाइति[२] लाल की पाइ पलोटै की चोटै चलावति ।।६३।।

[१] पाइते बैठि—नी० सा० आ०। [२] लड़ावति—भा० मो०, लड़ावते—गं० गंजा०, लड़ावते—सा०।

देवल रावल नागरी इहि बिधि बरनौ देव[१]।
राजनगर नागरि कहौं न्यारे लच्छन भेव[२] ।।६४।।

[१] देख—नी० गंजा०। [२] भेष—गंजा०।

धाय सौं खीन खिनै खिनखीन सखीन सों नेम न प्रेम सँजोगी।
दूतिनहू तिनकी गति पाय न दासी सों नेन उदास वियोगी।
भावे न भोजन पान न भूषन दूषन से जन[१] और अयोगी।
राजबधू बिलखे मन गोवे[२] लखे कहुँ लाल भुवप्पत[३] भोगी ।।६५।।

[१] अन—गं०। [२] गोप—सा०, गोख—ब्र०। [३] लाल जू भूपत—सा०। नी० गं० गंजा० भा० मो० प्रतियों में यह छंद नहीं है।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कविदेव कृते देवल रावल नागरी वर्णनं नाम प्रथमो विलासः।

राजनगर नागरि दुविधि[१] बरनत सुकवि सम्हारि।
एक हटबई की बहू[२] दूजी क गनिका नारि ।।१।।

[१] विविध—भा० मो०। [२] एक हटवाइन कही—नी० गं० गंजा०।

पुनि अनेक करि हटबइनि[२] कही अनेक प्रकार।
गनिका गनै न सत असत चाहे धनी उदार[३] ।।२।।

[१] पन—नी०। हटवरन—नी० गं० गंजा०। [३] अपार—नी० गं० गंजा०।

तजि अपने कुल धर्म पन[१] करै और व्यौहार।
सोई जाति प्रसिद्ध है बैठे हाट बजार ।।३।।

[१] धर्म येन—मो०, धर्म एन—भा०।

राजनगर की नागरी पन[१] अनेक बहु भाँति।
तिनमें मुख्य मनुष्य तिय बरनि कही दस जाति ।।४।।

पुनि—भा० मो० सा०।

जौहरिनी छपिन कह्यो पटविन और सुनारि।
गंधिन तेलिनि तमोरीन कन्दुनि[१] बनिनि कुम्हारि ।।५।।

[१] किंदुनि—भा० मो०।

दरजिन आदि अनेक लघु जाति चूहरी अंत।
नगरद्वार गनिका बसै सो चाहे धनवन्त ।।६।।

नी० गंजा० प्रतियों में जाति-नाम के संख्या ४, ५, तथा ६ दोहों के स्थान पर निम्न-लिखित दोहे हैं :—

जौहरनी।

सींची[१] सुधा बुंदनि सों कुन्दन की बेलि किधौं साँचे भरि काढ़ी[२] रूप औपनि भरति है।
पोखी पुख[३] रागनि वपुप नखसिख कर चरन अधर विद्रमन ज्यों धरति है।
हीरा सी हँसनि[४] मोती मानिक दसन सेत स्यामता लसनि[५] दृग हियरा[६] हरति है।
जोवन जवाहिर सों जगमग होइ जोइ[७] जौहरी की जोई जग जौहर करति है ॥७॥

[१] साँची—भा० मो०। [२] डारी—ब्र०। [३] पुप्प—नी०, पुष्य—"ष्य" हाशिये पर—सा०। [४] हीरा संग सनि—भा०। [५] लसतु—आ०, बसनि—गंजा०। [६] हीरा को—भा०। [७] होत जात—भा० मो०, होति जोति—ब्र०।

छीपनि।

सोने से सोहने[१] गातन सोहै सुहागिनि की अति सूही[२] सुहाई।
देव जू आवै लगी अँखियान में देखतही मुख की अरुनाई।
ज्यौं ज्यौं रँगे पट रंग निचोरत त्यों निचुरै अँग अंग निकाई[३]।
दै छबि छापै[४] करै मन छींट[५] सु छीपनि बाल[६] छिपै न छिपाई ॥८॥

[१] सोने से सोहत—भा० मो०। [२] सोहे—भा० मो०। [३] गोराई—गं० गंजा०। [४] छीपे—गं० गंजा०। [५] छीर—सा०, छाप—भा० मो०। [६] छैल—गं० गंजा०, वाली—सा०।

पटवनि।

रेसम के गुन छीलि छरा करि छोर तें[१] ऐंचि[२] सनेह रचावै।
देव दसौ अँगुरी उरझाई कै डोरी गुहै रस रंग मचावै[३]।
मोहति सी मन पोहति[४] सी जन छोहति[५] सी तनि[६] भौंह लचावै[७]।
चंचल नैननि सैननि सों पटवा की बहू नटवा सी नचावै ॥९॥

[१] कर छोरति—भा० मो०। [२] पेछि—नी०। [३] देव दसौ अँगुरी कर पाइ वरै उरझाइ कै रंग मचावै—गं० गंजा०। [४] मोहत—भा०, जोहति—ब्र०। [५] जनु जोहति—भा० मो०, तनु चोहति—गं० गंजा०। [६] छवि—गं० गंजा०। [७] चलावै—नी० गं० गंजा०।

जौहरनी छीपिन कहौ कसहेरनी सुनारि।
ओपइन हलवाइन बनिन[१] और पसारि ॥

[१] ओ पटबइन हलवाइन—गंजा०।

गंधिनि मालिन तमोरिन बढ़इन और लुहारि।
दरजिन तेलिन कुम्हारिन भरभूजिन मनिहारि ॥
धुनिन जुलाहिन कटेरी और खटकिन नारि।
भटिहारी सिकलीगरनि और चूहरी चमारि ॥
ये कहिये सब हटवइन नृप पुर नगरी वाम।
पुर द्वारे गनिका बसै नागरिक अति अभिराम ॥

देखें "जाति विलास की प्रामाणिकता" शीर्षक—पृ० १७८, तथा परिशिष्ट २, पृ० २९५

सुनारिन।

देव दिखावति कंचन सो तन औरन को मन तावै अगौनी।
सुंदरि साँचे में दै भरि काढ़ी सी आपने हाथ गढ़ी विधि सौनी।
सोहति[१] चूनरी स्याम किसोरी की गोरी गुमान भरी गजगौनी।
कुन्दन लीक कसौटी में लेखी सी देखी[२] सुनारि सुनारि सलौनी ॥१०॥

[१] सोभित—भा०। [२] लेखि सु देखि—सा०।

गंधिनि।

अरगजै[१] भीजी मरगजै वागै बनीठनी[२] हाट पर बैठी अलिही[३] सुधरपन सों।
इन्दु सो बदन मृगमद बिन्दु बेंदी भाल झलकै कपोल गोल दूने दरपन सों।
मैन मद छाके नैन देखे[४] देव मुनि मोहैं सोहैं सटकारे[५] बार कारे सरपन सों।
बंधु किये मधुप मदन्ध किये पुरजन[६] बाँध्यो मनु[७] गन्धी की सुगंध[८] झरपन सों ॥११॥

[१] अगर जै—नी०। [२] बाग मनो बनी—सा०। [३] अनि ही—भा०। [४] ०—गं० गंजा०। [५] सेन सोहैं सटकारे—गं० गंजा०। [६] बंधुजन—गं० गंजा०। [७] मोह्यो मन—भा० मो०। [८] गंध की सुगंध—सा०।

तेलिन।

तिल है अमोल लोल नैनी के कपोल बीच कोटिक अनूप रूप[१] वारि फेरियतु है।
सोभा सुने जाकी कवि देव कहै कौन को न होत चित चीकनो चतुर चेरियतु है।
घाट बाटहू में वट निपट बटोहिनि के नेकही[२] निहारे नेह भरे हेरियतु है।
सरस निदान ताके[३] परस की कौन कहै पोनहूँ के परस परोसी पेरियतु है ॥१२॥

[१] कपोल गोल बोलत अमोल जन—गं० गंजा०। [२] नेह की—नी० गंजा०। [३] तकि—भा० मो०। नी० प्रति में चतुर्थ चरण त्रुटित है।

तमोरिनि

रंगित चोली तें ढोली[१] खरी चुनि चाइ[२] सों गाँठि[३] उघेरि अमेठी।
गोरी गुलाब लै लै छिरकै छबि भाव सों देव सुभाव सों ऐंठी
सोने से अंग सुरंगित[४] ओठनि कौन के जाति[५] हिये मैं न पैठी[६]।
ऊँची दुकान पै बैंचति पान तमोरिनि ऐंचत सींचत[७] बैठी ॥१३॥

[१] टोली—नी०, डोली—आ०। [२] चार—भा०। [३] सों आछे—भा० मो०। [४] सुरंगनि—भा० मो० ब्र०। [५] काज—नी०। [६] देव सु देखत ही हिय पैठी—गं० गंजा, नैन पैठी—आ०। [७] ऐंचत सी चित—सा०, प्रानन ऐंचति—गं० गंजा०।

कन्दुनि

मीठो महा मृदु बोल कहै हँसि मोल कहै[१] मुसकाइ सुभाइनि।
देव भुलाइ बटोहिनि बाट डुलावति चोरि लिये चित चाइनि।
रूप अनूप भरी नख तें सिख सुद्ध सुधारसही[२] की रसाइनि।
हाट के ऊपर हाटक बेलि सी बेंचति है हलवा हलवाइनि ॥१४॥

[१] मीठो महा हँसि मोल कहै—हँसि बोलि कहै—आ० नी०, लघु बोल कहे—भा०

मो० । [२] सूक्ष्म सुधारस ही—भा०, सुद्ध सुधारस ही—मो० । [३] हटवी—सा० ।

बनिनि ।

मदन के मोदभरी जोबन प्रमोद भरी[१] मोदी की बहू की दुति देखी दिन[२] दूनी सी ।
चाउ रहै चित में चितैत दारिदै न राखौ बोल मोल मीठी खाँड़ घीउ तें न ऊनी सी ।
राज बाट बीच वाट पारति बटोहिनि की बाट बिनु तोलै मनु[३] आँखिनि में खूनी सी ।
चूनरी सुरंग अंग ईंगुर के रंग देव बैठी परचूनी की दुकान पर चूनी[४] सी ।।१५।।

[१] विनोद भरी—आ० । [२] देखी तिन—भा० । [३] बिनु तोलै मनु लंत—आ० । [४] चूँबी —आ० ।

कुम्हारिनि ।

चन्दमुखी मुरि मन्द हँसे मुख[१] मोतिनि को गहि खोल्यो डबा सो[२] ।
देव सुधा भरे ओठ[३] उठे कुच भेंटि अघात[४] सही मधवा सो[५] ।
रूप उम्हार[६] कुम्हार की जाई के जोबन को न तचायो तवा सो ।
काम के चक्र चढ़ायो न को[७] घट काको[८] न कीनो अबास अँवा सो ।।१६।।

[१] गुन—सा० । [२] उवा सो—नी० गं० गंजा० । [३] ऐंठ—भा० । [४] अँचात—नी० गंजा० । [५] नहीं मधवा सो—सा०, सही मधवा सों—गं० गंजा० । [६] रूप अभार—भा० । [७] नयो—गं० गंजा० । [८] याको—भा० मो० ।

दरजिन ।

अन्तर पैठि[१] दुहूँ पट के कवि देव निरन्तरता उर आनै[२] ।
देत मिलाइ घने अपने गुन सार[३] सुई किधौं दूती[४] सुजानै ।
ताहि लिये कर मैं घर मैं रहै[५] जाको[६] सियै भरमै[७] सोई ठानै[८] ।
होती[९] करे जनि की दरजै दरजी की बहू बरजी नहिं मानै ।।१७।।

[१] बैठी—सा० । [२] मानै—नी० । [३] तार—गं० । [४] दूजी—सा० । [५] फिरै—सा० । [६] जाहि—भा० मो० । [७] मरमै—गंजा०, घर में—सा० । [८] छानै—भा०, सु बखानै—गं० गंजा० । सोइ जानै—आ० । [९] कीन्ही—गं० गंजा० । केवल आ० प्रति में इसके बाद "बढ़इन वर्णन" तथा "लुहारिन वर्णन" छन्द अधिक हैं ।

चूहरी ।

चीकने कपोल चौका चमकैं चुनी से दन्त चंचल दृगंचलनि चितवनि बंकिनी[१] ।
कंचुकी में कसे कुच कंचन कली से झीने अंचल की ओट[२] झाँई रंचक उझकनी ।
चटकीली चूनरी[३] में चोट सी चलावै भौहें चेटक सी चालि[४] पग जूती कर[५] कंकनी ।
फूल से झरत रंग झर[६] लागे झारू देत चूहरी चतुर चित चोरनि[७] चमंकनी ।।१८।।

[१] तीखे चारु चंचल दृगंचलनि बंकिनी—भा० । [२] अंचल की ओर—गं० । [३] चोरन—नी० । [४] चेटक सो लावै—गं०, "चालि" गंजा० प्रति में त्रुटित है । [५] कटि—ब्र०, जूती कर कंकनी—गंजा० । [६] झरत रंग उड़ि—सा०, झरत रंग झर झर—नी०, ज रत अंग झारु—आ० । [७] चोरति—आ० ब्र० ।

गनिका।

चाट उचाट सो चेटक सी[१] चुकुटी भृकुटीन[२] जम्हात अमेठी।
जोबन के इतराहट[३] सों अठिलात अठोठनि ओठनि[४] ऐंठी।
सौति भई सब नारिन[५] की सगरे नर मोहि मनो मन[६] पैठी।
देव दृगंचल छोरनि सों चित चोरनि यों चित चोरति बैठी।। १९।।

[१] चादु उचोदसी चंदु कुसी—नी०। [२] चिकुटी चकुटीन—नी०, भृकुटी चिकुटीन—भा० मो०। [३] इतराहर—गं०। [४] अछोटनि ऐंठनि—भा० मो०, अठोवनि जोठनि—नी०। [५] कुल नारिन—सा०। [६] मनो मुख—मो०, मनो रमन—आ०, हिये मनो—गं० गंजा०।

जौहरनी हरिनी ज्यों[१] भुलानी छकी छबि छीपिन छोह पछारी[२]।
रूप मदंधनि[३] मोहित गंधिनी व्याकुल बैन सुनै न सुनारी।
हूक उठी हलवाइन के हिय[४] तीखे कटाछ तमोरिनि मारि।
बेझै[५] बनी ना गनै गनिका गुन भायक भोगी भुवाल निहारी।। २०।।

[१] जा—ब्र०। [२] दीपति छोह पदारी—गं०। [३] मदंगनि—गं०। [४] अनि—सा०। [५] बैली—ब्र०। उपर्युक्त छंद केवल ब्र० गं० सा० प्रतियों में मिलता है, भा० मो० नी० गंजा० प्रतियों में नहीं।

इति श्रीनृप भोगीलाल हित बानी देव प्रकाश रस विलास नगर नागरी वर्णनं नाम द्वितीयो विलासः।

पुर कहिये छोटो नगर राजनगर के[१] तीर।
अपने अपने धर्म में चारि[२] बरन की भीर।। १।।

[१] राजनगन की—भा०, राजनगर की—मो०, महानगर के—सा०। [२] नारि—सा०।

तहाँ विप्र छत्री बनिक काइथ कुल अरु सूद्र[१]।
नाऊ माली रजक ए पुरवासी निरद्रुद[२]।। २।।

[१] तहाँ विप्र धर्म छत्री बनिक काइथ कुल सूद्र—मो०। [२] निर हुद्र—भा० मो०।

पुरबासिनि तिनकी तिया कुल आचार बिचार।
लिये धर्म सुभ कर्मपन[१] लाज काज[२] व्यौहार।। ३।।

[१] कर्मपुनि—ब्र०, धर्मकुल कर्म सुभ—सा०। [२] राज काज—नी० गंजा० ताज काज—सा०।

ब्राह्मणी लक्षण।

सत्य शील संतोष निधि विप्र बधू सविवेक।
न्हान ज्ञान जप तप[१] नियम पूजन यजन[२] अनेक।। ४।।

नी० गंजा० प्रतियों में दोहे का पाठ इस प्रकार है :—
"तहाँ विप्र छत्री बनिज भट कायस्थ किरार।
नाऊ अरु वारी बसैं धोबी डोम चमार।।
इन्ह प्रतियों में अतिरिक्त जाति-नाम के उदाहरण—छंद भी हैं। देखें, "जाति-विलास की प्रामाणिकता" शीर्षक—पृ० १७८, तथा परिशिष्ट २—पृ० २६५।

[२] न्हान ज्ञान तप जप—नी० गं० गंजा०, न्हान गान जप तप—भा० मो०। [३] कुलै आचार—नी० गं० गंजा०।

उदाहरण।

गंग तरंगिनी बीच बरंगनि ठाढ़ी करै जप रूप उदोती।
देव दिवाकर की किरनै निकसैं बिकसै मुख[१] पंकज जोती।
नीर भरी निचुरै अलकै[२] छुटिकै छलकैं मनो माँग के मोती।
बिज्जुल सी झलकै लपटै कन[३] कज्जल सी अंग उज्जल धोती ॥ ५ ॥

[१] मनु—भा० मो० ब्र०। [२] अलकै निचुरै—भा० मो०, अलकै निचुरै अलकै—दूसरे "अलकै" पर हरताल फेरी है—ब्र०। [३] लपटे झलकै कन—भा० मो०।

क्षत्रिय-लक्षण।

छत्र धरन छत्रिय कह्यौ भूपति सो ह्वै ठाम।
पूरब में रजपूत अरु पच्छिम छत्रिय नाम ॥ ६ ॥

सा० प्रति में दोहा त्रुटित है।

रज राखन रन दान[१] भट गाय[२] विप्र हरि पीर।
ताकी तिय क्षत्रिय बधू बरनी गुननि गहीर[३] ॥ ७ ॥

[१] रज दान—भा०। [२] गये—सा०। [३] गुन गंभीर—गं० सा०।

राजपूतानी।

भाग भरी अनुराग भरी[१] बड़ भागिनि सुद्ध सुहागिनि छाजै।
अंग अनंग तरंगनि जानि[२] इकंगनिये सब संगिनि साजै।
संचित कै रुचि बंचि बधूनि बिरचीं सु सची सुनि लाजै।
प्रेम भरी पुर भूपसुता गुन रूप रजी[३] रजपूतिनि राजै ॥८॥

[१] अति राग भरी—ब्र०। [२] जागि—सा०। [३] रची—भा० मो०।

खतरानी।

ज्यौं बिनही गुन अंक लिखै घुन यों करि कै करता करि हार्‌यो[१]।
बारिये कोरि सची रति रानी[२] इतो खतरानी[३] को रूप निहार्‌यो।
देव सु बानक देखि अचानक आन कहूँ न को आन कुमार्‌यो।
लाज लचै त्रिय और रचै तो पचै बिन काज बिरंचि बिचार्‌यो[४] ॥९॥

[१] करु झार्‌यो—गं०। [२] करिये करि कोरि सची रति रानी—सा०। [३] छतिरानी—सा०। [४] लाज लचै त्रिय और रचै बिनै काज विरंचि विचारि बिचार्‌यो—भा मो०।

नी० गंजा० प्रतियों में संख्या ६, ७ दोहे का पाठ इस प्रकार।

जो रक्षै गो विप्र को छितपति पुर पुरहूत।
रज राखे रन दान भट सो कहिये रजपूत ॥
ताही सो छत्री कहै हरै सदा पर पीर।
ताकी तिय छत्री बध बरनी गुन गंभीर ॥

केवल भा० प्रति में चरणों का क्रम १-४-३-२ है। नी० गंजा० प्रतियों में छन्द त्रुटित है और इसके स्थान पर "सूहो पैन्हे आवति" छंद है।

वैस्यानी।

पीरे पीन कुचनि पै[१] कंचुकी बदन कसी निकसी निकाई परै सूहे की सुहाती[२] मैं।
गोरे गरे तरे लरैं मोतिनि की[३] तामैं झमकति धुकधुकी जैसे दूलह[४] बराती मैं।
देव चित चूमे वेष इन[५] खुमे बाजूबन्द ललकत लाल लगिवे को रँगराती मैं।
नवजोबनी की जोब नीकी[६] जोति जीति[७] रही कैसी बनीनीकी बनी नीकी छबि छाती मैं ॥१०॥

[१] कुच नीके—सा०। [२] सुहानी—नी०। [३] मोती कुमकति—नी०। [४] दूलरैह—मो०। [५] अन—सा०। [६] जोवन की—सा०। [७] जाति—गं० गंजा०।

काइथिनि।

रीझै रिझबारि[१] इंदु बदनी उदार सुर रुख की सी डार डोलै रंग रखियनि मैं।
साँवरी सलौनी गुनबन्ती गजगौनी[२] महा सुन्दर सुघर लाख-लाख[३] लखियनि मैं।
जागी सब रैनि बड़भागी पिय प्यारे[४] संग प्रेमरस पागी[५] अनुरागी सखियनि[६] मैं।
दार्यो से दसन मन्द हँसन विसद भरी सद भरी सोभा[७] मद भरी अँखियनि मैं ॥११॥

[१] रिझाई—नी०। [२] जगौ—नी०। [३] अभिलाख—ब्र०। [४] निज पिय—ब्र०। [५] पतिव्रत पागी—ब्र०। [६] रखियनि—भा० मो०। [७] "सद भरी"—हाशिये पर—ब्र०, सोभा सद भरी—सा०। नी० प्रति में तृतीय चरण नहीं है एवं गंजा० प्रति में सम्पूर्ण छन्द त्रुटित है।

किरारिन।

नेह सो निचोरै चित चोरै डीठि जोरै कौन डोरै लाग्यो डोरै डारि[१] सुरति अहार की।
सोने के सरोज से उरोज उमगोहे गोरे अंग में सुहाई देव सूही जरतार की।
कंठ सिरीकंठ कटि किंकिनी कंकन[२] कर ऊजरी[३] पगनि गूजरी सु झनकार[४] की।
चंद सों बदन मंद हँसनि गयंद गति कोवरी[५] कुरंगनैनी कुँवरि किरार की ॥१२॥

[१] लागी ढोरै डारि—भा० मो०। [२] कनक—गं०। [३] ऊजरे—भा० मो०। [४] झमकार—भा०। [५] को अरी—नी० गं० गंजा०।

नाइनि।

घर-घर डोलति सुघर नर मोहिबे को[१] ऊधरी फिरति सनमुख[२] सुख दैनिया।
अरुन वसन वय[३] तरुन चुवत रस कुलटा कुटिल कुल[४] जुवतिन जैनिया[५]।
जाबक कै मिस काम पावक जगावै देव[६] हिय को हरत यों करत करसैनिया।
बैनी गुहिबे को[७] पिकवैनी सो तनैनी फिरै[८] पैनी चितवनि की चपलनैनी नैनिया ॥१३॥

[१] मोहनी सी—गं० गंजा०। [२] सब मुख—भा० मो०, सनमुख—सा०। [३] बैन—सा०। [४] जग—गं० गंजा०। [५] कुल जुवतिन की जैनिया—सा०, जुबतिन भरैनिया—गं०। [६] जगावति सी—गं० गंजा०। [७] गूदिबे कौ—गं० गंजा०। [८] डोलै—गं० गंजा०।

केवल भा० प्रति में छन्द का द्वितीय चरण नहीं मिलता और छन्द के तृतीय चरण के पश्चात् भा० प्रति में तृतीय चरण का पाठ इस प्रकार है :

"प्रेमी अनुरागिनि को हियरो रिझावै अरुझावै सुरझावै बिरुझावै नैन पैनिया।"

मालिन।

बीनत फिरत फूल दार्‌यो दल से[१] दुकूल खुले भुजमूल लटैं घूमैं ज्यों[२] अलिनिया।
चौसर चमेली चारु पहिरे सिंगारहार लची[३] कुच भार जीति लीनी है[४] फलिनिया।
जुही गुही माँग अंग[५] चंपक पराग छुही देव लखे लोचन लजाति है नलिनिया।
बाग में बिलोकी अनुराग की सी बोहनी सो[६] सोहनी[७] सुघर मन मोहनी मलिनिया॥१४॥

[१] दार्‌यो लै लसै—गं०। [२] छूटी लटैं ज्यों—गं० गंजा०। घेरि घूमत—नी० सा०। [३] चंपी—सा०। [४] फली जे—गं० गंजा०। [५] आँख—भा०, आग—मो०। [६] वाहिनी से— गं० गंजा०। [७] मोहनी—भा० मो०। नी० गंजा० प्रतियों में यह छन्द द्वितीय विलास में है।

धोबिन।

घाट पर ठाढ़ी बाट पारति बटोहिनि की चेटक सी डीठि मन काको न हरति है।
लटकि पटकि पट छियो करि मटकति देव भुज मूलनि तें फूल से झरति[१] है।
जोवन की ऐंठ अठिलात सी[२] उठोहैं[३] कुच ओठनि अमेठि पट ऐंठि कै धरति है[४]।
धोबिन अनोखी यह धोवति कहाथौं करि सुध[५] मुख राखति न ऊधम करति है॥१५॥

[१] मटकाय देव छीटो कहि ठाढे भुज मूल हासी फूल से झरति है—सा०, मटकाय देव छियो कहै काढ़े भुजमूल हाँसी फूल से झरति है—नी०, लटकि लटकि छी करति खुले भुज मूल झुकि झुकि स्वेद कन फूल से झरति है—गं० गंजा०। [२] अठिलाग सी—भा० मो०, अठिलात से—नी० गं० गंजा०। [३]उचौहैं—नी०। [४] ऐंठि पकरति है—गं० गंजा०। [५] धोबिन कहा धौं यह धोबिन अनोखी कर सूध—गं० गंजा०, करि सुधा—भा० मो०।

बन मैं जो लघु पुर बसैं तासो कहिये गाँव।
तहाँ बसैं ग्रामीन तिय गँवारी ताको नाँव[१]॥१६॥

[१] तिन्हें गँवारी नाँव—भा० मो०, ग्रामनि ताको नाउ—ब्र०, गँवारि सो ताको नाउ सा०।

ग्रामीण नायिका-भेद।

अहिरनि अरु काछनि कहौ कलारि और कहारि[१]।
और [नुनेरिन[२] पाँच बिधि बरनहु नारि गँवारि॥१७॥

[१] कलारिन और कहारि—सा०, नारि कलारि कहारि—भा० मो। [२] नूनेरी अरु—भा० मो०।

अहीरिन।

माखन सो मन[१] दूध सो जोबन है दधि तें अधिकै उर ईठी।
छैल रँगीली की[२] छाछि के आगे[३] समेत सुधा बसुधा सब सीठी।
नैननि नेह चुवै कवि[४] देव बुझावत बैन[५] वियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहे कहौ क्यों न लगै मनमोहनै[६] मीठी॥१८॥

[1] तन—नी० गंगंजा०। [2] छबीली की—सा० नी०। [3] जा छवि आगे छपाकर छाँछ—गं० गंजा०। [4] कहि—सा०, कहै—नी०। [5] चैन—भा० नी०। [6] मन-मोहन—भा० मो०।

काछिन।

राखै समाधान समाधान कै दिखैयनि को ईगुर सी अंगनि गुराई[1] है गँवारि मैं।
देव कहै जगमग्यो[2] जोबन जुन्हाई ऐसी एते पै[3] जुन्हाई पैठी सरोवर[4] बारि मैं।
बारनि सुखावति उघारे सीस गावति लुभावति[5] सी लोगनि फिरति चहूँ पारि मैं।
अंचल अँगौछै[6] ओछे ओछे कुच पोछै[7] लिये कोछे में कमल डोलै काछिनि कछार[8] में॥१६॥

[1] से अंगनि आँगुरी—भा० मो०,। [2] जगमगी नव—गं० गंजा०। कही जगमगी—भा० मो०। [3] जोति जोवनी—गं०। [4] कुमुद मोदित—गं० गंजा०। [5] भुलावति—भा० मो०। [6] अंचर अँगौछि—भा० मो०। [7] औछि औछि कुच पोंछि—भा० मो०, ओछे आछे कुच पोंछे—सा०। [8] कगार—सा०। गं० गंजा० प्रतियों में चरणों का क्रम १-३-२-४ है।

कलारिन।

आपु पिवै अरु औरनि प्यावति लाज के तूल ज्यों तूमति डोलै।
जोबन जेब जकी सी कलारि छकी मद सों झुकि झूमति डोलै।
गावति रीझि रिझावति त्यों मतवारनि को मुख चूमति डोलै।
काम के बान हनी[1] हिय मैं घर बाहिर घाइल घूमति डोलै॥२०॥

[1] हनै—सा०। केवल नी० प्रति में चरणों का क्रम १-३-२-४ है।

कहारिन।

जगमगे जोबन जगी है रँगमगी जोति लाल लहँगा पै लीली[1] ओढ़नी बहार की।
झाऊ[2] की झँवरिया मैं सफरी फरफरात बेंचति फिरति बोले बानी मनुहार की।
चाहेऊ न चाहै[3] चहूँ ओर तें गहत बाहैं[4] गाहक उमाहे रोकि राहैं[5] चित हार की[6]।
देखत ही मुख विष लहरि सी आवैं लगी जहर सों नैन करै[7] कहर कहार की॥ २१॥

[1] नील—ब्र०, पीली—भा०। [2] झाझ—भा०, झाम—मो०। [3] चाहै अनचाहै—नी०। [4] कहत डाहै—सा०, गहन चाहै—नी० गंजा। [5] रहै—भा० मो०, रहै रोकै—गं० गंजा०। [6] गाहक घनेरी दोरि चित अपहार की—नी० सा०, उमाहै राहै रोकै सु विहार की—गं० गंजा०। [7] हाँसी करैं—गं० गंजा०।

नुनेरिन।

पीरे अँचरान सेत[1] लुगरा लहर लेत लहँगा की[2] लगी[3] लाल रँगी रँगहेरा की[4]।
गात में गुझौरहाई[5] अँगिया उचौहै कुच बीच पचरँग पोति ताई सीनि फेरा की[6]।
हाथनि[7] लखौटा पाइ[8] चूरा पचमनी गरे गोरी की जुगल जाते[9] है उन्हारि[10] केरा की।
गजगौनी नौनी[11] धरे नोन की डेरैया सीस[12] नीरज से नैन नारि निरखी नुनेरा की॥१२॥

[1] पीरे पीरे आँचर स्वेत—भा०। [2] लुगी लँहगा की—गं०, लुगी लाल लहँगा की—ब्र०। [3] पीरे अचरान सेत डडिया अधोतर की लहँगा खरा को—सा० नी० गंजा०।

[४] रंग रीझ रंग हीरा की—नी० सा०, रंग रँगी रँगहेरा की—गं० गंजा०। [५] गातन में गुभौरपरि—गं० गंजा०, गात मैं गुहै हराई—ब्र०, धावत मैं डोरिहाई—भा०। [६] पीत सरी है तिफेरा की—नी०, पति सरह तिफेरा की—सा०, अँगिया उमग उर ताई पन पोही पीत पोति है तिफेरा की। गं० गंजा० [७] हाथ—नी० गंजा०। [८] बाहु—नी०। [९] जंघ—ब्र०। [१०] कोरी मनौ—गं०। [११] लौनी—नी०, गं० प्रति में भी पहले "नोनी" पाठ था। परन्तु बाद में उसी कलम से उसे "लोनी" बनाया गया है। [१२] ठरैया सीस—गं० भा० मो०, सिर—नी० सा०।

बन्या।

बन्या बनबासिनि बधू ताहू त्रिबिधि बखानि।
मुनि त्रिय अरु त्रिय व्याध की और भीलनी जानि॥ २३॥

मुनि-त्रिया।

फूली लतान को छत्र दिये नव[१] पत्र सुखासन है सुखकारी[२]।
चौंर करैं चमरी चय मोर[३] चकोर मृगी मृग चाकर भारी।
गावत भौंर रिझावति[४] कोकिल आइ मिले सगरे बनचारी।
जीति लिये मृगराज सबै अब राज करै रिषिराजकुमारी॥२४॥

[१] मन—भा०। [२] हितकारी—सा०। [३] ज्यों मरीच मयूर—सा०, चय मोर—गं० गंजा०। नी० में "चम" अपठ है। [४] स्यामा रिझावति—सा०, भौंर लजावति—भा० मो०।

व्याध-वधू।

है करबीन लिये परबीन बजावति गावति मोहनी[१] ताननि।
मोहि लिये खग औ मृग[२] मानुष गान सुनैं समुहै करि काननि।
सोर पर्‌यो सगरे वन[३] बीच न कोऊ रह्यो तपसी थिर थाननि[४]।
बंक बिलोकनि बेधि हियो सु कियो बध व्याध बधू बिन[५] बाननि॥ २५॥

[१] मोहति—गं० गंजा०। [२] मृग औ खग—भा० मो०। [३] वृज—गं० गंजा०' [४] काननि—नी०, ताननि—गं० मो०। [५] वध—ब्र०।

भीलनी।

स्यामघन ऐसे तन[१] सघन जघन कुच[२] घने घुँघराले बार जोबन जकी फिरै।
मोरपच्छ भूषन[३] बिराजैं गुंजमाल[४] गरे मद भरे नैनन की[५] टारै न टकी[६] फिरै।
किलकि किलकि[७] पुलकत काम विकल ह्वै सीतल सलिल अवगाहत[८] थकी फिरै।
उरझति झारनि मैं मुरझि[९] पहारनि मैं गाढ़ी गूढ़ गैल छैल भीलनी छकी फिरै॥ २६॥

[१] केश—हाशिये पर पेंसिल से "तन"—गं०। [२] जघन ऊँचे—भा०, सघन कुच—हाशिये पर पेंसिल से "स" के स्थान पर "ज" गं०। [३] भू पर—मो०। [४] गलमाल—नी० गंजा०। [५] नैनन सो—सा०, नैन नेक—भा० मो०। [६] मटकी—नी० गंजा०। [७] बिलकि—सा०। [८] नद गाहत—गं० गंजा०। [९] सुरझि—नी० सा०।

सैन्या।

कटक बसैं ते सैन्या[१] तीनि भाँति कहु ताहि।
इक बृषली अरु वैस्या कहत[२] मुकेरिन[३] जाहि॥ २७॥

[१] ते सैन्य तिय—गं० गंजा० सा०। [२] वैस्या दुतिय त्रितिय—भा० मो०। [३] सुकेरिन—भा० मो० नी०।

वृषली।

लहलह्यो जोबन हँसत डहडह्यो मुख गहगह्यो काजर चखनि चटकायो है।
कानन करन फूल सोहत जरी दुकूल नथ में अथक[१] लटकन लटकायो है।
लालच लपेटी टेढ़ी[२] चितवनि मन्द चाल[३] चीकने कपोल गोल को न भटकायो है।
भौंहनि मरोरि मुरि मोरे गोरे गातन सों[४] बातनही सगरो कटक अटकायो है॥ २८॥

[१] अकथ—पेंसिल से १-२—संख्या डालकर "अथक"—गं०, अछत—सा०, अधिक—भा० मो० नी०। [२] लाल चल बैठी गेढ़ो—भा०, लालच लै बैठी ऐंठी—गं० गंजा०, बंक—सा०। [३] गति—सा०। [४] गात देखो—भा०, मुरि मुरि मोरि गोरे गात—ब्र०, गात बात—गं० गंजा०, गोरे गात—मो०।

वैस्या।

उज्जल उज्यारी सी झलमलात झीमी सारी[१] झाँई सी दिखाई देत देह की[२] विलास सी।
जोबन की जोतिनि सों हीरा लाल मोतिन सों नख तैं सिखा लौं मिलि एक ह्वै महालसी[३]।
बोलनि हँसनि मन्द चलनि चितौनि चारुताई[४] चतुराई चित चोरिवे की चाल सी।
संग मैं सहेली सोन बेली सी नबेली बाल रगमगे अंग[५] जगमगति मसाल सी॥ २९॥

[१] झलक झमकत झीनी सारी—आ०। [२] दिखात देह दीपक—सा०, दिखाई देह दीपति—नी०, दिपति देह दीपति—गं० गंजा। [३] जोवन की जोतिन सों नख तैं सिखा सों मिलि कहै कवि देव ऐसी एक ह्वै महाल सी—भा०। [४] चारु अति—सा०। [५] सगमगे अंग—नी०, संग मैं सहेली सो नबेली बाल रगमगे अंग—भा०।

मुकेरिन।

राची कर मेंहदी महावर सों राजे[१] पग घाघरे की घूम गति घूमति घनेरनि की।
रंग भरे गोरे अंग अँगिया लसति लीली लाल ओढ़नी मैं[२] डीठि डोलै चितचोरनि[३] की।
हाटक बुटी सी[४] बाढ़ी हाट पै हँसति ठाढ़ी बाट बिनु तोलि[५] बाट पारै बहुतेरनि की।
गाहक बुलावै[६] सैन करै देन करै सौदा[७] नैननि मुकरि जाइ[८] मुकरि मुकेरिन की॥ ३०॥

[१] राची—ब्र०, भीगे—सा०, भीजे—नी० गंजा०, भीने—गं०। [२] पै—पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख में—ब्र०। [३] चित चोरनि—सा० मो०, गं० प्रति में हरताल की सहायता से "चोरनि" का "चैरनि"। [४] पटी सी—भा०। [५] तोलै—भा० मो०। [६] बुलाइ—सा० नी० गं० गंजा०। [७] दैन करे सो—सा०, देन करै सोस—नी०। [८] नैन मुकराइ जाति—गं० गंजा० नैन मुकराय जाइ—नी०।

पथिक-वध ।

सदा बसै जो[1] पन्थ मैं पथिक वधू तेहि जानि ।
बनिजारनि जोगिनि नटी कँगहेरनि बखानि[2] ।।३१।।

[1] ते—भा० मो० । [2] कंजारनि पहिचानि—गं० गंजा०,
हगहेरनि पहिचान—नी०, बनजारिन जागिनि बनिनि ताहू त्रिविध बखान—सा० ।

बनजारिन

एड़िनि ऊपर घूमत घाघरो तैसिये सोहति सालू की सारी ।
हाथ हरी हरी छाजै छरी अरु जूती चढ़ी पग फूँद फुँदारी ।
ऊँचे उरोज हरा घुँघुचीनि के हाँ कहि हाँकति[1] बैल निहारी ।
गातनही दिखराइ बटोहिन बातनही बनिजै बनिजारी ।।३२।।

[1] हाँकति हाँकति—गंजा० ।

जोगिन ।

डोले बन बन जोर जोबन के जाचकनि राग बस कीने बनवासी बीभि रहे हैं[1] ।
कोगरी बजावति मधुर सुर गावति सु धुनि[2] सुनि सीस धुनि मुनि खीभि[3] रहे हैं ।
मोहे[4] महा पन्नग अनेक अग नग खग[5] कान दै दै कोल भील केते भीभि[6] रहे हैं ।
ठाढ़े ढिग बाघ बिग[7] चीते चितवत दृग भाँख मृग साखा मृग रोभ रीभि[8] रहे हैं ।।३३।।

[1] बिहरे हहैं—सा० । [2] सगुन—मो० । [3] रीभि—नी० । [4] सोहे—ब्र० । [5] अनगन खग—भा० मो०, पनअनेक अनग खग—नी०, अनेग अग नग—गंजा० । [6] केते रीभि—भा० मो०, भालू सीभ—गं० गंजा० । [7] बग—मो०, बन—भा०, बीच—ब्र० । [8] चितवत भाँख मृग साखा मृग मुख रीभि रीभि—गं० गंजा०, रीभ रीभ—भा० ।

नटी ।

पातरे अंग उड़ै बिनु पाँखनु कोमल भाषनि प्रेम भिरी की[1] ।
जोबन रूप अनूप निहारि के लाज मरै निधिराज सिरी की ।
कौल से नैन कलानिधि सो मुख को गनै कोटि कला[2] गहिरी की ।
बाँस के सीस अकास में[3] नाचति को न छकै छबि सोनचिरी की ।।३४।।

[1] कोमल बानि चवान बिरी की—गं० । [2] कोटि कला गुनकी—गं० गंजा० । [3] से—नी०, पै—गं० गंजा० ।

कँगहेरनि ।

साँवरे अंग सरोज से नैन, उरोज उठे अठिलात कपोलै ।
ऐंठति सी भुजमूल उठाय अँगूठनि चालि[1] चवाय सों बोलै ।
हाँसी में डारति फाँसी बिसासिन पोहति सी चित टोहति टोलै[2] ।
मोरपखा घुँघुचीन के जेवर जेब सों जेवरी बेंचति डोलै ।।३५।।

[1] अँगूठ नचाय—सा० नी० । [2] डोलै—गं० गंजा० भा० सा०, बोलै—नी० ।

जाति करम गुन अगन पन[१] नारि अनेक प्रकार ।
ताते मैं सूछम कछू कही[२] बुद्धि अनुसार ॥३६॥

[१] अंग नव—सा०, अन पन—नी०, आपने—गंजा० । [२] कही कछू—भा० मो० ।

मारग सेन अरन्य तियान कमान, ज्यों भ्रू दृग बान कसी से ।
पेखै पुरंदर ज्यों पुरनारि गँवारिन सीस लचाइ[१] ससी से ।
भोगी भुवप्पति भूपसुतानि अनूपम जानि बिलोके बसी से ।
रूप मधूनि अँचे उर धूनि सराहि के विप्र वधूनि असीसे ॥३७॥

[१] नवाइ—ब्र० । उपर्युक्त छंद केवल ब्र० गं० सा० प्रतियों में मिलता है, भा० मो० नी० गंजा० प्रतियों में नहीं ।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कवि देवदत्त कृते पुर वन सेन्या मार्ग वधू नाम तृतीयो विलासः ।

काम अन्ध कामी[१] जगत लखै न रूप कुरूप ।
हाथ लिये डोलति फिरै कामिनि छरी अनूप ॥१॥

[१] अन्धकारी—भा० मो० ।

ताते कामिनि एक सी[१] कहन सुनन को भेद ।
राचै प्यावै[२] प्रेमरस मेटै मन के खेद ॥२॥

[१] एक ही—भा० [२] राचै पागै—भा०, राचै पावै—मो०, राच्यो पावै—गं० ।

रची राम सँग भीलनी जदुपति संग अहीरि ।
प्रबल सदा बनवासिनी नवल नागरिन पीर ॥३॥
कौन गनै पुर नगर वन[१] कामिनि एकै रीति ।
देखत हरै बिवेक को चित्त हरै करि प्रीति ॥४॥

[१] पूरब नगर—भा० मो० ।

ठाढ़ी ही बाग में भागभरी मनौं काम भुजंगम के विष भोई[१] ।
आनि परी चित बीच अचानक जोबन रूप महारस[२] मोई ।
नागरि थीं[३] पुरबासिनिही कि गँवारि किधौं बनबासिनी कोई ।
को गनै भोजन की जन की पन की तन की मन की मति खोई ॥५॥

[१] चोई—भा० । [२] मही रस—सा० । [३] कै—ब्र० ।

अष्टांगवती नायिका ।

जा कामिनि में देखिये पूरन आठौ अंग ।
ताही बरनौ नायिका त्रिभुवन मोहन रंग ॥६॥

नायिका के अष्टांग ।

पहिले जोबन रूप गुन सील प्रेम पहिचानि ।
कुल वैभव भूषन बहुरि आठौ अंग बखानि ॥७॥

यौवन लक्षण ।

बालापन को भेदि कै छबि को अंकुर होई ।
जग मोहै दिन दिन बढ़ै जोबन कहिये सोई ॥८॥

उदाहरण।

खेलत ही में भयौ कछु खेल खेलावनहारी[१] भई सब सौतें।
देव जू चौंकि चिते चकितै ह्वै चवाव[२] करै उठि आपनी गौतें।
भोरई[३] साँझ तें सूर उदौ लगि भोरई[४] साँझ तें सूर उदौतें।
रूप की ओप अनूप घरी पल बेलि[५] सी बाढ़ति काल्हि परौतें ॥९॥

[१] खेलावनवारी—भा० मो०। [२] चकिवै सु चवाव—भा०। [३] औरई—भा०। [४] औरई—भा०, ह्वै रही सूर उदौ लगि साँझ तें औरई—सा०। [५] बालि—नी० गं० गंजा० भा० मो०।

लहलही बैस उलही है दुलही की देव[१] उर में उरोज जैसे उमगत[२] पाग है।
अनगिने दिनन[३] अनूप दुति आनन की देखत ही उपजै[४] अनूठो अनुराग है।
तैसीये तरल तीखे अनसीखे[५] नैनन तें[६] निचुरै सनेह[७] सूधो भामते[८] को भाग है।
सोने से सुरंगनि तें चंपा चारु अंगनि तें रंगनि सों उठत[९] तरंगनि सुहाग है ॥१०॥

[१] देव दुलही की—नी० गं०। [२] उमरत—मो०, उमड़त—ब्र०। [३] गुनन—सा०, दिन में—नी० गं० गंजा०। [४] उपजत—भा० मो०। [५] अनमिख—सा०। [६] नैनन के—भा०। [७] निस दिन नेह—गं० गंजा०, निस दिन सनेह—नी०, निचुरै निपुन—भा०, चुरेन सनेह—मी०। [८] भामती—नी० गं० गंजा०। [९] सों ऊंचत—भा० मो०।

ज्ञात-यौवना।

पीछे तिरीछे कटाछनि[१] सों इत बै चितवै री जला ललचो है।
चौगुनो चैन चवाइनि के चित चाई चढ़ै है चवाई मचो है।
जोबन आयो न पाप लग्यो कवि देब रहे गुरु लोग रिसो है।
जी में लजैयै जो[२] जैयै जितै तितै पै यै कलंक चितैयै जो सो है ॥११॥

[१] कटाछ—नी०। [२] जो में लजैयै औ—भा० मो०।

रूप-लक्षण।

देखत ही जो मन हरै[१] सुख अँखियन को देइ।
रूप बखानै ताहि जो जग चेरो कर लेइ ॥१२॥

[१] जो बन रहै—नी० गंजा।

उदाहरण।

कुन्दन से अंग नव जोवन सुरंग[१] उठे उरज उतंग धन्य प्यौ जु परसत है।
सोहति किनारी वारी तनसुख सारी देव सीस सीसफूल अधखुल्यो दरसत है।
बेंदिया जराउ बड़े मोतिन सों नीकी नथ हँसत[२] तरौननि सों रूप सरसत है।
गोरी गजगौनी लौनी नवल दुलहिया के[३] भाग भरे मुख पै सुहाग बरसत है ॥१३॥

[१] कुन्दन से अंग नव जोवन से सुरंग—नी०, नव जोवन सोरंग—सा०, जोवन तरंग—ब्र०। [२] हलत—भा०। [३] दुल्हैया तेरे—भा०।

घूँघट खुलत अभे[१] ऊलट ह्वै जैहै देव उद्धत मनोज जग[२] जुद्ध जूटि परैगो।
ऐसी न सुरोक सिय को कहै अलोक बात[३] लोक तिहूँ लोक की लुनाई लूटि[४] परैगो।

दैयनि[५] दुराउ मुख नतरू तरैयनि को मंडल औ मटकि[६] चटकि टूटि परैगौ।
तो चितै सकोचि सोचि मोचि मद[७] मूरछि कै छोरतें[८] छपाकर छता सो छूटि[९] परैगौ ॥१४॥

[१] आवै—ब्र०। [२] ओज—नी० गं० गंजा०। [३] ऐसी न सरूप सीये को कहै अलोक बात—ब्र०, ऐसी न सुरोक सीक को के कहे अलोक बात—सा०, ऐसी न सुरोक सिख को कहै अलक बात—गं० गंजा०, को कहै अलोक बात सो कहै सुरोक सिय—मो०,को कहि अलोक बात सो कहै सुरोक सिय—भा०। [४] लटि—मो०। [५] दैवनि—भा०,दैपनि मो०। [६] मंडल उमड़ि कै—नी०। [७] मृदु—सा०, मग—सा०, मेड़—गं० गंजा०। [८] दौरिकै—सा०। [९] टूटि—नी०।

गुण-लक्षण।

काइक बाचिक करम करि बाँधै सब को चित्त।
राव रंक रीझै[१] गुनहि होइ जगत को मित्त ॥१५॥

[१] माने—नी० गं० गंजा।

उदाहरण।

गाइ बजाइ नचाई कै नैन[१] रिझाइ के भाव[२] बताइबो[३] सोह्यो।
चित्र विचित्र कला कविता रस देव जू चातुरी सों[४] चित पोह्यो[५]।
भोजन भूषन भाष न भेष विसेष सबै[६] रचना रुचि रोह्यो।
रूप उजागरि[७] राधे अहे गुनआगरि[८] तैं जगमोहन मोह्यो ॥१६॥

[१] नारि—भा० मो०। [२] नाथ—भा०। [३] वतायो सु—नी० गं० गंजा०, तताइबो—म०। [४] देव जू चित्र विचित्र कला कविता रस चातुरी सों—नी० गं० गंजा०। [५] चोह्यो—नी०। [६] रचै—भा० मो०। [७] ए गुन आगरि—नी० गं० गंजा०। [८] जग मोहनी—नी० गं० गंजा।

वेदनहू नने गुन गने[१] अनगने भेद भेद बिन जाको गुन निरगुनहू पहै[२]।
केतिक[३] विरंच्यो ऐसी रचै रुचि[४] रंच्यो महा सुखनि को संच्यो जहाँ बंच्यो बृजभूप है।
सोई[५] सुनि सुनि अवराधा अब राधा जस जानत न देव कोई कहा धौं अनूप है।
तेज है कि तप है कि सील है कि सम्पति है राग्रा है कि रंग है कि रस है कि रूप है ॥१७॥

[१] ०—मो०, जाके—भा०। [२] निरगुन रूप है—गं० गंजा०, पुहै—ब्र०। [३] कौतूक—सा०। [४] ऊबि—ब्र०, डरि—गं०। [५] तोही—भा० मो०।

शील-लक्षण।

कोमल बचन प्रसन्न मन सज्जन रंजन[१] भाइ।
दीन दया थिरता छिमा ये कहु सील सुभाइ ॥१८॥

[१] सज्जन हूजन—ब्र०।

उदाहरण।

भोन भरे सगरे बृज सौंह[१] सराहत तेरेई[२] सील सुभाइन।
छाती सिराति सुने सबकी चहुं ओर तें चोप चढ़ी चित चाइन।
ए री बलाइ ल्यों मेरी भटू सुनि[३] तेरी हौं चेरी परौं इन पाइन।

सौतिहू की अखियाँ सुख पावति तो मुख देखि[४] सखी सुखदाइन ॥१९॥

[१]सोरु—सा०, सो जु—नी० गंजा। [२] है तेई—सा०। [३] एरी अहे ठकुराइन सु तेरी भटू सुनि—गंजा० ऐरी अहे ठकुराइन मेरी सु भटू सुनि—गं०। [४] देखे—नी० गं० गंजा०।

नेह भरी सब देह[१] खरी रस मेह झरी अँखियाँनि विसेषी।
भौंहनि में झलकै मुसकानि[२] सी काम कमान मनौ अवरेखी।
देव सुधा बरसै[३] मृदु बोल सुधानिधि[४] में न इती[५] रुचि[६] पेखी।
कैसेहू क्योंहू[७] रिसात[८] जु पै सरसात घनी अरसात न देखी ॥२०॥

[१] तें संदेह—भा०, रस देह—मो०। [२] मुक्तान—नी० गंजा०। [३] सुभाव रखे—भा०, सभा बरसे—मो०। [४] सुधाधर—नी० गं० गंजा०। [५] रती—सा०। [६] छवि—गं० गंजा०। [७] केहू—सा० नी० गंजा०। [८] सिरात—गं०।

प्रेम-लक्षण।

सुख दुखहू में एक सी तन मन बचननि प्रीति[१]।
सहज नेह नित-नित नयो जहाँ सु प्रेम प्रतीति ॥२१॥

[१] मीति—नी० गं० गंजा।

उदाहरण।

रीझि-रीझि रहसि-रहसि हँसि-हँसि उठ सासैं[१] भरि आँसू भरि कहति दई-दई।
चौंकि-चौंकि चकि-चकि औचकि उचकि देव छकि-छकि बकि-बकि उठति[२] बई बई।
दुहुन के गुन रूप[३] दोऊ बरनत फिरैं घर न[४] थिरात रीति नेह की नई-नई।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय राधा मन मोहि-मोहि मोहन भई-भई[५] ॥२२॥

[१]हासै—नी०। [२]परति—नी० गं० गंजा। [३] रूप गुन—नी० गं० गंजा०। [४] पल न—भा०। [५] भई-भई—नी० गं०। केवल सा० प्रति में उपरोक्त छन्द त्रुटित है।

औचक अगाध सिन्धु स्याही को उमगि आयो तामें तीनों लोक बूड़ि गये एक भंग मैं।
कारे-कारे[१] कागद लिखे ज्यौं कारे आखर सु[२] न्यारे करि बाँचै कौन[३] रचि[४] चित भंग मैं।
नैननि में[५] तिमिर अमावस की रैनि अरु जम्बू रस[६] बिन्दु जमनातल तरंग मैं।
यों ही मन मेरौ मेरे काम को न रह्यो माई[७] स्याम रंग ह्वै करि[८] समान्यो स्याम रंग मैं ॥२३॥

[१] कोरे-कोरे—भा०, कोरे-कोरे—मो०। [२] पै कारेई बरन लिख्यो—सा०, लिखे ते चारु अक्षर सु—नी०, लिखे ते चारु अक्षरनि—गंजा०, आखर लिखे ते चारु कागदनि—गं०, कागद लिखे कारे आखर ज्यों—ब्र०। [३] न्यारे कौन बाँचै कौन—गं०। [४]होत—सा०, नाचै—नी०, जाँचै—गं० गंजा०। [५] आँखिन में—सा० नी० गं० गंजा०। [६] जम्बू नद—गं० गंजा। [७] आली—सा०। [८] ह्वै कैसो—नी० गं० गंजा०।

सो संजोग वियोग करि द्वै विधि[१] बरनत प्रेम।
सुखदायक संजोग में[२] दुःख वियोग को नेम ॥२४॥

[१] छै विधि—सा०, त्रिविधि सु—नी० गंजा०। [२] है—ब्र०।

तेरो कह्यो करि-करि जीव रह्यो जरि-जरि हारी पाँई परि-परि तौं न कीन्ही तैं सम्हार[१]।
ललन बिलोक देव पल न लगाए तवयां कल न दीन्ही तैं छलन उछलनहार।

ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई आपु[२] विधि बूड्यो व्याधि[३] वाधा सिन्धु निराधार।
ए रे मन मेरे तैं घनेरे दुःख दीने अब एक बार दै कै तोहि मूँदि मारौं एक बार ॥२५॥

[१] ०—भा० मो० नी०। [२] आय—भा०। [३] व्याध—भा० मो०।

कुल-लक्षण।

गुरुजन पूजन[१] धर्मपन लीने लोक विचार।
लाज काज गौरव जहाँ सोई[२] कुल आचार ॥२६॥

[१] पूजा—नी० गंजा। [२] सो कहि—सा०।

उदाहरण।

आपने ओक[१] रहे अवलोकि तिलोक की लीक[२] सदा निरजोसी।
लाज के काज सुकाज[३] करै सुनि साधु समाज असीस दै पोसी[४]।
कीन्ह प्रसन्न सबै करि सेवन काहू कहूँ गुर देव न[५] दोसी।
दो कुल निर्मल मो कुल कीरति गोकुल मो कुल नारि[६] न तोसी ॥२७॥

[१] ऊकि—भा०, ऊक—मो०। [२] विलोकिक एक—भा०, तिलोक की एक—मो०। [३] साज सुकाज—सा०। [४]दयोसी—भा०। [५] गुरु लोगन—नी० गं० गंजा०। [६] मैं नारि नारि—सा० नी०।

तेरे अनगिने गुन रतन जतन करि गुरुजन पावैं पैरि प्रेम पखियन मैं।
पार न लहत गहराई न गहत देव केवल सुधाई मधु जैसे मखियन मैं[१]।
एरी कुलवधू मेरी राधे ठकुराइनि हौं पाइनि परति तेरी चेरी सखियनि मैं।
सील की सलिलनिधि विधि तू[२] बनाई जाके राजति जहाज भरी लाज अँखियन मैं ॥२८॥

[१] मेसे भखियन—नी० गं० गंजा०। [२] बिधिनै—सा०।

वैभव-लक्षण।

जहाँ सहज सम्पत्ति सुखद[१] प्रभुता को अभिमान[२]।
थिरता गति गम्भीरता[३] वैभव ताहि बखान ॥२९॥

[१] संपती न सुख—नी०, दम्पती न सुख—गंजा०, दम्पति सुखद—गं०, संपत सुखनि—मो०, सम्पति सुपुनि—मो०, सम्पति सुपुनि—भा०। [२]अनुमान—नी० गं० गंजा०। [३] गजगम्भीरता—नी०, जग गम्भीरता—गंजा०।

उदाहरण—

फटिक सिलानि सौं सुधार्‌यो सुधा मंदिर उदधि दधि को सो अधिकाइ[१] उमगै अमन्द[२]।
बाहर तैं भीतर लौं भीति न दिखैये देव[३] दूध[४] को सो फेन फैल्यो आँगन[५] फरसबन्द।
तारा सा तरुनि तामें ठाढ़ी झिलमिली होति[६] मोतिन की जोति मिल्यो मल्लिका को मकरंद।
आरसी अम्बर में आभा सी उजारी लागे[७] प्यारी राधिका की प्रतिबिम्ब सी लगत चन्द ॥३०॥

[१] उफनाय—भा० मो०। [२] अनंद—गं०, अधिक ह्वै झलके अमंद—ब्र०। [३] दिखाई देत—भा० मो० ब्र०। [४] छीर—भा० मो०। [५] चाँदनी—भा० मो०। [६] देव जगमग होत—भा० मो०, ठाढ़ी झिलमिलाय—सा०। [७] देव—ब्र०, ठाढ़ी—भा० मो०।

रूपे के महल धूपे अगर उदार द्वार झँझरी झरोखा मूंदे चारू चिकराती मैं।
ऊध अध मूल तूल पटनि लपेटे चहुँ पटल सुगन्ध सेज सुखद सुहाती मैं।
सिसिर में सीत प्रिया प्रीतम सनेह दिन छिन से बिहात देव राती नियराती मैं।
केसरि कुरंग सार रंग से लिपत दोऊ दुहूमें दिपत औ छिपत जात छाती मैं ॥३१॥

नी० गंजा० प्रतियों में वैभव के उपरोक्त दो उदाहरणों के स्थान पर "पामरिन पाउड़े" तथा "उज्जवल अखंड खंड" छंद हैं। गं० सा० प्रति में "पामरिन पाउड़े", "फटिक सिलानी सों" एवं "उज्जल अखंड खंड" छन्द हैं। "रूपे के महल" छन्द इन प्रतियों में नहीं हैं।

भूषण-लक्षण—

चमतकार रचनानि करि बहु निधि माडैं[१] गात।
भूषन वेस विसेष कहुँ[२] अलंकार अवदात ॥३२॥

[१] मोहै—गं० गंजा०। [२] विसेष करि—सा०, विसेषहू—नी० गं० गंजा०।

उदाहरण।

कंचन किनारीवारी सारी तासकी मैं आसपास भूमी[१] मोतिन की झालरि इकहरी।
सीसफूल बेना[२] बेंदी बेसरि ओ बीरनि[३] मैं हीरनि की भीर मैं हँसनि[४] छवि छहरी।
चन्द के बदन भानु भई वृषभानजाई उवनि लुनाई[५] की लुवनि[६] की सी लहरी।
काम घाम घी ज्यों पथिलात घनस्याम मन क्यों सहै समीप देव दीपति[७] दुपहरी ॥३३॥

[१] तनी—भा०। [२] बेंदा—गं०, बेनी—सा०। [३] बारनि—सा०। [४] भीरत में हँसनि—सा० गं० गंजा०, भीर में अधिक—भा० मो०। [५] यौवन लुनाई—भा०। उवनि जुन्हाई—गं० गंजा०। [६] लुनाई—मो०। [७] देखै या—सा०। केवल नी० गंजा० प्रतियों में इस छंद के पश्चात् "कुंदन से अंग" छन्द अधिक है।

गोरे मुह गोल हरे हँसति कपोल बड़े लोचन बिलौल बोल[१] लोने लीन[२] लाज पर।
लोभा लागे लाल लखिबे को[३] कविदेव छबि[४] गोभा से उठत रूप सोभा के समाज पर।
बादले की सारी दरदावन[५] किनारी जगमगे जरतारी झीनी झालरि में साज पर।
मोती गुहे कोरन चमक चहुँ औरन ज्यों तोरन तरैयनि की तानी[६] द्विजराज पर ॥३४॥

[१] लोल—भा० मो०। [२] लोने निज—सा०। [३] सखि सोभा—सा०, लखि सोभा—प्रतियों में इस छन्द के नी० गं०। [४] ललचात लखिबे को देव—गंजा। [५] वर दामन—भा०। [६] ताकी—मो०।

अष्टांगवती।

सुन्दर जोबन रूप अनूप महा गुन ज्ञान की रासि मची तू।
सीलभरी कुल दोऊ[१] उजागर नागरि पूरन प्रेम पची तू।
भाग को भौन सुहाग सों भूषित भूमि को भूषन साँची सची तू।
आठहूँ अंग तरंगति रंग[२] सबै रुचि[३] संचि विरंचि रची तू ॥३५॥

[१] बीच—सा०, रूप—नी० गंजा०। [२] अंगनि रंग तरंग—गं० गंजा०। [३] सुचि भा० मो०।

थोरीये बैस बिसाल लसैं कच[१] टेढ़ी चितौंनी पै[२] सूधी चलै पथ।
गोरे से अंग[३] करर कुचवृत[४] लाज लची[५] गुन ऊँचे मनोरथ।
लंक दुर्‌यो[६] उमग्यो उर[७] देव सु बोल हरे[८] गरुई सी गिरा[९] लथ।
नैन बड़े बड़े नैसुक अंजन मोती बड़े बड़े नैसुक सी नथ॥ ३६॥

[१] करि—सा०, कुच—नी० गं० गंजा०। [२] चितौनी में—भा० मो०, चितौनि यो—सा०। [३] कोवरे से अंग—भा० मो०, कोरे से अंग—नी० गं० गंजा०। [४] कुलवृत—नी० गं० गंजा०। [५] तची—गं०। [६] लग्यो—भा० मो०। [७] कुच—सा०। [८] देव उठे कुच लंक दुरो लटि बोल हरे—नी० गं० गंजा०। [९] गरा—नी० गं० गंजा०।

एहि बिधि आठौ अंग करि[१] पूरन नारि जु होइ।
ताही बरनी नायिका जेहि बरनत कवि लोइ[२]॥३७॥

[१] कहि—नी०। [२] तिहि बरनै नायिका हौं जिहि बरनी कवि लोइ—भा० मो०, मो० प्रति में चरण का स्वीकृत पाठ हाशिये पर दूसरे हस्तलेख में है।

केसव आदिक महाकवि[१] बरनी सो बहु ग्रंथ।
हौंहू बरनत ताहि अब सरस अपूरब पंथ॥३८॥

[१] आदि महा कविन—नी० गं० गंजा० सा०।

एक बार जद्यपि कही मति प्राचीन प्रकास।
भाव सहित सिंगार रस रचिकै भावविलास॥३९॥
रसविलास रचि ग्रंथ सो कहत दूसरी बार।
वही नायिका भेद सब[१] सुनहु नवीन प्रकार॥४०॥

[१] अब—गं०।

जौ[१] तिय जोबन रूपवती कुल सील सुधा गुन गौरव रोही।
प्रेम भरी कुल कीरति मूरति भूषन भेष बिभौ उभरोही।
देव जिन्हें[२] अभिमान बड़ो सनमान[३] बड़ो ते सबै छवि छोही।
भोगी भुवाल के नैन सरोजन रोज निहारै मनो जक मोही॥४१॥

[१] सो—गं०। [२] जी है—सा०। [३] मन मान—गं०। उपर्युक्त छन्द केवल ब्र० गं० सा० प्रतियों में है, भा० मो० नी० गंजा० प्रतियों में नहीं।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलास कवि देवदत्त कृते अष्टाँग नायिका वर्णनम् नाम चतुर्थो विलासः।

नायिका-भेद।

आठ भेद करि नायिका[१] बरनत हैं कवि सन्त।
भेद भेद प्रति होत है अन्तरभेद अनन्त॥१॥

[१] नायकन के—नी० गं० गंजा०, नारीन के—सा०।

जाति कर्म गुन देस अरु काल वहिक्रम जान।
प्रकृत सत्व नायिका के आठौ भेद[१] बखान॥२॥

[१] अंग—ब्र०, वेद—भा० मो०।

जाति-भेद ।

पद्मिनि चित्रिनि संखिनी हस्तिनि कहौं बिचारि ।
जाति भेद यहि भाँति सो कही नायिका चारि ॥३॥

पद्मिनि-लक्षण ।

हंस मेष भाषा गमन[१] लघु भोजन मृदु हास ।
सती सत्य[२] सील सुचि पद्मिनि पद्म सुबास ॥४॥

[१] हंस भाष हंसै गमन—भा० । [२] सत्ति—नी०, सति—गंजा०, सती—गं० ।

उदाहरण ।

सरद के वारिद[१] मैं इन्दु सों लसत देव सुन्दर बदन चन्द्रिका[२] सो चारु चीर है ।
सोधो सुधाविन्दु मकरन्द सी मुकुतमाल लपटी[३] मनोज तरु मंजरी सरीर है ।
सीलभरी सलज सलोनी मन्द[४] मुसकानि राजै राजहंस गति गुननि गहीर है ।
घेरी चहुँ औरन तें मोरन की भीर भारी मोरन की भीर में चकोरन की भीर है ॥५॥

[१] पारद—मो० । [२] चाँदनी—नी० गं० गंजा० सा० । [३] लिपत—भा० मो० । [४] मृदु गं० गंजा० ।

चित्रिणी-लक्षण ।

मोर मेष भूषन वचन[१] गज गति[२] अति सुकुमारि ।
चंचल नयनी चितहरनि चतुर चित्रिनी नारि ॥६॥

[१] वसन—भा० । [२] राजत—सा० ।

उदाहरण ।

देखी न परत देव देखिबे की परी बानि देखि देखि दूनी[१] दिख साथ उपजति है ।
सरद उदित इन्दु बिन्दु सी लगत लखे[२] मुदिन मुखारविंद इंदिरा लजति है ।
अद्भुत ऊष सी पियूष सी मधुर बानी सुनि सुनि श्रवननि भूख सी भजति है ।
मन्त्री कर्‌यो[३] मैन परतन्त्री कर्‌यो[३] बैननि के बिना तार तन्त्री जीभ जन्त्री सी बजति है ॥७॥

[१] दूती—भा० मो० । [२] लसत लखे—भा० । [३] कह्यो—गंजा० ।

शंखिनी-लक्षण ।

दीरघ सिर कर चरन कटि लघु नितम्ब कुच नैन ।
सुलप छमा[१] सन्तोष मुद[२] संखिनि तीछन[३] बैन ॥८॥

[१] सुलघु छमा—नी० गं० गंजा० । [२] वद—सा० । [३] तिक्त न—भा० ।

उदाहरण ।

कोप भरी लघु गुच्छ फरी[१] उर बात चले[२] तरु डार सी डोलै ।
काम छरी सी लगे उछरी सी फिरै मछरी सी सुभाव विलोलै ।
भौंहें चढ़ी कुटिलै अखियाँ अति तीखे[३] कटाछनि चित्त न खोलै ।
प्यारे सों रुसि रहै बिन दोष बिना रिस रीस रिसाइ कै बोलै[४] ॥९॥

[१] इल गुच्छ फरी—नी० गं० गंजा०, लघु लुच्छ सरी—सा०, गुप्त परीं—भा० ।
[२] लगे—नी० गं० गंजा० । [३] तीख—मो०, तीखी—भा० । [४] रिसानी सी डोलै—भा० ।

हस्तिनि-लक्षण ।

थूल चरन कर[१] अधर कटि भारी कुच भुज जानु ।
ठिगनी बहु भोजन गमन हस्तिनि तिय पहचानु ॥१०॥

[१] कर चरन—मो०, सुकर पद—भा० । [२] भुज कुच—नी० गं० गंजा० ।

उदाहरण ।

गुलगुली गोल मखमल[१] कैसो गेंदुआ[२] गडै न गड़ी[३] जी में जऊ करत ढिठाई सी ।
चोर की सी गठरी छुटै न छतियाँ तें मुख लागत अँध्यारेहू न लागत सिठाई[४] सी ।
भूखे को सो[५] भोजन न भूलत सवाद नहीं नैकहू उबीठे[६] नये नेह की इठाई सी ।
सुरत सँयोग[७] को नहीं न करै निस दिन भोग को गुपत गुपचुप की मिठाई सी ॥११॥

[१] मखतूल—भा० । [२] गेंडुआ—नी० गं० गंजा० सा० । [३] गुड़ी—भा० मो० ब्र० ।
[४] मिठाई—भा० । [५] भूखेन को—नी०, भूखन को—गं० गंजा० । [६] उमेठे—भा०, तें घटे न—सा० । [७] समाज—सा० ।

कर्म-भेद ।

कर्म भेद करि नायिका तीन प्रकार बखानि ।
सुकिया परकीया कहौं सामान्या अरु[१] जानि ॥१२॥

[१] उर—नी० गं० गंजा० सा० ।

स्वकीया-लक्षण ।

कायिक वाचिक मानसिक पति रति[१] तीनौ कर्म ।
तासों कवि सुकिया कहैं लिये सकल कुल धर्म ॥१३॥

[१] रत—नी० गं० गंजा० ।

उदाहरण ।

सीलभरी बोलति सुसील बानी सबही सों[१] देव गुरुजननि की लाज सों लचि[२] रही ।
कोमल कपोल पर दीसी हरदी सी दुति चूनी[३] सी सकुच मुसकानि मैं मचि रही ।
लालन की लाली अखियाँनि मैं दिखाई देत अन्तर निरन्तर ही प्रेम सों पचि रही ।
कुँवरि[४] किसोरी मुख मोरी करै सखिन[५] सों चोरी चोरा[६] चित गति रोरी सों रचि रही ॥१४॥

[१] सही सों—नी०, सही सोहे—गं० गंजा० । [२] सचि—नी० गंजा० । [३] चून—नी० गं० गंजा० सा० । [४] कोवरी—सा० । [५] सखियन—भा० । [६] चोरा चोरी—भा० ।

परकीया-लक्षण ।

काइक वाचिक पतिहि रति मनसा उपपति[१] जुक्त ।
गुप्त तजै कुल धर्म को[२] सों परकीया उक्त ॥१५॥

[१] उपजत—भा०, उपजिति—मो० । [२] गुप्त प्रेम पर पुरुष को—भा० । [३] परकिया तासों कहैं कवि कोविद मति उक्त—सा० ।

उदाहरण ।

मारी विपतिन की पतिऊ संग[१] पौढ़ी गूढ़ कोरे मैं अँकोरी देव कामागि निसकती ।
मानेहूँ सुरति असुरत बिसुरत कहूँ भौंहनि[२] मरोरि मुरि उर तें खिसकती ।

मीत[३] की चितौनि चित बीच चुभि[४] खुभी रहै उभी रहै आँखिनु करेजनि[५] कसकती।
सुपने के मिसु करि रोइ उठे रिस करि मोही मनहीं मन मसूसनि सिसकती[६] ॥१६॥

[१] पति उछंग—भा०, पतिहू संग—ब्र०, पति जु संग—सा०। [२] मानेहू सुरति पै सुरत कहूँ लागी देव भौंहनि—भा०। [३] नीति—भा० मो०। [४] चीति चुभि—नी० गं० गंजा०, नित्त चढ़ि—सा०। [५] करेतिन—नी० गं० गंजा०। [६]मसकती—गं० गंजा०।

सामान्या-उदाहरण।

वाचकही सब सों रचै करै जगत मनुहारि।
तन मन धन चाहै सदा सो सामान्या नारि॥१७॥

उदाहरण।

हेरतही हरि लेत हियो बस बिस्व कियो रस की बतिया मैं।
जोबन रूप की ओप अनूप सुन्यो गुन एतो काहू न तिया मैं।
कन्त कियो धनवन्त निहारि कै[१] चूकत ना अपनी घतिया मैं।
हाथ[२] दई हँसि हौंस भरी मुँदरी कर देखि[३] धरी छतिया मैं॥१८॥

[१]विचारि कै—गं०। [२] हाय—भा०, हाथी—नी० गं० गंजा०। [३] देत—गं०।

गुण-भेद।

कहौ सत्त रज तम त्रिगुन उत्तम मध्यम अन्त।
तीनि भाँति गुन[१] भेद करि कहत नायिका सन्त॥१९॥

[१] गुर—नी०।

सत्व प्रकृति उत्तम कह्यो मध्यम रजस[१] सुभाइ।
अन्त तमोगुन प्रकृति तिय वरनत कवि समुदाइ[२]॥२०॥

[१] राज—ब्र०, रजत—सा०। [२] हैं कविराइ—नी० गं० गंजा० सा०।

तीनों की चेष्टा।

अहितहुँ सों[१] हित उत्तमा सम सों सम मधि[२] जानि।
अधमा हित हूँ सों अहित[३] तीनों तिय पहचानि॥२१॥

[१] अनहित सों—भा०। [२] मध्यम—गं० गंजा०, समाधि—नी०, सु मधिमा—सा०।
[३] नहित—भा०।

उत्तमा-उदाहरण।

धोखेहू कहै[१] जों कटु बोल तो कटाऊँ[२] जीभ छार, डारौं आँखिनि की आँसू झलकनि पै।
कौन कहै कैसी सौति सो तो ठकुराइनि लिखी है बृज बालनि के भाल फलकनि[३] पै।
ह्वै रही नजीकी हौं न जीकी दुचिताई रहौं[४] पी की प्रानप्यारी लहौं[५] नीकी ललकनि पै।
दूजो नहीं देव देव[६] पूजौं राधिका के पग[७] पलकन[८] लाऊँ धरि ध्याउ[९] पलकनि पै॥२२॥

[१] कहूँ—सा०, कहौं—भा०। [२] कढ़ाऊँ—ब्र०। [३] पलकनि—नी० गंजा० ब्र०।
[४] गहौ—गं० गंजा०। [५] रहौं—ब्र०। [६] ०—भा० मो०। [७] पग पर—भा० मो०।
[८] पलकत—भा० मो०। [९] ध्यान—भा० मो०, ल्याउ—गं० गंजा०। भा० मी० नी० गंजा० प्रतियों में उत्तमा नायिका के २३ तथा २४ संख्या के द्वितीय तथा तृतीय उदा-

हरण छन्द नहीं हैं। मो० प्रति में पार्श्व पर केवल "रावरे पायन" लिखा है, जो इस छन्द को भी पाठ में सम्मिलित करने का संकेत है। भा० मो० प्रतियों में आगे ५ : ३३ दोहा से पाठ मिलता है।

रावरे पायन ओट[१] लसै पग गूजरी वार महावर ढारे।
सारी असावरी की झलकै[२] छलकै छवि घावरे घूम घुमारे।
आहु जु आहु दुराहु न मोहू सों देव जु चंद दुरै न अँध्यारे।
देखौं हौं कौन सी छैल छिपाइ तिरीछ हँसै वह पीछे तिहारे ॥२३॥

[१] ओप—ब्र०। [२] सलकै—सा०।

केसरि सों उबटे सब अंग बड़े मुकुतान सों माँग सँवारी।
चारु सु चम्पक हार[१] हिये उर[२] ओछे उरोजन की छवि न्यारी।
हाथ सों हाथ गहे कवि देव सु साथ तिहारेई नाथ[३] निहारी।
हाहा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती[४] छोहरी छीवर वारी ॥२४॥

[१] चंद तिहार—सा०, चंद्रक हार—ब्र०। [२] अरु—गं०। [३] तिहारे हौं आज—गं०। [४] कौन ही—गं०। नी० गंजा० प्रतियों में २३-२४ संख्या के छन्द नहीं हैं।

मध्यमा-उदाहरण।

मैं समुझायो नहीं समुझै मन को अपनो अपमान न सूझै।
मोहन मान करै तो गरे[१] परि देव मनैबे को जाइ अरूझै[२]।
काको भयो यह सब सों बिगरै यह जाको[३] मरै सुतो बात न बूझै।
सौति हमारी सु प्यारे की प्यारी सु प्यारे को प्यार परोसी सों जूझै ॥२५॥

[१] करै—गं०। [२] जाइ असूझै—ब्र०, आप अरुझै—नी० गं० गंजा०। [३] याको—नी० गं० गंजा०।

कौन भयो दिन चारि नयो रंग वे नव[१] जोवन जोति समाते।
वै अब मेरी हितू हमें बूझै को होत पुराननि सों हित हाते।
देखिये देव नयेई नये नित भाग सुहाग नये मद माते।
नाह नये वे[२] नयी दुलही ये नये नये नेह नये नये नाते ॥२६॥

[१] चारिन प्यारिन औ नये—गं०, रितवै नव—सा०। [२] नाह न पैये—गं०। केवल गं० प्रति में चरणों का क्रम १–३–४–२ है। नी० गंजा० प्रतियों में यह छन्द नहीं है।

अधमा-उदाहरण।

प्यारी हमारी सौं आवौ इतै कहि देव कुप्यारी ह्वै कैसिक अैये[१]।
प्यारी कहौ मति[२] मोसों अहो, प्यारीयो प्यार की प्यारी बुलैये।
कै वह प्यार की एतो कुप्यार ओ न्यारी[३] ह्वै बैठी सु बात बतैये[४]।
प्यारे पराये सों कौन परेखो गरे परि कौ लगि प्यारी कहये ॥२७॥

[१] पैये—गंजा। [२] जनि—नी० गं० गंजा०। [३] अन्यारी—ब्र०। [४] बनैये—गं० गंजा०, चलैये—नी०।

देश-भेद।

सात दीप नव खंड में सुनियत देस अनंत।
बरनि बरनि थाके तिनहें[१] व्यासादिक मति मंत ॥२८॥

[१]सबै—नी० गं० गंजा०।

तिनमें जंतुद्वीद के सुने कछू जे देस।
बरनत तिनकी नायिका सुभ लक्षन सुभ वेष[१] ॥२९॥

[१] देश—नी० गं० गंजा०।

मध्य[१] मगध कौसल कहौ पाटलपुत्र कलिंग[२]।
कामरूप उत्कल कहौं[३] और बखानौ बंग ॥३०॥

[१] मद्धि—नी० गं० गंजा०। [२] पाटल बहुर कलीन—सा०। [३] उतकला बहुरि—सा०।

कहौ बिंध बन[१] मालवा और अभीर विराट।
कुंकुन केरल[२] द्रबिण अरु कहि तिलंग[३] करनाट ॥३१॥

[१] झारखंड अरु—ब्र० सा०। [२] केर—नी० गं० गंजा०। [३] कहो परम—नी०।

सिंधु देस गुर्जर बरनि मरु कुरु अरु करवीर[१]।
पर्वत अरु सौवीर कहि औ भुटंत[२] कसमीर ॥३२॥

[१] मारु कुर कुरवीरह—सा०। [२] भुटंत और—सा०।

गान्धारादिक देस कहि सुनियत देस अनन्त[१]।
नीरस नारि निहारियत[२] बरनत नाहिं न संत[३] ॥३३॥

[१] दिस दिस देस विदेस की नारी और अनन्त—भा०। [२] निहारितव—मो०, निहारि-तित—नी० गं० गंजा०, निहारि तेहि—सा०। [३] नाहिं न बरनत संत—गं०

मध्य देश-वधू।

कोविद कामकला सकलानि[१] कलानिधि सी गुन रूप निधानै।
गीत संगीत विनीत सदा सुभ कर्म पुनीत सबै सुख सानै।
देव अचार विचार रची सुचि साची सची रुचि को पहिचानै।
अन्तरवेद विचच्छन[२] नारि निरन्तर अन्तर की गति जानै ॥३४॥

[१] मकलानि—भा०। [२] विजच्छन—सा० नी०।

मगध-वधू।

प्रेम मद[१] मगन उछाह उमगन भरी मग न धरति पग घूमति सी घनीये।
खोले उर बाँहैं रति पैरति अथाहै उपभोग सिंधु गाहै[२] परिरंभ सुख सनीये।
सुन्दर[३] सरस रस बस कीनी प्यारो पिय न्यारो हिय तें न होत[४] देव बिधि बनीये।
रहसि सिरावे काम पावक दगध पीर मगध की मानिनी अगाध गुन गनीये ॥३५॥

[१] मन—गं०। [२] माहे—भा०। [३] सुन्दरी—सा०। [४] न्यारो न रहत ही तें—नी० गं० गंजा०।

कौशल-वधू।

सील[१] रुचि रुचि संचि रुचिर बिरंचि रची रंचक सी सची रूप बंचित सी दामिनी।

बिमल बिचित्र विधि चित्र की सी लिखी चारु रचना चरित्र सो विचित्र गति[२] गामिनी।
भोग उपभोग अंग संग सुख जोग जामें प्रेम सों प्रसन्न लाज संतत[३] बिरामिनी।
देव पति देवता दिपति दुति देवता सी काशी देश कौशल[४] कुशल कुल कामिनी ।।३६।।

[१] सीत—नी० गंजा०। [२] पवित्र गति—सा०, विचित्र मत्त—नी० गं० गंजा०। [३] सजत—नी० गं० गंजा०, सनत—भा० मो०। [४] काशी देस कौसल कुटिल—नी० गं० गंजा०, देखी जग में कुशल एक कौशल—भा०।

पाटल-वधू।

चंचल दृगंचल चपल चितवति चोरि चितवति चाइ[१] चढ़ी चारुता प्रगट ही।
हौंस भरी हँसति लसति हुलसति हिये बिलसति[२] टालम सों[३] नेह के निकट ही।
देव हरखत बरखत मानो मेन रस[४] सरस बचन रचना[५] सों रचि रटही।
मोह की अँध्यारी में उज्यारी ह्वै रमति रति प्यारी पटना की पट लंपट निपटही ।।३७।।

[१] चाप—नी० गं० गंजा०। [२] बिलसति हिये हुलसति—गं० सा०। [३] बाल मनो—भा० मो०,बास मनो—नी० गं० गंजा०। [४] सर—नी० गं० गंजा० सा०। [५] रसना—भा०मो० नी०गं० गंजा०।

उत्कल-वधू।

बिरज बिराजै रज रंजित कियो है पति[१] गुँज अलि पुँजन[२] ले कीनी कुंजगली सी
मूँदे मुख बाहिर बिनत[३] बिन बात डोले अन्तर निरन्तर उनीदी[४] भाँति भली सी।
रहत अवासही सुवास सो बसायो बन देव अनुकूली मन फूली तन फूली सी।
खेलति सहेलिन नवल बाल बेलिन[५] मैं देखी उतकली नारि अद्भुत कली ली ।।३०।।

[१] पोति—भा०मो०नी० गं० गंजा०। [२] कुंजन—मो०। [३] विजन—सा०। [४]उदीनी—मो० गं० गंजा०, उनोदी—भा०। [५] चेलिन—भा०। [६] अंबुज की कली सी—भा०, देखी जाति चली कोई अद्भुत कली सी— सा०।

कलिंग-वधू।

मदन के मद मतवारीन बदन[१] झाँके सदन थिराति न सिराति रति रंग ना।
प्रीतम के रूप को सुधा[२] सों अँचवति तऊँ[३] प्यासिये रहति जो लहति सुख संग ना।
प्रेम रस बस[४] प्यावै प्यार सों अधर रस लागत नखच्छत करति भुव[५] भंग ना।
अंग अंग उमगि अनंग अपजावति अलिंगन उघात न कलिंग की कुलंगना ।।३९।।

[१] वहून—नी० गं० गंजा०, गं० प्रति में "हून" पर दूसरे हस्तलेख में "झूमे" पाठ है, वदून—मो०, वझूमि—भा०। [२] मया—नी० गं० गंजा० भा० मो०। [३] तन—नी० गं० गंजा०भा० मो०। [४] भावै—सा०। [५] करे विभूष—नी० गं० गंजा० मो०, ऊचिर भूष—भा०।

कामरु-वधू।

तीनिहूँ लोक नचावति ओक मैं[१] मंत्र के सूत[२] अभूत गती है।
आपु महा गुनवन्त गुसाइनि पाइनि पूजत प्रानपती है।
पैनी चितौनि चलावति चेटक को न कियो[६] बस जोगी जती है।

कामरु कामिनि काम कला जगमोहिनि भामिनि भानमती है ।।४०।।

ऊक[१] में—नी० गंजा० मो०,गं० फूक में—भा० । [२] दूत—सा० । [३] भयो—सा० ।

बंग-वधू ।

कंचन मंडित रूप भरी पहिरे पट लाल प्रकास बिसालनि[१] ।
सुंदर स्याम लची[२] अभिराम धरे सिर दाम गरे मृदु मालनि ।
संग रमे कर मैं न[३] छुटै कटि सों लपटी प्रिय प्रानन पालनि[४] ।
देव रहै हियरे लगि के करवाल किधौ बर बाल बंगालनि ।।४१।।

[१] बिलासनि—नी० गंजा० भा० मो० । [२] रची—ब्र० मो० । [३] संग रमै न—नी० गं० गंजा० भा० मो० । [४] प्रिय प्रान को पालिनि—सा०, लपटी रहै प्रान प्रिया तन पालनि—नी० गं० गंजा०, लपटी जु रहै प्रिय प्राननि पालिनि—"जु रहै" हाशिये पर दूसरे हस्तलेख में—मो०, लपटी प्रिय प्रानन आनन पालिनि—भा० ।

विंध-वधू ।

ढूँढ़ति फिरति रतिकन्त को इकन्त गृह पति की सुरति गति मति भूली मन की ।
डोलति अकेली अकुलानी त्रिय[१] केलि रस केली सी नबेली तलबेली[२] अति तन की ।
डोंड़ी की बजाइ छोंड़ी लाज उपजाइ नेह गोंड़ी नारि ठोड़ी कै डरै न प्रेमपन की ।
झिलमिली झाँई सी दिखाई पति झार में महौषधि की बूटी सी वधूटी विंधबन[३] की ।।४२।।

[१] बिन—सा० । [२] तनबेली—सा०, अलबेली—ब्र० । [३] बृन्दावन । गं० गंजा०, सिंधवन—सा० ।

मालव-वधू ।

बोलनि चालि[१] बिलोकनि सों दिनही दिन दूगुन नेह[२] बढ़ावै ।
अंगही अंग अंनग[३] तरंगनि आदर सों उठि ओठनि प्यावै ।
मालवदेस की बाल मनोहर बालम के[४] चित की गति पावै ।
जोग सबै उपभोग भले करि भाँतिनि भोग[५] करावै ।।४३।।

[१] बेलनि चालि—भा० मो०, बाल—गं० गंजा० । [२] ईगुन नेह—नी० गं० गंजा०, दूनी सनेह—ब्र०, दूगने नव नेह—सा० । [३] तरंग—नी० गं० गंजा० । [४] मानुष की—सा० । [५] भाँति सु भोग—भा० ।

आभीर-वधू ।

विधि की सी आसिख असेष[१] भेष भूषन विसेष नख सिख[२] रची रेख सी सुहावती ।
कर पद पदम पदमनैनी पदमनी[३] पदम सदम सोभा संपद सी[३] आवती ।
रंभोरु अदंभ रंभा को सो परिरंभन दै[५] गंभीर मनोज ओज आरंभि सिराउती ।
अंगन अभूत गति आभा अभिरामन को अभिराम आभरन आभीरिनी भावती ।।४४।।

[१] अखेष—ब्र० । [२] सिख नख—भा० मो० । [३] पदिमनी की पदम सी—भा० [४] पद सी—ब्र०, संपति सी—सा०, सबद सी—गं० गंजा०, सुखद सी—नी०, सेखद सी। —मो०, सबै देखन में—भा० । [५] रमा रूप अधर भरमा को सो—मो०, रमैंरूप अध भर मार को सो—गं० । [६] आगिन सिरावती—भा० ।

विराट वधू ।

अरुन बसन सदा सोहत तरुन तन कोमल कर चरन[१] मार सर मार की ।
पिय के जियत जिय[२] प्यारी पिय जिय वसै प्रेम रस बस छाकी ताकी रति भार की ।
तीखे नख घातन[३] अघात न अधरपान मानति सुरति रुचि सुरतरु डार की ।
बारन गमन बड़े बारन की वर तनु चंपक वरन वर बनिता बरार की ।।४५।।

[१] करन चारु—भा०, करभ मन—सा० । [२] जियनि जीभ—भा०, जियति पिय—नी० गं० गंजा०, जिय जीवनी—सा०, जियनि जिय—ब्र० । [३] तीखे नखिया तुन—भा० मो० ।

कोंकण-वधू ।

गोरी[१] गजरात गति गुननि गहीर मति भारे भाग ही[२] रमति सुरति सकोचनी ।
आलिगन चुम्बन अधर पान नखदान मान सों बचन रचना सों रुचि[३] रोचनी ।
जानै रीति जी की पहिचाने प्रीति नीकी सुखदानी सबही की प्यारी पी की दुखमोचनी ।
केसरि करे न सरि को कनक जाकी दरि कोंकनदरी की नारि लोचनी ।।४६।।

[१] गौरी—भा० मो० । [२] रंग ही—गं० । [३] रसना सों रस—ब्र० ।

केरल-वधू ।

चम्पा के[१] बरन तन चन्दन बसायो बन चन्द से बसन बसे चन्दन के बारि है ।
खग मृग मीन जल थल के अधीन होत गुंजरत भौंर पुंज कुंजनि[२] बिसारि है ।
कौन करे सेव कहि देव ताहि देखत ही मोहि मन देवता करति मनुहारि है ।
जोवन की जोतिन सों मोतिन केरली हार केरली कुरंगनैनी नारि सुकुमारि है ।।४७।।

[१] चंपक—सा० । [२] कंजन—सा० ।

नोट : भा० प्रति में अन्तिम चरण त्रुटित है ।

द्राविड़-वधू ।

देवता दरस पति देवता[१] सरस देव एहि विधि और नहीं[२] देव नर[३] नागरी ।
सहज सुभाई सुभ सुचि रुचि सीलमति[४] कोमल विमल मन[५] सोभा सुखसागरी ।
चाहै सनमान को सराहै सदा प्रीतमहि प्रीति को निबाहै रति रीति अति आगरी[६] ।
देवी देस द्राविड़ की सुन्दरी निविड़ नेह गुननि अनूप रूप ओपन उजागरी ।।४८।।

[१] दरसियतु देवता—भा० मो० । [२] नहीं और—ब्र० । [३] नग—गं०, नरी—भा० मो० । [४] संत सुचि रुचि सील वंत—सा० गं०, सुति संचि रुचि सील-मति—मो०, सुचि संचि रुचि सौल मति—भा० । [५] मनो—सा० । [६] चरण त्रुटित—मो०, सुन्दर सुबास बास कोमल कलानिधान जानत तहाँ न ताहि चाहि चित आगरी—भा०, गं० प्रति में छंद के पार्श्व में बिना संकेत दिये दूसरे हस्तलेख में "सुन्दर सुबास······चित आगरी । द्वितीय पाठ"

तिलंग-वधू ।

साँवरी सुघर नारि महा सुकुमारि सोहै मोहै मन मुनिन को[१] मदन तरंगिनी ।
अनगूने गुननि के गरब गहीर मति निपुन संगीत गीत[२] सरस प्रसंगिनी ।

परम प्रबीन बीन मधुर बजावै गावै नेह उपजावै यौं[४] रिझावै पति संगिनी।
चतुर सुभाय भाय[३] भौंहनि दिखाय देव विगनि अलिगन बतावति[४] तिलंगिनी ।।४६।।

[१] मोहन को—भा० । [२] गति अति ही निपुन प्रीति—सा० ।[३] बंक—भा०, चारु सुकुमार भाई—गं० । [४] जो—सा०, "त्यों" दूसरे हस्तलेख में संशोधन "यों"—गं० । [५] वनावति—भा० मो० ।

करनाट-वधू

सोंधे भरी सूधी सी सुधानिधि सुधारि बिधि सहज सुबासनि की रासि[१] लहियत है।
जगमगे बसन सुरंग रँगमगे अंग मदन तरंगनि के रंग चहियत है।
बोलनि बिलोकनि चलनि चतुराई चारुताई सुघराइन की[२] रीझि रहियत है।
प्रेम परिपाटी रूप जोबन की पाटी पढ़ी[३] देव दुति साटी करनाटी कहियत है ।।५०।।

[१] रास—गं० । [२] सुघराई नीकी—भा० । [३] साटी जाटी—मो०, पाटी पटी—ब्र०, पाटी मढ़ी—सा० ।

सिंधु-वधू ।

बसुधा को सोधि के सुधारि बसुधारनि सों सब रसु धारनि सुधारन सुबेस[१] की।
धरम की धरनी[२] धरा की धाम धरनी की धरनी सी धारनी सी धन्यता धनेस की।
सिद्धन की सिद्धि सी असिद्धि सी असिद्धन की साधुता की साधक सुधाई साधु[३] वेस की।
सुधानिधि वदनी[४] सुधाइनी[५] की सुद्धि[६] विधि सिंधुरगमनि गुनसिंधु सिंधु देश की ।।५१।।

[१] सुरेस—गं० सा० । [२] धोरनी—गं० सा० । करनी—ब्र० । [३] सुधा—भा० मो० । [४] वदानी—मो०, दानी—भा० । [५] सुधानिधि—भा० । [६] सुसुद्ध—भा०, सोधि—सा० । यह छन्द मो० प्रति में पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख में हैं, भा० प्रति में छन्द त्रुटित है ।

गुजरात-वधू ।

छित की सी छोनी रूपरासि सी इकोनी गढ़ि गाढ़ी विधि सोनी[१] गोरी कुन्दन से गात की।
देव दुति दूनी दूनी[२] दिन-दिन होनी और[३] ऐसी अनहोनी कहूँ कोई दीप सात की।
रति लागै बौनी जाकी रंभा रुचि पौनी[४] लोचननि लोलचनी मुख जोति अवदात की।
इंदिरा अगौनी इंदु इंदीवर औनी[५] महासुन्दर सलौनी गजगौनी वजरात की ।।५२।।

[१] विधि चाय सों रचौनी—भा०, गुटकाय विधि सोनी—मो० । [२] दूनी दिन—भा० मो० । [३] और होनी—भा० मो० । [४] रुचि बौनी—भा० मो० । [५] बोनी—गं० ।

मारवाड़-वधू ।

चित्र की सी लिखी चारु चित्रिनी बिचित्र गति रुचिर चरित्रन की[१] रचना विचार की।
रंचको बची न रुचि रचित[२] विरंचि बंच्यो संचित सुचित सुचि सोधा सुखसार की।
रूप की सी मुद्रिका समुद्र गुन सील को सो आदर उदारताई देवतरु डार की।
काम की नसैनी कमला-सी सुखदैनी पियप्यारी पिकबैनी मृगनैनी मारवार की ।।५३।।

[१] रची है विरंचि निज—भा०, रुचि रचि रंचि निज—मो० । [२] रचि—मो०, रचिनि—भा० ।

कुरु-देश ।

नखसिख नेह भरी मदन तरंगनि सों अंग अंग देव रंग रंग रीझि रहिये ।
सांचै भरि काढ़ी मानो नाचैं दृग खंजन सु देखैं बिरहागिनि की आचैं पै न[१] सहिये ।
सोहैं महासुन्दरी विमोहैं मन मुनिन के को है ऐसी दूसरी[२] सलोनी नारि लहिये ।
गोरी-सी किसोरी चितवनि चित चोरी[३] करै कोरी[४] कुरु देश की कुरंगनैनी कहिये ।।५४।।

[१] नहिं—भा० मो० । [२] सुन्दरि—ब्र० । [३]बीच चोरी—भा० मो० । [४] भोरी—भा० ।

करवीर-वधू

नासिका कीर[१] लकीर सी भौंहनि तीर से छाँड़ति[२] है पिकवैनी ।
भौंर अभीरनि भीतर भीतर भीर सुभाव उभी रस दैनी[३] ।
धीरज देव अधीरज होत चितौनि चितौति अधीरज पैनी ।
पीर हरै करवीर की कामिनि छीरज से मुख नीरजनैनी ।।५५।।

[१] कोर—सा० । [२] तीर सी ताकनि—भा० । [३] भीतर भीर सुभाइ भरी सु उभय सर दैनी—भा० ।

पर्वत-वधू ।

पंकज से नैन[१] बैन मधुर मयंक जैसे[२] अधरनि धरी धार[३] सुधा सरबत की ।
देव कोई वाके जोग भोगवे[४] अखण्ड सुख भौंहनि प्रकासी जोति कासी करवत की ।
सील के सुभाइनि सो महा सुखदायनि सो कहूँ काहू कबहूँ करत गरबत की ।
इंदिरा सरुप इन्दुबदनी अनूप रूप जोबन उज्यारी पियप्यारी परबत की ।।५६।।

[१] सैन—मो० । [२] मधुर पियूष जैसे—भा० मो०, मधुर रस, पंकज से—सा० । [३] धरा-धर—भा० मो० ब्र० । [४] भोग मैं—सा० ।

भुटन्त-वधू

चेटक सी चाल चटकीलो रंग अंगनि को[१] चोट सी चलावै डीठि पोही प्रेम तंत की[२] ।
चुम्बन की हौंसै उपजावति हँसत मुख[३] सारो सी पढ़ति बैन दारो दुति दन्त की ।
सोहै देव देवतन मोहै मुनिहू को मन कन्त को अखंड धन[४] मोही रतिकन्त की ।
घन बन झारनि मैं सघन पहारनि मैं दामिनि सी देखियत कामिनि भुटन्त की ।।५७।।

[१] मैं—गं० सा० । [२] गति है मतंग की—भा० [३] मयंक मुखी—भा०, हँसत मुखी—मो० । [४] अंतर धन—गं० सा० ।

काश्मीर-वधू ।

जोबन के रंग भरे[१] ईगुर से अंगनि पै एड़िन लौ आगी[२] छाजै छबिन की भीर[३] की ।
उचके उचोहैं कुच झके[४] झलकति झीनी झिलमिली ओढ़नी किनारीदार चीर की ।
गुलगुले गोरे गोल[५] कोमल कपोल सुधा बिंदु[६] बोल इन्दुमुखी नासिका ज्यों कीर की ।
देव दुति लहरात छूटे छहरात केस बोरी जैसे[७] केसरि किसोरी कासमीर की ।।५८।।

[१] भरी—गं० सा० । [२] छवि—भा०, अंग—सा० । [३] केसन के भीर—भा० मो० । [४] झपे—गं०, भौर—भा० । [५] गोरे गोरे—भा० । [६] सुधाबिम्ब—भा० मो० । [७] कोरी जैसी—भा० मो० ।

सौवीर-बधू ।

अंभोनिधि कीसी सुता सौति[1] अंभोजन पर दंभोलि[2] अदंभोदित दुति है सरीर की।
आरंभित जोबन निदंभ[3] करै रंभा रुचि रंभोरु सुगंभीर गुराई गुन भीर की।
चन्द से बदन मन्द हाँसी की अमंद छबि[4] स्वाँस[5] मकरन्द बास चन्दन से चीर की।
काम हय मन्दरा सी[6] देव काम कन्दरा सी इन्दिरा को मन्दिर सु सुन्दरी सुबीर की ॥५९॥

[1] अम्भोनिधि की सुता सी सोहति—ब्र०, अंभोविधि कासुता सो—भा० मो० । [2] दंभो भोजन—भा०, दंभोजन—मो० । [3] निरंभ—गं० सा० । [4] अमच्छ विस्व—भा० । [5] स्याम—भा० मो० । [6] काम हय सुन्दरा सी—भा० मो० ।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कवि देव कृते जाति गुण देश भेदादि नायिका वर्णनं नाम पंचमो विलासः ।

काल-भेद ।

आठ अवस्था भेद करि होत आठ विधि काल।
बरनी ता संयोग तें आठ भाँति की बाल ॥ १ ॥
प्रथम कहो स्वाधीनपति कलहन्तरिता होइ।
अभिसारिका बखानिये विप्रलब्धिका सोइ ॥ २ ॥
खंडितारु उत्कण्ठिता बासकसज्जा बाम ।
प्रोषितपतिका नाइका आठौ बिधि अभिराम ॥ ३ ॥

स्वाधीनपतिका-लक्षण ।

मनसा बाचा कर्मना जाके पति आधीन।
सो कामिनि स्वाधीनपति पति बस करत प्रवीन ॥ ४ ॥

उदाहरण ।

जासों हँसि एक बार एक बात कहिबे को हौंसन मरति कहौ को न बृजबाल है।
सूधेई सुभाइनि सुदास करि राख्यौ हरि होत न उदास क्योंहू एतो भाग भाल है।
देव अब आस पूजी तू जी मैं अदूजी बसी[1] दूजी तिय भूलेहू न[2] देखत गुपाल है।
पाँइ परि राखी अँखियानि भरि राखी हियरा में धरि राखी करि राखी कंठ माल है ॥५॥

[1] देव अब आस पूजी तुव अब जी की मेरी भटू—सा०, अदूजी रही—गं० । [2] बोलेहून—मो० ।

रूप चुवै चँपि कंचन नूपुर, कौंल से पायन नौल वधू के।
अंगन रंग मनौ निचुरै पिय संग धरे मग में पग दू के[1]।
इंदु से आनन में श्रमबिंदुनि देव गुबिंद गहे मुख फूके[2]।
सो लखि सौतिन की अँखियानि में लागि उठी मनौ आगि की लूके[3] ॥ ६ ॥

[1] पग ढूके—सा० । [2] सुखावत फूके—गं० । [3] भूके—ब्र० । भा० मो० प्रतियों में उपर्युक्त छन्द त्रुटित है।

कलहंतरिता-लक्षण ।

प्रेम अजीरन कोप जुर लंघन पिय संजोग।
कलहन्तरिता है दुखी सहै न[1] बिथा बियोग ॥ ७ ॥

[१] सहनै—भा० ।

उदाहरण ।

सखी के सँकोच[१] गुरु सोंच मृगलोचनी रिसानी पिय सों जू उन नैक हँसि छुयो[२] गात ।
देव वे सुभाइ[३] मुसकाइ[४] उठि गये इह सिसकि सिसकि निसि खोई रोइ पायो प्रात[५] ।
को जानै री बीर बिनु[६] बिरही बिरह बिथा हाइ हाइ करि पछताइ[७] न कछू सुहात ।
बड़े बड़े नैननि तैं आँसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आज[८] ओरो सो बिलानो जात ।।८।।

[१] सखिन के सोच—भा० मो० । [२] छियो—भा० मो० । [३] सहज सुभाइ—भा० । [४] सुसकाइ—सा० । [५] खोयो पायो परभात—भा०, सु रोइ रोइ पायो प्रात—सा० । [६] कौन जानै बीर बिनु—भा० मो०, जानै को बीर बिनु—सा० । [७] इहाँ इक रीति पछताय—सा० । [८] देव गोरो मुख भोरो भोरो—भा० ।

अभिसारिका-लक्षण ।

आपुहि तैं जो उठि[१] चलै तिय पिय के संकेत ।
निसि दिन तिमिर प्रकाश कछु गनै न संगम हेत ।। ९ ।।

[१] उठि जो—भा० मो० ।

उदाहरण ।

सूझत न गात बीति आई[१] अधरात अरु[२] सोए सब गुरुजन जानि कै बगर के ।
छिपि कै छबीली अभिसार को किवार खोलै खुलिगे सुगन्ध चहुँ चन्दन अगर के ।
देव कहै भौंर गुंजि आए कुंज कुंजन तें[३] पूछि पूछि पोछे परे पाहरू डगर के ।
देवता कि दामिनी मसाल किधौं[४] जोति ज्वाल[५] झिगरे मचत जागे सिगरे नगर के ।।१०।।

[१] आयो—भा० मो० । [२] लखि—भा० मो० । [३] देव भ्रमि भौंर गुंजि आए कुंज कुंजन तैं—गं०, देव कहै भौंर दौरि अई गुंजि कुंजन तैं—सा० । [४] है कि—भा० मो० । [५] जोति जाल—भा० ।

विप्रलब्धा-लक्षण ।

आपुहि तैं संकेत बदि बोलि पठावै धाम ।
मिलहि न जेहि रतिसदन पति विप्रलब्ध सो बाम ।। ११ ।।

उदाहरण ।

गरे पटु डारि[१] करै केती मनुहारि दूतिकानि पग पारि[२] प्रति पूरन पकि रही ।
नौनी नव नारि नयो नेह निरधारि लाज काजहि[३] बिसारि रूप छबि सों छकि रही ।
मिले न मुरारि आपुहि तें अभिसारि भेष भूषन सँभारि सूने कुंज मैं[४] जकि रही ।
मोचि दृग वारि सोचि सोचति बिचारि देव चितै चहूँ पारि घरी चारि लौं चकि रही ।।१२।।

[१] रारि—भा० । [२] परी—सा० । [३] नव धारि लाज कीजहू—भा० मो० । [४] कुंजन मैं—भा० ।

खंडिता-लक्षण ।

बास करै निसि जाइ कहुँ[१] प्रात मिलै पति आइ ।
नारि खंडिता सौति के चिह्न लखे बिलखाइ ।। १३ ।।

[१] और कहुँ—ब्र०, खैरनि गमाय कहुँ—सा०, करैनि गमाय कहुँ—मो०।

उदाहरण।

आजु गोपाल जू बाल वधू सँग नूतन नूतनि कुंज बसे निसि।
जागर होत उजागर नैनन पाग पै पीरी[१] पराग रही पिसि।
चोज के चन्दन खोज खुले जहाँ ओछे उरोज रहे उर में घिसि।
बोलत बात लजात से जात सु आये इतौत चितौत चहूँ दिसि॥ १४॥

[१]पाग के पेच—ब्र०। भा० मो० प्रतियों में यह छन्द त्रुटित है तथा ब्र० प्रति में अगले छन्द के पश्चात् है।

गात तैं गिरत[१] फूल पलटे दुकूल कहूँ भाग[२] जागे आली आज काहू बड़भाग के[३]।
अंजन अधर उर बीच नखरेख लाल जावक तिलक भाल लाग्यो दुति दाग के[४]।
भौंहैं अलसोहैं पग पीक[५] पगे पीक रंग राति जगे राते नैन भीजे अनुराग के[६]।
लालन लजात से जम्हात बिहँसात प्रात आए अलसात आली[७] देत पेंच पाग के॥१५॥

[१] झरत—भा० मो० ब्र०। [२] अनुरागे उत—भा० मो०। [३] भाग इत बड़भाग के—भा० मो०। [४] मधि माँग—भा० मो०। [५] कलसोहैं पलसोहैं—भा० मो०। [६] रति मैन सदन सुहाग के—भा० मो०। [७] आए आली मेरे गृह—भा० मो०, आली उठि आए देखि—गं० सा०।

उत्कण्ठिता-लक्षण।

पति आवन की रति सदन जाके होत अवार।
सो उत्कंठित जो करै बहु विधि सोच विचार॥१६॥

उदाहरण।

खरी दुपहरी हरी भरी फरी[१] कुंज मंजु गुंज अलि पुंजन की देव हियो हरि जाति।
सीरे नद नीर तरु तीरनि गहीर छाँह सोवै परे पथिक पुकारै पिकी[२] करि जाति।
ऐसे मैं[३] किसोरी भोरी को री कुमिलानो मुख पंकज से पाँय धरा धीरज सों धरि जाति।
सोहैं घाम स्याम मग[४] हेरति हथेरी ओट ऊँचे धाम वाम चढ़ि आवति उतरि जाति॥१७॥

[१] करी—गं० सा०, गं० में ऊपर से संशोधन है 'फरी'। [२] विक—गं०। [३] ऐसे यों—गं०। [४] घनस्याम मग—सा०।

वासकसज्जा-लक्षण।

पति आवन को रति सदन जाके निहचै होइ।
सेज वेष भूषन रचै[१] बासकसज्जा सोइ॥१८॥

[१] सजै—सा०।

उदाहरण।

सुख सेजहिं साजि सिंगार सजे गुहि बार सुगन्ध सबै[१] बसि कै।
चुनि चूनरी लाल खरी पहिरी कवि देव सुवेस रह्यो लसि कै[२]।

पिय भेंटिबे को उमगी[३] छतियाँ सु छिपावति हेरि हियो[४] हँसि कै।
अँगिया की तनी खुलि जाति घनी सुबनी फिरि बाँधति है कसि कै ॥१६॥

[१] कच गूदि सुबासन सों—गं०। [२] पहिरी गहिरी रँग चूनरी लाल सु बाल को बेस रह्यो लसिकै—गं०। [३] उमही—भा०। [४] नौल तिया—गं०।

प्रोषितपतिका-लक्षण।

पति विदेश क्योंहूँ गयो आगम ओधि दिठाय[१]।
प्रोषितपतिका रैनि दिन बिरह दसा अकुलाय[२] ॥२०॥

[१] देवाय—गं०। [२] बिलखाय—गं० सा०।

उदाहरण।

बालम बिरह जिनि जान्यो न जनम भरि बरि बरि उठै ज्यों ज्यों बरसै बरफराति।
बीजन डुलावति सखीजन त्यों[१] सीतहू में सौति के सराप तन तापनि तरफराति।
देव कहैं स्वाँसनही अँसुवा सुखात मुख निकसै न बात ऐसी सिसकी सरफराति।
लौटि लौटि परत करौंट खट पाटी लै लै सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै[२] फरफराति ॥२१॥

[१] सखी ज्यों त्यों नित—ब्र०। [२] परी—सा०।

प्रवत्सत्पतिका-लक्षण।

नारि प्रवत्सतभर्तिका[१] नवमी कहत[२] बखानि।
काल भेद नौ बिधि कहत एक देस मत मानि[३] ॥२२॥

[१] प्रवेस्यति भर्तिका—ब्र०। [२] करत—भा० सा०। [३] काल भेद में होत यह समुझौ सुकवि सुजान—ब्र०।

उदाहरण।

कल न परत कहूँ ललन चलन कह्यो बिरह दवा सों देह दहकै दहकि दहकि।
लागि रही हिलकी हलक सूखि हालै हियो देव कहै गरो भर्यो आवत गहकि गहकि।
दीरघ उसास लै लै ससिमुखी सिसकति सुलप[२] सलोनो लंक लहकै लहकि लहकि।
मानत न बरज्यो सुबारिज से नैननि तें बारि को प्रवाह बह्यो आवत बहकि बहकि ॥२३॥

[१] आवत ढहक ढहक—सा०, आवत बहक बहक—गं०। [२] सुलफ—भा० मो०।

आगतपतिका-लक्षण।

कही प्रवत्सतभर्तिका ज्योंही नवमी नारि।
आगतपतिका त्यों सुनो दसमी कहत बिचारि ॥२४॥

उदाहरण।

आवन सुन्यो है मनभावन को भामिनि त्यों नैनन अनन्द[१] आँसू ढरकि ढरकि उठैं।
देव दृग दोऊ दौरि जात द्वार[२] देहरी लौं केहरी सी साँसैं खरी खरकि खरकि उठैं[३]।
टहलै करति टहलै न हाथ पाइ रंगमहलै निहारि[४] तनी तरकि तरकि उठैं।
सरकि सरकि साँसें दरकि आँगी औचक उचौहैं कुच फरकि फरकि उठैं[५] ॥२५॥

[१] आँखिन अनन्द—सा०। [२] पौर—सा०। [३] रोम सोममुखी के सु मरकि मरकि उठैं—गं०। [४] बिलोकि—भा० मो० ब्र०। [५] औचक उचोहे कुच फरकि फरकि आली दरकि

दरकि आँगी सारी सरकि सरकि उठैं—सा०।

बहिक्रम-भेद।

बाल बहिक्रम भेद करि तीन भाँति की होइ।
मुग्धा मध्या प्रगलभा[१] बरनत हैं कवि लोइ[२] ॥ २६ ॥

[१] मध्य प्रगल्भ कहि—सा०। [२] सब कोइ—भा० मो०, मुग्धा तिय की अंग दुति दिन दिन दूनी होइ—ब्र०।

मुग्धा-लक्षण।

लरिकापन भरपूरि कै उमगै[१] जोबन जोति।
मुग्धा तिय की अंग दुति दिन दिन दूनी होति ॥ २७ ॥

[१] उलहै—गं० सा०। ब्र० प्रति में यह दोहा त्रुटित है।

उदाहरण।

जानि पर्‌यो जोबन जनायो है मनोज जुर[१] जगमगी जोति अंग बाढ़ति नितै नितै।
हरे[२] हँसि हेरि हरि लियो हरि जू को हियो हेरति हरिन नैनी हितू सों हितै हितै।
सीखी दिन चारिक तैं तीखी चितवनि प्यारी देव कहे भरि दृग[३] देखति जितै जितै।
आछी उनमील नील सुभग सरोजन की तरल तनाइयत तोरन[४] तितै तितै ॥ २८ ॥

[१] आज—सा०, गुद—ब्र०। [२] हेरि—सा०। [३] दृग भरि—सा०। [४] तनाईमति तोरति—भा०, "ति" पार्श्व पर—मो०, तरल तनैनी मति तोरति—ब्र०।

उमड़ि[१] उरोज गिरि हरिद्वार[२] हिरदै तैं राख्यो जिहिं सागर गहीर नाभि झपिकै।
ऐसी तरुनाई आई ता सुर तरंगिनि सों[३] सिसुता ज्यों सूरसुता[४] मिलि चली चपि कै।
तामें तम केश मुख सोम मिलै[५] पर्वसुतो[६] सर्वस सुजान दीनो देव जपि जपि कै।
मैं हूँ[७] ऐसे ठौर ठाढ़ो काम पुरोहित पेखि दीनो[८] मन मानिक निसंक संकलपि कै ॥ २९ ॥

[१] उसरि—भा०। [२] हरझर—सा०। [३] ता सर तरंगन सो—भा०, तासु रति रंगनि सों—ब्र०। [४] सूरासत—भा० मो०। [५] तामैं मुह सोभा कहूँ केस मिलै—भा० मो०। [६] पर्व सुनै—ब्र०। [७] मोह—सा०, महु—मो०, हौंहू—भा०। [८] सौंप्यो—गं०, पुरहोत पेखि दीनो—मो०।

औरन जो गौनो होत बिरह को औनो[१] होत तुमही अगौनो दुख देखनि दुखाई यह।
एहो मृगलोचनी सकोचनि ही सोनोतजि सोनो सी सुघर देह सोचनि सुखाई यह।
आवौ इत कौने को[२] छिपायो नाह कौने कौने कौने धौं सिखाई विष ऐसी बिमुखाई यह।
जीको करि जो तू मनु[३] नीको करि देव पीको हीको करि राखो धरि राखो ही रुखाई[४] यह ॥३०॥

[१] गौनो—गं० सा०। [२] आयो इत कौन को—सा०। [३] जोर मन—गं० सा०। [४] उखाई—भा० मो०।

मध्या-लक्षण।

लरिकापन जौबन जहाँ दोऊ होत समान।
लाज काम सम मध्यमा ताही[१] कहत सुजान[२] ॥ ३१ ॥

[१] नारी—मो०। [२] सोई मध्या नायिका बरनत सुकवि सुजान—गं० सा०।

उदाहरण ।

सावन मास सखीन मैं सुंदरि मंदिर तैं निकसी बनि[1] ज्यों ससि ।
देव जू देखि छके छवि[2] छैल रह्यो न गयो हरि हारि हियो[3] कसि ।
डारि संकोच कह्यो सब ऊपर ऐसी ये भाँति रहो ब्रज मैं बसि ।
डीठ बचाय नवाय के सीस नचाइ कै नैन रचाइ गई हँसि[4] ।। ३२ ।।

[1] बिन—मो० । [2] देखि छके कवि देवजू—गं० । [3] हितैं—सा० । [4] गूल सी सालति है अब लौं ललचाय के नैन नचाइ चली हँसि—गं० सा० । ब्र० प्रति में यही पाठ हाशिये पर दूसरे हस्तलेख में "दुतिय पाठ" के रूप में दिया है ।

प्रगल्भा-लक्षण ।

लरिकापन तजि जहँ रहै तन जोबन भरिपूर ।
कहै प्रगलभा नायिका जग में जीवनमूर ।।३३।।

सा० प्रति में यह दोहा त्रुटित है ।

उदाहरण ।

सोधे की सुबास आसपास भरि भौन[1] रह्यो भरत उसास बास बासन[2] बसात हैं ।
कंकन भनित[3] अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिले[4] मनित सुहात हैं ।
कुंडल हलत मुख मंडल भलमलत भूलत दुकूल भुजमूल भहरात हैं ।
करत विहार कहि[5] देव बार बार बार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात हैं ।।३४।।

[1] भौंर—सा० । [2] बाहन—सा० । [3] कलित—सा० । [4] नूपुरन मिले मति—सा० । [5] कहैं—गं० । भा० मो० प्रतियों में यह छन्द त्रुटित है । ब्र० प्रति में यह भूल से मध्या नायिका शीर्षक के अन्तर्गत छन्द संख्या ३२ के बाद आया है ।

रेसमी सतूल[1] साल लाल पट लीपे लेप भीतरैनि[2] सीत रैनि की न भीन भाँई सी ।
भीति नग हीरन गहीरनि की काँतिन सों रगमगे[3] खंभ पति दंभ छवि छाई सी ।
जगमगी सेज रँगमगे देव देवपति अंग[4] जोति सम्पति औ अंगनि जगाई[5] सी ।
ऊख में निदान ही मयूख मनि मानिकनि अगनित चामीकर अगिन तचाई सी ।।३५।।

[1] अतूल—ब्र० । [2] लिपटे महल भीतरैनि—मो० । [3] जगमगे—ब्र० । [4] अनंग—मो० । [5] जराई—ब्र० । यह छन्द सा० प्रति में त्रुटित है तथा गं० प्रति में यह हाशिये पर दूसरे हस्तलेख में है ।

मध्यनि संग उराहनो मुग्धनि सिक्षा जानि ।
सुभग चेष्टा प्रगलभनि तिहूँ सदा सुखदानि[1] ।।३६।।

[1] प्रगलभ तिय तीनि सदा सुखदानि—सा० ।

उराहनो ।

वे दिन नाहिं भटू[1] भय के जब भीतै भई[2] झुकि कै भिखई हौ ।
चोप दै दै चित में रस की दिन रातिन देव दुरे दिखई हौ ।
ढीठ[3] भई ढिग सोवत[4] स्याम के काम कला लिपि[5] ज्यौं लिखई हौ ।
आनहिं क्यों उर आनहु जू अब तो हरि सौं विषयी सिखई हौ[6] ।।३७।।

[1] भगे—सा० । [2] बातैं नई—भा०, भातै नई—मो० । [3] ढीठै—सा० । [4] सोवन—
भा० मो० । [5] लिखि—भा० मो० । [6] बिखई बिषई हो—भा० मो० ।

शिक्षा ।

वारी ही वैस बड़ी चतुरै हौ बड़ो गुन देव बड़ीयै बड़ाई ।
सुंदरै हौ सुघरै हौ सलौनी हौ सील भरी रस रूप सनाई ।
राजवधू बलि राजकुमारि अहो सुकुमारि न मानौ मनाई ।
नैसिक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई ।।३८।।

भा० मो० प्रतियों में यह छन्द त्रुटित है ।

सुभग-चेष्टा ।

ओझिल ह्वै आई झुकि उझकि झरोखा रूप झर सी झलकि गई झलकन झाँई की[1] ।
पैंने अनियारे पै सहज कजरारे दृग चोट सी चलाई चितवनि चंचलाई की ।
कौन जानै कौ ही उड़ि लागी डीठि मोही उर रहे अवरोही देव[2] निधि ही निकाई की ।
अब लगि आँखिन की पूतरी कसौटिन में लागी रहे लीक वाकी सोने सी गुराई की ।।३९।।

[1] झलक निकाई सी—सा० । [2] कोही—मो०, कोई—भा० ।

बाल बहिक्रम[1] भेद करि भेद भेद प्रति भेद ।
होत अनेक प्रकार तें सुनत हरत[2] श्रुति खेद ।।४०।।

[1] ठाम वयः क्रम—भा० । [2] रहत—सा० ।

तैसु ग्रन्थ विस्तार भय कहे न मैं समुझाय ।
बरने भाव विलास में लक्षन भेद सुभाय ।।४१।।

भा० मो० प्रतियों में यह दोहा त्रुटित है ।

प्रकृति-भेद ।

प्रकृति भेद करि नायिका त्रिबिध[1] कहत कवि लोइ ।
ताते सो कफ पित्त अरु बात प्रकृति तिय होइ ।।४२।।

[1] विविध—ब्र० सा० ।

कफप्रकृति-लक्षण ।

सो कामिनि कफ प्रकृति जो रूप सील गुनवन्त ।
नेह चीकने बचन चित नैन केस नख दन्त ।।४३।।

उदाहरण ।

सील सलील[1] सलोनी सलज्ज सुभाइनि सज्जनता सरसाती ।
नेह भरे कच लोचन देह सुधा मधु तें बतियाँ अधिकाती ।
दामिनि सी नख दंतन दीपति देखत कामिनी को न लजाती[2] ।
देव जू वा सुखदाइनि को मुख देखतहूँ अँखियाँ न अघाती[3] ।।४४।।

[1] सुसील—गं० ब्र० । [2] दंतन की दुति देखत हूँ अँखियाँ न अघाई—भा० । [3] अन्तर के
अनुराग जिते पुनि ऊपर ही सब देत दिखाई—भा० ।

पित्तप्रकृति-लक्षण ।

जाल दन्त नख नैन[१] तन पृथु कुच केस अराल ।
छमा क्रोध छिन में[२] दुवो पित्त प्रकृति सो बाल ।।४५।।

[१] जाल नैन नख दंत—सा० । [२] दिन में—भा० मो० ।

उदाहरण ।

लाल लसैं[१] नख दन्त कपोल प्रवाल से[२] ओठनु ऐंचि लचावति ।
भौंहनि भाइ सुभाइ बताइ कै बातनही सब गात नचावति ।
आँचकही चुटकीन बजाइ कै गाइ कै प्यारे को प्रेम पचावति ।
रूसि रहै कबहूँ रिस कै कबहूँ रसना रस रंग रचावति[३] ।।४६।।

[१] बाल लसै—भा० । [२] सु वारिज—भा० । [३] मचावति—सा० ।

वातप्रकृति-लक्षण ।

रूखे तन मन वचन कच धूसर[१] चंचल चित्त ।
भूरी बहु भोजन गमन बातुल तिय रति मित्त[२] ।।४७।।

[१] कच दूसर—भा० मो० ब्र० । [२] बात प्रकृति तिय मित्त—ब्र० ।

उदाहरण ।

रोष रुखाई भरी अँखियाँ रस राखै नहीं सखियानि सों ढीठै[१] ।
भोजन भूर भरी मदन ज्वर[२] भूरे से बारनि बानि अनीठै ।
चंचल चित्त छकी मद सों छिन एक न छाती तें छाड़ति ईठै ।
काम की घात अघात नहीं दिन राति नहीं रतिरंग उबीठै ।। ४८ ।।

[१] सौं टूठै—सा० । [२] मद झूझर—भा० मो० ।

सत्त्व-भेद ।

सुर किन्नर अरु जक्ष नर कहि पिसाच अरु नाग ।
सत्त्वभेद सो नायिका बरनहु खर कपि काग[१] ।। ४९ ।।

[१] नाग—भा० ।

तिनके लच्छन भेद सब जानहु नाम[१] समान ।
है प्रसिद्ध संसार में जाति सुभाइ प्रमान ।। ५० ।।

[१] नीम—मो०, नीव—भा० ।

देवसत्त्व-उदाहरण ।

काम की कुमारी सी परम सुकुमारी[१] यह जाकी है कुमारी महा भाग वा जनक के ।
सलज सुसील सुलुनाई की सलाका सैल सुता सों सलोनी बैन बीना की भनक के ।
एवी[२] अबहीं तें बनदेवी ऐसी देखी देव देवी तें अगन[३] गुनगन हैं गनक के ।
कनक बनक तन तनक तनक तन[४] झनक मनक कर[५] कंकन कनक के ।। ५१ ।।

[१] सुखकारी—भा० ब्र०, [२] एहो—भा०, ब्र० प्रति में पहले "एहो" पाठ था परन्तु "हो" पर लाल हरताल लगाकर "वी" पाठ संशोधन है । [३] आगम—सा० । [४] मन—भा० मो० । [५] मनक करै—सा० ।

मनुष्यसत्त्व-उदाहरण ।

आई बरसानें तें बुलाई बृषभान सुता निरखि प्रभानि प्रभा भानु की अथै गई।
चक चकवानि के चुकाये चक चोटनि सों चौंकत चकोर चकाचौंधी सौं चकै[१] गई।
देव नन्दनन्दन के नैननि अनन्दमई[२] नन्द जू के मन्दिरनि[३] चन्द मई छै गई।
कंजनि कलिनमई कुंजनि अलिनमई गोकुल की गलिनि नलिनमई[४] कै गई॥ ५२॥

[१] मी चितै—सा०। [२] नंद नंदन नैननि अनन्द भई भई—सा०, नंद जू के नंद जू के नंद जू के नैनन—गं०। [३] मंदिर तैं—मो०। [४] अलिनमई—मो०, ब्र० प्रति में पहले "अलिन" पाठ था परन्तु इस पर लाल हरताल फेरकर उसी हस्तलेख में "नलिन" पाठ—संशोधन हुआ है।

गंधर्वसत्त्व-उदाहरण ।

सुन्दरि मंदिर तें न कढ़ी कहूँ नैननि तैं नहिं लाज उमाची[१]।
काहू सिखाई न सीखी[२] कहूँ सखियानि सों सील सुभाइन साँची।
देव जू देखे सुने नहिं स्याम पढ़े बिन प्रेम की पद्धति बाँची।
आनंद तें अनुराग भरी बनकुंज मैं जाइ अकेलिये नाची॥ ५३॥

[१] हुमाची—ब्र०। [२] सीख—भा० मो०।

यक्षिसत्त्व-उदाहरण ।

चंचल नैन वड़ी[१] बरुनी कुटिलै भृकुटी सुलटै सटकारी[२]।
मोहनी सी मुसकानि[३] मनोहर चेटक सी बतियाँ सुखकारी।
देव सपक्षन बाल विचक्षन[४] ऐसी न जक्षन नारि निहारी।
बासक लक्षन के[५] लखि लच्छन रूप विलच्छन लच्छनवारी॥ ५४॥

[१] चढ़ी—सा०। [२] लटकारी—भा० ब्र०। [३] मुखमानि—गं०। [४] चाल विचक्षन—सा०, विलक्षन—भा०, ब्र० प्रति में पहले "विलक्षन" पाठ था फिर इस पर हरताल फेरकर उसी हस्तलेख से "विचक्षन" पाठ—संशोधन है। [५] लच्छ छके—भा० मो०।

पिशाचसत्त्व-उदाहरण ।

अन्तर खोलति नाहिं अकेलिये डोलति पै नहिं[१] बोलति टेरे।
देखिये देव जितै तित ठौर ही ठाढ़ी रहै घर बाहिर घेरे।
केतिक रूप करै पकरै मग सामुहे[२] सूझत साँझ बसेरे।
नेह भरी नव बाम दिखावति काम के कौतिक धाम अंधेरे॥ ५५॥

[१] डोलतियै नहिं—भा० मो०, ब्र० प्रति में पहले "ये" पाठ था, हरताल की सहायता से इसे "पै" बनाया गया है। [२] करै मग सामुहै आमुहै—भा० ब्र०।

नागसत्त्व-उदाहरण ।

क्योंहूँ अघाति नहीं रति रंगनि अंग अनंग बिलास बिलोई[१]।
पातरी सोन[२] सटी सी सटी सी[३] नटी सी नचावै कटी गुन गोई।
आगि सी आँखिन[४] तैं उगिलै कहूँ गात मिलैहु न जात रहोई।
बात पिये जपिये[५] गुरु मंत्रनि ज्यों[६] उससे रिस के बिस भोई॥५६॥

[१] बिलास चिलौई—भा० मो० । [२] सैन—भा० । [३] चटी सी—ब्र० । [४] आगिली सी आँखिन—"ली" पर हरताल—ब्र०, आगिली आँखिन—भा० । [५] जुपिये—ब्र० । [६] मंत्रनि क्यों—सा०, मंतन त्यों—मो० ।

खरसत्त्व-उदाहरण ।

काम के काज न लागति लाज बुरे सुर बोलति डोलति दौरी ।
रूखिये खात नहीं अनखात भये दिन राति रही परि टौरी[१] ।
लातन दाँतन घातन हूरति[२] केलि कठोर करै इक ठौरी ।
देखि दँतूसर[३] मूसर से भुज घूरि भरे तन धूसर धौरी ।।५७।।

[१] रहौ खरि ठौरी—गं० सा० । [२] घात कहूँ रति—ब्र० । [३] दलूसर—भा० मो० । केवल गं० सा० प्रतियों में चरणों का क्रम १-३-२-४ है । भा० प्रति में छन्द त्रुटित है ।

कपिसत्त्व-उदाहरण ।

न्यारे मैं न्याइ[१] अन्याइ करै कहूँ क्यों हूँ पत्याइ नहीं अनुकूलैहू[२] ।
औचक चौंकि चलै उछलै छल छिद्रनि लोक छलै प्रतिकूलैहू ।
धीर धिराति न पीर पिराति थिराति नहीं दिन रातिन ऊलैहू ।
भूरी सी भूरि भरी उभराई सौं[३] राई भरी यो भुराई न भूलैहू ।।५८।।

[१] न्याय मैं न्याय—गं० । [२] अनुभूलेहू—गं० । [३] भरावभराई सों—भा० मो० ।

काकसत्त्व-उदाहरण ।

व्याकुल सी कुल सील उमेड़ि कै[१] है उमड़ी मड़राइ दिखावै ।
चंचलचित्त चितौति चहूँ दिसि[२] एकौ घरी घर चैन न पावै ।
औचक चौंकति बातन ही निज बातनि घातनि[३] बात चुकावै ।
काक लौं[४] काक कुबाक सुनाइ कै साधुनि[५] के गुन दोष बतावै ।।५९।।

[१] उमेटि कै—ब्र०, उमेठि कै—भा० । [२] चितै दसहूँ दिसि—सा०, चितौ चितहूँ दिसि—मो० । [३] घातनि बातनि—गं० सा० । [४] काल लौं—गं० । [५] साधनि—ब्र० भा० मो० ।

आठ भेद करि नायिका बरनि कही इहि भाँति ।
कापर बरनी जाति सो सकल रूप गुन काँति ।।६०।।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलास कवि देव कृते काल भेद बहिक्रम भेद सत्त्व भेद नायिका वर्णनं नाम षष्ठमो विलासः ।

संयोग दस हाव वियोग दस दशा ।
इहि बिधि बरनहुँ नायिका आठौ अंग विभेद ।
आदि अंत सुख[१] की प्रकृति जाहि बखानत वेद[२] ।।१।।

[१] आदि पुरुष सुख—गं० सा० । [२] भेद—मो० ।

सो सोहति नायक सहित प्रकृति पुरुष[१] संयोग ।
तन मन बचन अनन्त[२] बिधि करत करावत भोग ।।२।।

[१] प्रति पुरुष—भा० । [२] अनन्द—मो० ।

ताके पिय संजोग में उपजत हैं दश हाव।
अरु वियोग में दस दसा[1] दारुन विरह सुभाव ॥३॥

[1] मद की दसा—मो०।

हाव-नाम।

लीला और बिलास भनि औ विच्छित्त[1] विलोक।
विभ्रम किलकिंचित बहुरि[2] मोट्टाइत बिब्बोक ॥४॥

[1] विक्षिप्त—गं० सा०। [2] अहुरि—मो०।

कह्यो कुट्टमित अरु विहृत[1] ललित कह्यो[2] दस हाव।
तिय के पिय संजोग में उपजत सहज सुभाव ॥५॥

[1] विकृति—ब्र०। [2] लहौ—गं० सा०।

हाव-लक्षण।

कपट भेष भाषानुकरि[1] लीला में रस हास।
सरसभाव तन मन बचन रुचि को रचन विलास ॥६॥

[1] बखानि करि—मो०, भाखिन कै—भा०।

लघु मंडन विच्छित्त[1] मैं मन अभिमान विसेष।
विभ्रम सो जु प्रमाद तें[2] उलटें भूषन भेष ॥७॥

[1] विक्षिप्त—गं० सा०। [2] प्रसाद तैं—भा० मो०, ब्र० प्रति में पहले "प्रसाद" पाठ था परन्तु हरताल की सहायता से "प्रमाद" पाठ-संशोधन उसी हस्तलेख में हुआ है।

किलकिंचित इकबार भय मुदमद[1] रस रिस मान।
मिलै कपट मोट्टाइत मन वचन आन तन आन[2] ॥८॥

[1] मुदमुद—मो०। [2] मन वच आनत आनि—भा०, मनहु वचन आन तन आन—सा०, मन वचन पै न तन आन—गं०।

मन में सुख संकट कपट प्रगट कुट्टमित हाव।
पिय सदोष बिब्बोक बहु दृग भौंहनि के भाव ॥९॥
अपनी गौं मिस लाज छल विहृत आन तन आन[1]।
ललित सरस रचना ललित बरनत सुकवि सुजान ॥१०॥

[1] विलज आन तन आन—भा० मो०, हाव विकृति पहिचानि—ब्र०।

लीला-उदाहरण।

राजपौरिया को रूप राधे को बनाइ लाई गोपी मथुरा तें मधुवन की लतानि में।
टेरि कह्यो कान्ह सौं चलौ जू कंस चाहै तुम[1] काके कहे लूटत सुने हौ दधि दान में।
संग के न जाने गये डगर डराने देव स्याम ससवाने[2] से पकरि करै[3] पानि में।
छूटि गयो छल सो छबीली[4] की बिलोकिनि में ढीली भई[5] भौंहें वा लजीली मुसकानि में ॥११॥

[1] तुमैं—भा०। [2] कान्ह ससवाने—मो० ब्र०, कान्ह सकुचाने—भा०। [3] कीने—ब्र० भा० मो०। [4] छल छैल बाल—गं०। [5] परीं—भा० मो०।

विलास-उदाहरण ।

सहर सहर सौंधो सीतल समीर डोलै घहर घहर घनघोरि[१] कै घहरिया ।
झहर झहर झुकि झीनी झर लायो देव[२] छहर छहर छोटी बुंदनि छहरिया ।
हहर हहर हँसि हँसि कै[३] हिंडोरे चढ़ै थहर थहर तन कोमल थहरिया ।
फहर फहर होत प्रीतम को पीत पट लहर लहर होत प्यारी को लहरिया ॥१२॥

[१] घनघोरि—गं० । [२] चीर लागयो देह—सा० । [३] हर्षि हँसि कै—भा० मो० ।

आली झुलावति झूक दै दै झुकि जाति कटी झननाति झकोरै ।
चंचल अंचल बीच चलाचल बेनी बड़ी सो गड़ी चित चोरै ।
या विधि झूलत देखि गयो तबतें कवि देव सनेह के जोरै ।
झूलत है हियरा हरि को हिय माँझ तिहारे हरा के हिलोरै ॥ १३ ॥

भा० मो० प्रतियों में यह छन्द त्रुटित है ।

विच्छित्त-उदाहरण ।

छूटे छवानि लौं केस विराजत बार बड़े तमतार हने से ।
लोचन कंज से खंजन से दुखभंजन देव न[१] जे कहने से ।
कुन्दन सो[२] तन जोबन जोति जवाहर से पिय के लहने से ।
रंग भरे तेरे अंग बहू[३] बिलसैं बिनही गहने गहने से ॥ १४ ॥

[१] देखत—भा०, देखन—मो० । [२] कुंजन सी—सा० मो० । [३] वधू—ब्र०, भटू—भा० ।

विभ्रम-उदाहरण ।

आई उठि सेज तें सुजान संग जागी निसि नींद न दिनहि लागी नींद न परति है[१] ।
देव सुनै बोल न बुलाये बिन बोलि उठै बौरई मैं[२] औरई की औरई धरति है ।
हाँसी[३] मिस रोइ रोइ सौतैं उरहनो दै दै झूठें उरहनो देखे छतियाँ बरति है ।
अनखु न लागत अनोखी कुलटेव सीखी उलटे बसन पैन्हि ऊलट करति है ॥१५॥

[१] नींद नहि लागी अब नींदन परति है—ब्र०, नींद नहीं लागी निसि नींद न परति है—सा०, नींद निदनहि लागी नींद न परति है—भा० । [२] ठौरेई मैं—सा०, औरेई मैं—गं० । [३] दासी—भा० ।

किलकिंचित-उदाहरण ।

धोखे धाई धाई धाम आई नव बाम मिले सखी[१] मिस देव स्याम मानी रँगराति है ।
औचकही[२] ऐंचि कै[३] निसंक भरि अंक प्यारी पारी[४] परजंक सो ससंक[५] अकुलाति है ।
गातनि में इतराति[६] बातनि में सतराति भौंहनि हँसाति अँखियानि में रिसाति है ।
झारै कर झुरी उर काम जुर झुरी[७] लेत लाज फुरहुरी रस घुरी ढुरी[८] जाति है ॥ १६ ॥

[१] सीखी—भा० मो० । [२] औचकही—गं० सा० । [३] औच कै—भा० मो० । [४] पाटी—भा० मो० । [५] परजंक साँस सकि—भा० मो० । [६] दुतिराति—भा० मो० । ब्र० प्रति में दूसरे हस्तलेख में "दुतिराति" पाठ संशोधन है । [७] झुर झुरी—ब्र० । [८] रस कीरी घुरी—सा० ।

मोट्टाइत-उदाहरण ।

सोहती हो तुमही वृज भूपर रूप रह्यो सब ऊपर चोखो।
चाइ सौं खेलती खेल सखी तुम्हैं[1] देख्यो नहीं मुख रचंक रोखो।
बालम त्यों न बिलोकती बोलती अन्तर खोलती ना करि ओखो।
जान्यो परै न विराग सुहाग[2] तिहारो अहो[3] अनुराग अनोखो ।। १७ ।।

[1] सखीन सों—गं० सा० । [2] सुहाग बिराग—ब्र० । [3] भटू—भा०, सखी० मो० ।

बिब्बोक-उदाहरण ।

काम तमासे कहूं निसि कालिह की देव बसे घन सों मन जोटै।
लोपक कोपक पक्ष[1] परे इत आवत भोरही भौंहनि ओटै[2] ।
नैन तुरंग नचाइ[3] अचान गए[4] करि तीखी कटाक्ष की चोटै।
मान दिमान के गाँव गई लुटि प्रीतम साह की प्रेम की पोटै[5] ।। १८ ।।

[1] लोए के कोए कटाछ—सा०, लक्ष—मो० । [2] लोपक कोप कटाछ कजाक परे इत आवत भौंहनि औटै—गं० । [3] तरंग निचाइ—मो० । [4] अचान कए—भा० । [5] मानहु मान के गाँव ही लुटिगे प्रीतम साह के प्रेम की पोटै—भा०, मोटै—गं० मो० ।

कुट्टमित-उदाहरण ।

छतिया छुवत छवि औरै होति आनन की चंदन मिलाये मनौ केसरि ढरति है।
मुख की रुखाई पै रुखाई[1] कछु बैनन की नैनन की चिकनाई चौगुनि धरति है[2]।
नासिका मरोरि मुख मोरि नेकु नाहीं करि चाहि चित प्रीतम की बांही पकरति है[3]।
देव सुखसागर में बूड़ति सी ताते तिया उससि सुजानहि भुजान में भरति है[4] ।।१६।।

[1] झुखाई—गं० । [2] रुखाई माँह कोटि छवि छाई लेत अधरा रस नैनन रुखाइये धरति है—सा०, नैनन निकाई चिकनाइए धरति है—ब्र० । [3] करै चहचही चेत चित बाँही पकरति है—गं० । [4] सुजान पै भुजानहि भरति है—गं० । भा० मो० प्रतियों में यह छन्द त्रुटित है ।

विहृत-उदाहरण ।

बंसीबट के तट निकट जमुना जल मैं[1] खेलति कुँवरि राधा सखिन के पुंज में।
रसिक कन्हाई आई बाँसुरी बजाई धुनि सुनि कै[2] रही न मति गति मन लुंज में।
चलि न सकति बृन्दाबन की गलिन बीच विकल[3] नलिन नैनी अलिन की गुंज में।
देव दुरि जाय अकुलाय सुसुमित मुखी कुसुमित बकुल कदंब कुल कुंज में ।।२०।।

[1] बंसी बट जमुना जी तट के निकट कहूँ—भा० । [2] सुनि धुनि कै—भा० मो० ।
[3] खंजन—भा०, किकल—मो०, कोकिल—ब्र० ।

ललित-उदाहरण ।

चाँदिनी महल बैठी चाँदिनी के कौतुक को चाँदिनी सी राधा बिछी[1] चाँदिनी बिसालरैं।
चन्द्र की कला सी देवता सी देव दासी संग फूल से दुकूल पैन्है फूलनि की मालरैं।
छूटत फुहारे वे अमल जल झलकत चमकैं चँदोवा मनि मानिक महालरैं।
बीच[2] जरतारनि की हीरनि के हारनि की जगमगी जोतिनि की मोतिन की झालरैं ।।२१।।

[१] छवि—गं० । [२] बीजि—मो० । [३] मुकता सुधारन की सोहै सब झालरैं—सा० ।

हाव भाव संजोग में[१] उपजत और अनेक ।
तिन में सूक्षमसार गहि दस विधि बरनत एक ॥२२॥

[१] शृंगार में—गं० ।

इहि बिधि दसौ प्रकार के हाव होत संजोग ।
अब दम्पति की दस दसा बरनौं बीच[१] वियोग ॥२३॥

[१] विहित—भा०, विचित—मो० ब्र० ।

पिय वियोग में दस दसा होइ दम्पती माहिं ।
जिनते तिनके तननि में एकौ पल कल नाहिं ॥२४॥

दस दशा-नाम ।

प्रथम कह्यौ[१] अभिलाष अरु चिन्ता सुमिरन होइ ।
ताते बरनौं गुनकथन फिरि उद्वेग सु होइ[२] ॥२५॥

[१] कहौं प्रथम—गं० सा० । [२] कहोइ—गं० सा० ।

प्रलाप अरु उन्माद कहि व्याधि जड़त्व[१] बखानि ।
मरन कहत दसईं दसा कविकोविद जिय जानि ॥२६॥

[१] अरु जड़ता जु बखान—ब्र०, जड़ता व्याधि—भा० ।

तिनके-लक्षण ।

इच्छा जो पिय संग की सो अभिलाष प्रमान ।
पिय चिन्तन चिन्ता कहै[१] पिय सुमिरन को ध्यान ॥२७॥

[१] करै—ब्र० ।

पिय गुन वर्णन गुणकथन अरु पिय बिरह अनेग ।
भली वस्तु नागा लगै सो कहिये उद्वेग ॥२८॥
विरहिनि बौरी ह्वै बकै सो प्रलाप पहिचानि ।
करत कहत जानै न कछू[१] सो उन्माद बखानि ॥२९॥

[१] जो वैन कछु—सा० ।

पिय बिरहज्जुर व्याधि कहि जड़ता जड़ ह्वै जाइ ।
मरन मूरछा एक ही बिरह दसा दस भाइ[१] ॥३०॥

[१] मरन मोक्ष एकै विरह कही दसा दस भाइ—सा० ।

अभिलाष-भेद ।

श्रवनोत्कण्ठा दरसन लाज प्रेम करि भाष ।
होत परसपर पाँच बिधि दम्पति के अभिलाष ॥३१॥

अभिलाष-उदाहरण ।

कोई अचानक आइ कहै[१] मनमोहन की बतियाँ अति मीठी ।
देव तिन्हैं सुनि सुन्दर को हरि देखन को मनु देत बसीठी ।
एक ही बार चक्यो उचक्यो[२] चित आँखिनि लागैं सखी सब सीठी ।
पूरि रहे गुन रूप कहानिन[३] काननि केलि कहानी उबीठी[४] ॥३२॥

[१] आनि कह्यो—भा० । [२] नचक्यो—ब्र० । [३] रूपही नैननि—भा० । [४] उमीठी—भा० ब्र०, कलानि उबीठी—गं० ।

उत्कंठाभिलाष-उदाहरण ।

मोहन रूप चढ्यो चित में हित भोजन भूषन भाँति न भावति ।
देखन को खिन ही खिन खीन सखीन सों देव न जी की जनावति ।
भूलि गयो गुड़ियान को खेल झरोखनि झाँकति द्यौस गँवावति[१] ।
बाल गनै न अवार सवार कि बारक बार[२] किवार लौं आवति ।।३३।।

[१] झाँकि कै द्वैस बितावति—सा० । [२] सु बारक बार—गं० सा० ।

दर्शनाभिलाष-उदाहरण ।

कान्ह कढ़े वृषभान के द्वार ह्वै खेलन खोरि पिछावरि घा की[१] ।
भीतर भौन तैं सामुहे लाल की बाल बिलोकि बिलोकनि बाँकी ।
हेरी न देव सुथेरी घने दुख चेरी ह्वै जाती चितौतहि याकी[२] ।
पौरि लौं जाइ फिरी अकुलाइ अटा चढ़ि धाइ झरोखा ह्वै झाँकी ।।३४।।

[१] याकी—ब्र० । [२] चेरी को पूछति बात पिया की—भा० ब्र० ।

लज्जाभिलाष-उदाहरण ।

मूरति जो मनमोहन की मनमोहनी के थिर ह्वै[१] थिरकी सी ।
देव गुपाल को बोलु सुने छतिया सियराति सुधा[२] छिरकी सी ।
नीके झरोखा ह्वै झाँकि सकै नहिं नैननि लाज घटा घिरकी सी ।
पूरन प्रीति हिये हिरकी[३] खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी सी ।।३५।।

[१] मन ह्वै—भा० मो० ब्र० । [२] सियराति सुधा छतिया—गं० सा० । [३] हरि की—ब्र० ।

प्रेमाभिलाष-उदाहरण ।

बीसौ बिसे बृषभानसुता पै हौं जानति कान्ह कियो[१] कछु टोना ।
काहू[२] कह्यो बरसानै तैं री नंदगाँव चल्यो अब स्याम सलोना ।
खेलति ही कि अचानक चौंकि चितै चहुँ देव दिये[३] दृग कोना ।
सूल उठ्यो उनमूलि[४] गयो मन भूलि गयो सब खेल खिलोना ।।३६।।

[१] जियो—भा० । [२] कान्ह—गं० । [३] दिख्यो—सा० । [४] तन रूलि—भा० ।

चिन्ता-भेद ।

दम्पति के अभिलाष तैं चिन्ता बढ़ै अपार ।
गुप्त अगुप्त संकल्प अरु विकल्प चारि प्रकार[१] ।।३७।।

[१] गुप्त संकल्प अरु कह्यो विकल्प चारि प्रकार—भा० ।

गुप्तचिंता-उदाहरण ।

सूधेहु नैन लखै न तबै अब पैयै कहाँ[१] जब चाहत हेरो ।
कान करै नहिं कान तबैब बिकान[२] सगे अकुलान घनेरो ।
लाजहि जाय मिलै उत वे इत मोहि मिले मग[३] मेटत मेरो ।

मेटौं मनोरथ हौं इनको तो मिटै मन मेरे मनोरथ तेरो ॥३८॥

[१] पैयै कही—भा० ब्र०। [२] सबैब बिकान—भा० मो० ब्र०। [३] हित—गं०।

अगुप्तचिन्ता-उदाहरण।

चित[१] कोटि कला उलटैं-पुलटैं पलही पल ज्यों मृग बागरि के।
बहु तर्क बिलास चढ़ैं चित बास[२] पै देव सरूप उजागरि[३] के।
गति बंक निसंगही नाच करैं गुन डोरि गहे गुनआगरि[४] के।
नव नेह लग्यो नटनागर सों दोउ नैन भये नट नागरि[५] के॥३९॥

[१] ०—भा० मो०, करि—गं०, कोरि—सा०। [२] बाल—भा०, गं० प्रति में दूसरे हस्त-लेख से संशोधन 'बाल'। [३] उजागर—ब्र०। [४] गुन आगर—ब्र०। [५] नगनागर—ब्र०।

संकल्पचिन्ता-उदाहरण।

कछु और उपाय करै जनि री इतने दुख सों सुख सों मरिबी।
फिरि अन्तक से बिन कन्त बसन्त सु आवत जीवतुहि जरिबी[१]।
बन बौरत बौरि से जाऊँगी देव सुने धुनि कोकिल की डरिबी।
जल डोलिहै और अबीर भरी सु हहा कहि बीर[२] कहा करिबी॥४०॥

[१] जीवत ही जरिबो—सा०। [२] बौर—भा०।

विकल्पचिन्ता-उदाहरण।

खोरि[१] लौं खेलन आवातिये न तौ आलिन के मत मैं परती क्यों।
देव गुपालहिं देखतिये न तौ या बिरहानल मैं बरती क्यों।
बापुरी मंजुल आँब की बालि सु भाल सी ह्वै उर मैं अरती क्यों।
कोमल कूकि कै[२] क्वैलिया कूर[३] करेजन की किरचै करती क्यों॥४१॥

[१] पौरि—ब्र०, मो० प्रति में पहले 'पोरि' पाठ था परन्तु "प" की टेढ़ी रेखा पर हरताल लगाकर "पौरि" पाठ—संशोधन हुआ है। [२] कोमल बोलि के—भा० मो० ब्र०। [३] कोकिल कूक—मो० ब्र०।

स्मरण-भेद।

स्वेद स्तंभ रोमांच सुरभंग कम्प वैवर्न।
अश्रु प्रलय सुमिरन विषय सात्त्विक आठौ वर्न॥ ४२॥

स्वेद स्मरण-उदाहरण।

ईगुर सों मिलि जात पसीजत अंग सुरंगन चोलनि[१] पै।
कवि देव कछू मुलकै पुलकै झलकै[२] उर प्रेम कलोलनि पै।
हँसि बोले न बाल बिलोकै न आलिन झोंकै[३] नहीं दृग[४] डोलनि पै।
ललकैं अँखियाँ पलकें न लगें[५] झलकै जलबुंद[६] कपोलनि पै॥ ४३॥

[१] बोलनि—सा०। [२] उर कै—भा० मो०। [३] रोकै—गं०। [४] डग—सा०। [५] खुलैं—गं० सा०, न लगैं पलकै—ब्र०। [६] श्रमबिंदु—गं०।

नासिका अंग की ओर दिये[२] अधमुद्रित लोचन कोर समाधति।
आसन बाँधि उसास भरै अब राधिका देव कहा अवराधति।
भूलि गो भोग कहें लखि लोग वियोग किधौं यह जोगहि साधति ॥ ४४ ॥

[१] उमंग—ब्र०। [२] दिपै—सा०, ओट हिये—ब्र०।

रोमांच स्मरण-उदाहरण।

हरषि हरषि हिय मन्द विहँसति तिय बरषि बरषि रस राचें चित चोज हैं।
मुलकि मुलकि स्यामा स्याम[१] सुमिरति देव पुलकि पुलकि उर उठत उरोज हैं।
फरकि फरकि बाम बाहु फुरहुरी लेति खरकि खरकि खुलैं मैन सर खोज हैं।
छलकि छलकि छबि छलकनि पलकनि ललकि ललकि मूँदै लोचन सरोज हैं॥ ४५ ॥

[१] स्याम स्याम—भा० मो० ब्र०।

सुरभंग स्मरण-उदाहरण।

धरि बैठी ध्यान करि बैठी गूढ़ ज्ञान जानि जिय जान मोह मोह[१] मो हिय मढ़त हैं।
मूँदि मूँदि लोचन चितौति नींद मोचन के मोचत[२] सकोच सोच सकल[३] बढ़त हैं।
भूली भूख प्यास वास हास तें उदास देव देखि दासी दास आस पास तैं रढ़त[४] हैं।
कौन जानै मौन धरि को है अवराधे अब राधे मुख आधे आधे आखर कढ़त हैं॥४६॥

[१] ०—गं० सा० मो०, मोह माह—ब्र०। [२] सु मोचन—ब्र०। [३] सबकै—गं०, सबकौ—सा०। ४ डरत—भा०, "ठरत" पर १—२ संख्या डाल कर "रढ़त"—ब्र० मो०।

कंप स्मरण-उदाहरण।

प्रेम के प्रकास आसपास की परोसनि यों पूछि पूछि जाती पछताती सबै अलिका।
कैसी है कुँवरि[१] कासों कहिये कहाधौं भयो[२] काहू कछू कीनो कै कुबोल बोल्यो बलिका।
सोवै न[३] त्रियामा भरि स्याम सुमिरत काहि[४] बोलति बिलोकति न पौढ़ति न पलिका।
झाँपि झाँपि खोलै झपकारे दृग भारे देव काँपि काँपि उठैं कुच कौंल की सी कलिका ॥४७॥

[१] कैसे हैं कुँवर—सा०। [२] कहा कहिये सु कैसी भई—गं०। [३] सोचतें—सा०। [४] काहू—सा०, कहि—भा०, रहि—गं०।

वैवर्ण स्मरण-उदाहरण।

मोहन की मूरति सो मोही जग मोहनी[१] सु मोहि मोहि महा मोह मो हिय मढ़ाइयत।
भौंर भरे[२] भीतर सरोज फरकत ऐसी अधखुली अँखियानि उपमा बढ़ाइयत।
आलिन की आन उर आनती न आन आन[३] करति न कानही सयानही पढ़ाइयत।
लोनो[४] मुख मंडल पै पंडुल[५] प्रकास प्यारी[६] जैसे चंद मंडल पै चंदन चढ़ाइयत ॥४८॥

[१] मन मोहनी सु—भा०। [२] भौंर भौंर—भा० मो० ब्र०। [३] आनी तन आनी आन—भा० मो० ब्र०। [४] लोनो—भा०, लीनौ—मो०, लीन्हो—गं० सा० ब्र० प्रति में पहले "लौने" पाठ था परन्तु इस पर लाल हरताल फेर कर "लीने" पाठ—संशोधन हुआ है। [५] कुंडल—हरताल फेरकर "पंडल"—ब्र०, पंडल—भा०। [६] देव—भा०, करि—ब्र०।

अश्रु स्मरण-उदाहरण ।

आई नहीं तन में तरुनाई भई नहिं स्याम के संग सजोगिनि[१] ।
कौने सिखाई सखीधौं कहा सुमिरै धरि ध्यान जनौ जुग जोगिनि ।
भोजन बास न हास हुलास[२] उसास भरै मनौ दीरघ रोगिनि[३] ।
आँखिन तैं अँसुवा नहिं सूखत एकही बार ह्वै बैठी वियोगिनि ।। ४६ ।।

[१] मजोगनि—ब्र० । [२] बिलास—गं० सा० । [३] डोरे सु लाल वही गर सेलि है छाँड़ि दिये जग के सब भोगनि—भा० ।

प्रलय स्मरण-उदाहरण ।

सूधेहू न खेल खेलि जानतिही काल्हिहू लौं काहे की[१] सयानी बानी बोलति है तूतरी ।
आपु ही तें आजुही सयान मन सीखी सखी सारदा कि राधा के असीस सीस ऊतरी ।
अधमुँदी अँखियनि[२] खोलति न बोलति न डोलति न साँस चित चल्यो[३] अद्भूत री ।
कीने हरि मित्र लीने विरह दसा चरित्र बैठी है विचित्र[४] रूप चित्र की सी पूतरी ।।५०।।

[१] खेलि एलि जानति ही कान्ह कुल जानति—सा० । [२] नयननि—सा० । [३] चाल्यो—भा० ब्र० । [४] पवित्र—सा० ।

साधारण स्मरण-उदाहरण ।

रंजित महावर सों कंज से चरन मंजु गूजरी बजनि अजौं काननि जगी रहै ।
अंचर उचोहैं कुच सकुच सु लंक लची[१] कंचन सी देह दुति देव[२] उमगी रहै ।
भूलती न भावती की भांति रति रंभा की सी सूधी सी सुधानिधि सी सौधें सो पगी रहै ।
आँखिन न देखै तो लौं आँखिन न लागे पल बड़ी बड़ी आँखिनि की आँखिन[३] लगी रहै ।।५१ ।।

[१] खीन लचकीली लंक—अ०, सकुच लची सी जात—ब्र०, सकुच लची—मो० । [२] देह—मो० । [३] आँखें ही—ब्र० ।

घाघरो घनेरो लाँबी लटैं लटे लाँक पर[१] काकरेजी सारी खुली अधखुली टाड़ वह ।
गोरी[२] गजगौनी दिन दूनी दुति होनी देव लागति सलोनी गुरु लोगन के लाड़ वह ।
चंचल चितौनि चित चुभी[३] चित चोरवारी मोर वार बेसरि[४] औ केसरि की आड़ वह ।
गोरे गोरे गोलनि की हँसि हँसि बोलनि की[५] कोमल कपोलन की जी मैं गड़ी गाड़ वह ।।५२ ।।

[१] लंक पातरे पै—भा० मो० ब्र० । [२] लौनी—भा० मो० ब्र० । [३] चुभि रही—भा० मो० ब्र० । [४] चित चोटी वाली मोट वाली बेसरि—सा० । [५] हँसि हँसि बोलनि की गोरे गोरे गोलनि की—सा०, मृदु हँसि बोलनि की—भा० मो० ब्र० ।

गुण कथन-लक्षण ।

सुमिरि परसपर दम्पति रहति सरस रस पागि ।
बिरह मथन[१] मन गुन कथन बहु बरनत अनुरागि ।। ५३ ।।

[१] कथन—भा० मो० ब्र० ।

गुणकथन-भेद ।

हरष ईर्षा होइ अरु कहियतु चित्त बिमोह ।
अपस्मार[१] अरु गुनकथन चारि भाँति करि टोह[२] ।।५४ ।।

[१] अस्मार—भा० मो० । [२] कहिबोइ—सा० ।

हर्ष-गुणकथन-उदाहरण ।

देव मैं सीस बसायो सनेह के भाल मृगम्मद बिन्दु के भाख्यो।
कंचुकी में चुपर्‌यो करि चोवा[१] लगाय लयो उर सों अभिलाख्यो।
लै मखतूल गुहे गहने रस मूरतिवन्त सिंगार कै चाख्यो।
साँवरे स्याम को साँवरो रूप में नैननि में कजरा करि राख्यो ।। ५५ ।।

[१] कंचुकी में चोवा लै मैं चुपर्‌यो—सा०

ईर्षा-गुणकथन-उदाहरण ।

कैसेहु कोउ करो उपहास पै[१] नीके ही नाचति[२] नेह नटू हौं।
औगुन होइ किधौं गुन देव करी गुनजाल[३] लपेटि[४] लटू हौं।
चातक लौं घनस्याम को रूप अघाति नहीं दिन रात रटू[५] हौं।
दूसरो काज न[६] लोक की लाज भई बृजराज की भाट भटू हौं ।।५६ ।।

[१] हों—भा० मो० ब्र० । [२] वाचति—सा० । [३] गुनलाल—ब्र० । [४] लखोटी—ब्र०, सखीटि—सा० । [५] नटू—भा० मो०, ब्र० प्रति में पहले के "नटू" पाठ पर हरताल फेर कर "रटू" पाठ संशोधन हुआ है । [६] कानन—ब्र० ।

विमोह-गुणकथन-उदाहरण ।

ग्वालि गई इक ह्याँ कि उहाँ मथि रोकि सुतौ[१] मिसु कै दधि दान को
वै तो भटू वह भेंटी भुजा भरि नातो निकासि कछू पहचानि को।
आई निछावरि के मन मानिक गोरस दे रस लै[२] अधरानि को।
वाही दिना तें हिये में गड़ो वह ढीठ बड़ो बड़री[३] अँखियानि को ।। ५७ ।।

[१] झाँकि वहाँ मगि रोकी सुनौ—भा० । [२] रस से—गं० । [३] बड़ो री बड़ी—भा०, ब्र० प्रति में पहले के "बड़ो री बड़ी" पाठ पर हरताल फेरकर "बड़ो बड़री" पाठ संशोधन हुआ है ।

अपस्मार-गुणकथन-उदाहरण ।

ना खिन टरत टारे आँखिन लगत पलैं आँखिन लगे री स्यामसुन्दर सलौन से।
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस भरि भरि रूप लेत लोचन अचौन से।
एरीं कहु को हौ हौं कहाँ हौं कहा करति हों कैसे बन कुंज देव देखियत भौन से।
राधे हौं सदन बैठी कहती हौं कान्ह कान्ह हा हा कहि कान्ह वे कहाँ हैं को हैं कौन से[१] ।। ५८।।

[१] हा हा कैसे हैं कोहैं कौन से—भा०, हा हा कान्ह कैसे हैं कहाँ हैं कोहैं कौन से—ब्र० मो० ।

उद्वेग-लक्षण ।

दंपति करि करि गुन कथन भरि भरि रस आवेग।
पूरन प्रेम वियोग तें प्रगटै उर उद्वेग ।।५९।।

उद्वेग-भेद ।

भली वस्तु नागा लगै काहू भाँति न ओत[१] ।
त्रिविधि[२] उद्वेग सु वस्तु अरु देस काल करि होत ॥६०॥

[१] न सोत—गं०, ना श्रोत—सा० । [२] त्रै—भा० ।

वस्तु-उद्वेग-उदाहरण

बेष भये[१] विष भावै न भूषन भूष न भोजन कौ कछु ईछी ।
मीच[२] की साध न सोधे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी[३] ।
चन्दन त्यों चितयो नहिं जात चुभी चित माँहि चितौनि तिरीछी ।
फूल ज्यों सूल सिलाय सम सेज[४] बिछौननि बीच[५] बिछी मनु बीछी ॥६१॥

[१] भनो—ब्र० । [२] मीठे—सा० । [३] देव जू देखे करै बधु सो मधु दूध सुधा निधि माखन छीछी—गं० । [४] सलाक सी सेज—सा० । [५] माँझ—गं० सा० ।

देश-उद्वेग-उदाहरण ।

घोर लगे घर बाहरिहू डर नूत पलास लगैं पजरे से[१] ।
रंगिन भीतिन भीत लगै लखि रंग मही रन रंग ढरे से[२] ।
धूम घटागरु धूपनि की[३] निकसे नव जालनि व्याल भरे से ।
ये गिरिकन्दर से मनि मन्दिर आज अहो उजरे उजरे से ॥६२॥

[१] जरैं पजरे से—पं० गं०, लसैं उजरे से—भा० मो० । [२] महीतरन रंग ढरे से—भा०, मही तल रंग ढरे से— [३] धूम जटागरु धूमन के—भा० मो० ब्र०, धूम जठागरु धूपनि की—सा० ।

कालोद्वेग-उदाहरण ।

कन्त बिनु बासर बसन्त लागे अन्तक से तीर ऐसे त्रिबिधि समीर लागे लहकन ।
सान धरे सार से चन्दन घनसार लागे खेद लागे खरे मृगमेद लागे महकन ।
फाँसी से फुलेल लागे गाँसी से गुलाब अरु[१] गाज अरगजा लागे[२] चोवा लागे चहकन ।
अंग अंग आगि[३] ऐसे लागे हैं केसरि नीर[४] चीर लागे जरन अबीर लागे लहकन ॥६३॥

[१] देव—गं० । [२] गुलाब गाज ऐसे अरगजा—भा० मो० अरु अतर अरगनि लागे—ब्र० । [३] आँच—गं० । [४] लागे नीर केसरि के—ब्र० ।

प्रताप-लक्षण ।

दंपति के उद्वेगराग ह्वै बढ़ै[१] विरह सन्ताप ।
उत्कंठित चित प्रेम पिय पेखौ प्रगट प्रलाप ॥६४॥

[१] उद्वेग हू बैठि—भा० मो० ब्र० ।

प्रलाप-भेद ।

सात भाँति बहु बाद सों होत ज्ञान बैराग ।
उपदेस प्रेम संशय कहूँ भ्रमनि आप[१] बड़भाग ॥६५॥

[१] भ्रम निश्चै—गं०, भवन श्रवन—सा० ।

ज्ञानप्रलाप-उदाहरण।

देखे अनदेखे दुखदाई भयो सुखदानि[1] सूखत न आँसू सुख सोइबो हरे पर्‌यो।
पानी पान भोजन सुजन गुरजन भूले देव दुरजन लोग लरत खरे[2] पर्‌यो।
लाग्यो कौन पाप पल एकौ न परत कल दूरि गयो गेह नयो नेह नियरे पर्‌यो[3]।
होतो जो अजान तो न जानती[4] इतीक विथा मेरे[5] जिय जानि तेरो जानिबो गरे पर्‌यो ॥६६॥

[1] सुखदाई भयो दुखदाई—ब्र०। [2] लरख तरे—सा०। [3] दूरि गौ गहन यौं सुनेह नियरे पर्‌यो—भा०, दूरि गयो गहन यौं नेह नियरे पर्‌यो—मो०। [4] होती जो अजान तो न जानती—भा० मो०। [5] एरे—गं० सा०।

वैराग्यप्रलाप-उदाहरण।

तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि हारी पाँय परि परि तौ न कीन्ही तैं सम्हार[1]।
ललन विलोकि देव[2] पल न लगाये तब यौं[3] कल न दीनी तैं छलन उछलनहार।
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई आप बिधि बूड्यो व्याधि बाधा सिंधु निराधार।
ऐरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीने अब एकै बार दैं के तोहि मूँदि मारों एकबार[4] ॥६७॥

[1] कीन्ही सम्हार—भा० मो०, कीन्ही तैं सम्हार—"तैं" हाशिये पर—ब्र०। [2] बिलोकिबे को—सा०। [3] देव यों—ब्र०। [4]तोहि मारो दैकै तोहि एक बार—ब्र०।

बोर्‌यो बंस बिरद मैं[1] बौरी भई बरजति मेरे बार बार बार[2] बीर कोऊ पैठो जिनि[3]।
तुम गिरी सयानी[4] बिगरी अकेली हौंही गोहन में छाड्यौ मोसो भौंहनि अमैठो जिनि।
कुलटा कलंकिनि हौं कायर कुमति कूर काहू के न काम की निकाम योंही ऐठौ जिन।
देव तहाँ बैठियतु जहाँ बुद्धि बैठी हौं तो बैठी हौं बिकल कोऊ मोहि मिलि बैठौ जिनि ॥६८॥

[1] बोर्‌यो है बसंत बिरही मैं—सा०। [2] त्रुटित—गं० सा०। [3]कोऊ पास पैठो जनि—गं०, बैठौ जिनि—ब्र०। [4] तुमही सयानी वीर—भा०, तुम सब सयानी है—ब्र०।

उपदेशप्रलाप-उदाहरण।

प्रेम की पीर न जानी तैं वीर जु छैल कटाछहुँ सो कहुँ छ्वैहै[1]।
देव तुही त्रसिहै हँसिहै बलि बावरी ह्वै रस रूसि है र्‌वैहै[2]।
आई तो सीख सिखावन को पै सखी सुनि आपनीयो मति र्‌व्वैहै।
मोही सी मोही सी मोही कहै अभै[3] नेक मैं मोही सी मोही सी ह्वै है ॥६९॥

[1]कवि छ्वैहै—भा०। [2]रह ही रस चैहै—भा०, रस है रस चैहै—मो०, रस है रस च्वैहै—ब्र०, रस रूसी सी ह्वैहै—सा०, को रवि सूचि विसैहै—गं०। [3]फिर—गं०।

प्रेमप्रलाप-उदाहरण।

कान्हमई बृषभानसुता भई प्रीति नई उनई जिय जैसी।
जानै को देव बिकानी सी डोलै लगै गुरलोगन देखि अनैसी।
ज्यों ज्यों सखी बहरावति[1] बातनि त्यों त्यों बकै वह बावरी ऐसी।
राधिका प्यारी हमारी सौं तू कहि काल्हि की बेनु बजाई मैं कैसी ॥७०॥

[1]गुहरावती—सा०।

संशयप्रलाप-उदाहरण।

मोही मैं वे[१] किधौ हौं उनही मैं कि हौं अरु वे इक संग बसेई[२]।
बाहरि भीतर मोही मैं देख्यौ दसौ दिसहू मैं चितौति ठएई[३]।
काहे की लाज लजाए री[४] को अब गोकुल गेह सनेह पगेई।
देख्यौ सुन्यौ नहिं दूसरो देव जितै जित[५] जाऊँ तितै तित वेई[६] ॥७१॥

[१]सबै—भा० मो०ब्र ०, ब्र० प्रति में दूसरी हस्तलिपि में "सेबे"। [२]लसेई—भा० मो०। [३]भीतर हीतर हू दिहरी तर देखी सु ठौर ठएई—भा० मो० ब्र०। [४]लजाय परी अब—ब्र०। [५]जित तितै—भा० ब्र०। [६]चितवेई—भा० मो० ब्र०।

विभ्रमप्रलाप-उदाहरण।

आजु भले गहि पाये गुपाल गुहौं[१] गहि लाल तुम्हैं गुन जालहि[२]।
होन न देऊँ कहूँ चलि चाल बसाऊँ हिये में मिलाई के मालहि।
बोलत काहे न बोल रसाल हौ जानति भाग भरे निज भालहि[३]।
सींचत नैन बिसालनि के जल बाल सु भेंटति बाल तमालहि[४] ॥७२॥

[१]गहौं—ब्र०। [२]गुन लालहि—भा० ब्र०। [३]निज बालहि—भा० मो०। [४]बालम मालहि—मो०।

निश्चय प्रलाप-उदाहरण।

काहू की कोई कहावति हौं[१] नहिं जाति न पाति न जातैं खसौंगी।
मेरोई हास करौ किनि लोग हौं को कहि देवजू काहू हँसौंगी।
गोकुल चन्द की चेरी चकोरी हौं मन्द हँसी मृदु फन्द फँसौंगी।
मेरी न बात बकौ बलि कोई मैं बौरिमे ह्वै[२] बृज बीच बसौंगी[३] ॥७३॥

[१]कहा बलि हौं—भा० मो०। [२]बावरी ह्वै—गं०। [३]मेरे खियाल परौ न कोई करी कुंजन में गृह जाइ बसौंगी—सा०, संग नगैन सो माँची सुनै नहिं सांवरे के अँग अँग बसौंगी—ब्र०।

उन्माद-लक्षण।

प्रेम बिकल बकि थकै[१] बाढ़ै बिरह बिषाद।
बिन बिचार-आचार जहँ सो प्रगटै उन्माद ॥७४॥

[१]उठैं—सा०।

उन्माद-भेद।

मद विमोह अरु विस्मरन कहि विच्छेप विछोह[१]।
पाँच भांति उन्माद ये[२] जहां भूरि भ्रम मोह ॥७५॥

[१]विछोह विछोप—भा०। [२]कहि—भा० मो०।

मद-उन्माद उदाहरण।

धुनि धुनि सीस धुनि सुनि बांसुरी[१] की देव चुनि चुनि चित जु करत चित चारी सी।
दिन दिन[२] दूने दुख सूने से सकल सुख लूने बिन ज्ञान कढ़ी[३] मोह की कुठारी[४] सी।
रचि रुचि रंग सौं उधरि नची अंग अंग को करे सु काज[५] लोक लाज गहि डारी सी[६]।
बावरी ह्वै बोलै न[७] सम्हारति न बोलै[८] बृज बीथनि में डोलै मुख खोलै[९] मतवारी सी ॥७६॥

[१]मुरली—सा०। [२]दुनि दुनि—गं० सा० मो०, टनि टनि—भा०। [३]कटी भा० ब्र०, नव म्यान कढ़ी—गं०। [४]कुल्हारी—गं०। [५]सुजान—गं०। [६]लाजहि बिडारी सी—भा०, लाज गति डारी सी—गं०। [७]बावरी लौं डोलै ना—गं० सा०। [८]निचोलै—गं०, न लोलै—सा०। [९]बोलै—गं०।

मोह-उन्माद-उदाहरण।

जबतें कुबर कान्ह रावरी कलानिधान कान परी वाके कहूँ[१] सुजस कहानी सी।
तबही तें देव देखौ[२] देवता सी हँसति सी खीझति सी रीझत सी[३] रूसति रिसानी सी।
छोही सी छलि सी छीड़[४] लीनी सी छकी सी छीन जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी।
बीधी सी बँधी सी बिष बूड़ी सी[५] बिमोहति सी बैठी वह[६] बकति बिलोकति बिकानी सी ॥७७॥

[१] वाके कहूँ कान परी—सा०, वाके कान परी कहूँ—ब्र० मो०। [२] देखी—भा०। [३] रीझत सो खीझत सी—भा० मो० ब्र०। [४] छीनि—भा० मो० ब्र०। [५] बूड़त—भा० मो, बूड़त—हरताल फेरकर "बूड़ी सी"—ब्र०। [६] बाल—भा०।

विस्मरण उन्माद-उदाहरण।

मोहनलाल लखे कहुँ बाल बियोग की ज्वालनि सों तन डाढ़ति।
लागि गई अँखियाँ चितचोरन भागि गई गुरु लोग की गाढ़ति।
और की और कहै सुनै देव महा दुचिताई सखीनि के बाढ़ति।
नाम लिये मुख ओर चितै रहै सौंचि घरीक मैं घूँघट काढ़ति ॥७८॥

विक्षेपोन्माद-उदाहरण।

चलि चलि मोसों कहै चलि चलि होति कित विचलि विचलि चलि परति उचकि चकि[१]।
रूसि रूसि हँसि हँसि खीझि खीझि आवै[२] खरी रीझि रीझि जाइ छोह[३] छोहि छवि छकि छकि।
काहि तकि तकि[४] चित कितहि पठायो[५] आजु देव कहै रहै कौन विथा सों विथकि थकि।
बिनही बिचार कै बचन बिन बूझै बीच बहकि बहकि बिन काज उठै बकि बकि ॥७९॥

[१] बिथकि थकि—भा० मो० ब्र०। [२] खीजि खीजि आवै—भा० ब्र०, रहै—गं०। [३] मोहि छोहि—गं०। [४] तकि तकि काहि—गं०। [५] कित हिय ठायो—भा० मो०।

विछोह उन्माद-उदाहरण।

आक बाक बकति विथा मैं बूड़ि बूड़ि जात पी की सुधि आये जी की सुधि खोइ खोइ देति।
कोह भरी कुहकि बिमोह भरी मोहि मोहि छोह भरी छिति पै करोइ[१] रोइ रोइ देति।
बड़ी बड़ी बार लगि बड़ी बड़ी आँखिन तें[२] बड़े बड़े अँसुवा हिये में मोइ[३]मोइ देति।
बाल बिन बालम बिकल बैठी बार बार वपु में विषम[४]विष बीज बोइ बोइ देति ॥८०॥

[१] छिति पै छली सी—भा०, छिति पै छबीली—ब्र०। [२] बड़ी बड़ी आँखिन तैं बड़ी बड़ी बार लग—सा०। [३] हिये में समोय—सा०। [४] विरह—गं० सा०

व्याधि-लक्षण।

अति प्रलाप उनमाद तैं अन्तर उपजै आधि[१]।
जल भोजन सुख सयन बिनु बाढ़ति वपु में व्याधि ॥८१॥

[१] व्याधि—भा०।

व्याधि-भेद ।

तीन भाँति की व्याधि सो प्रथम होइ सन्ताप ।
दूजी कहियतु ताप तैं तीजी पश्चात्ताप ॥ ८२ ॥

सन्ताप व्याधि-उदाहरण ।

हाहा हौं करति मेरो कह्यो करु मेरी बीर पवन अवन धमैं[1] धीर न धरति धाम ।
देव घनस्याम बिनु जोबन दवा सों जरै ग्रीषम मही सी हौं जरीये जाति आठो जाम ।
आयो बैरी मधु बधु कीनो कौन व्याधिन को काल भई कोकिला छपा कर न होतु छाम ।
ताही को कँपाउ बस[2] करे जिन बालम वे रे जनि[3] कँपावे मो करेजनि कुटिल काम ॥८३॥

[1] धावै—भा०, धँसै—गं० । [2] ताही को कँपावन बस—भा०, बाही को कपाल बस—मो० । [3] अरे जनि—भा० ।

ताप व्याधि-उदाहरण ।

साँझ को सो चंद भोर को सो करि राख्यो मुख भोर की सी कांति शांति साँझ की सी भई आनि[1] ।
साँझ भोर को सो नभ देखिये मलीन मन साँझ भोर चकवा चकोर की सी हित हानि[2] ।
कैसे करि कोसों कासों कहौं कैसी करौं देव कीनी रिपु कैसी के सुकेसी की सु कैसी कानि ।
कैसी लाज कैसो काज कैसे धौं सखी समाज कैसो घर कैसो बर कैसो डर कैसी कानि ॥ ८४ ॥

[1] साँझ की सी अब भई आनि—भा०, कौंल कांति साँझ की भई है आनि—"कौंल" हाशिये पर—ब्र०, साँझ कैसी भोर भौई आनि—गं० । [2] चकवाक की सी भई हित हानि—सा० ।

पश्चात्ताप व्याधि-उदाहरण ।

सूवेही[1] सिखाइ कै सखीनि समुझाई होती देव स्याम सुंदर के सौहैं समुहाती क्यों ।
बिचरि बिचारे बादि बैरी होते बंधु कत[2] बिरह की बेदन बिकल बिलखाती क्यों ।
जगमगी जोन्ह[3] ज्वाल जालन[4] सों जारती न जमजाई जामिनि जुगंत[5] सम जाती क्यों ।
क्वैलिहाई क्वैलिया की काल ऐसी कूकै सुनि कौंल की सी कलिका कुँवरि कुँभिलाती क्यों ॥८५॥

[1] सूधे ह्वै—गं० सा० । [2] बिचरि बिचारे बीच बैरीन मुकुत होते—भा० मो० ब्र० । [3] जौन—ब्र०, जौनि—भा० । [4] जारन—भा० मो० ब्र० । [5] जुगत—मो०, जुगन—भा० ब्र० । केवल सा० प्रति में चरणों का क्रम १-३-४-२ है ।

जड़ता-लक्षण ।

व्याधि बढ़त बाढ़ै बिथा बिन भोजन बिन नीर ।
निस दिन छिन छिन छीन ह्वै जड़ ह्वै रहत सरीर ॥ ८६ ॥

उदाहरण ।

कमल सुनैन जोरे जबतें[1] सुनैन तुम तब तें सुनै न स्यामा[2] सखिन के सोरए ।
लागत न जंत्र मंत्र तंत्र परतंत्र परी कान परे देव गुन[3] मंत्र चित चोरए ।
रावरोई[4] रूप रमि रह्यो वाके रोम रोम छैल छेदे[5] छाती मैं कटाछनि के छोरए ।
लाग्योई रहत वाहि लालन तिहारो नेह अद्भुत भूत जेहि पाँचौं भूत भोरए ॥ ८७ ॥

[1] जियत—भा० मो० ब्र०, कबतें—सा० । [2] स्याम—ब्र० । [3] देव गन—भा० मो०

ब्र०, देव गुरु—सा० । [४] रावरे के—ब्र० । [५] छेद—भा० मो० ब्र० ।

मरण-लक्षण ।

दसम[१] अवस्था मूरछा कहूँ मरन ह्वै जात ।
नीरस जानि न[२] बरनिये जीवन अति सरसात ।। ८८ ।।

[१] दसईं—भा० ब्र० । [२] मरन न नीरस—गं० सा० ।

उदाहरण ।

केलि के बगीचा लौं अकेली अकुलाइ आई नागरि नवेली बेलि[१] हेरत हहरि परी ।
कुंज पुंज तीर तहाँ गुंजत भँवर भीर सुखद[२] समीर सीरे नीर की नहरि परी ।
देव तेहि काल गुहि माल लाई मालिनी सुबाल को बिरह बिष व्याल की लहरि परी ।
छोह भरी छरी सी छबीली छिति माँह फूल छरी के छुवत फूल छरी सी छहरि परी ।। ८९ ।।

[१] त्रुटित—मो०, खेली—ब्र० । [२] सीतल—गं०, सुख—सा० ।

देव जिन्हैं मिलि[१] कै रस हास प्रच्छन्न प्रकास निसा सुख सोई ।
भूरि के भाव समूरि कै हावनि पूरि कै प्रेम सदा सुख भोई[२] ।
ते बिछुरे दिन एक कहा कहौं बूड़ि वियोग समुद्र समोई ।
भोगी भुवाल के देखे बिना दुख देखे अलेखे दसा दस खोई ।। ९० ।।

[१] तिन्हैं मिलि—ब्र० । जिन्हैं—नित—सा० । [२] सोई—ब्र० ।

इति श्री रस विलासे भोगीलाल नृप हेतवे देवदत्त कृते सकल वियोग दशा वर्णनं नाम सप्तमो विलासः ।

नायिका-भेदांतर ।

कहे नायिका भेद सब आठ अंग के भाइ ।
अब भेदांतर कहत हौं मत प्राचीन सुभाइ ।। १ ।।
बैस संधि नवला नवल तरुनि नवल अनंग ।
मुग्धा पाँच प्रकार कहि अरु सलज्जरति रंग ।। २ ।।
प्रगट यौवना अरु प्रगट मंदना वचना[१] ढीठ ।
सुरत बिचित्रा चारि विधि मध्या तिय पिय ईठ ।। ३ ।।

[१] सदना वदना—सा० ब्र० ।

चित्र[१] प्रकास प्रवीन रति वस्य वल्लभा नारि ।
सविभ्रमा प्रौढ़ा कही चारि भाँति निरधारि ।। ४ ।।

[१] चित्त—सा० ।

तीनि भाँति बरनी प्रथम सुघर सुकीया नारि ।
सो भेदांतर सौं कही तेरह भाँति विचारि ।। ५ ।।

मुग्धा-भेद । वयः संधि-उदाहरण ।

सैसो निसि छोर छोस जोबन को भोर तम ओज में सरोज नैन सोवत[१] जगाइ कै ।
खेलति मिलैहैं मन खेल में मिलै न रंच चंचल[२] दृगंचल देखावति[३] दिखाइ कै ।
घूँघट में घिरी जैसे उघरी परति दीठि नाहीं कही नाह[४] ठग लागत लगाइ कै ।

जैसे पट कोट ओट पेखनो प्रगट तानि अंतर कपट गीत गाइये सगाइ कै ॥ ६ ॥

[१] सोचत—सा०। [२] अंचल—ब्र०। [३] सु देखत—सा०। [४] कहै नेह—गं०।

नवयौवना-उदाहरण।

घूंघट की घरिया मैं ताय धर्‍यो सोन सो उघरि आयो लोनो मुख ओप अनुराग सी।
अति ही अनूप रस रूप उमड़े से बड़े नैन गड़े जात चित चेटक सराग सी।
जोबन की बनक कनक मनि मोतिन सों तनक तनक पूरी पानिप तराग सी[१]।
गोरे तन सेत सारी नियरे निहारि देव पियरे[२] पुहुप दल ऊपर पराग सी ।७।

[१] तनक कनक पुरि यानप तराग सी—सा०। [२] चंपक—गं०।

नवला-उदाहरण।

जानि पर्‍यो जोबन जनायो है मनोज ज्वर जगमगी जोति अंग बाढ़त नितै नितै।
हरे हँसि[१] हेरि हरि लियो हरि जू को हियो हेरति हरिन नैनी हितू सों हितै हितै।
सीखी दिन चारिक तें तीखी चितवनि प्यारी देव कहै भरि दृग[२] देखति जितै जितै।
आछी उनमील नील सुभग सरोजन की तरल तनाइयत तोरन[३] तितै तितै ॥८॥

[१] हेरि हँसि—सा०, हरे हरे—ब्र०। [२] दृग भरि—ब्र०। [३] तोरति—ब्र०।

नवल अनंगा-उदाहरण।

गौने के चार चली दुलही गुरु लोगनि[१] भूपन भेष बनाये।
सील[२] सयान सिखायो सखीन[३] सबै सुख सासुरेहू के सुनाये।
बोलिये बोल सदा हँसि[४] कोमल जे मनभावन के मन भाये।
यों सुनि ओछे उरोजन पै अनुराग के अंकुर से उठि आये ॥६॥

[१] गुरू नारिन—गं०। [२] सीख—ब्र०। [३] सबै सिखयेरु—गं०। [४] अति—गं० सा०।

रँग लाल जरी पट घूँघट ओट लसै मुकतालर की लरक्यो[१]।
प्रभात प्रभाकर मंडल मैं विधु मंडल विंब सुधाधर को[२]।
रदपाँति चुनी चमकै हँसि बोलत देव कछू अधरा फरक्यो।
मनो कातिक पून्यो की राति सुधाधर मध्य सुधा धरि के ढरक्यो ॥१०॥

[१] को करक्यो—गं०। [२] विंदु सुधा ढरक्यो—ब्र० सा०।

सलज्जरति-उदाहरण।

देव कहै सोवत[१] निसंक अंक भरी परजंक मैं मयंक मुखी सुषमा सचति है।
संग न घिरति अंग अंग अँगिराति रँगराति न निराति नियराति न चलति है।
कोरे कर झारति[२] उघारति न अंचर बिहारति न रंच परपंचनि पचति है।
भौंहनि नचति बतियान बिरचति अँखियान मैं हँसति[३] सखियानि सकुचति है ॥११॥

[१] सोचत—ब्र० सा०। [२] जातिन—ब्र०। [३] रचति—ब्र० सा०।

शिक्षा-उदाहरण।

औरन को गौनो होत विरह को औनो[१] होत तुमही अगौनो दुख[२] देखन दिखाई यह।
एहो मृगलोचनी सकोचनि ही सोनो तजि सोने सी सुघर[३] देह सोचन सुखाई यह।

आवो इत कोने को छिपो न कोने कोने कोने धौं सिखाई विष ऐसी विमुखाई यह।
जी को करि जोर[४] मन नीको करि देव पी को ही को करि राखौ धरि राखौ ही रुखाई
यह ॥१२॥

[१] गौनो—गं० सा०। [२] होत—गं०। [३] सिधारि—सा०। [४] जोतु—ब्र०।

सुरत-उदाहरण।

बैरिनि मेरी कितै गई वे कर छाँड़ि उन्हैं किनि देखन तू दै।
यों कहि कै उचकी परजंक पै[१] पूरि रही दृग वारि की बूँदै।
जोरन देइ नहीं मुख सों मुख छोरन देइ[२] न नीवी की फूँदै।
देव सँकोचन सोचन सों मृगलोचनी लाल के लोचन[३] मूँदै ॥१॥

[१] मैं—सा०, तें—गं०। [२] देति—गं०। [३] लोचन लाल के—गं०।

सुरतान्त-उदाहरण।

मनभावन के ढिग तें उठि भामिनि भोरही भूषन हाथ लिये।
रँग भौन के भीतर भाजि परी भय भार भरी अति लाज हिये।
सजनी जन तें दुरि कै कवि देव निहारति[१] हार विहार किये।
तिय बारहिबार सँवारहि के[२] निरवारति[३] वार केवार दिये ॥१४॥

[१] निवारति—ब्र०। [२] सँवारति ही—सा०, सँवारहि की—ब्र०। [३] निरबारहि—गं०।

धाय धरा सबही के[१] कहे हौं बिकाय गयी इनकी रुचि रेख्यौ।
ते निरदै हिरदै[२] कर दै मोहि ओट[३] भई चित चोट न पेख्यो[४]।
जाय भई बस कंत बिसासी के बीसौ बिसे बिसवास बिसेख्यो।
काहे किये[५] सखियाँ दुखदाइन हौं न इन्हैं अँखियाँ भरि देख्यो ॥१५॥

[१] धाय बसीधर ही के—गं०, धाय धरा बस ही के—सा०। [२] ०—गं० सा०। [३] चोट—सा०। ४ चित चोटन सो नहिं पेखो—गं० सा०। [५] कोहे को ये—गं०।

मुग्धा मान-उदाहरण।

एकही रैनि मिली पिय को तिय दूसरे द्योस खरी खरको है।
त्यों उत[१] बालम बाल लखै कहुँ सौतिन के ढिग को ढरको है।
लाज लची मृगलोचनि को चित सोच सँकोच भये सरको है।
आँखिन तें खिसके अँसुवा रिसके अधरा सिसके फरको है ॥१६॥

[१] सो उत—सा०। केवल सा० प्रति में चरणों का क्रम १-३-२-४ है।

मध्या-भेद। आरूढ़यौवना-उदाहरण।

अरुन बरन महा कोमल कर चरन तरुन सुरंग अंग अंग अमलनिको।
साँझ को सरद ससि अंबर में अधखुल्यो वारियत पूनो की प्रभा झलमलनि को।
सहजसुगंध सौं मदंध मधुकर कहो को गनै सुगंध और सोधे समलनि को।
जोतिन के जूह देव दीपति दुरूह देख्यो हँसत समूह जात फूले कमलनि को ॥१७॥

आइ हुती अन्हवावन नाइनसोधेलिये कर[१] सूधे सुभायनि।

कंचुकी छोरी[२] उतै उबटैवे को इंगुर से अंग[३] की सुखदायनि ।
देव सरूप की रासि निहारति पाँय तें सीस लौं सीस तें पाँयनि ।
ह्वै रही ठौरही ठाढ़ी ठगी सी हँसै कर ठोढ़ी दिये ठकुरायनि ॥१८॥

[१] वधू—व्र० । [२] खोलि—व्र० सा० । [३] रंग—व्र० ।

प्रगल्भवचना-उदाहरण ।

हौं गहि आनी[१] अचान इतै छल तें रहौ[२] जानति जाहि न वैसी ।
देखति हौं उन कुंज मैं कान्ह सों आइ सिखाई तुहीं जिय जैसी ।
छाँह छुवौ नहिं स्याम सलोने की लाज की बात न होने की ऐसी ।
कोसों कहा कहि तोसों उतै रहि रोस कह्यो कहा तू कहि कैसी[३] ॥१९॥

[१] गई आनी—सा० । [२] तेरे हौं—सा० । [३] रहि तू कहि क्यों न कही फिरि कैसी—गं० ।

प्रगटमदना-उदाहरण ।

होरी में आजु भिजे रँग गोरी के[१] आपनो प्यो अपने बस कै लै ।
यों कहि देव सखी गहि गोरी को लाई है गोकुल गाँव की गैलै ।
लाज की गारी सुनी कबहूँ न सु गावत[२] लोग लगावत छैलै ।
खेलत फागु नई दुलही दृग[३] आँसुन लीनि उसासन लैलै ॥२०॥

[१] सु—गं० । [२] जु गावत—गं० । [३] उर—गं० ।

सुरतिविचित्रा-उदाहरण ।

साँस लेति हँसति रिसाति मृदु बोलति बलैया लेति लाज उर आनि पर गई है ।
घूँघट उघारि मुख देखन न देति रदरेखन कनैखन की कानि[१] परि गई है ।
देव सुखदानि सुखदाइनि को संगु देखि सौति दुखदाइन के हानि परि गई है ।
तानि पट होऊ दुहू पानि परवीन रूप पानिप निहारिबे की बानि परि गई है ॥२१॥

[१] खानि—सा०

मध्या सुरत-उदाहरण ।

कंत के संग इकंत करै रति ओठनि दंत लगे मुख मोरै ।
कंचुकी छोरति छाती दवै झुकि झाँकि झुकै बिझुकै झकझोरै ।
गातनि मैं अँगिराति घनी रिस बातनि मैं रस रंग निचोरै ।
नीवी कसै उकसै नहिं देव हँसै सतराइ त्रसै तन तोरै ॥२२॥

मध्या सुरतांत-उदाहरण ।

आरस उनीदी[१] बार बाँधति दुहू करनि उन्नत उरोज नखरेखैं रेख रखियाँ ।
कंचुकी कसति उससति औ हँसति लखि नीवी अधखुली त्यों लजाती लोल अँखियाँ ।
अंग[२] अँगिरात हरषत बरखत मोती[३] दूखित अधर देखे सौतिहूँ बिलखियाँ ।
बाल के सिधारे तें निरखि हाल सेज को बिहाल भयो बालम निहाल भई सखियाँ ॥२३॥

[१] उनीधी—सा० । [२] आँगी—सा० । [३] हरखत मोती छहरात—सा०

प्रौढ़ा-भेद चित्रप्रकास-उदाहरण ।

कुंज मैं ह्वै गई साँझ दुहू को चलै चरचा रस की बतियाँ की ।
देव घटा जल बूँद लगी बरसावन सावन की रतिया की ।
प्यारी के अंक निसंक ह्वै सोए पिया तऊ देह डुली न तिया की[१] ।
चंपक बेली सी बाँहनि सों रही[२] नाह पै छाँह करै छतिया की ।।२४।।

[१] पिया न डरै न हली सुतिया की—सा०, पिया ते दुहू रली बतिया की—ब्र०
[२] लागी—गं० ।

रतिकोविदा-उदाहरण ।

नेकौ अनखाति न अनख भरी आँखिन अनोखी अनखीली रोख ओखे से करति है ।
रोवति रिसाति हसि हसि मुसकाति मुरि मुरि मुरझाति[१] मनुहरति हरति[२] है ।
एकै एक अंक देति[३] संकति मयंक मुखी लंक लहकाय परजंक पै परति है ।
प्यावै डीठ ईठ को अनूठो रस ओठन को झूठे मूँदि लोचन सकोचन मरति है ।।२५।।

[१] बिरुझाति—सा० । [२] मनु हेरति हरति है—गं० । [३] पीके अंक अंक देत—गं०, देखि—ब्र० ।

वशवल्लभा-उदाहरण ।

चिबुक उचाइ चारु पोंछति कपोलनि अँगोछति अलिक दोऊ[१] अलक दुधाही के ।
ललक सों लाल झलकावति तिलक मोती नथ के निहारे न थके छबि छुधाही के[२] ।
मेटत संताप भुजमूलनि समेटि[३] भुज भेंटत उठाय धरे भोग वसुधाही के ।
सुंदर सधार[४] ब्रज जीवन अधार देव राधे तें अधार राखे अधर सुधाही के ।।२६।।

[१] अँगोछत अलक दोऊ—ब्र० सा० । [२] नैन न थके बुधा ही के—सा० । [३] उठाय—ब्र० सा० । [४] सदाही—ब्र०, सदार—सा० ।

सविभ्रमा-उदाहरण ।

दुहू मुख चंद और चितैबे चकोर दोऊ चितै चितै चौगुनो चितबै ललचात है ।
हाँसन हँसत बिनु हाँसी बिहँसत मिले गातनि मैं गात बात बातनि बिकात है[१] ।
प्यारी तन प्यारो पेखि पेखि प्यारी पिय तन पियत न खात नेकहू न अनखात है ।
देखि न सकत देखि देखि न थकत देव देखिबे की बात देखि देखि न अघात है ।।२७।।

[१] अघात है—गं० ।

सुरत-उदाहरण ।

सोधे की सुबास आसपास भरि भौन रह्यो[१] भरत उसास बास बासन बसात हैं ।
कंकन झनित[२] अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित[३] मिले मनित सुहात हैं ।
कुंडल हलत मुख मंडल झलमलात झूलत दुकूल भुजमूल भहरात हैं ।
करत विहार कहै देव बार बार बार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात हैं ।।२८।।

[१] भौंर राख्यो—सा० । [२] झनक—सा० । [३] रुनक—सा० ।

प्रौढ़ा सुरतांत-उदाहरण ।

मोती सियरात हिय जानि कै प्रभात ढिग ढीले करि पीतम के गात सुलफनि के ।

उतरत सेज तें[१] सखीन सुखदैनी थाँभी बेनी लाँबी लखे[२] लाज मरे[३] कुल फनि के।
दासी देवता सी पग दंपति के दाबि चली[४] दाबे पग बसन दबाइ गुलफनि के।
लाल की चरन सेव आये दास देव रँगमगी अंग जेब जगमगी जुलफनि के ।।२९।।

[१] उरतम सेज तें—ब्र०, उरतम सेज लै—सा०। [२] खुले—ब्र०। [३] मारे—सा०।
[४] बलै—ब्र०।

मध्या-भेद।

मध्या अरु प्रौढ़ा द्वो तीनि भाँति करि मानि।
धीरा और अधीर कहि धीराधीरा जानि ।।३०।।
धीरा देइ उराहनो मध्य अधीरा गारि।
रोदन गारि उराहनो धीराधीरा नारि ।।३१।।
धीरा प्रौढ़ उदास रति तरजन करै अधीर।
रति उदास वरजन[१] करै प्रौढ़ा धीराधीर ।।३२।।

[१] तरजन—सा०।

मध्या धीरा-उदाहरण।

केसरि सों उबटे सब अंग बड़े मुकतान सों माँग सँवारी।
चारु सु चंपक हार हिये उर[१] ओछे उरोजन की छवि न्यारी।
हाथ सों हाथ गहे कवि देव सु साथ तिहारेई नाथ[२] निहारी।
हाहा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती[३] छोहरी छीवर वारी ।।३३।।

[१] गरे अरु—गं०। [२] तिहारे हौ आजु—गं०। [३] कौन ही—गं०।

मध्या अधीरा-उदाहरण।

तन मन ओट पट घूँघट कपट खोलि उर सों लगाये इतने पै अरसात हौ।
थाकी अपनाइ अपने से हौं उपाय करि भये अपने न सपनेहु न थिरात हौ।
कैधौं केहि गैल छैल छतिया छिपाई जाके बिरह बौराने देव बोलत न बात हौ।
प्यारे परजंकहू में मो मुख मयंकहू में[२] साँसै लै ससंक अंकहू में अकुलात हौ ।।३४।।

[१] घूँघट के तन तन—गं०। [२] मो मुख मयंकहू में प्यारे परजंकहू में—गं०।

मध्या धीराधीरा-उदाहरण।

रावरे पायन ओट[१] लसै पग गूजरी वार महावर ढारे।
सारी असावरी की झलकै छलकै छवि घाघरे घूम घुमारे।
आहु जु आहु[२] दुहाहु न मोहू सों देव जू चंद दुरै न अँध्यारे।
देखौं हौं कौन सी छैल छिपाइ तिरीछे हँसै वह पीछे तिहारे ।।३५।।

[१] पाय अनौठ—ब्र० सा०। [२] जाहु जु जाहु—सा०।

प्रौढ़ा धीरा-उदाहरण।

धोखेहू जो कहै कटु बोल तो कटाऊँ जीभ छार[१] डारौं आँखिन की आँसू फलकनि पै।
कौनं कहै कैसी सौति सो तो ठकुराइनि लिखी है बृज बालनि के भाल फलकनि पै।
ह्वै रहौ नजीकी हौं न जीकी दुचिताई गहौं पी की प्रान प्यारी कहौं नीकी ललकनि पै।

दूजो नहिं देव देव पूजौं राधिका के पग पलकन ल्याऊँ धरि ध्यान[2] पलकनि पै ।।३६।।

[1] झार—सा० । [2] ध्याऊँ—सा०, लावौं—गं० ।

प्रौढ़ा अधीरा-उदाहरण ।

आजु गुपाल जू बाल बधू सँग नूतन नूतनि कुंज बसे निसि ।
जागर होत उजागर नैननि पाग पै पीरी पराग रही[1] पिसि ।
चोज के चंदन खोज खुले जहँ ओछे उरोज रहे उर में घिसि ।
बोलत बात लजात से जात सो आये इतौत चितौत चहूँ दिसि ।।३७।।

[1] परी—गं० ।

प्रौढ़ा धीराधीरा-उदाहरण ।

ओट दई उबटै अनओट के ओट के ओट रहे झपनेहू ।
खेलत हू न डुलै[1] तजि लाज खुलै न फुलेलन के चपनेहू ।
ते अँग माँहि[2] मिले हिय मैं तुम हौ न हिरानी[3] अयानपनेहू ।
देव तुम्हें अपनाइ थकी तुम पै न भये अपने सपनेहू ।।३८।।

[1] दुरै—गं० । [2] माँझ—सा०, भीजि—गं० । [3] रहिरानी—ब्र० ।

ज्येष्ठा-कनिष्ठा-लक्षण ।

गरुई हरुई ए सँबै पी के लघु गुरु प्यार ।
कहत ज्येष्ठा कनिष्ठा[1] तिनसों सुमति उदार ।।३९।।

[1] कहत सु जेष्ठ कनिष्ठ तिय—सा० ।

उदाहरण ।

खेलत आँखि मिहीचनी खेल सु देव गुपाल जू भाँति भली को ।
आपनीये अँखियाँ मिहचाय कहै उनसों छपि जान गली को ।
भेंटत धोखे नवोढ़[1] वधूहि ढिगै ढिग ढूढ़त गूढ़ थली को[2] ।
नाँउ ललै ललिता को लला गहि ल्याये तहाँ बृषभान लली को ।।४०।।

[1] भेंटत वोटन धौखे—ब्र० । [2] ढूढ़ थली—सा० ब्र० ।

परकीया-भेद ।

कहौ अनूढ़ा ऊढ़ फिरि परकीयौ द्वै भाँति[1] ।
तिनमैं एक अनूढ़ अरु ऊढ़ा कही छै जाति[2] ।।४१।।

[1] जाति—सा० । [2] भाँति—सा० ।

गुप्ता और विदग्ध तिय और लक्षिता जानि ।
कुलटा मुदिता अनुसयन[1] भेद छयो पहिचानि ।।४२।।

[1] अनुसया—सा० ।

अनूढ़ा-उदाहरण ।

बाल लतान में बाल[1] को बोल सुन्यो कहुँ संग सखीन के टेरत ।
काहू कही हरि राधा यही कहि देव जू देखी इतै मुख फेरत[2] ।
है तबतें पल एक नहीं कल लाखन लौं अभिलाखन घेरत[3] ।

वाही निकुंजहि नंदकुमार घरीक मैं बार हमारक हेरत ॥४३॥

[1] लाल लतान मैं बाल—ब्र०, बाल लतान में लाल—सा०। [2] सुख केरति—ब्र०, सुख केरति—सा०। [3] वेरति—ब्र०।

ऊढ़ा-उदाहरण।

उठी अकुलाय सुनी जब नेकु[1] कला परवीन लला ब्रजराज।
बिसारि दई कहि[2] देव तुम्हें अवलोकत ही जब लोक की लाज।
इतै पर और चवाव चल्यो बरजै गरजै गुरु लोक समाज।
कहा लगि लाल कछू कहिये इतनी सहिये सब रावरे काज ॥४४॥

[1] बीन—सा०। [2] कवि—सा०। केवल सा० प्रति में चरणों का क्रम १-३-२-४ है।

गुप्ता-उदाहरण।

बार बुहारन[1] भोरही हौं पठई मति हीन मती को लोगायनि।
घेरि के बार उघारत ही अलि मोर चकोर कठोर कुदायनि।
देव कहा कहौं देह दसा यह हौं सकुचौं कुल लोग हँसायनि।
सासुरे को उपहास करौ[2] बिसवास करौ तुम[3] सासु गुसायनि ॥४५॥

[1] उहारन—सा०। [2] करै—गं०। [3] जिन—ब्र०।

विदग्धा-लक्षण।

कहत विदग्धा दुविधि[1] कवि बाक बिदग्धा एक।
क्रिया विदग्धा दूसरी जानौ बुद्धि विवेक ॥४६॥

[1] विविध—सा०।

वाक्‌विदग्धा-उदाहरण।

वृन्दावन चारन को चलत सवारे गोप खोलत केवार टेरि गैयन[1] के गहगहे।
जात बछरा लै लोग[2] खरिक दुहाय दधि मथती लोगाई गीत गावती बहबहे।
सेज पै अकेले आली नींद न परति मोहि फूलत गुलाब देव सेवती महमहे।
काहू सों कहौ न भौन भीतर बगीचा बीच आवैगो इहाँ सो फूल पावैगो पहपहे[3] ॥४७॥

[1] गोपिन के—गं०। [2] गोप—गं०। [3] लहलहे—गं०।

क्रियाविदग्धा-उदाहरण।

पूरब पौन के गौन गुमानिनि नंद के मंदिर में ठहकाई।
गावती काम के मंत्र मनो गन जंत्रन तंत्रन[1] सों गहकाई।
देव खेलार कलानि सों बुद्धि लला को सबै अबला बहकाई।
आपने ऊँचे अटा चढ़ि बाल अकेली ह्वै लाल गुड़ी लहकाई ॥४८॥

[1] मंत्रन—सा०।

लक्षिता-उदाहरण।

आई हौ भोर भली भई देव बसंत निसा बसि बीच बगीचे।
सूहे की सारी सलौट लसै मुख चंद हँसै[1] मुसकानि मरीचे।
पाँय सोहाग की लूटि जहाँ[2] खिन आँखिन[3] प्रेम सुधा रस सींचै।[4]

रोगी के रेख सु देखि परै सो छिपावति क्यों कुच कंचुकी[५] बीचे ।।४९।।

[१] लसै—गं०। [२] सहा—ब्र०, तहाँ—गं०। [३] खिन ही खिन—सा०। [४] रीचें—गं०। [५] कंचुकी—सा०।

कुलटा-उदाहरण।

लाज की गाँठि गई छुटिकै नहिं गाँठि तें काहू छूटै न छुटाये[१]।
आठहू याम[२] उतै उठि धावति साठौ घरी सु ठई है सुठाये।
ठान कुठान अठान ठनी ठहकीली[३] रहै गुरु लोग रुठाये।
ऐंठनि ओठ उठी अँगिया[४] अठिलानी फिरै[५] भुजमूल उठाये ।।५०।।

[१] झुठै न झुठाये—गं०। [२] धाम—ब्र०। [३] हठकीली—ब्र०। हटकीली—सा०। [४] अँखियाँ—गं०। [५] करै—ब्र०।

मुदिता-उदाहरण।

आरस सों रस सों अँगिरात दसौ अँगुरी कर अंजन[१] काढ़ी।
तोरति त्योरी मरोरति भौंहनि मोरति नाक बिथा मनौ बाढ़ी।
नीवी को नाम न राखति सूधे कसै उकसाइ[२] कसै फिरि गाढ़ी।
घूँघट टारि[३] उघारि भुजंचल कंचुकी के बंद बाँधति ठाढ़ी[४] ।।५१।।

[१] अंजुलि—गं० सा०। [२] कसेहू कसाय—गं०। [३] डारि—गं०। [४] गाढ़ी—सा०।

अनुशयना-उदाहरण।

फागु सो द्यौस सुहाग सी संपति राग सी रीझ रिझावै सदा सुनि[१]।
तैसिये जोबन अंग[२] नयो रस रंग तरंग उठै तन ता सुनि।
बोलि हियौ[३] सब खेलती देव बने नहिं लाज गने नहिं सासुनि।
आवत चैन तुही क्यों बहू बहरावति मो ढहरावति[४] आँसुनि ।।५२।।

[१] मुनि—ब्र०। [२] रंग—गं०। [३] खोलि हियो—गं०। [४] हहरावति—ब्र०।

इहि विधि सुकिया परकिया बरनि कही गुनवंत।
सामान्या पहिले कही जानहु ताहि असंत ।।५३।।
जाति कर्म वय भेद जे अरू भेदांतर होत।
तिनहू अंतरभेद ते तैं सब खेदति खोत[१] ।।५४।।

[१] भेदति खोत—ब्र०।

ये सब सामान्या सहित दुखित अन्य संभोग।
उक्ति गर्विता मानवती त्रिविध कहत कवि लोग[१] ।।५५।।

[१] बरनि सुनाऊँ भेद सब न्यारे न्यारे। जोग—सा०।

उक्तिगर्विता आठ विधि आठौ अंग सगर्व।
कहै नायिका भेद में जोबनादि अंग सर्व ।।५६।।

अन्यसंभोगदुःखिता-उदाहरण।

काल्हि की साँझि उड्यो कर माँझ तें देव खर्यो तबतें उर साल्यो।
एक भली भई बाग तिहारेई श्री फल औ कदली चढ़ि हाल्यो।

वंचक विबनि चंचु चुभावत कुंज के पिंजर में गहि गाल्यो[१]।
हौं सु कहूँ नहिं राखि सकी सो कहूँ सुनि तेही परोसिनि पाल्यो ।।५७।।

[१] घाल्यो—सा० ।

यौवनगर्विता-उदाहरण ।

जोवन लौं जुवतीन को जीवन जानत हौ पै कहा मुख भाखो ।
ताहू को सर्वस है पिय प्यारो सु न्यारो रहै न यहै अभिलाखो ।
आपने आनन[१] को रस प्याइ कै लाल को रूप सुधा रस चाखो ।
लाजहि को परिहार करो हरि हार करो हियरा पर राखो ।।५८।।

[१] आनद—ब्र० ।

रूपगर्विता-उदाहरण ।

देखुरी दर्पन दौरि इतै रचि मेरे सिंगार[१] बिगार्‌यो है ते हरि[२] ।
कंचनहू रुचि रंच[३] रुचै नहिं मोतिन की सरि मो तिनकी सरि[४] ।
देव रहै दवि सी छवि छाती की बोझ मरौ[५] मनिमाल बृथा धरि ।
भाल मृगम्मद विंदु बनाइ कै इंदु सी मोहि गुविंद गये करि ।।५९।।

[१] रचो आनन मेरो—गं० । [२] ये हरि—गं० । [३] कंचन को रंग चीर—गं० । [४] मोतिन की लरि मो तन केसरि—गं० । [५] कोऊ मरो—गं० ।

प्रेमगर्विता-उदाहरण ।

आजु गई हुती कुंजन लौं बरसै उत बुंद घने घन घोरत ।
देव कहै हरि भींजत देखि अचानक आइ गये चित चोरत[१] ।
पोटि[२] भटू तट ओट कुटी के लपेटि पटी सो कटी पट छोरत ।
चौगुनो रंग चढ्यो[३] चित मैं चुनरी के चुचात लला के निचोरत ।।६०।।

[१] मुख मोरत—गं० । [२] ओढ़ि—ब्र० सा० । [३] चढ़ै—गं० सा० ।

गुणगर्विता-उदाहरण ।

आँखिन में पुतरी ह्वै[१] रहै हियरा में हरा ह्वै सबै सुख लूटै ।
अंगन संग बसै अँगराग[२] ह्वै जीव तें[३] जीवन मूरि न फूटै[४] ।
देव जू प्यारे के न्यारे न क्री गुन[५] मों मन मानिक तें नहिं टूटै ।
और तिया सो ततो बतिया करें भो छतिया सों छिनौ जब छूटै ।।६१।।

[१] कजरा ह्वै—सा० । [२] अनुराग—गं० । [३] जीवत—गं० । [४] टूटे—गं० । [५] अरी गुन—सा० ।

कुलगर्विता-उदाहरण ।

पूछो बड़े बबा नंद को बंस जसोमति माय को मायको सूझत ।
बोलत बातै बड़ी[१] बन में मन में बृषभानु बबा सों अरूझत[२] ।
देव दबी हम नेह के नाते नतो पुरिखा इन बातन जूझत ।
जीभ सम्हारि न काढ़त गारि सु ग्वालि गँवारि हमैं हरि बूझत ।।६२।।

[१] खड़ी—ब्र० । [२] अनूझत—गं०, अबूझत—ब्र० सा०

शीलगर्विता-उदाहरण ।

गोत गुमान उतै इत प्रीति सु चादरि सी अँखियानि पै खैंची ।
टूटै न कानि दुहू सुखदानि की देव सु हौं दुहू ओर तें ऐंची[१] ।
शील लटो तब हौं पलटो प्रगटो सु निरंतर अंतर कैंची ।
या मन मेरे अनेरे[२] दलाल ह्वै हौं नंदलाल के हाथ लै बैंची ।।६३।।

[१] दुहू ओरन पेंची—सा०, दुहू औरति पेंची—ब्र० । [२] सलोने—ब्र० सा० ।

वैभवगर्विता-उदाहरण ।

जोरि सखी सजनी जन बीजन[१] रीझन रीझ रिझावन की रिधि ।
भाषन भूषन[२] भेष विसेष सु[३] भोजन पान सुगंधन की निधि ।
देव सभाजन साज समाजन[४] साजन राज समाजन की सिधि ।
भामते को उपभोग सभोगनि[५] भौन मैं राख्यो लोभाय[६] भली विधि ।।६४।।

[१] सजनी जन नीजन—सा० । [२] भूषन भाषन—गं० । [३] विसेष न—सा० । [४] साजन भाजन—गं० । [५] सुभामिनि—गं० । [६] भुलाय—ब्र० ।

भूषनगर्विता-उदाहरण ।

लाल लसै बिलसै जिय में हुलसै हियरा[१] कुच बीच कलोलै ।
कंठ लगे मनि कंठ को मानिक[२] सीस को फूल दुकूलनि खोलै[३] ।
भाल को विंदु सोहाग को कंकन वीर को हीर विलास कपोलै[४] ।
मोती भयो नथ में न थम्है दुरकी सों लग्यो अधरा पर डोलै[५] ।।६५।।

[१] हिय मैं—गं० । [२] कठुला मनि कंठ ह्वै—गं० । [३] दुकूल अमोले—गं० । [४] कपोल विलोलै—गं० । [५] मोती भयो मोसुर की सो लग्यो अधरा अधरा पर डोलै—सा० ब्र० प्रति में चरणों का क्रम १-२-४-३ है ।

मध्या प्रौढ़ा भावती त्यहि धीरादिक भेद ।
मुग्धा लाज प्रधान तिय मानस में लघु खेद ।।६६।।
उदाहरण सबके कहे सुकिया नारि प्रसंग ।
अब बरनत हौं नायक नर्म सचिव विट संग[१] ।।६७।।

[१] परकीया गनिका बहुरि देस नारि बहु रंग—सा० ।

ज्यों ही एती नायिका त्यों ही नायक चारि ।
कहि अनुकूल सु दक्ष अरु[१] सठ अरु[२] धृष्ट विचारि ।।६८।।

[१] दक्षन चतुर—ब्र० । [२] फिर—सा० ।

एक नारि अनुकूल अरु सकल नारि सम दक्ष ।
सापराध सठ सो छिप्यो उघर्यो धृष्ट समक्ष ।।६९।।

अनुकूल-उदाहरण ।

पीछे पीछे डोलत है सामुहै ह्वै बोलत है खोलत है घूँघट सो प्रानन पुखोत है ।
पग पग मग मैं बिछाय प्रेम पावड़े से धोखेहू न भूले देखा देखी मैं घुखोत[१] है ।

देव सखियानि की सिराई अँखियानि सब निस दिन देखि अनदेखेन दुखोत है[२]।
इंदुवदनी के नीके इंदु से वदन श्रमविंदुन गोविंद अरविंदन सुखोत है।।७८।।
[१] दुखोत—ब्र०, सुखोत—सा०। [२] देखि देखि निसदिन अनदेखन दुखोत है—गं०।

दक्षिण-उदाहरण।

बोलि बोलि भीतर तें खोलि खोलि घूँघटन मन के मलोल लाल मेटत फिरत है।
केसरि गुलाल[१] मुख माड़े बिनु छाँड़े तहाँ आड़े उर आनंद समेटत फिरत है।
नीवी गुन तोरत है कंचुकी बिछोरत है चंचन लै कुचन लपेटत[२] फ़िरत है।
फाग मिस देव अनुराग भरि भौन[३] रह्यो भुजा भरि भामिनीनु भेंटत फ़िरत है।।७१।।
[१] गुलाब—गं० सा०। [२] चपेटत—गं०। [३] अनुराग भरी हिये हरी भौन भौन—सा०, अनुराग भरि राग करि भौन भौन—गं०।

सठ-उदाहरण।

तीरथ चरन सोन अरून[१] दुकूल देव रंग की रतन कांची सेत बंधु[२] थल है।
माया की अवधि हास मोहे मनु मथुरा सु देख्यो मैं न कासी को प्रकासु सो अमलु है।
शीस मनिकरनी की सोहति[३] त्रिभाग बेनी राखै अब अंतिकै न द्वारिकाहू पल है।
तो सुरतरंगिनी के संग अपराधु कैसो अद्भुत भर्‍यो नैन पुष्कर मैं जलु है।।७२।।
[१] आनन—सा०। [२] सोरबंध—गं०। [३] मोहति—ब्र० सा०।

धृष्ट-उदाहरण।

आये हौ भामिनि भेंटि कुरौ[१] लगि फूल धरे अनुकूल उदारै।
केसरि जानि[२] तुम्हैं जु सुहागिनि आसव लै मुख सों मुख डारै।
कीन्हीं सनाथ हौं नाथ मया करि वे इत को उतको न बिचारै[३]।
होय असोक सुखी[४] तुम लौं अबला नन को अब[५] लातन मारै।।७३।।
[१] करै—सा०। [२] जाति—गं०। [३] मो बिनु को इतनी जु विचारै—गं०। [४] सखी—ब्र० सा०। [५] जब—ब्र० सा०।

नर्म सचिव।

नर्म सचिव तिनको सखा ताहूँ त्रिविधि बखान।
पीठ मर्द विट दूसरो और विदूषक जान।।७४।।
पीठ मर्द अति ईठ चित विट बत चतुर[१] बसीठ।
उपहासी सो विदूपक मान मनावत ढीठ[२]।।७५।।
[१] खत चतुर—गं०। [२] विदूपकहि स्यानम भवत ढीठ—गं०।

पीठमर्द-उदाहरण।

ईगुर सो रंग एंड़िन बीच भरी अँगुरी अति कोमलताइनि।
बंदन विंदु मनो दमके नख देव चुनी चमके ज्यों सुभाइनि।
वंदत नन्दकुमार तिहारेई राधे वहै ब्रज की ठकुराइनि।
नूपुर सिंजित[१] मंजु मनोहर जावक रंजित कंज से पाइनि।।७६।।
[१] संजत—सा०।

विट-उदाहरण ।

बैठी कहा धरि मौन भटू रँग भौन तुम्हें बिनु लागत सूनो ।
चातक लौं तुमही सरि[१] देव चकोर भयो चिनगी करि चूनो ।
साँझ सोहाग की माँझ उदो[२] करि सौति सरोजन को बन[३] लूनो ।
पावस तें उठि[४] कीजिये चैत अमावस तें उठि कीजिये पूनो ।।७७।।

[१] रटि—ब्र० सा० । [२] नदौ—सा० । [३] बल—सा० । [४] चलि—ब्र० सा० ।

विदूषक-उदाहरण ।

मोसों कह्यो सु भली करी[१] भामिनी भावते सों न कह्य परिहैगो ।
ऐसी उसास लै ऐसो कुबोल जु ऐसे कह्यो सु लह्यो[२] परिहैगो ।
देव न मानति है मृगनयनी पै आजु की रैन रह्यौ परिहैगो ।
पारिहौगो सखियान लिखै अँखियान प्रवाह बह्यो[३] परिहैगो ।।७८।।

[१] कह्यो—ब्र० । [२] सु कह्यो—ब्र० । [३] कह्यो—ब्र० ।

७८ से ८४ संख्या के छन्द गं० प्रति में त्रुटित हैं ।

मानमोचन-उपाय ।

साम दाम अरु भेद अरु[१] प्रनति उपेक्षा भाइ ।
अरु प्रसंग विभ्रंस ये मोचन मान उपाइ ।।७९।।

[१] पुनि—सा० ।

तिनके लक्षण ।

साम छिमापन सो कह्यो दानादिक सो दान ।
भेद सखी समता मिले प्रनति नम्रता जान[१] ।।८०।।

[१] मान—ब्र० ।

वचन अन्यथा अर्थ जहँ सो उत्प्रेक्षा रीति ।
सो प्रसंग विभ्रंस[१] जहँ अकस्मात सुख भीति ।।८१।।

[१] विभ्रम—ब्र० ।

साम-उदाहरण ।

आपनोई अपमान कियो पहिरायबे को मनिमाल मँगाई ।
लै मिलई मिस सों कुसखी[१] करि पाइ परेहू न प्रीति जगाई ।
केतिक कौतिक बातें करी[२] कवि देव तऊ नहिं प्रेम पगाई ।
आजु अचानक आइ लला डरवाइ के[३] कामिनी कंठ लगाई ।।८२।।

[१] सु सखी—सा० । [२] केतिक कौन बुलाबै कही—सा० । [३] उर चाँपि के—सा० ।

दर्शन ।

चित्र स्वप्न प्रत्यक्ष करि तिनके दर्शन तीनि ।
तीन भाँति तिनके श्रवन देस काल भंगीन[१] ।।८३।।

[१] गंभीन—ब्र० ।

चित्रदर्शन-उदाहरण ।

न्योते गई बृषभान लली ललिता के जहाँ पति प्रीति[१] पढ़ी है।
भीति में प्रीतम देखे लिखे नवला के हिये नव लाज बढ़ी है।
आँखिन भीजी-सी अंग पसीजी-सी छोभन छीजी-सी मोह मढ़ी है।
चौंकी चकी ससकी न सकी चितै मित्र की मूरति चित्र[२] चढ़ी है ।।८४।।

[१] नव प्रीति—सा० । [२] चित्त—गं० सा० ।

स्वप्न-दर्शन-उदाहरण ।

धाइ कै अंक में सोई निसंक ह्वै पंकज-सी अँखियानि झकाझकी[१] ।
त्यों सपने में लखे अपने प्रिय प्रेमपने छवि ही की छकाछकी।
ठाढ़े ही ठाढ़े भरी भुज गाढ़े[२] सु बाढ़ी दुहू के हिये में सकासकी।
देव जगी रतियाहू गई[३] न तिया की गई छतिया की धकाधकी ।।८५।।

[१] छकाछकी—गं० । [२] बाट परी भुज ठाढ़े—ब्र०, भरी भुज ठाढ़े—सा० । [३] जगे —गं० ।

प्रत्यक्ष दर्शन-उदाहरण ।

माथे मनोहर मोर लसै पहिरे हिय में गहिरे रँग हारनि।
कुंडल मंडित गोल कपोल सुधा सम बोल[१] बिलोल निहारनि।
सोहति री कटि पीत पटी मन मोहति मंद महा पग धारनि।
सुन्दर नन्द कुमार के ऊपर वारिये कोटिक काम कुमारनि ।।८६।।

[१] चोल—सा०

देशश्रवण-उदाहरण ।

साँवरो सुन्दर रूप अनूप विसाल रसाल बड़े बड़े नैन री।
या बन आवत गैयन[१] ले नित देव दिखैयन को सुख दैन री।
मैं हूँ सुनी सो कहा कहौं लाज की बात कहूँ सखि तू कहिये न री।
वा जग वंचक देखे बिना दुखिया अँखियानि न रंचक चैन री ।।८७।।

[१] गोपनि—सा० ।

कालश्रवण-उदाहरण ।

बरजौ जननी गरजौ गुरु बंधु सो हौं कछुवै न बिसेखिहौंगी[१] ।
कल लोग रिसाहु सरीक हँसौ किन पै न[२] कछू लखि लेखिहौंगी[३] ।
नित ही इत आवति है सखि स्याम प्रभात समै पल[४] पेखिहौंगी[५] ।
कबहूँ तो कहूँ अब देव उन्हें अपनी अँखिया भरि देखिहौंगी[६] ।।८८।।

[१] बिसेखि लहौंगी—ब्र० । [२] प्रेम—सा० [३] लेखि लहौंगी—ब्र० । [४] पग—सा०, छवि —गं० । [५] पेखि गहौंगी—ब्र० । [६] देखि रहौंगी—ब्र० ।

रचनाश्रवण-उदाहरण ।

आवत है घनश्याम बने इत अंबर में चपला की मरीचि है।
मोहत मोरपखा धरे सीस गरे बनमाल मनोहर बीचि है।

पानिप रूप अनूप प्रवाह हिया भरिकै अँखियान उलीचिहै।
जोबन कीब सुधा[1] बरसाइ के यौवन की बसुधा सब सींचिहै ॥८६॥

[1] जोवन की बरसा—ब्र०।

यहि विधि दरसन श्रवन करि सुमिरे विधि हरि रुद्र।
पार लहति को बरनि के या साहित्य समुद्र[1] ॥६०॥

[1] या विधि सप्त समुद्र—सा०।

अपनी बुद्धि समान मैं बरनि कह्यो रस सार।
रस विलास रस रूप नृप भोगीलाल उदार ॥६१॥

जोगीदास नंदन भुवाल भोगीलाल को बिसाल जल जाल है प्रताप अति अतंदर।
दीनन दरिद्र दाव दावानल वान नीर नीर झरनि[1] पूरे भिक्षुक छहर[2] कंदर
मानी मनमथ मन मथन सुरूप मानिनीनु मानि सिंधु को मथान[3] मुदित मंदर।
देवतसहू नयो न साह सुलतान ज्यों सराहै सुलतान सुलतानपुर पुरंदर ॥६२॥

[1] वारि झरनि—ब्र०, नीव झरनि—सा०। [2] छनि—ब्र०। [3] प्रथान—ब्र०।

संतन[1] बसंत पाँवै चहुँ ओर चैत नाचै होरी लगी बैरिन के भौन[2] भये भसमी।
बाढ़ी अखतीज सी असाढ़ी अनबीज खेत दान दरसावनी सरस राखी रसमी।
दीपमाला साधुन असाधुन अमावस सु मानति सराध बैरी बधु ह्वै निखसमी।
जियो जुग जोगीदास जू को लाल भोगीलाल जाके द्वार सदाही बिराजै बिजै दसमी[3] ॥६३।

[1] संतत—सा०। [2] बैरिहू के मान—सा०। [3] द्वार राजति सदाही विजै दसमी—ब्र०।

संवत सत्रह से वरष और चौरासी[1] जान।
रस विलास दसमी विजय पूरन सकल कलान ॥६४॥

[1] तिरासी—गं० सा०।

इति श्री नृप भोगीलाल हित बानी देव प्रकास रस विलास शृंगार रस नायिका नायक हाव भाव दशा दूती देश वर्णनो नाम अष्टमो विलासः।

सुमिल विनोद
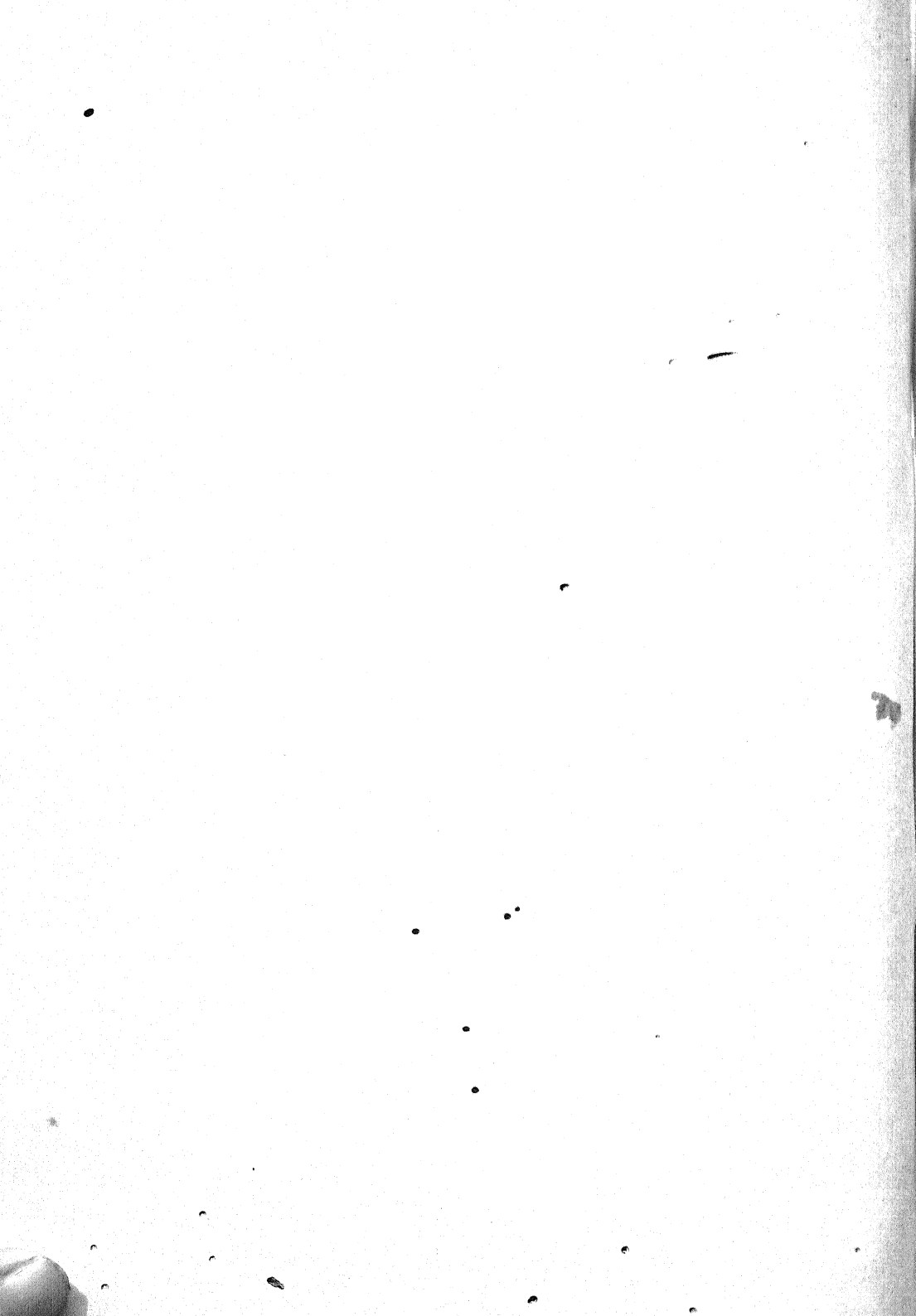
भूमिका

देवकृत अनुपलब्ध कृतियों के साथ "सुमिल विनोद" का नामोल्लेख बहुत पुराने समय से होता आ रहा है। कहा जाता है कि आज से प्रायः सौ वर्ष पूर्व मिश्रबंधुओं के सम्बन्धी, गंधौली, जिला सीतापुर, के प्रसिद्ध काव्यरसिक श्री ब्रजराज जी ने इस ग्रंथ को स्वयं कहीं देखा था। मिश्रबंधुओं ने "मिश्रबंधु विनोद" में (पृष्ठ ५६७ पर) स्वर्गीय पंडित कृष्ण बिहारी जी मिश्र ने "देव और बिहारी" में (पृष्ठ १९ पर) तथा देव काव्य के आधुनिक व्याख्याता डॉ० नगेन्द्र जी ने 'शिवसिंह सरोज' के साक्ष्य पर अपने शोध-ग्रंथ "देव और उनकी कविता" में (पृष्ठ ३६ पर) "सुमिल विनोद" का उल्लेख किया है। फिर भी इस कृति की कोई हस्तलिखित प्रति आधुनिक समय में देखने में नहीं आयी थी।

सौभाग्य से इन पंक्तियों के लेखक को "सुमिल विनोद" की एक प्रति का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के तत्त्वावधान में संचालित "मध्य प्रदेश की खोज रिपोर्ट" की अद्यावधि अप्रकाशित पाडुंलिपि में देखने को मिला। रिपोर्ट में इस ग्रंथ का नाम "सुमिल विनोद" दिया गया है।

सभा की ओर से जिन महानुभाव ने यह प्रति देखी थी तथा उससे विवरण लिया था, वह भी उस समय सभा में ही थे। उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि किसी को इस प्रति का मिलना तो दूर रहा, इसके दर्शन का पाना भी दुस्तर कार्य है। बाद में प्रति के लिये यत्न करने पर इन सज्जन का कथन ही सत्य प्रमाणित हुआ। इस घटना के प्रायः एक-दो माह के भीतर, एक सर्वथा अपरिचित सज्जन मेरे पास आए, जो देव के पाठ पर कार्य करने को इच्छुक थे। अपनी उपयोगी सूचना लेकर, चलते समय एक पत्र वह मुझे देते गये कि कदाचित् इसमें निहित सूचना मेरे किसी उपयोग की हो। पत्र बीकानेर के श्री अगरचन्द जी नाहटा का था, तथा उसमें नाहटा जी के अभय जैन ग्रंथालय में विद्यमान देवकृत ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियों की सूची थी। सूची में "सुमिल विनोद" नाम था। कहना न होगा कि "सुमिल विनोद" की इसी प्रति का उपयोग इस ग्रंथ के पाठ-संपादन में किया गया है।

ग्रंथ की प्रामाणिकता

कवि देव द्वारा "सुमिल विनोद" की रचना होने का प्रथम प्रमाण है कि इस ग्रंथ के विभिन्न विनोद संज्ञक अध्यायों के अंत में देव का नाम रचयिता के रूप में आया है। वास्तव

में इस कवि ने अपने ग्रंथों की प्रामाणिकता की समस्या स्वयं ही बहुत कुछ सुलझा दी है क्योंकि इसके प्राय: प्रत्येक ग्रंथ में इसी कवि के किसी न किसी अन्य ग्रंथ के समान छंद अवश्य मिलते हैं। इसी प्रकार "सुमिल विनोद" में तथा देवकृत "प्रेम चन्द्रिका", "सुखसागर तरंग" एवं "भवानी विलास" में समान छंद मिलने से भी "सुमिल विनोद" देव की ही रचना प्रमाणित होती है। "सुमिल विनोद" में तथा इन उपरोक्त ग्रंथों में उदाहरण छंदों के अतिरिक्त लक्षण दोहे भी समान मिलने के कारण इस ग्रंथ की प्रामाणिकता असंदिग्ध हो जाती है। इस ग्रंथ में समान लक्षण दोहों तथा उदाहरण छंदों के अतिरिक्त देवकृत अनेक छंद ऐसे भी हैं जो देव के अन्य ग्रंथों में नहीं मिलते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि "सुमिल विनोद" कवि के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कवि की ही विभिन्न रचनाओं से तैयार संकलन न होकर स्वयं कवि द्वारा प्रणीत स्वतन्त्र ग्रंथ है।

ग्रंथ-परिचय

"सुमिल विनोद" का आकार मध्यम कोटि का है, अर्थात् यह "रस-विलास", "सुख-सागर तरंग" अथवा "भाव-विलास" के समान न बृहत् है, न "देवचरित्र" अथवा "देवशतक" के समान संक्षिप्त। इसमें कुल ८ अध्याय हैं, अध्यायों का नाम अन्य ग्रंथों के समान "विलास" न होकर "विनोद" है। संपूर्ण ग्रंथ में कुल २७६ छंद हैं। उपलब्ध प्रतियों में अंतिम "अष्टम विनोद" में केवल ११ ही छंद मिलते हैं। यहीं पर प्रतियाँ खंडित हैं तथा नवरसों में शृंगार के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त शान्त तथा वीर रसों का ही वर्णन यहाँ तक हुआ है अत: यह अनुमान किया जा सकता है कि इस स्थल के आगे भी कम से कम दस-पंद्रह छंद और रहे होंगे।

"सुमिल विनोद" का मुख्य विषय रस-निरूपण है, यद्यपि नवरसों में शृंगार-रस का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसी के अंतर्गत नायक-नायिका भेद का विवेचन प्रधान रूप से हुआ है। कवि ने ग्रंथ के अन्तिम भाग, केवल "अष्टम विनोद", में वीर आदि शृंगारेतर रसों का भी वर्णन संक्षेप में किया है।

आश्रयदाता

देव कवि की यह कृति हिमातुल्ला खाँ नामक किसी धनपति अथवा राजा को समर्पित है। यह हिमातुल्ला खान कौन थे, कहाँ के शासक अथवा निवासी थे अथवा उनका समय क्या था?—अंतस्साक्ष्य इस सम्बन्ध में मौन है तथा इतिहास के विस्तृत गंभीर सागर से, संकेत-सूचिका के सर्वथा अभाव में, इन सूचनाओं का प्राप्त करना सरल कार्य नहीं है। फिर भी आशा है कि भविष्य में इनके चरित्र, निवास-स्थान आदि पर अधिक प्रकाश पड़ सकेगा।

सम्पादन-सामग्री की बहिरंग परीक्षा

"सुमिल विनोद" की केवल दो हस्तलिखित प्रतियाँ देखने में आयी हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

१ अ०—अभय जैन भंडार, बीकानेर, राजस्थान, की प्रति। इस प्रति के अन्त में प्रतिलिपि-संवत् नहीं है तथापि जिस "प्रेमतरंग चंद्रिका" की प्रति के साथ यह प्रति जिल्दबन्द है

उसकी पुष्पिका इस प्रकार है : "श्रावण बुद ३० हरियाली को सम्पूर्ण लिखी गई संवत् १६४४।" इन दोनों प्रतियों का कागज़ भी पुराना, हाथ का बना तथा मटमैला है। "सुमिल विनोद" की अन्तिम पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि किन्हीं धननाथ जोगी ने प्रतिलिपि तैयार की थी। श्री नाहटा जी के संग्रह की "सुजान-विनोद" की प्रति भी इन्हीं धननाथ जोगी द्वारा संवत् १६४६ में प्रतिलिपि हुई थी। "सुमिल विनोद" की इस प्रति का आकार लगभग आठ इंच तथा बारह इंच है। प्रति अपनी चौड़ाई में लिखी है। लेखन-कार्य में काली-लाल स्याही का उपयोग हुआ है। प्रति में कुल ४१ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर १६ पंक्तियाँ हैं।

स्वीकृत पाठ ८ : ११ के पश्चात् इस प्रति में ढाई पंक्ति पाठ और था किन्तु इस पर नया सादा महीन कागज ऊपर से लगाकर लाल स्याही से पुष्पिका लिख दी गई है, जो इस प्रकार है—"इति श्री विनोद हेतवे कवि-देव विरचिते सुमिल विनोदे अष्ट सम्पूर्ण—

लिष्य धननाथ जोगी की जै पूरम देवास ॥

अनुमान है कि कागज के नीचे का पाठ किसी छन्द का अंश न होकर "सुमिल विनोद" की दूसरी प्रति, खो० प्रति में विद्यमान "······११ यह कवित्त प्रेम-तरंग चंद्रिका में लिखे हैं यामे इहा नहीं लिखे हैं" पाठ ही था एवं प्रतिलिपिकार अथवा प्रति के स्वामी ने अपनी प्रति का खण्डित रूप आवृत करने के हेतु इसे कागज से ढँक कर ऊपर से पुष्पिका लिख दी है।

सामान्य रूप से अ० प्रति का पाठ शुद्ध एवं विश्वसनीय है। २ खो० अर्थात् नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित "मध्य-प्रदेश की खोज रिपोर्ट" से प्राप्त "सुमिल विनोद" की प्रति का उल्लेख—

इस प्रति के सम्बन्ध में उपलब्ध सूचनाएँ उपरोक्त खोज-रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार हैं :—

> "ग्रंथ-नाम 'सुविमल विनोद'—मिल का कागज—पत्र १६—आकार ८ इंच, ६ इंच—प्रति पृष्ठ पंक्तियाँ २०—ग्रंथ का आकार ४८० अनुष्टुप—कागज नवीन—सजिल्द—लिपिकाल १६४७ विक्रमी—ग्रंथ स्वामी पं० महेशप्रसाद पाण्डेय, ग्राम-पोस्ट निपनिया, रीवाँ, मध्य प्रदेश।"

ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यद्यपि विवरण में ग्रंथ-नाम "सुविमल विनोद" है तथापि इस प्रति में विनोद के अन्त की पुष्पिका में ग्रंथ-नाम "सुमिल विनोद" ही मिलता है : "इति श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे कवि देव विरचिते सुमिल विनोदे······सप्तम विनोद :।" अ० प्रति के समान इस प्रति में भी अन्तिम अंश त्रुटित है—८ : ११ के पश्चात् इस प्रति में भी पाठ नहीं मिलता है। अष्टम विनोद के ८, ६, १०, ११ संख्या के छंद अ० प्रति में पूर्ण हैं किन्तु ये ही छंद इस प्रति में इस रूप में हैं : "याही भौन भीतर ८ मोहि तुम्हैं अन्तर ९ सखिन बिसारि लाज १० जो न जी मैं प्रेम ११ यह कवित्त प्रेम-तरंग चंद्रिका में लिखे हैं यामे इहा लिखे नहीं हैं।"

वास्तव में उपरोक्त सभी छंद "प्रेम चंद्रिका" में भी मिलते हैं, निपनिया के इस संग्रह में "अष्टयाम" के अतिरिक्त "प्रेम चंद्रिका" की भी प्रति है अतः ऐसा अनुमान होता है कि इस प्रति अथवा इसकी आदर्श प्रति के प्रतिलिपिकार ने कदाचित् शीघ्रता में होने तथा "प्रेम चंद्रिका" की संलग्न पोथी में ये समान छंद विद्यमान होने के कारण यहाँ उन छंदों का केवल प्रतीक लिख दिया है। इस सम्भावना पर इस कारण भी विश्वास होता है क्योंकि अ० प्रति में भी अनेक स्थलों पर सम्पूर्ण छंद के स्थान पर केवल उसका प्रतीक मात्र मिलता है तथा इसका उल्लेख भी कर दिया गया है कि यह छंद "प्रेम चंद्रिका" में है। उदाहरण के लिए ऐसे दो स्थल ४ : १५ तथा ४ : १७ हैं। इस प्रकार के स्थलों पर विस्तार से विचार हम आगे करेंगे।

"प्रेम चंद्रिका" की प्रति से इस प्रति का सम्बन्ध इस प्रति का विवरण लेनेवाले सभा के प्रतिनिधि के निम्नलिखित नोट से भी पुष्ट होता है, "...कहीं-कहीं ग्रंथ का नाम "सुविमल विनोद" के बजाय "प्रेम चंद्रिका" लिखा है—"इति श्री देवकृते प्रेम-चंद्रिकायां प्रेमवर्णनो नाम प्रथम प्रकाशः।"

इस प्रति की अन्तिम पुष्पिका से प्रतिलिपि संवत् तथा प्रतिलिपिकार का नाम इस प्रकार स्पष्ट होता है—

"इति श्री देव कवि रचिते सुमिल विनोद ग्रंथम सभादी नगमत १८ संवत् १९४७ के मिती दुती भाद्रवदि [१] का लिखा लाला कुंजबिहारी॥"

खेद है कि खो० प्रति सुलभ न हो सकी अतः इस प्रति का उपयोग इस सम्पादन-कार्य में नहीं किया जा सका है।

सम्पादन सामग्री की अन्तरंग परीक्षा

प्रतियों का सम्बन्ध—"सुमिल विनोद" की उपरोक्त दोनों प्रतियों की तुलना इनमें से दूसरी प्रति के अनुपलब्ध होने के कारण सम्भव नहीं है तथापि सुलभ सामग्री के आधार पर ही इन दोनों प्रतियों के परस्पर सम्बन्ध पर नीचे विचार किया जा रहा है।

दोनों ही प्रतियाँ अपूर्ण हैं तथा दोनों ही प्रति एक ही स्थल ८ : ११ पर खण्डित होती हैं। अ० प्रति सम्भवतः १९४४ की है तथा खो० प्रति निश्चित रूप से संवत् १९४७ की है, अतः दोनों ही प्रतियाँ सम्भवतः एक समान आदर्श की दो प्रतिलिपियाँ हैं। संवत् १९४७ की खो० प्रति से संवत् १९४४ की अ० प्रति का प्रतिलिपि होना तो सम्भव नहीं है परन्तु यह अवश्य सम्भव है कि अ० प्रति में खो० प्रति की प्रतिलिपि हुई हो। एक अन्य सहायक प्रमाण के द्वारा भी इन दोनों प्रतियों का पारस्परिक सम्बन्ध प्रमाणित होता है।

बहुधा एक संग्रह में विद्यमान हस्तलिखित ग्रंथों का दूसरे संग्रह में भी प्राप्त होना इन दोनों संग्रहों की प्रतियों के परस्पर प्रतिलिपि-सम्बन्ध से सम्बन्धित होने की सम्भावना की ओर निर्देश करता है। विशाल संग्रहों की अपेक्षा छोटे संग्रहों के सम्बन्ध में यह सम्भावना अधिक संगत है। "सुमिल विनोद" की इन दोनों प्रतियों का संग्रह ऐसी ही सम्भावना को पुष्ट करता है। कहना न होगा कि इन दोनों ही संग्रहों के ग्रंथों में देवकृत केवल "प्रेम चंद्रिका" तथा "सुमिल विनोद" की प्रतियाँ हैं। रीवाँ के संग्रह में "अष्टयाम" की भी प्रति है किन्तु अभय जैन

भण्डार में नहीं है, अभय जैन भण्डार में "सुजान विनोद" की भी प्रति है किन्तु निपनिया में इस ग्रंथ के होने का उल्लेख खोज-रिपोर्ट में नहीं है। दोनों संग्रहों में समान ग्रंथों की उपस्थिति के सहायक प्रमाण के आधार पर भी हमारा मत है कि "सुमिल विनोद" की इन दोनों प्रतियों में परस्पर प्रतिलिपि सम्बन्ध है तथा तिथियों के आधार पर खो० प्रति अ० प्रति की प्रतिलिपि है।

सम्पादन सिद्धान्त—किसी भी काव्य-कृति का पाठ-सम्पादन उसकी केवल एक प्रति में उपलब्ध पाठ के आधार पर करना प्रायः कठिन होता है। अधिक से अधिक सतर्क होने पर भी यदि सम्पादित पाठ में कुछ न्यूनताएँ रह ही जायँ तो इसमें आश्चर्य नहीं है। कम से कम सम्पादक का उत्तरदायित्व तो ऐसे सम्पादन में अत्यधिक बढ़ जाता है—परोक्ष रूप से वह सम्पादित पाठ के प्रत्येक शब्द के लिए उत्तरदायी होता है।

ऊपर के विवरण से यह प्रकट है कि "सुमिल विनोद" के पाठ-सम्पादन के लिए केवल एक हस्तलिखित प्रति का पाठ उपलब्ध किया जा सका है। फिर भी, केवल एक प्रति के आधार पर इस ग्रंथ का पाठ-सम्पादन सन्तोषजनक रूप में होना सम्भव हुआ है। किसी रचना का पाठ-सम्पादन केवल एक प्रति के आधार पर करते समय उस प्रति में विद्यमान पाठ-विकृतियों का निवारण करना सम्पादक का प्रथम दायित्व होता है। वास्तव में इन पाठ-विकृतियों का निवारण करना ही पाठ-सम्पादन की वैज्ञानिक विधि का प्रथम लक्ष्य है। इस मार्ग का अनुसरण करते हुए मूल पाठ के अपने गन्तव्य तक पहुँच सकना तो सम्पादन की आदर्श स्थिति है ही, रचना के प्राप्त रूप से पाठ-विकृतियों को विलग कर शुद्ध पाठ के एक सोपान के निकटतर पहुँचना भी सामान्य उपलब्धि नहीं है। अतः केवल एक प्रति में प्राप्त "सुमिल विनोद" के पाठ से पाठ-विकृतियों को पृथक् कर सकने में भी हमने अपना लक्ष्य अंशतः सिद्ध माना है। पर हम इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हैं। केवल एक प्रति के आधार पर देव की इस कृति का सम्पादन करना इस कारण भी अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि इस ग्रंथ में तथा देवकृत अन्य ग्रंथों में समान छन्द बहुतायत से मिलते हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के रूप में मुख्य सम्पादन-सामग्री का अभाव होने पर भी देवकृत अन्य ग्रंथों में प्राप्त समान पाठ का उपयोग सहायक सामग्री के रूप में किया गया है।

सहायक सम्पादन-सामग्री के रूप में देवकृत अन्य ग्रंथों में प्राप्त समान छंदों के पाठ का उपयोग सतर्कता से किया गया है। ऐसे ग्रंथों के सम्पादन में, जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ आवश्यक संख्या में प्राप्त हुई हैं, हम देवकृत अन्य कृतियों में प्राप्त समान छंदों के पाठ पर बहुत कम आश्रित रहे हैं। इसका कारण स्पष्ट है। हम समझते हैं कि जब कवि अपने एक ग्रंथ का छंद अपने दूसरे ग्रंथ में भरती करता है तो बहुत सम्भव है कि वह छंद के पाठ में भी कुछ संशोधन-परिवर्तन करता हो। कम से कम इस सम्भावना को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। दो भिन्न कृतियों में विद्यमान समान छंदों के पाठ का इस प्रकार अवैज्ञानिक रीति से परस्पर मिश्रण कर देने पर कवि द्वारा इस पाठ-संशोधन का अध्ययन करना सर्वथा असम्भव होगा, अतः हमने ऐसा पाठ-मिश्रण कहीं भी नहीं होने दिया है। "सुमिल विनोद" के सम्पादन में तथा देव की उन कृतियों के सम्पादन में जिनकी केवल एक ही हस्तलिखित प्रति मिली है, केवल उसी

स्थल पर अन्य ग्रंथ में प्राप्त छंद के पाठ से सहायता ली गई है जहाँ उपलब्ध प्रति का पाठ निश्चित रूप से अशुद्ध था। हमने ऐसे स्थलों पर अपनी ओर से पाठ-संशोधित करने की अपेक्षा कविकृत किसी अन्य ग्रंथ में विद्यमान उसी छंद का संगत पाठ स्वीकृत करना उचित समझा है। केवल इन्हीं थोड़े से स्थलों पर सम्पादित कृति के मूल में कवि द्वारा पाठ-संशोधन किये जाने की सम्भावना और भी कम है इसलिए कवि द्वारा पाठ-संशोधन की सम्भावना के उपरोक्त प्रश्न पर भी निर्भीक होकर अन्य ग्रंथों से पाठ साभार स्वीकृत किया जा सकता है।

"सुमिल विनोद" की अ० प्रति के पाठ में केवल उन्हीं स्थलों पर पाठ-संशोधन किया गया है जहाँ अ० प्रति का पाठ निश्चित रूप से अशुद्ध था। इन पाठ-संशोधनों की दो कोटियाँ हैं। प्रथम, ऐसे पाठ-संशोधन जो अन्य ग्रंथों में छंद के प्राप्त पाठ द्वारा पुष्ट है। इस प्रकार के पाठ-संशोधन के साथ इतर ग्रंथ का उल्लेख किया गया है।

समान छंदों का तुलनात्मक पाठ पाठांतर के रूप में नहीं दिया गया है, क्योंकि यह पृथक् अध्ययन का विस्तृत विषय है।

अ० प्रति के पाठ में प्राप्त अपूर्ण छंद

अ० प्रति की परीक्षा करते हुए हमने ऊपर देखा है कि प्रतिलिपिकार ने प्रति के पाठ में कुछ स्थलों पर छंद का पूरा पाठ न देकर प्रारंभिक दो-तीन शब्द प्रतीक-स्वरूप दे दिये हैं। उदाहरण के लिये अ० प्रति में ४ : ७ पर "आली झुलावति" छंद के संपूर्ण पाठ के स्थान पर केवल छंद का संकेत इस प्रकार मिलता है, "आली झुलावति झूकनि सों इत्यादि।" अधिकतर ऐसे स्थलों पर अपूर्ण छंद के साथ उस ग्रंथ का नाम भी उल्लिखित है जिस ग्रंथ में छंद का संपूर्ण पाठ मिलता है, जैसे ४ : १५ पर "जागत जागत खीन" छंद का संकेत इतर ग्रंथ के उल्लेख सहित इस प्रकार है—"ध्यान को विरह निवेदन प्रेम तरंग चंद्रिका में है। जागत जागत खीन।" अथवा ४ : १७ पर "जे बिनु देखे" छंद का संकेत "वद्यंहरण (?) चन्द्रिकाम्या ए बिनु।" कहना न होगा कि अन्य ग्रंथों में इन छंदों के मिलने का अ० प्रति में प्राप्त यह उल्लेख सर्वदा सही निकला है, जैसे उपरोक्त दोनों स्थलों पर "जागत जागत खीन" छंद अन्यत्र केवल "प्रेम चंद्रिका" ग्रंथ में ही २ : ३७ पर तथा "जे बिनु" छंद भी अन्यत्र केवल उसी ग्रंथ में २ : ३८ पर मिलता है।

केवल एक स्थल ५:६ पर ग्रंथ का उल्लेख अशुद्ध है। इस छंद का संकेत अ० प्रति में इस प्रकार है, "अथ वासक सज्जा अष्टयाम मैं। देव सखी इक लीने फुलेल।" किन्तु यह छंद "अष्टयाम" में नहीं, अन्यत्र केवल "सुखसागर तरंग" में छंद संख्या ६३२ पर आया है।

इन छंदों के अपूर्ण होने का क्या कारण है? क्या स्वयं कवि ने इन छंदों का पाठ संपूर्ण न देकर उनके प्रतीक मात्र दे दिये हैं? ये छंद प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त हैं? अथवा प्रतिलिपिकार ने ही शीघ्रता के कारण इस रूप में संक्षेप किया है? इन छंदों के सम्बन्ध में ये प्रश्न विचारणीय हैं।

इनमें से प्रथम, कवि द्वारा संपूर्ण छंद के स्थान पर प्रथम छंद दिये जाने की संभावना उचित नहीं है। सामान्यतया कोई भी कवि मूल ग्रंथ में छंदों का संक्षेप इस रूप में नहीं करेगा क्योंकि इससे पाठक तक अपनी रचना पहुँचाने का उसका प्राथमिक उद्देश्य ही खंडित होता है। उसे यदि

संक्षेप ही अभीष्ट होगा तो वह विषय-विवेचन में कहीं संक्षेप करेगा, विवेच्य प्रसंग को इधर-उधर से काट-छांट कर नष्ट-भ्रष्ट नहीं करेगा। ग्रंथ के आकार को संक्षिप्त करने की यह प्रवृत्ति लेखक की नहीं, पूर्णतया प्रतिलिपिकार की है।

प्रतिलिपिकार द्वारा इन छंदों के प्रक्षिप्त होने की सम्भावना भी इसलिए अमान्य है क्योंकि इस प्रति में इन छंदों का केवल प्रतीक मात्र मिलता है। पाठ-वृद्धि के रूप में प्रक्षेप करने पर प्रतिलिपिकार का उद्देश्य रचना के कथ्य में पाठ-परिवर्धन करना होता है अतः यदि ये छंद प्रतिलिपिकार द्वारा ग्रंथ में सम्मिलित की गई पाठ-वृद्धि होते तो स्वभावतः वह संपूर्ण छंद देता, छंद का केवल प्रतीक नहीं। छंद का प्रतीक देने से कवि के समान प्रतिलिपिकार का अभीष्ट भी सिद्ध नहीं होता है।

उपर्युक्त संभावनाओं में अंतिम, प्रतिलिपिकार द्वारा शीघ्रता के कारण संपूर्ण छंद के स्थान पर केवल प्रतीक रखने की संभावना हमें संगत प्रतीत होती है तथा प्रतिलिपिकार द्वारा ऐसा किया जाने का कारण भी स्पष्ट है। इन विवेच्य छंदों में अधिकतर छंद ऐसे हैं जो अन्यत्र "प्रेम चंद्रिका" में भी, अथवा केवल "प्रेम चंद्रिका" में ही आए हैं। प्रतिलिपिकार के पास "प्रेम चंद्रिका" की प्रति विद्यमान थी तथा इस प्रति में इन छंदों का पूर्ण पाठ भी था अतः उसने यहाँ उन छंदों का पाठ पूरा-पूरा न देकर केवल उनका प्रतीक लिख लेना पर्याप्त समझा। ध्यान रहे कि यदि प्रतिलिपिकार का उद्देश्य केवल संक्षेप करना ही होता तो इस प्रति में अनेक ऐसे छंद भी अपूर्ण मिलते जो इस प्रति में तथा "प्रेम चंद्रिका" में समान होने के अतिरिक्त "सुखसागर तरंग", "सुजान विनोद" एवं "भवानी विलास" में समान हैं। "सुमिल विनोद" में तथा इन अंतिम तीन ग्रंथों में अनेक छंद समान मिलते हैं किन्तु संक्षेप केवल उन्हीं छन्दों का हुआ है जो "प्रेम चंद्रिका" में तथा इस प्रति में समान हैं।

ऊपर केवल एक स्थल ५ : ६ पर "अष्टयाम" में पूर्ण छन्द मिलने का अशुद्ध उल्लेख केवल प्रतिलिपिकार के भ्रम के कारण हुआ है। "अष्टयाम" के चतुर्थ पहर में एकाधिक छन्दों में "सुमिल विनोद" के इस छन्द के समान, सखियों द्वारा नायिका के शृंगार का वर्णन है अतः सम्भव है कि प्रतिलिपिकार को दोनों छन्द समान होने का मिथ्या भ्रम हुआ हो। "सुमिल विनोद" का छन्द इस प्रकार है—

"देव सखी इक लीन्हें फुलेल सुचोया के चोरब्रि येकै निचोरै।
एकै लिये कंगही इक दर्पन चेरी लिये इक बीजन डोरै ॥" आदि

इससे तुलना के लिये "अष्टयाम" से केवल एक स्थल उदाहरणस्वरूप दिया जाता है—

"चोया सों चुपरि केस केसरि सुरंग अंग केसर उबटि अन्हवाई है गुलाब सों।
अतर तिलोछि आछे अम्बर लै पोंछी ओछी छतिया अंगोछि हंसि हंसि रस भाव सों।"
—"अष्टयाम"—४ : ६

"अष्टयाम" की प्रतिलिपि "सुमिल विनोद" की प्रतिलिपि के साथ बीकानेर के संग्रह में नहीं है। श्री नाहटा जी के कथनानुसार यह प्रति उन्हें जयपुर से प्राप्त हुई है। हमारा अनुमान है कि जयपुर में "सुमिल विनोद" के साथ "अष्टयाम" की प्रति भी अवश्य रही होगी।

रीवाँ के संग्रह में तो "सुमिल विनोद" के साथ "अष्टयाम" की प्रति है ही। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रतिलिपिकार ने "अष्टयाम" की प्रति भी अपने पास होने के कारण, उसमें तथा "सुमिल विनोद" में एक छंद भ्रमवश समान जानकर यहाँ इस छंद का भी केवल प्रतीक लिख दिया है।

इन छंद-प्रतीकों पर भी क्रमानुसार छंद-संख्या पड़ी है, इससे भी यही प्रमाणित होता है कि ये छन्द मूल-ग्रंथ के हैं। केवल एक स्थल पर छन्द-प्रतीक पर छन्द संख्या नहीं पड़ी है पर इसे हम प्रमादवश छूटा हुआ मान लेते हैं।

खेद है कि इन त्रुटित छंदों का पाठ "सुमिल विनोद" की किसी उपलब्ध प्रति से प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ, है परन्तु सौभाग्य से इन छंदों में से अधिकतर छंद देवकृत अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं अतः हमने इन इतर ग्रंथों से ऐसे छंदों का पाठ स्वीकार करना इस ग्रंथ की पूर्णता के विचार से आवश्यक समझा है। यदि "सुमिल विनोद" की ही किसी प्रति से यह पाठ लिया जाता तो अत्युत्तम होता क्योंकि "सुमिल विनोद" तथा देवकृत अन्य ग्रंथों में प्राप्त समान छंदों की तुलना से यह प्रकट होता है कि कवि ने अन्य ग्रंथों की अपेक्षा "सुमिल विनोद" के पाठ में यत्र-तत्र संशोधन-परिवर्तन किया है, अतः सम्भव है कि उसने इन छंदों के पाठ में भी इसी प्रकार कुछ परिवर्तन किया हो। फिर भी हमने प्रति अपूर्ण होने के कारण इन स्थलों पर पाठ भी खंडित छोड़ देने की अपेक्षा अन्य ग्रंथों से पाठ साभार स्वीकृत करना श्रेयस्कर माना है। हम इस तथ्य से आश्वस्त हैं कि ये छंद संख्या में केवल छः हैं अतः इनमें किये हुए कवि-कृत पाठ-परिवर्तन और भी कम रहे होंगे।

"सुमिल विनोद" के सम्पादित पाठ में ऐसे स्थलों पर अन्य ग्रंथों से प्राप्त पाठ का उल्लेख उस ग्रंथ तथा उसमें इस छंद के स्थल-निर्देश सहित कर दिया गया है। ये पाठ अ० प्रति में प्राप्त छंद प्रतीक से पृथक् कोष्ठकों में दिये गये हैं। "सुमिल विनोद" में इन स्थलों की सूची, छंद-प्रतीक तथा स्वीकृत पाठ के स्रोत का विवरण इस प्रकार है :—

१—सुमिल विनोद ४:७ "आली झुलावति"—"सुजान विनोद" ७:२५ से,
२— ,, ,, ४:१५ "जागत जागत खीन"—"प्रेम चंद्रिका" २:३० से,
३— ,, ,, ४:१७ "जे बिनु देखे"—"प्रेम चंद्रिका" २:३८ से,
४— ,, ,, ५:६ "देव सखी इक"—"सुखसागर तरंग" ६:३२ से,
५— ,, ,, ५:२६ "सूझत न गात"—"सुजान विनोद" ४:३२ से,
६— ,, ,, ५:४४ "लागत समीर लंक"—"सुजान विनोद" ५:४४ से

ऐसे पाठ-संशोधन जो देवकृत अन्य ग्रंथों में प्राप्त उसी छंद के पाठ द्वारा पुष्ट हैं

१ : ४ स्थायी भाव—

रति हाँसी अरु सोक रिस अरु उछाह छिन मानि।
आहचरज वैराग्य ये नवरस थाई जानि॥

उत्साह वीररस के स्थायी भाव के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ उत्साह के अर्थ में ही "उछाह" शब्द प्रयुक्त हुआ है किन्तु अ० प्रति में "अरु उछाह" के स्थान पर, **"उतसव"** पाठ

है। प्रसंग की दृष्टि से असंगत होने के अतिरिक्त इस पाठ में दो मात्राएँ न्यून होने के कारण दोहे के चरण की गति भी दूषित होती है। "काव्य रसायन" में ३:१४ पर यह दोहा मिलता है, तथा इसमें भी "अरु उछाह" पाठ मिलता है। अतः यहाँ "अरु उछाह" पाठ स्वीकृत हुआ है।

१ : ७

अर्थ **धर्म** तें होत अरु होत अर्थ तें काम।
ताते सुख सुख को सदा रस सिंगार सुखधाम॥

दोहे में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चतुर्वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध वर्णित है। कवि ने इसी भाव को "भाव विलास" में १ : २ पर इस प्रकार प्रकट किया है—"अरथ धर्म तें होई अरु काम अरथ तें जानु।" अ० प्रति में "अर्थ धर्म तें···" पाठ के स्थान पर "अर्थ दया तें···" पाठ मिलता है। जीवन की धर्म-अर्थादि चार अभिलाष्य वस्तुओं में "दया" की गणना नहीं होती है अतः अ० प्रति में प्राप्त "दया" पाठ असंगत है। इसके स्थान पर "भाव विलास" में प्राप्त इस दोहे के पाठ से "धर्म" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ : १३

रति पूरन सिंगार सों मिलि विभाव अनुभाव।
सात्विक संचारिन झलकि झलकावति हैं हाव॥

"···झलकावति हैं हाव" के स्थान पर अ० प्रति में पाठ है "झलकावति **दस** हाव।" स्मरण रहे कि नायिका के हृदय में मिलन तथा संभोग की इच्छा के कुछ-कुछ प्रकट होने को हाव कहते हैं, अतः "हाव" के प्रसंग में संख्यावाची "दस" शब्द यहाँ प्रयुक्त होना सर्वथा अनुचित है।" "भवानी विलास" में १ : १८ पर इस दोहे में भी "···झलकावत हैं हाव" पाठ है अतः यहाँ अ० प्रति के "दस" पाठ के स्थान पर "हैं" पाठ स्वीकृत हुआ है।

१ : २४ प्रथम दो चरण—

छीजत रंग पसीजत अंग तरंगित रोम हियो अभिलाषैं।
मोह मढ़े मग मैं न कढ़ैं पग बोल बढ़ैं न पढ़ैं मुख भाखैं॥

इस छंद में कवि ने पूर्व गणित सात्विकादि अष्ट संचारियों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। प्रथम चरण में वैवर्ण्य, स्वेद तथा रोमांच सात्विक अनुभावों का एवं द्वितीय चरण में केवल स्वरभंग का उदाहरण है। द्वितीय चरण में "···बोल बढ़ैं न पढ़ैं मुख भाखैं" के स्थान पर अ० प्रति में कदाचित् "म" में "स" का भ्रम होने से पाठ है "···बोल बढ़ैं न पढ़ैं **सुख** भाखैं।" बोल न फूटने तथा कंठावरोध होने के प्रसंग में "सुख" की अपेक्षा "मुख" पाठ संगत प्रतीत होता है अतः "सुखसागर तरंग"—१०९ पर इस छंद में प्राप्त "मुख" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ : २५ संचारी भाव। प्रथम-द्वितीय तथा पंचम-षष्टम चरण—

है निर्वेद गिलानी संक असुया मद श्रम कहु।
आरस चिंता **दैन्य** मोह सुमिरन धीरज रहु।
अवबोध क्रोध अवहित्थ मति **त्रास** व्याधि उन्माद मृति।
चौविधि वितर्क उग्रता तैतीसों मानस प्रकृति।"

द्वितीय चरण के "दैन्य मोह" पाठ के स्थान पर कदाचित् प्रतिलिपिकार के मस्तिष्क में "मोह" की प्रतिध्वनि होने के कारण पाठ है "द्रोह मोह"। "द्रोह" संचारी-नाम के रूप में निरर्थक तथा असंगत है। "प्रेम तरंग" १ : ६ पर इस चरण का पाठ इस प्रकार है,"आरस दैन्यरु मोह चित सस्मृति धृति हूँ क्रम।" इस पाठ में प्राप्त "दैन्यरु" शब्द के संकेत पर यहाँ "द्रोह" के स्थान पर "दैन्य" शब्द रखा गया है।

इसी प्रकार अ० प्रति में प्रथम चरण के "त्रास व्याधि" के स्थान पर "ग्रास व्याधि" पाठ है। संचारी-नाम के रूप में "ग्रास" पाठ भी असंगत है अतः इसके स्थान पर "प्रेम तरंग" में प्राप्त "त्रास" संचारी-नाम यहाँ रखा गया है।

१ : २६
"बोली न आँखिन तानि कहूँ पट ओट तिरीछे कटाछनि कै रही।
डोली न आँखिन आँखि लगाइ अचानक आँखिन को सरु कै रही।
एहो बड़ी बड़ी आँखिनवारी निहारि की आँखिन मैं घरु कै रही।
नाखिन आँखिन तें निकर्‌यो अब प्यारे की आँखिन मैं घरु कै रही ॥"

प्रियतम से उसकी आँख लगी तो लज्जित होकर उसने अपने नेत्र झुका नहीं लिये वरन् वह कुछ ढिठाई से उसकी आँखों में ही देखती रही। कदाचित् अपनी इसी प्रगल्भता से उसने अपने प्रिय की आँखों को जीत लिया। यहाँ "सरु कै रही" सर करने या विजित करने के अर्थ में, मुहावरे के रूप में आया है। अ० प्रति में इसके स्थान पर "सह कै रही" पाठ मिलता है। यहाँ "सह" को "शह" का रूपान्तर मानना अनुचित होगा क्योंकि प्रथम तो मुहावरा "शह करना" न होकर "शह देना" है और दूसरे "शह देने" से यहाँ विजित करने के अभीष्ट भाव से भिन्न, परास्त करने का भाव प्रकट होता है। "सुखसागर तरंग" में छंद-संख्या ११६ पर इसी छंद के पाठ में "सरु कै रही" पाठ तथा छंद-संख्या ३८८ पर इसी छंद के पाठ में "सठ कै रही" पाठ मिलता है। "सठ" पाठ असंगत है तथा लिपिभ्रम से सम्भव है। इसी प्रकार अ० प्रति में "सह" पाठ भी दृष्टि-भ्रम से सम्भव है। अतः उपरोक्त स्थल पर "सरु" पाठ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार अ० प्रति में तृतीय चरण का पाठ है "निहारि की आँखिन मैं घरु कै रही।" "घरु कै रही" पाठ निरर्थक न होने पर भी यहाँ असंगत है। तृतीय चरण का भाव है कि "यह बड़ी-बड़ी आँखोंवाली नायिका का रूप-सौन्दर्य ऐसा है कि जिसकी भी दृष्टि उस पर पड़ती है उसी की आँखों में वह थिरकती रह जाती है।" कहना न होगा कि "निहारि की आँखिन मैं" का अर्थ "निहारने-वाले अथवा दर्शक की आँखों में" है। प्रत्येक दर्शक की आँखों में उसका घर कर लेना शब्दार्थ की दृष्टि से भले ही सार्थक हो परन्तु अगले चरण के "प्यारे की आँखिन मैं घरु कै रही" पाठ से यह पाठ असंगत सिद्ध होता है। अर्थ के विचार से भी "घर" पाठ असंगत है। यदि वह सभी सामान्य दर्शकों के हृदय में घर कर लेती है तथा उन्हीं के समान अपने प्रिय की आँखों में भी घर कर लेती है तो इससे उसके सौन्दर्य का कोई विशेष चमत्कार तथा उसके प्रियतम का विशेष महत्त्व प्रकट नहीं होता। कवि तो कहना चाहता है कि बड़ी-बड़ी आँखोंवाली सुन्दरी नायिका दर्शकों की आँखों में तो थिरकती ही रहती है किन्तु घर करती है केवल अपने प्रियतम की आँखों

में इस विचार से अ० प्रति में प्राप्त तृतीय चरण का "निहारि की आँखिन मैं घरु कै रही" पाठ असंगत है। सम्भव है कि "थरु कै" में दृष्टि-भ्रम से, अथवा अगले चरण के "घरु कै" पाठ पर भूल से दृष्टि पड़ने से इस प्रति में यहाँ "घरु कै रही" पाठ आ गया हो। "सुखसागर तरंग" में भी उपरोक्त दोनों स्थलों पर इस छंद के पाठ में "थरु कै" पाठ आया है अतः यहाँ "थरु कै रही" पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : ५

होत वियोग संयोग तें मान प्रवास ससोग।
एहि विधि मध्य वियोग के होत सिंगार संयोग ॥

विप्रलंभ शृंगार के भेदों के अन्तर्गत मान हेतुक वियोग तथा प्रवास हेतुक वियोग की गणना की जाती है। विप्रलंभ शृंगार के भेद होने के कारण ये दोनों ही हृदय की विरह-प्रधान स्थिति का द्योतन करते हैं अतः यहाँ "···मान प्रवास ससोग" शब्दावली उचित ही प्रयुक्त हुई है। अ० प्रति में इस स्थल पर पाठ है :

"···मान प्रवास **संजोग**।" यह पाठ मान-प्रवास के सन्दर्भ में अनुचित होने के अतिरिक्त अगले चरण का तुकान्त "···होत सिंगार संयोग" होने के कारण अनुपयुक्त भी है। "भवानी विलास" में २ : ४ पर इसी दोहे में "मान प्रवास ससोग" पाठ मिलता है अतः यहाँ यही पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : १९ प्रथम-द्वितीय चरण—

अथ तिहूँ मध्य पति अनुकूल दच्छ सठ भावते सखी वाक्य।
देखे अनुकूल कहूँ दूलह हिये की फूल उलही अनूप रूप लही दुलही ठई।
दच्छिन ह्वै आवत ततच्छन सुहात तहाँ सुख दै **सिखावत** दिखावत हैं ईठई।

अपने लक्षण के अनुरूप, अनुकूल पति अपनी पत्नी को सर्वदा अपने सन्मुख रखता है किन्तु दक्षिण पति अन्य नायिकाओं में अनुराग रखने पर भी नायिका के सन्मुख उसका प्रिय बन कर प्रकट होता है, उसे अपनत्व की शिक्षा देता है तथा उसके प्रति अपना अपनत्व प्रदर्शित कर नायिका को सुख प्रदान करता है। "ईठई" यहाँ "अपनत्व, स्नेह" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अ० प्रति में "सुख दै सिखावत" पाठ के स्थान पर "सुख दै खिखावत" पाठ-विकृति मिलती है। यह विकृति लेखन-प्रमाद से निकटवर्ती शब्दों में 'ख' वर्ण के आधिक्य के कारण सम्भव है। "सुखसागर तरंग" में छंद-संख्या ८११ पर इस छंद में "सुख दै सिखावत···" पाठ मिलता है अतः यहाँ यही पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : २६ ऊढ़ा उदाहरण—

दीरघ बंस लिये कर मैं डर मैं न कहूँ भरमै भटकी सी।
धीर उपाइन पांइ धरै बरतैं न परै लटकै लटकी सी।
साधति देह सनेह **निराट** कहै मति कोउ कहूँ अंटकी सी।
ऊँचे अकास चढ़ै उतरै सु करे दिन-राति कला नट की सी।

छंद के दूसरे चरण का अर्थ होगा कि नायिका रस्से पर अपने पैर मंद-मंद, इस चतुरता

से रखती है कि वह रस्से पर से गिरने नहीं पाती, ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह आकाश में लटकी है। द्वितीय चरण का उपरोक्त पाठ "प्रेम चंद्रिका" में ३:४१ तथा "सुखसागर तरंग" में ७७८ पर इस छंद के पाठ में भी मिलता है। इस पाठ के स्थान पर अ० प्रति में पाठ है "**दौरि उपाइ झपाइ धरै**···।" यह पाठ प्रसंग की दृष्टि से असंगत है। अतः उपरोक्त दोनों ग्रंथों में प्राप्त संगत पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार इस छंद के तृतीय चरण का "निराट" शब्द किसी वस्तु की सहायता लिये बिना, अकेले, निरवलम्ब अपनी देह संतुलित रखने के अर्थ में सर्वथा उपयुक्त है। "प्रेम चंद्रिका" तथा "सुखसागर तरंग" में इस छंद के पाठ में यहाँ "निराट" पाठ मिलता भी है किन्तु अ० प्रति में "निराट" के स्थान पर कदाचित् लेखन-प्रमाद से "निराति" पाठ है। यह पाठ प्रसंग की दृष्टि से निरर्थक है अतः इसके स्थान पर भी उपरोक्त दोनों ग्रंथों में प्राप्त "निराट" पाठ यहाँ स्वीकृत माना गया है।

३ : ४ पद्मिनि-लक्षण—

हंस भेष भाषा गमन लघु भोजन मृदु हास।
सती सत्यरुचि सील सुचि पदमिनि पद्म सुबास।।

अर्थात् ऐसी नायिका जिसका वेश हंस के समान श्वेत हो, जिसकी वाणी भी हंस के समान सुमधुर हो, वह पद्मिनी नायिका कहलाती है। अ० प्रति में "भाषा" के स्थान पर लेखन-प्रमाद से "भूषा' पाठ है जो असंगत है अतः यहाँ "भवानी विलास" में २:२२ पर प्राप्त "भाषा" संगत पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ९ शंखिनी उदाहरण। प्रथम-द्वितीय चरण—

पातरे लंक **नचै से लचै** कर पल्लव **बेली ज्यों** बाल बनी ये।
कोकिल कूकनि पौन की झूकनि झूमति सी गति घूम घनी ये।।

जैसे वाटिका की छोटी लतिका वायु का तीव्र झोंका आने पर उसके साथ बह नहीं जाती, धरती के साथ जड़ों से बंधी होने के कारण उसका ऊर्ध्व भाग झूमकर जैसे नाच उठता है उसी प्रकार यह क्षीण कटिवाली नायिका भी अपनी पतली कटि पर झुककर जैसे नाच-नाच जाती है। ध्यान रहे कि यहाँ प्रसंग नायिका के नाचने का है, "पातरे लंक नचै" में "पर" अधिकरण कारक चिह्न लुप्त है, "स्वयं" लंक के नाचने पर नहीं—यदि ऐसा होता तो पाठ "पातरी लंक" होता। नृत्य करती हुई नायिका की हथेलियाँ भी मुद्राओं को प्रकट करने के हेतु तीव्र वायु-दोलन में वन-बेलि के पत्तों की भाँति झुक-झुक जाती हैं। इसी कारण कवि ने कहा है कि "बेली ज्यों बाल बनी ये"।

प्रथम चरण का सामान्य रूप से यही प्राठ "सुखसागर तरंग" में ३५१ पर तथा "भवानी विलास" में २ : २९ पर मिलता है। किन्तु अ० प्रति में चरण का पाठ इस प्रकार है—"पातरे लंक **नचै सि लचै**··· पल्लव **बैरि ज्यों** बाल बनी ये।" इस पाठ में "बैरि ज्यों" पाठ सर्वथा असंगत है, इस पाठ को स्वीकार करने पर छंद से बेलि-बाला का रूपक ही छिन्न-भिन्न हो जाता है, अतः यहाँ उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में प्राप्त "···नचै से लचै···बेली ज्यों···" पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ११ हस्थिनि उदाहरण । तृतीय-चतुर्थ चरण—

दै छतिया पर **पार परै पिय प्रेम** अपार समुद्र मैं सोऊ।
काम की सागरि नागरि के उर गागरि से उचके कुच दोऊ ।।

काम की सागर इस नागरी के वक्षस्थल पर उन्नत दोनों कुच गागरियों के समान हैं जिन्हें अपने वक्ष पर लगाकर वह प्रियतम के अपार प्रेम-समुद्र को तैर कर पार कर सकती है। जल पर तैरने के लिए गागरी जैसी वस्तुओं का उपयोग सर्वप्रसिद्ध है ।

अ० प्रति में तृतीय चरण का पाठ है "दै छतिया पर पायरेई तरंग अपार···।" इस पाठ की गति अशुद्ध है तथा इसकी सार्थकता भी संदिग्ध है अतः यह पाठ अस्वीकृत तथा इसके स्थान पर "भवानी विलास" में २ : ३२ पर प्राप्त "दै छतिया पर पार परै पिय प्रेम अपार···" पाठ स्वीकृत माना गया है।

३ : २३ सुरतान्त । तृतीय-चतुर्थ चरण—

गाहक **हौ जीके** जु कहा कहौं नीके नाह नाहक गमाइ आई लाज की लसनि यह।
अबहूँ उपाधि तजौ आधिक जियत पर बाधिक बधिक तेरी हा धिक हँसनि यह ।।

सुरति में अपनी दुर्दशा होने के कारण बेचारी नायिका यहाँ आने पर पश्चात्ताप करती हुई कठोर नायक से कहती है, "हम तुम्हें अच्छे नायक क्या कहें, तुम तो हमारी जान के ही ग्राहक मालूम देते हो। मैं नाहक ही अपनी लाजभरी सुषमा का परित्याग कर यहाँ आयी।" नायक की क्रूरता पर पुनः आक्षेप करती हुई वह कहती है कि "सुरति में मेरा प्राणान्त नहीं हो गया, मैं अधमरी होकर भी जीवित हूँ, इसलिए भला हो यदि तुम अपनी "बधिक" उपाधि त्याग दो। तुम्हें लज्जा नहीं आती ? तुम हँस रहे हो ?"

"भवानी विलास" में ५ : २१ पर तृतीय चरण का उपरोक्त पाठ ही मिलता है किन्तु अ० प्रति में "गाहक हौ जी के जु" स्थान पर पाठ है "गाहक जो जाके जू···।" इस पाठ का "जाके" शब्द प्रस्तुत प्रसंग में असंगत है। "जाके" का सम्बन्ध "लाज की लसनि" से जोड़ कर नायक को नवेली नायिका की लाजभरी सौन्दर्य-सुषमा का ग्राहक बताना भी असंगत लगता है क्योंकि इस व्याख्या को स्वीकार करने पर "कहा कहौ नीके नाह" पद सन्दर्भ से उच्छिन्न हो जाता है। "लाज भरी लसनि" का ग्राहक होने के कारण नायक को "नीके नाह" न कहना अधिक उपयुक्त नहीं लगता है। नायक को "नीके नाह" न कहने तथा अगले चरण की "····आधिक जियत पर बाधिक बधिक···" आदि शब्दावली से यही प्रकट होता है कि नायिका क्रूर नायक को "जी" का ही ग्राहक समझती है।

"जीके" ध्वनि इसी चरण में आगे चलकर "नीके" शब्द पर प्रतिध्वनित भी होती है। सम्भव है कि अ० प्रति में सामान्य लेखन-प्रमाद से "जी" की मात्रा छूट गई हो। जो भी हो, प्रसंग पर ध्यान रखते हुए "भवानी विलास" में प्राप्त "जीके" संगत पाठ उपर्युक्त स्थल पर स्वीकृत हुआ है।

३ : २७ प्रगट मदना उदाहरण । प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय चरण—

नन्द जू के बार देव आये बृषभान द्वार सौंहीं पौरि दौरि सखी कह्यो वर वाम सों।
धाइ गही धाइ देख्यो चाहै चलि आइ पै **मढ़्यो न परै घूंघट** कढ्यो न परैं धामु सों।
मदन **सदेह** जाग्यो सदन संदेह लाग्यो पाग्यो पन पूर्‌यो मन लाग्यो जाइ स्याम सों ।।

द्वितीय चरण में नायिका की उतावली तथा प्रिय-दर्शन की उसकी उत्कट अभिलाषा किन्तु शीघ्रता, संकोच के कारण उसकी परवशता, सिर पर घूँघट डालने में उसकी असमर्थता से तथा घर से बाहर पैर रखने में उसकी पराधीनता से प्रकट होती है। अ० प्रति में द्वितीय चरण का पाठ है "प्रेम पैठ्यो नव बधू घूंट···।" कहना न होगा कि यह पाठ असंगत है तथा एक वर्ण की पाठ-वृद्धि होने के कारण इस पाठ की गति भी अशुद्ध है, इसलिए इसके स्थान पर "सुख-सागर तरंग" में ४०२ पर प्राप्त "पै मढ्यो न परै घूँघट" पाठ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार छंद के तृतीय चरण का पाठ अ० प्रति में है "मदन संदेस जाग्यो"। नायिका के हृदय में कामदेव का सन्देश जाग्रत होने की अपेक्षा स्वयं कामदेव का और वह भी शरीरी होकर जागना हमें ऊपर वर्णित नायिका की उतावली के साथ अधिक संगत लगता है अतः उपरोक्त स्थल पर भी "सुखसागर तरंग" में प्राप्त "मदन सदेह जाग्यो" पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ३० मध्या की सुरत। प्रथम-तृतीय चरण—

बातनि मैं चूकति अचूक चित कूकति बिभूकति औ **भूकति** सी लूकति लसति सी।
मोरति मरोरति बिथोरति औ जोरति सी तोरति निहोरति सकोरति ससति सी॥

छंद में सुरति के समय नायिका की अनेक कायिक चेष्टाओं का वर्णन है। अ० प्रति में प्रथम चरण में "भूकति" के स्थान पर "रुकति" पाठ मिलता है। यहाँ जितनी भी चेष्टाओं का वर्णन है वे प्रायः एक-दूसरे से बहुत भिन्न नहीं हैं, जैसे मोड़ने-मरोड़ने, बिथोरने-तोड़ने अथवा सिकुड़ने-ससाने की क्रियाएँ। इसी प्रकार प्रथम चरण में बिभुकने और भुकने की क्रिया में भी विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि "बिभुकने" का अर्थ "टेढ़ा होना" है ("नेह उरभे से नैन देखिबे को बिरूभे से बिभुकी सी भौंहें उभके से डर जात हैं"—केशव), तथा "भूकने" से भी तात्पर्य स्पष्टतः "भुकने" से है। नायिका के अन्य कार्यों में भी समानता होने के कारण "बिभुकने" के साथ "भूकति" क्रियापद ही संगत है, रोकने के अर्थ में (?) "रुकति" क्रियापद नहीं। "बिभूकति औ भूकति" पाठ अनुप्रास-पुष्ट है तथा सम्पूर्ण छंद में प्रयुक्त प्रायः अन्य सभी क्रियाओं के अकर्मक रूप के समान "भूकति" भी क्रिया का अकर्मक रूप है परन्तु "रुकति" पाठ में ये दोनों विशेषताएँ नहीं हैं इस कारण अ० प्रति में प्राप्त "रुकति" पाठ के स्थान पर "सुख-सागर तरंग" में छंद संख्या ४६६ पर प्राप्त "भूकति" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है। सम्भव है अ० प्रति का "रुकति" पाठ "भूकति" के 'भ' वर्ण के प्राचीन रूपान्तर में भ्रम होने के कारण हुआ हो।

तृतीय चरण में अ० प्रति में "मोरति-मरोरति" के स्थान पर पाठ है "मोरन मरोरति"। यह पाठ-विकृति भी 'त' में 'न' का भ्रम होने से अथवा लेखन-प्रमाद से सम्भव है। "मोरनि मरोरति" पाठ इस प्रसंग में असंगत तथा निरर्थक है अतः "सुखसागर तरंग" में इसी छंद के पाठ में प्राप्त "मोरति मरोरति" पाठ भी यहाँ स्वीकृत हुआ है।

३ : ३२ प्रथम-द्वितीय चरण—

"**घाइल** करत कर साइल मृगनि दृग कुटिल कटाछ सर भृकुटी धनुक के।
कंज **कर** मंजु रव कंकन अनूप पग भू पर धरत बजे नूपुर **झनक** के।।"

अ० प्रति में प्रथम चरण में लेखन-प्रमाद से "घाइल करत" के स्थान पर विकृत पाठ है "**पाइल** करत," प्रसंग-अनुसार पाठ "घाइल करत" ही होना चाहिए। इसी प्रकार अ० प्रति में द्वितीय चरण का पाठ है "कंज **वर** मंजु रव" तथा "···बजे नूपुर **कनक** के"। इनमें से प्रथम पाठ "कंज वर" असंगत है। कवि का भाव है कि नायिका के कमल के समान सुंदर हाथों में पड़े कंगन हस्त-संचालन से मधुर-स्वर कर उठते हैं। "कर" के स्थान पर "वर" पाठ स्वीकृत करने में आपत्ति इसलिये है क्योंकि "कंज" इस प्रसंग में "कर" का विशेषण है, "कर" के स्थान पर "वर" पाठ स्वीकृत करने पर "कंज" की स्थिति संदिग्ध हो जाती है—"कंज" फिर किसके लिये प्रयुक्त माना जाए ? इसी प्रकार "नूपुर कनक के" पाठ भी अनुचित है। चरण का भाव इस प्रकार है कि "नायिका के सुन्दर पैरों में पड़े नूपुर धरती पर पैर रखते ही झनक कर बज उठे।" किन्तु अ० प्रति में प्राप्त पाठ के अनुसार चरण का भावार्थ इस प्रकार होगा—"नायिका के सुन्दर पैरों में पड़े सुवर्ण के नूपुर धरती पर पैर रखते ही बज उठे।" यहाँ पर "कनक" पाठ अस्वीकृत माना गया है क्योंकि छंद के चतुर्थ चरण के अंत में भी यही शब्द आया है "तनक-तनक वपु सुघर कनक के।"पैरों के नूपुर का सुवर्ण-निर्मित होना इसलिये भी कम संभव है क्योंकि पैरों में सुवर्णाभूषण प्राय: नहीं पहने जाते हैं। "कनक" पाठ-विकृति "झनक" पाठ से 'झ' के प्राचीन रूपान्तर में भ्रम होने के कारण संभव है।

उपरोक्त तीनों स्थलों पर स्वीकृत पाठ "सुखसागर तरंग" में छंद-संख्या ३९९ पर इस छंद के पाठ में भी मिलते हैं।

४ : १४ : १

"हरि मूरति को धरि ध्यान रही रति **पूरति** प्रेम हिलोरन ही।"

अ० प्रति में "प" में "म" का भ्रम होने से पाठ है "रति-मूरति···" इसके पहले ही "हरि मूरति" पाठ आ चुका है तथा अर्थ के विचार से भी यहाँ "मूरति" पाठ असंगत है अतः इसके स्थान पर संयोजित करने के अर्थ में "पूरति" पाठ स्वीकृत किया गया है।

"भवानी विलास" में ४ : २४ पर तथा "सुखसागर तरंग" में ५४९ पर भी इस छंद में "पूरति" पाठ ही मिलता है।

४ :३० : १ दशम दशा उदाहरण—

"ह्वै अभिलाष सचित भई हरि को धरि ध्यान कहैं गुन गोतें।"

कवि ने छंद में कृष्ण-विरह से उत्पन्न नायिका की मरणासन्न अवस्था का कारुणिक चित्रण किया है। नायिका के कुटुम्ब की स्त्रियों को नायिका के जीवित बच जाने की आशा है। कल-परसों से ही उसने पानी-पान-भोजन सबका परित्याग कर दिया था, किंतु आज आकाश में चंद्रमा के निकलते ही संपुटित कमल के समान श्रीरहित नायिका को देखकर वे अब नायिका के विषय में पुनः चिंतित हो गई हैं। "ह्वै अभिलाष सचित भई" से यही भाव है। अ० प्रति में दृष्टि-भ्रम से "ह्वै" के स्थान पर "द्वै" पाठ है। "द्वै अभिलाष" पाठ असंगत है अतः अ० प्रति

के पाठ के स्थान पर "ह्वै" पाठ-संशोधन किया गया है। "सुखसागर तरंग" में भी संख्या ६१४ पर इसी छंद के पाठ में "ह्वै" पाठ मिलता है।

५ : १२ उत्का उदाहरण—

पलै पल पूछति विपल दृग मृगनैनी आए न कमलनैन आई ए अलपरी।
जीभ मैं जलप देव देखिबे की तलप सु भूतल परी है पै सुहाति न तल परी।
रसिक रसिकलाल कलानिधि मिलैं तौलौं कलानिधि मुख चितचाई की चल परी।
केलि के महल कलभाखिनि अकेली **संकलप विकलप** ही मैं क्योंहू **न कल** परी॥"

अ० प्रति में अन्तिम चरण का पाठ है "संक कलप विकल···**तकल परी**।" किसी भी विधि चैन न मिलने के अर्थ में "क्योंहू न कल परी" पाठ यहां उचित है तथा इसी पाठ में "न" में "त" का भ्रम होने के कारण "तकल" विकृत पाठ संभव है। दूसरा पाठान्तर विचारणीय है। अ० प्रति के "संक कलप विकल" पाठ में ऊपर स्वीकृत पाठ के समान आठ वर्ण हैं तथा अ० प्रति के पाठ की गति भी सतर्क होकर पढ़ते हुए शुद्ध की जा सकती है। इस पाठ के सहित चरण का अर्थ इस प्रकार होगा—"उस मधुर-भाषिणी नायिका के हृदय में अपने नायक के न आने पर विभिन्न शंकाएं उठती हैं। वह इन शंकाओं का ध्यान आने पर कलपती है, विकल होती है—उसे किसी विधि भी चैन नहीं मिलता।" इस पर भी अ० प्रति में प्राप्त यह पाठ निम्नलिखित विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए अस्वीकृत हुआ है। इस प्रसंग में "संक" पाठ किसी प्रकार उचित माना जा सकता है किन्तु "कलप विकल" पाठ की संगति संदिग्ध है—दो कारणों से। प्रथम तो यह है कि ये दोनों ही शब्द यदि समानार्थी नहीं हैं तो प्रायः एक ही भाव की व्यंजना अवश्य करते हैं। दूसरे "क्योंहू" शब्द जो इन्हीं शब्दों से सम्बद्ध है, स्पष्ट संकेत करता है कि इन दो शब्दों के द्वारा व्यंजना एक भाव की नहीं, बल्कि दो भावों की होनी चाहिए—तभी तो कवि कहता है कि "क्योंहू न···" न तो इस प्रकार, न उस प्रकार, किसी विधि भी उसके हृदय को शान्ति नहीं मिलती। इस कारण अ० प्रति के "संक कलप विकल" के स्थान पर यहाँ "संकलप विकलप" पाठ स्वीकार किया गया है। यह संकल्प-विकल्प एकाधिक वस्तुओं को लेकर संभव है। कमलनयन नायक के केलि-कुंज में न आने पर नायिका वहाँ उसकी और अधिक प्रतीक्षा करे अथवा वह अपने घर वापस लौट जाए अथवा वह स्वयं ही नायक के पास जाए। इनमें से एक का संकल्प करना, फिर उसे त्याग देना उसके हृदय में व्याकुलता की वृद्धि करता है।

उपरोक्त दोनों ही पाठ "सुखसागर तरंग" में छंद-संख्या ६३९ पर मिलते हैं एवं यहाँ स्वीकृत हुए हैं।

५ : १६ सखी सों

"गोरिन को गुन गर्व **सु सर्वसु ग्वारि गंवावन हारि** लखी तू।
बातन यों घर जात पने **उतपातन** की विधि मैं न नखी तू।
ल्याइ भुलाइ सु मेरिय भूल चली अपने मुख मेलि मखी तू।
देव जू मीत अमीत सुने नहिं होति सुनी भई सौति सखी तू॥"

छंद का उपरोक्त पाठ "सुखसागर तरंग" में संख्या ६५७ पर भी प्राप्त है किन्तु अ०

प्रति में प्रथम चरण का पाठ है "'''**सु सर्व सुखारि गंवावत हारि लखी तू।**" तथा द्वितीय चरण,में "उतपातन" के स्थान पर पाठ है "उतपानन"। हम पहले प्रथम चरण के पाठ पर विचार करेंगे। यदि "सुखारि" का सम्बन्ध "सुखारा" शब्द से माना जाए तो "सुखारि" का अर्थ होगा "सुख देने वाला"। (हेतु विचार हिये जग के मग त्यागि लखूँ निज रूप सुखारा।"—हिन्दी-शब्द-सागर) तब चरण का अर्थ इस प्रकार होगा—"गुण गौरी नायिका अर्थात् विवाहित स्त्री का गर्व ही सब को सुखदायी लगता है किन्तु री सखी, तू मुझे यहाँ लाकर इस गर्व रूपी लाख रुपये के हार को ही गंवा रही है।" इस व्याख्या पर निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं। प्रथम तो "सुख देने वाले" के अर्थ में "सुखारि" शब्द का "सुखारा" से निर्मित होना निश्चित नहीं है, "सुखारु" शब्द का पुलिंग विशेषण के रूप में यहाँ प्रयुक्त होना और भी संदेह-पूर्ण है। दूसरी आपत्ति साधारण होते हुए भी इस चरण के दूसरे पाठान्तर से तुलना किये जाने पर महत्त्वपूर्ण है। यह आपत्ति "हारि" के इकारांत रूप होने पर है। "हार" से "हारि" सामान्य तथा सामान्यतया प्रतिलिपि होते हुए भी सम्भव है। और यहाँ तो पहले ही "सुग्वारि" या "सुखारि" आ चुका है अतः इनके अनुप्रास पर "हार" से "हारि" होना भी सम्भव है। फिर भी हम इस प्रश्न को उठाना इसलिये आवश्यक समझते हैं क्योंकि अ० प्रति के अतिरिक्त "सुखसागर तरंग" में संख्या ६५७ पर इसी छंद के पाठ में भी "हारि" पाठ ही मिलता है इसलिये "हारि" केवल रूपान्तर न होकर कुछ और ही है। लाख रुपये के हार के अर्थ में यहाँ पाठ "हार" होना चाहिये, "हारि" नहीं।

यों "हार" या "हारि" का विश्लेषण करना महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता किन्तु इन शब्दों को दूसरे पाठ के "गंवावत" के साथ रखकर विचार करने पर सर्वथा भिन्न अर्थ का उद्घाटन होता है। यह कहना अनावश्यक है कि यहाँ "गँवा देने वाली" के अर्थ में "गंवावन हारि" प्रयोग सर्वथा उचित तथा प्रसंगसंगत है। "गंवावन हारि" के प्रसंग में सखी के लिए "ग्वालिन" "गंवारिन" के अर्थ में "ग्वारि" पाठ भी उचित है। यहाँ लखी का सम्बन्ध "हार" से कदापि नहीं है। "लखी" तो "देखने", "पाने" के अर्थ में "तू" के साथ सम्बद्ध है। इस पाठ के अनुसार चरण का अर्थ होगा—"गुण गौरी स्त्रियों के लिए उनका अपना गर्व ही सर्वस्व होता है किन्तु ए सखी, तू ग्वालिन गंवारिन है, तू उसका महत्त्व नहीं जानती। मुझे यहाँ फुसलाकर ले आने के कारण तो मुझे तू मेरे इस सर्वस्व को भी गंवा देने वाली दिखलाई देती है।" "सुग्वारि" से "सुखारि" तथा "गंवावन" से "गंवावत" पाठ-विकृति प्रतिलिपि के समय सामान्य दृष्टि-भ्रम से सम्भव है। उपरोक्त व्याख्या को विचारगत करते हुए, अ० प्रति में प्राप्त चरण के पाठ को अमान्य तथा "सुखसागर तरंग" में प्राप्त इस चरण के पाठ को स्वीकृत माना गया है।

द्वितीय चरण में "उतपातन" के स्थान पर अ० प्रति में "उतपानन" पाठ है। "उतपानन" पाठ अर्थहीन है तथा "उतपातन" से सामान्य दृष्टि-भ्रम से संभव है अतः इस पाठ के स्थान पर "सुखसागर तरंग" में उपर्युल्लिखित स्थल से इस छंद का "उतपातन" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

६ : ४३ : २

पट पीत उतारि उढ़ाइ दियो पट लाल जरी अपनोपन दै।

अ० प्रति में "पट पीत" के स्थान पर लेखन-प्रमाद से "पठ पीत" पाठ है। "पीले वस्त्र" के अर्थ में "पठ पीत" की अपेक्षा "पट पीत" पाठ संगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है।

यह पाठ "सुखसागर तरंग" में छंद संख्या ४६४ पर इस छंद के पाठ में भी प्राप्त होता है।

६ : ४४ तृतीय-चतुर्थ चरण—

"संग ही संग बसौ उनके अंग अंग वे देव तिहारे लुरीये।
साथ मैं राखिये नाथ उन्हैं हम हाथ मैं चाहतीं चारि चुरीये।।"

अ० प्रति में तृतीय चरण में "तिहारे" के स्थान पर "त" में "न" का भ्रम होने के कारण पाठ है "निहारे"। कृष्ण के सुन्दर अंग-प्रत्यंगों को "देख कर" कृष्ण के प्रति प्रेम प्रकट करने के अर्थ में भी "निहारे" पाठ इसलिए अशुद्ध माना गया है क्योंकि इस अर्थ में पाठ का रूप "निहारे" न होकर "निहारि" होना चाहिए था। इसी कारण अ० प्रति में इस पाठान्तर का कारण प्रतिलिपिकार द्वारा सचेष्ट पाठ-विकृति न मानकर केवल लेखन-प्रमाद माना गया है। ऊपर के प्रसंग में "तिहारे" पाठ ही संगत है अतः यहाँ स्वीकृत हुआ है।

यह पाठ "सुखसागर तरंग" में संख्या ४६७ पर इस छंद के पाठ में भी मिलता है।

६ : ५३

सखी सों मानवती की उक्ति।

"प्रेम पढ़ाइ बढ़ाइ के बंधुनि दीनो बढ़ाइ चढ़ाइ किये कर।
सो अभिलाष्यो न काहू सों भाख्यो इलाज सों लाज सो राख्यो हिये पर।
साँझ सखीन के माँझ हिरान्यो बिरानो भयो अब जान्यो मुऐ वर।
कीनो परोसु खरो सुनि देख्यो सु देव परो सु परोसिन के घर।।"

पत्नी कदाचित् अपने पति के स्वभाव से पहले से ही भली-भाँति परिचित थी इसलिये उसने देख-सुनकर, अच्छे पड़ोसवाला घर लिया परन्तु नायक पति अपने व्यवहार से बाज क्यों आने लगा! पड़ोस के घर की किसी सुन्दरी स्त्री पर मोहित होने पर उसने पहले उस स्त्री के घरवालों से घनिष्ठता बढ़ाई, उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया और इस प्रकार उन्हें अपने वश में कर लिया।

अ० प्रति में प्रथम चरण का पाठ है "प्रेम बढ़ाइ बढ़ाइ के बंधुनि···कंपै कर।" यहाँ 'बढ़ाइ बढ़ाइ' की पुनरुक्ति अनावश्यक है—आगे भी देखें "बढ़ाइ चढ़ाइ" है। वास्तव में उस घर के लोगों से अपनत्व बढ़ाने के दो रूप हैं—उनसे प्रेम-भाव बढ़ाना तथा इस प्रेम-भाव को उन पर सचेष्ट रूप से प्रकट भी करना। यही सचेष्ट रूप से उन पर प्रेम-भाव प्रकट करने या उसे उन पर आरोपित करने का भाव "प्रेम पढ़ाइ" से प्रकट होता है। अ० प्रति में "कंपै" पाठ मूल में था, हरताल की सहायता से तथा उसी कलम से 'कंपै' से "किये" पाठ बनाया गया है। "कंपै" पाठ प्रसंग के विचार से निरर्थक तथा "किये" पाठ, कुटुम्बियों को अपने हाथ में, मुट्ठी में अथवा वश में करने के अर्थ में सर्वथा उचित है। संभव है कि प्रतिलिपिकार ने पहले "ये" में "पै" का भ्रम होने के कारण "किये" के स्थान पर "कंपै" पाठ दिया हो किन्तु बाद में इस अशुद्धि को हरताल की सहायता से दूर किया हो।

अ० प्रति में अंतिम चरण में "परोसु" के स्थान पर "खरोसु" पाठ मिलता है। यह पाठ भी असंगत है। अच्छे, खरे अथवा परखे हुए के अर्थ में भी "खरो" शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है क्योंकि आगे इसी अर्थ में "खरो" शब्द आया है। वास्तव में "खरोसु" पाठ-विकृति प्रमादवश "परोसु" से अथवा दूसरे "खरो" के पड़ोस के कारण हुई है।

इन स्वीकृत पाठों में "किये कर" पाठ के अतिरिक्त अन्य दोनों पाठ "सुखसागर तरंग" में ५१८ संख्या पर इस छंद के स्वीकृत पाठ में भी मिलते हैं। इस ग्रंथ में "किये कर" के स्थान पर "कै मोकर" पाठ है।

७ : ११ : ३ शठ उदाहरण—

"पूरी करी इतहूँ उत प्रीति भले खुलि खेलत **बेलत** पापर।"

यहाँ "भले खुलि खेलत" तथा "बेलत पापर" दोनों ही का प्रयोग मुहावरों के रूप में हुआ है। "पापड़ बेलने" मुहावरे का अर्थ "हिन्दी शब्द-सागर" में दिया है "(१) कठोर परिश्रम करना। भारी प्रयास करना। कड़ी मेहनत करना। जैसे, आपसे किसने कहा था कि इस काम में आप इतने पापड़ बेलें ? (२) कठिनाई या दुःख से दिन काटना।" "पापड़ बेलने" का अर्थ बोलचाल की भाषा में कोष्ठ में दिए अर्थों से भिन्न है। इस मुहावरे का अर्थ है ऐसा कर्म करना जिससे निकट के लोगों को दुःख तथा कष्ट हो। इस छंद में भी "पापड़ बेलने" से यही भाव प्रकट होता है। अ० प्रति में "ब" में "ख" का भ्रम होने से पाठ है "भले खुलि खेलत खेलत पापर।" "खेलत" शब्द की आवृत्ति यहाँ निरर्थक है। "सुखसागर तरंग" में संख्या ८१८ पर इस छंद के पाठ में भी "खुलि खेलत बेलत पापर" पाठ मिलता है।

विशेष पाठ-संशोधन

१ : १७ दर्शन उदाहरण—

"**को हौ** कहाँ को कहा कहिये री भली भई हौ हूँ गहे नहिं ओट सी।"

अ० प्रति में पाठ है "**के हौ** कहाँ को···" पर प्रश्नकर्ता के "तुम कौन हो ?" प्रश्न का ब्रजभाषा में शुद्ध रूप होगा "को हौ···" कदाचित् अ० प्रति में मात्रा की खड़ी रेखा प्रमादवश छूट गई है अतः यहाँ "के हौ" के स्थान पर "को हौ" पाठ-संशोधन विशेष रूप से किया गया है।

१ : २२

"सात्विक भाव सु अंग के संचारी चित मांहि।
कहौ **आठ तैंतीस** अरु रसहि झलकि झलकाहि॥"

स्वेद स्तंभादि सात्विक अनुभावों की संख्या आठ तथा निर्वेदादि संचारियों की संख्या तैंतीस प्रसिद्ध है। किन्तु "कहौ आठ तैंतीस" के स्थान पर अ० प्रति में 'त' में 'व' का भ्रम होने के कारण पाठ है "कहौ **आठवें तीस** अरु···" सात्विक अनुभावों तथा संचारियों की संख्या क्रमशः आठ तथा तैंतीस होने के कारण संपादक ने "आठ तैंतीस" पाठ-संशोधन अपनी ओर से किया है।

१ : २५

"लाज चपलता हर्ष वेग जड़ता अभिमानो ।
दुख उत्कंठा नींद भूल सुप पुनि परिमानो ।"

संचारी नामों के प्रसंग में भा० प्रति का "भूख सुखु" पाठ निरर्थक है। कवि ने अपने अन्य लक्षण-ग्रंथों में जिन संचारियों का नामोल्लेख किया है उनमें से केवल अपस्मृति तथा सुपुप्ति ऐसे हैं जो उपरोक्त छप्पय में नहीं आये हैं। यहाँ अपस्मृति से कवि का आशय अन्य पूर्ववर्ती-परवर्ती कवियों द्वारा मान्य अपस्मार नामक संचारी भाव से है अथवा उसने विस्मृति के अर्थ में अपस्मृति का उल्लेख किया है, यह कहना कठिन है। देव की निम्नलिखित रचनाओं में ये दोनों ही संचारी नाम मिलते हैं। "विस्मृति सुमृति नींद उन्माद सुषुप्ति सुबोध···"

"भवानी विलास" १ : ३५, "विषाद उत्कंठा उपसुमृति सुमृति हैं"—"कुशल विलास···" १ :४४, "अरु नींद अपस्मृति सुपन अवबोध क्रोध···" "प्रेमतरंग" १ : ६ ।

इन संकेतों के आधार पर भा० प्रति के "भूख" पाठ की सहायता से इसके स्थान पर अपस्मृति के पर्याय-रूप में "भूल" तथा "सुख" के स्थान पर सुपुप्ति के अर्थ में "सुप" पाठ संपादक ने विशेष रूप से संशोधित किया है।

२ : ६ द्वितीय-तृतीय चरण —

"झारति चीर अबीर भरे गहि राखे उसारि सखीन के कोछै ।
ऊँची उसासनि ऐंचि हियो उचि औचकही उचके कुच ओछै ।।"

अ० प्रति में तृतीय चरण का पाठ है "···उचके कुच कोछै।" कुचों के लिए "कोछै" शब्द यहाँ निरर्थक प्रतीत होता है। उन्नत-उरोजों के लिए इस शब्द की अपेक्षा "ओछै" शब्द अधिक संगत है। द्वितीय चरण का तुकान्त भी "सखीन के कोछै" से होने के कारण तृतीय चरण के अन्त में इसी शब्द का प्रयुक्त होना असंगत है। संभवतः द्वितीय चरण के अन्त में विद्यमान "कोछै" शब्द भ्रमवश तृतीय चरण के अंत में भी प्रतिलिपि होते समय आ गया है अथवा "कुच" के अनुप्रास पर सचेष्ट या निश्चेष्ट रूप से "कोछै" पाठ हुआ है। प्रसंग पर विचार करते हुए "कुच कोछै" के स्थान पर "कुच ओछै" पाठ-संशोधन विशेष रूप से किया गया है।

३ : २४ मध्या उदाहरण। प्रथम-द्वितीय चरण —

"बैरिनि या अनखैरु करे रहौ पीठि दिये रहौ डीठि अमैठी ।
आठहू जामे जिठानी भई रहौ आठहू अंग अठा हठि अैंठी ।।"

अ० प्रति में द्वितीय चरण का पाठ है "···जिठानी भई रहै।" प्रथम तथा द्वितीय चरण में "रहौ" प्रेरणार्थक रूप में मिलते हैं अतः इस स्थल पर भी "रहौ" पाठ-संशोधन विशेष रूप से किया गया है।

५ : ५

"प्रिय आगम बीतत सभौ उत्कंठित चित चीत ।
खंडित वार सु खंडिता प्रातहि आवै मीत ।।"

"पति के शरीर पर अन्य स्त्री द्वारा किये हुए संभोग-चिह्नों को देखकर जो ईर्ष्या से जल उठे उस नायिका को खंडिता कहते हैं।" यद्यपि दोहे में वर्णित खंडिता नायिका का लक्षण

पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है, फिर भी दोहे के दूसरे चरण का अर्थ इस प्रकार करना उचित होगा "जिसका प्रियतम अन्य स्त्री द्वारा खंडित होकर अर्थात् उसके संभोग-चिह्नों सहित प्रातःकाल घर वापेस आए वह नायिका खंडिता कहलाती है।" अ० प्रति में "खंडित वार" के स्थान पर पाठ है "**खंडिस वार**"। यह पाठ अर्थ की दृष्टि से सर्वथा असंगत है। "सवार" शब्द को प्रातःकाल के अर्थ में व्यवहृत मानना भी आगे समानार्थी शब्द "प्रातहि" होने के कारण संभव नहीं है। इस दृष्टि से अ० प्रति में प्राप्त "खंडिस वार" के स्थान पर "खंडित वार" पाठ-संशोधन विशेष रूप से किया गया है।

५ : २४.

"आवन की भनक अचानक ही कान परी आए सुनि देव सबही के सुख साज सों।
औधि गुन बाँधी देह अचल सनेह नाधी आनंद की आंधी मन गयो उड़ि बाज सों।।
पौरि ही तें "**दौरि दुहूँ भुजन**" मैं अंक भरि भेंटतो जो प्यारो जो समेटतो समाज सों।
वारिधि बिरह बड़वागिनि की लपट बरि जाती अबलाजु अब लाज के जहाज सों।"

अ० प्रति में तृतीय चरण का पाठ है "**दौरि कै दुहूँ भुजन अंक भरि**···" इस पाठ की गति अशुद्ध होने के कारण सामान्य पाठ-परिवर्तन से इसे इस प्रकार शुद्ध किया गया है: "···दौरि दुहूँ भुजन मैं अंक भरि"

६ : १० मान भेद दोहा।

"पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुरु मान।
मध्यम ता मुख नाम सुनि दरसन **ता लघु जानि**।।"

गुरु, मध्यम तथा लघु, मान के इन तीनों भेदों में अंतिम लघु मान केवल पर-स्त्री देखने मात्र के कारण होता है। अ० प्रति में "दरसन ता लघु जानि" के स्थान पर पाठ है "दरसन लछिम सुजानि।" कहना न होगा कि अ० प्रति का पाठ निरर्थक है अतः उपरोक्त स्थल पर "लछिम" के स्थान पर "ता लघु" पाठ-निर्माण संपादक की ओर से हुआ है।

६ : ३८ : ४

"कौने विधि कुबिजा पै पौड़िबे को वन आवैं खाट **काटि** देत हैं कि खाड़ो खोदि लेत हैं।"

गोपियाँ कृष्ण के अंतरंग सखा उद्धव से प्रश्न कर रही हैं कि कुब्जा की पीठ में तो कूबड़ है, फिर उसके साथ कृष्ण का समागम किस प्रकार होता होगा? क्या कृष्ण कुब्जा के कूबड़ के लिए अपनी शैया के बीच का भाग काट देते हैं अथवा फिर भूमि पर रति करते समय धरती में गढ़ा खोद लेते हैं? यहाँ "गढ़े" के अर्थ में ही "खाड़ो" शब्द प्रयुक्त हुआ है।

अ० प्रति में इस चरण का पाठ है "खाट **काढ़ि** देत हैं खाड़ो खोदि लेत हैं"। खाट काढ़ देने अर्थात् फेंक देने से कुबड़ी कुब्जा के साथ कृष्ण का समागम संभव नहीं हो सकता है। प्रसंग के अनुसार, बीच में खाट काट देना ही, जिसमें कुब्जा का कूबड़ समा सके, संगत है। "काढ़ि" पाठ-विकृति "काट" से लेखन-प्रमाद द्वारा भी संभव है अतः अ० प्रति में प्राप्त "काढ़ि" पाठ के स्थान पर "काटि" पाठ-संशोधन विशेष रूप से किया गया है।

आलोच्य पाठ-विकृतियों की सूची

ऐसे पाठ-संशोधन जो देवकृत अन्य ग्रंथों में प्राप्त उसी छंद के पाठ द्वारा पुष्ट हैं—

स्थल संकेत	संशोधित पाठ	प्रति का पाठ	विकृति का कारण- १ भूल प्रमाद	प्रति का पाठ अस्वीकृत करने का कारण
१ : ४	अरु उछाह	उतसव	प्रक्षेप	प्रसंग असंगत
१ : ७	धर्म	दया	प्रक्षेप	प्रसंग असंगत
१ : १३	हैं	दस	प्रक्षेप	प्रसंग असंगत
१ : २४	मुख	सुख	म स	अर्थ असंगत
१ : २५	दैन्य; त्रास	द्रोह; ग्रास	प्रमाद	अर्थ असंगत
१ : २९	सरु कै; थरु कै	सह कै; घरु कै	रु ह तथा थ घ	अर्थ असंगत
२ : ५	ससोग	संजोग	दृष्टि-भ्रम	प्रसंग असंगत
२ : १९	सिखावत	खिखावत	लेखन-प्रमाद	निरर्थक
२ : २६	धीर उपाइन पाइं धरै; निरात	दौरि उपाइ भपाइ धरै; निराति	प्रक्षेप	प्रसंग असंगत तथा निरर्थक
३ : ४	भाषा	भूषा		अर्थ असंगत
३ : ९	नचै से लचै; बेली ज्यों	नचै सि लचै; बैरि ज्यों	लेखन-प्रमाद	अर्थ असंगत
३ : ११	पार परै पिय प्रेम	पर पाँयरेई तरंग	प्रक्षेप	अर्थ असंगत
३ : १३	हौ जीके जु	जो जाके जू	लेखन-प्रमाद	प्रसंग असंगत
३ : २७	मढ्यो न परै घूँघट; सदेह	प्रेम पैठ्यो नवबधू घूंट; सदेस	प्रक्षेप	प्रसंग असंगत
३ : ३०	झूकति; मोरति	रुकति; मोरंन	झ र, ति न	प्रसंग असंगत
३ : ३२	घाइल करत; कर; झनक	पाइल करत; वर; कनक	घ प, क व; झ क	प्रसंग असंगत
४ : १४ : १	पूरति	मूरति	प म	प्रसंग असंगत
४ : ३० : १	ह्वै अभिलाष	द्वै अभिलाष	ह्व द्व	अर्थ असंगत
५ : १२	संकलप विकलप; न कल	संक कलप विकल; तकल	न त	प्रसंग असंगत
५ : १६	सु सर्वसु ग्वारि गंवावन हारि; उतपातन	सु सर्व सु खारि गंवावत हारि; उतपानन	लिपि-भ्रम	अर्थ असंगत

६ : ४४	तिहारे	निहारे	त न	प्रसंग असंगत
६ : ५३	पढ़ाइ; किये; परोसु	बढ़ाइ; कँपै; खरोसु	लिपिभ्रम	प्रसंग असंगत
७ : ११ : ३	बेलत पापर	खेलत पापर	ब ख	अर्थ असंगत

विशेष पाठ-संशोधन

१ : १७	को हौ	के हौ	लेखन-प्रमाद	अशुद्ध रूप
१ : २२	आठ तैंतीस	आठवें तीस	त व	प्रसंग असंगत
१ : २५	भूख सुख	भूख सुखु	लिपिभ्रम	प्रसंग असंगत
२ : ६	उचके कुच ओछै	उचके कुच कोछै	लेखन-प्रमाद	प्रसंग असंगत
३ : २४	रही	रहै	लेखन-प्रमाद	अशुद्ध रूप
५ : ५	खंडित बार	खंडिस बार	प्रक्षेप	अर्थ असंगत
५ : २४	दौरि दुहूँ भुजन	दौरि कै दुहूँ भुजन	प्रक्षेप	पाठ-वृद्धि
६ : १०	ता लघु जानि	लछिम सुजानि		निरर्थक
६ : ३८ : ४	काटि	काढ़ि	ट ढ़	प्रसंग असंगत

सुमिल विनोद

साहिब सुमिल विनोद हित कीनो सुमिल विनोद।
लहि सुमति सुख पाइ जेहि जस रस को आमोद ॥१॥
पहिले सुमिल विनोद मैं बरन्यो रस सुख सार।
सब सुखदाइक नाइका नाइक रस सिंगार ॥२॥

नवरस नाम।

सिंगार हास्य अरु करुन रस रौद्र वीर भयमान।
वीभत्साद्भुत शांत ये नवरस काव्य प्रमान ॥३॥

स्थायी भाव।

रति हाँसी अरु सोक रिस अरु उछाह[1] छिन मानि।
आहचरज वैराग्य ये नवरस थाई जानि ॥४॥

[1] उतसव—अ०।

भाव सहित सिंगार मैं नवरस झलक अयत्न।
ज्यों कंकन मनि कनक को वाही मैं नवरत्न ॥५॥
निर्मल स्याम सिंगार हरि देव अकास अनन्त।
उड़ि-उड़ि खग ज्यों और रस विवस न पावत अंत ॥६॥
अर्थ धर्म[1] तें होत अरु होत अर्थ तें काम।
ताते सुख सुख को सदा रस सिंगार सुखधाम ॥७॥

[1] दया—अ०।

नोट : 'भाव विलास' में इस दोहे का पाठ इस प्रकार है—
"अरथ धर्म तें होइ अरु काम अरथ तें जानु।
तातें सुख सुख को सदा रस शृंगार निदानु॥" १ : २

ताही रस सिंगार को अंकुर प्रेम अनूप।
भुक्ति मुक्ति को द्वार है प्रेमानंद स्वरूप॥८॥
काँच्यो जग राँच्यो विषै साँच्यो गाच्यो रूप।
पाँच्यो बस आँच्यो सच्यो नाच्यो प्रेम अनूप॥९॥
प्रेम सार सिंगार रस ताको सुखद विचार।
सुख संपति जग-जगमगै दंपति रूप अपार॥१०॥
देव सबै सुखदायक लायक संपति सर्व सु दंपति जोरी।
दंपति दीपति प्रेम प्रतीति प्रतीति की रीति सनेह निचोरी।
प्रीति जहाँ रस रीति विचार विचार की बानी सुधारस बोरी।
बानी को सार बखान्यो सिंगार सिंगार को सार किसोर किसोरी॥११॥

शृंगार रस लक्षण।

दंपति प्रेमांकुर प्रथम सो रति रसै थिति भाव।
ताहि विभाव बढ़ावहीं प्रगट करैं अनुभाव॥१२॥
रति पूरन सिंगार सों मिलि विभाव अनुभाव।
सात्विक संचारिन झलकि झलकावति हैं[१] हाव॥१३॥

[१] दस—अ०।

रस भाव लक्षण।

मन वच कर्म विलास मैं उपजत प्रेम सुभाव।
रस अंकुर आवत उलहि सो कहिये रस भाव॥१४॥

शृंगार स्थायी भाव रति लक्षण।

प्रीतम जन को देखि सुनि आन भांति चित होइ।
थाई भाव सिंगार को सुकबि कहत रति सोइ॥१५॥

श्रवण उदाहरण।

सुनि देव अनूप कला ब्रजभूप की रूपकला अकुलान लगी।
पहिचानन प्रीति अचान लगी कछु देखिबे को ललचान लगी।
भरि भाइक भौंह कमान चढ़ाइ कै तानन लोचन बान लगी।
कहुँ कान्ह कहानी सी कान परी तब तें तन प्रान बिकान लगी॥१६॥

दर्शन उदाहरण।

को हौ[१] कहाँ को कहा कहिये री भली भई हौहूँ गहे नहिं ओट सी।
देव अचान सचान लौं आयो चलाइ गयो दृग खंजन जोट सी।

लंगर की इक बार छुटी जु छुटी छवि रूपछटानि की पोट सी।
तीखी चितौनि छुरी सी चलाइ छरी चरु चोटैं करी चष चोट सी ॥१७॥

[1] के हौ—अ०।

शृंगार विभाव लक्षण।

आलम्बन अवलम्बि कै रति बढ़ि होत सिंगार।
उद्दीपन दीपति करै ससि सुगन्ध सुरसार ॥१८॥

आलम्बन उदाहरण।

बैरी वह वा दिन अचानक पर्यो री चित बनवारी बानक बन्यो हो जात बन को।
कहत न आवत कहै बिनु बनै न सो तू जानै सब जी की पहिचानै प्रेमपन को।
भूलत न वाकी वहै बोलनि बिलोकनि हँसनि चारु चलनि चलाए लेत तन को।
कैसी करौं देव बुद्धि गाँठिहू की छोरे लेत चोरे लेत चषनि मरोरे लेत मन को ॥१९॥

उद्दीपन उदाहरण।

चंदन हूँ चंद हूँ सों चंदन सी चाँदनी सों चाँदी से चंदोवा हूँ सों धीर धरकत री।
फूली मलै मल्लिन हूँ मालती की बल्लिन इलायची लवंग अंग अंग फरकत री।
बीना वर बानी सुनि प्रेम की कहानी कौन दसा हौं न जानी स्वाँस पौन सरकत री।
बड़ी अँखियानि सखियानि तें दिखायो देव सोई अब मेरी अँखियानि खरकत री ॥२०॥
सुनि कै धुनि चातक मोरन की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
कवि देव नई उनई जु घटा बन भूमि भई दल दूकनि सों।
रंगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर की झूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागनि मैं सखि रागत राग अचूकनि सों ॥२१॥

शृंगार सात्विक संचारी।

सात्विक भाव सु अंग के संचारी चित मांहि।
कहौ आठ तैंतीस[1] अरु रसहि झलकि झलकाहि ॥२२॥

[1] आठवें तीस—अ०।

सात्विकादि अष्टनाम।

स्तंभ स्वेद रोमांच अरु अंग कंप सुर भंग।
विवरन आँसू मूरछा ये सात्विक रस अंग ॥२३॥

उदाहरण।

छीजत रंग पसीजत अंग तरंगित रोम हियो अभिलाषैं।
मोह मढै मग मैं न कढ़ैं पग बोल बढ़ैं न पढ़ैं मुख[1] भाखैं।
रूप की संपति कंपति छाती सु दंपति ओट रहैं नहिं राखैं।
ऊँची उसासैं इतै उमड़ी सी मड़ी अँसुवानि बड़ी बड़ी आँखैं ॥२४॥

[1] सुख—अ०।

संचारी भाव।

है निर्वेद गिलानी संक असुया मद श्रम कहु।
आरस चिंता दैन्य[1] मोह सुमिरन धीरज रहु।

लाज चपलता हर्ष वेग जड़ता अभिमानो ।
दुख उत्कंठा नींद भूल सुग[2] पुनि परिमानो ।
अवबोध क्रोध अवहित्थ मति त्रास[3] व्याधि उन्माद मृति ।
चौविधि वितर्क उग्रता तैंतीसों मानस प्रकृति ॥२५॥

[1] द्रोह—अ० । [2] भूख सुखु—अ० । [3] ग्रास—अ० ।

उदाहरण ।

दीन दुखी मद आरस नींद जो सुपनेऊ सुबुद्धि बकी सी ।
ईर्षा रोष सहर्ष सचिंत चली चल चाह सगर्ब थकी सी ।
धीरज ध्यान विराग सम्हारन लाजुन्माद सुबोध छकी सी ।
मोह मलिन विथा डरु मीच को कर्कस त्रास वितर्क जकी सी ॥२६॥
बढ़ि विभाव अनुभाव कढ़ि सात्विक संचारीन ।
फलकि[1] होत रतिभाव तें पूरन रस परवीन ॥२७॥

[1] कलकि—अ० ।

तोर्‌यो कुलनेम गुन जोर्‌यो पिय प्रेमगुन हेमगुन रूप हेरि गोहन गिरत हैं ।
लाज को अमोल इन हिये हरि लियो देव सांझ भए हंसत रिसाहु तो भिरत हैं ।
लो इन तिहारे अब लोइन निहारे नाहिं चोरी करि घूंघट के घर मैं घिरत हैं ।
अलिन निगूढ़ गूढ़[1] गलिन मैं ढूंढि मुख चंद के उज्यारे प्यारे ढूंढत फिरत हैं ॥२८॥

[1] गुरू गलिन—अ० ।

बोली न आँखिन तानि कहूँ पट ओट तिरीछे कटाछनि कै रही ।
डोली न आँखिन आँखि लगाइ अचानक आँखिन को सरु[1] कै रही ।
ऐहो बड़ी बड़ी आँखिनवारी निहारि की आँखिन मैं थरु कै[2] रही ।
ना खिन आँखिन तें निकर्‌यो अब प्यारे की आँखिन मैं घरु कै रही ॥२९॥

[1] सह—अ० । [2] घरु कै—अ० ।

नीठि कहूँ मिलि ईठ करी ठिक दर्पन देखत बैठी सयानी ।
ढाढ़स ढीठ बसीठ भए उठि कै उनकी चितकी पहिचानी ।
पीठ की ओर मरोरि करी ठग डीठि सों डीठि लगाइ लजानी ।
देव सखी ढिग तें दुरि कै दृग ही दुरि कै मुरि कै मुसक्यानी ॥३०॥
एहि विधि रति थिति भाव बढ़ि पूरन होत सिंगार ।
मिलि विभाव अनुभाव हूँ सात्विक होत संचार ॥३१॥

इति श्री परम सुजान श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे देवदत्त कवि-विरचिते सुमिल विनोदे सिंगार रस स्वरूप वर्णनं नाम प्रथम विनोदः ॥

भाव सहित सिंगार को जो कहियत आधार ।
सो हैं नाइक नाइका ताको करत विचार ॥१॥
रस सिंगार के भेद द्वै हैं वियोग संयोग ।
सो प्रच्छन्न प्रकास ह्वै द्वै द्वै दुहूँ प्रयोग ॥२॥

श्रृंगार भेद ।

सो पूरब अनुराग अरु मान प्रवास वियोग ।
वियोग[१] चौविधि जानिये आनंद एक संयोग ।।३।।

[१] योग-सु—अ० ।

प्रथम होत दंपतीन के पूर्वनुराग वियोग ।
जहाँ विरह की दस दसा ता पीछे संयोग ।।४।।
होत वियोग संयोग तें मान प्रवास स सोग[१] ।
एहि विधि मध्य वियोग के होत सिंगार संयोग ।।५।।

[१] संजोग—अ० ।

प्रच्छन्न वियोग उदाहरण ।

हौरी को हेरि किसोरी रही दुरि देव सु रंगित अंग अंगोछै ।
झारति चीर अवीर भरे गहि राखे उसारि सखीन के कोछै ।
ऊँची उसासनि ऐंचि हियो उचि औचक ही उचके कुच ओछै[१] ।
चंचल नैनी दृगंचल मोरि कै अंचल सों अँसुवा गहि पोंछै ।।६।।

[१] कुच कोछैं—अ० ।

प्रकाश वियोग उदाहरण ।

देव वियोगिनि के वध के हित देखत ही मधु के दिन दोखि न ।
सूखि गई सुमुखी इष ईष बिना उतपात विजात सु को खिन ।
प्रानपती बिनु प्रान उदास सु राखति भाखि सखी सुख योखिन ।
हाँकत ही कलकंठ चितौत सु झांकति ही दिन जात झरोखिन ।।७।।

प्रच्छन्न संयोग उदाहरण ।

जानै न कोई जनायो न कान्ह सों जानि गए जिय मैं जन ही जन ।
मोरती नाक मरोरती भौंह हिलोरती तोरती हौ तन ही तन ।
आनंद लूटि कै ओट दै बैठी हौ देव सखी बिछुरी वन ही वन ।
भोर तें भौन के कोन गहे सुसक्यातो हौ मौन गहे मन ही मन ।।८।।

प्रकाश संयोग उदाहरण ।

प्रीतम मीत को पीत पटा पहिरे गहिरे रंग ओप उज्यासी ।
देव जू नैननि बैननि मैं तन मैं मन मैं तुमही नित न्यासी ।
दैहौ महा दुख कैहौ कहा न जु पैहौ सिखावन हारि न यासी ।
खेलती हौ मिलि कै तिन सों तिन सौतिन के अँसुवानि की प्यासी ।।९।।

पातर सुद्ध सिंगार को सुद्ध स्वकीया नारि ।
प्रथम प्रेम बस संग के बरे परे दिन चारि ।।१०।।

स्वकीयादि नायिका भेद ।

अपनी सुकिया जानिये परनारी परकीय ।
सामान्या सोइ मानिये धन दै आवत तीय ।।११।।

व्याही कुल आचार सों सुद्ध सुकीया वाम।
सुख सेवा संतान हित जस रस निर्मल नाम ॥१२॥

स्वकीया के मुख्य गौण भेद।

भोग भामिनी दूसरी स्वकिया भूपति भौन।
अरु सनेहनिधि तीसरी सुकिया सुभग सलोन ॥१३॥
पतिव्रता पहिली तहाँ पति अनुकूल सो ईठ।
भोग स्वकीया दच्छपति तीजी पति सठ ढीठ ॥१४॥
यह विचार राजान को त्रिविधि स्वकीया नारि।
कुल प्रभुता प्रभु मित्रता पातर नेह निहारि ॥१५॥

शुद्ध स्वकीया उदाहरण।

देवी दिव्य दीपति दिपति दिन राति देव संपति सुहाति जोति जगरमगर की।
पुन्यपन पीन परवीन पतिव्रत खीन जानत गली न द्वार दूसरी बगर की।
नागरी अनूप रूप जोवन उजागरी सकल गुन आगरी बसाई है अगर की।
गृह की गुसाइनि सुभाइनि सुसील सुखदाइनि लला की ठकुराइनि नगर की ॥१६॥

द्वितीय राजपत्नी उदाहरण।

पाँइ धरैं कर दाबि हियो रहै देवर के डर नेवर दावै।
देखि रहै ननदै मन दै सुनि सासुनि बैन उसास न आवै।
प्रान बसे पति प्रान के प्रान मैं भूषन भोजन पान न भावै।
आयु के अर्पन दर्पन से हिय प्रीतम को प्रतिबिम्ब दिखावै ॥१७॥

तीसरी राजपत्नी उदाहरण।

सो तिनहूँ सामने सुहाति अति सौतिन हूँ जो तिन निहारे रूप जोतिन जकत है।
सिगरो महल जाकी प्रीति की टहल करै प्रीति की प्रतीति ही सों प्रीतम तकत है।
काहू सों ईरषा न हरत विरोध क्रोध रोध पथगामीन मनोरथ थकत है।
खंजन नयन कंज मुख मंजु भाषिन को आँखिन की ओट कोऊ राखि न सकत है ॥१८॥

अथ तिहूँ मध्य पति अनुकूल दच्छ सठ भावते सखी वाक्य।

देखे अनुकूल कहुँ दूलह हिये की फूल उलही अनूप रूप लही दुलही ठई।
दच्छिन ह्वै आवत ततच्छन सुहात तहाँ सुख दै सिखावत[१] दिखावत है ईठई।
ऐसी गति जहाँ तहाँ को हम कहा किये खुलावत की वार द्वार वारन बसीठई।
देव कहुँ साधु कहुँ अगम अगाध सठ ढीठई सुभावन सों राखत है ईठई ॥१९॥

[१] देखि आवत—अ०।

तैसिये मालती मल्लि मलैजनि त्यों सुर बल्लिन होत बिसेष्यो।
केतकी हेत न नूत सों नेह कदंब न कुंद न लौंग सों लेख्यो।
मौरसिरी हूँ रच्यो कचनार न बैर कनेरन हूँ सो न देख्यो।
भौंर को और सुभाव न देव क्यों मानति रैनि पुरैनि परेख्यो ॥२०॥

एहि विधि स्वकिया तीन विधि राजरसिक पति भौन।
जहाँ होय अविवेकि तिय तहाँ रसिकता कौन ।।२१।।
परकीया सों हित करै तो पति उपपति होइ।
पतिव्रता अनुकूल पति रति संपति को जोइ ।।२२।।
सुद्ध साधुता और है सुद्ध रसिकता और।
पहिचानत चित प्रेम गति सुद्ध रसिक सिरमौर ।।२३।।

परकीया लक्षण।

गुपित प्रीति विपरीत गति परकीया परवीन।
गृहपति सेवति विपति सहि उपपति प्रेम अधीन ।।२४।।

परकीया भेद।

तासों परऊढ़ा कहत और अनूढ़ा नारि।
मात पिता आधीन जो तरुनि सु काम कुमारि ।।२५।।

ऊढ़ा उदाहरण।

दीरघ बंस लिये कर मैं डरमै न कहूँ भरमै भटकी सी।
धीर उपाइन पाइँ[1] धरै बरतैं न परै लटकै लटकी सी।
साधति देह सनेह निराट[2] कहे मति कोउ कहूँ अटकी सी।
ऊँचे अकास चढ़े उतरे सु करे दिन राति कला नट की सी ।।२६।।

[1] दौरि उपाइ झपाइ—अ०। [2] निराति—अ०।

प्रेम चरचा है कुल नेम अरचा है चित और अर चाहै नैन चाहै चितचारी को।
छांड्यो परलोक नरलोक वरलोक कहा हरष न शोक न अलोक नर नारी को।
घाम तप मेह न निहारे दुख देह हू को प्रीतम सनेह डर वन न अंध्यारी को।
भूलेहू न भोग बड़ी विपति वियोग विथा जोगहूँ तें कठिन संजोग परनारी को ।।२७।।

ऊढ़ा को पछितायबो।

बीसो बिसे रस लालची लोचन सोंचन ही इनके सरि जैबी।
हेरि मिल्यो मन बैरी इन्हैं तजि लाजनिहूँ बिन काज बिकैबी।
देव जू बानि परी मुस्क्यानि गए कुलकानि कहा फिरि पैबी।
गारी चढ़े कुलनारिन मैं बहुर्यो कबहूँ की बहू कहिवैबी ।।२८।।

ऊढ़ा को संदेश।

सांकरी खोरि बखोरि हमैं किनि खोरि लगाइ खिसैबो करो कोइ।
... ... ।।२९।।

कन्यका परकीया को उदाहरण।

झांकति झरोखा सुकुमारि झलकति चंद तारिकानि करतार रूप रतनाई सी।
सरद के बादर मैं दामिनि सलाका-सी सराका रजनीस जोति जागति जुन्हाई सी।
हीरा लाल जटित जरी पट लपेटी छरी हाटक की छोर छवि-पुंज छहराई सी।
देव दुति सदन विराजत बदन सोभा रूप की हदन फिर मदन दुहाई सी ।।३०।।

परकीया को विरह-निवेदन।

वेई वन कुंजनि मैं गुंजत भंवर पुंज कानननि रही है कोकिला की धुनि लाग सी।
गोकुल गुसैयाँ जे चराई ही कन्हैया वेई गोपी गैया नें बिलोपी दुःख दाग सी।
वेई जमुना तट निकट वेई बंसी बट रही है पुलिन भूमि धूमि अनुराग सी।
कालीदह कूलनि पलास लाली फूलनि की आली बनमाली बिन लागी बन आग सी॥३१॥
नोट : द्वितीय चरण में दो वर्ण न्यून हैं।

× × ×

इति द्वितीय विनोद

जाति कर्म वय अवस्था अरु स्वभाव तिय भेद।
कहत अनेक प्रकार कवि पार न पावत बेद॥१॥
पद्मिनि आदि सुजाति अरु कर्म भेद सुकियादि।
मुग्धादिक वय अवस्था भेद सु स्वाधीनादि॥२॥
सत्व प्रकृति गुन भेद हूं प्रेम भेद बहु पन्थ।
सब स्वभाव जानत रसिक बरनत बाढ़त ग्रन्थ॥३॥

पद्मिनि लक्षण।

हंस भेष भाषा[1] गमन लघु भोजन मृदु हास।
सती सत्यरुचि सील सुचि पद्मिनि पद्म सुबास॥४॥

[1] भूषा—अ०।

उदाहरण।

मौन गह्यो कल कंठ कपोतनि सारस हंस सु चालहि हेरे।
सार्यो सुवानि सु बानि परी जु सुवानि सुने नित सांझ सबेरे।
चौंकत से चकई चकवा कहि देव उदै मुख चन्द उजेरे।
भारिये भीर करे रहैं भौंर सु मोर चकोर रहैं घर घेरे॥५॥

चित्रिणी लक्षण।

मोर भेष भूषन वचन गजगति अति सुकुमारि।
चंचल नैनी चित हरनि चतुर चित्रिनी नारि॥६॥

उदाहरण।

ह्वै रहै कमल कमलाकर कमलमुखी फूलनि मैं फूलि कै खरीये खिलि जाति है।
चित्रनि मैं चित्र तैं विचित्र होत चित्रिनि अनूप चित्रसारी के सरूप हिलि जाति है।
दीपनि समीप दीपसिखा ह्वै न पैये देव चंदमुखी चांदनी महल मिलि जाति है।
द्योसहू न दीसे सीसमन्दिर मैं सुन्दरि प्रकासि प्रतिमानि की प्रभानि पिलि जाति है॥७॥

शंखिनि लक्षण।

दीरघ सिर कर चरन कटि लघु नितम्ब कुच नैन।
सुलप छिमा संतोष मृदु संखिनि तीछन बैन॥८॥

उदाहरण।

पातरे लंक नचै से लचै[१] कर पल्लव बेली ज्यों[२] बाल बनीये।
कोकिल कूकनि पौन की भूकनि भूमति सी गति घूम घनीये।
न्यारो न होत भर्‍यो रस भौंर ज्यों भामरि सी भरे प्यारो घनीये।
काननि लौं दृग बानन ताने रहै जिहि भौंह कमान तनीये।।९।।

१ नचै सि लचै—अ०। २ बैरि ज्यों—अ०।

हस्थिनि लक्षण।

थूल चरन कर अधर कटि भारीं कुच भुज जानु।
ठिगनी बहु भोजन गमन हस्थिनि त्रिय पहिचानु।।१०।।

उदाहरण।

संचि सरूप विरंचि सुनार ज्यों सांचे मैं दै भरि काढ़ि है कोऊ।
देव उबीठै न ओठ सुधा भरे आठहु जाम मिठाई समोऊ।
दै छतिया पर पार परै पिय प्रेम[१] अपार समुद्र मैं सोऊ।
काम की सागरि नागरि के उर गागरि से उचके कुच दोऊ।।११।।

१ पर पांयरेई तरंग—अ०।

कर्म भेद स्वकियादि के।

मन वच कर्मनि पतिहिरत सुकिया अरु परकीय।
वचन कर्म पति मन अनत वेश्या धनपति तीय।।१२।।

वयक्रम भेद।

मुग्ध मध्य प्रौढ़ा स्वकिय पांच चारि क्रम चारि।
तेरह विधि अरु परकिया द्विविध एक पुरनारि।।१३।।
सोरह ए दस अवस्था गनै एक सौ साठि।
सात्विक प्रकृति गुन भेद हूं बहु विधि तिय रस गांठि।।१४।।

मुग्धा-भेद स्वकीया को।

नवमुग्धा अज्ञात वय ज्ञात नवेली बाम।
बयससंधि नवयौवना है नवोढ़ नव नाम।।१५।।
है विश्रब्ध सलज्जरति मुग्धा पांचौं भांति।
नव मत अरु प्राचीन मत नाम दोइ इक कांति।।१६।।

नवमुग्धा लक्षण।

उर अंकुर मुख झलक सी लाज ललक सी जासु।
नवमुग्धा चितवति सकुचि खेलति सभय उदास।।१७।।

उदाहरण ।

जोवन की झांई लरिकाई मैं दिखाई अंग सुवरन रूप रंग ओपनि चढ़ाये तें ।
दून्यो दिन दीपति नदीपति ज्यों पून्यो देह सरद के मेह दुति नेह उबटाये तें ।
देव गुन गाइये नगर मैं बगर बैठे अगर कपूर बास बाढ़े ज्यों बढ़ाये तें ।
इंदु ज्यों मुखारविंदु बिंदु बिंदु बाढ़त त्यों घटत है लंक बिंदु बिंदुहि घटाये तें ।।१८।।

नववधू लक्षण ।

तज्यो खेल गुड़ियान को चितवनि चित गड़ि जाति ।
नवल वधू नव देह की बातनि मैं मड़ि जाति ।।१९।।

उदाहरण ।

दूलहै निहारि फूलो फूलहै हिये मैं हिय भूलहै अन्तक बंक रचना बिरंच की ।
लोइन चपल कुल लोइन चँपत चोप कोइन चढ़ावै ओप को इन सुरंचु की ।
देव दुलखी न सुलखी न रुचि खेलहिं सों खीन होति सीख लै सखीन परपंचु की ।
कंचन कली से[1] कुच रंचक उचोहै चित सोंचि रहे सकुचि संकोचि रही कंचुकी ।।२०।।

[1] सी—अ० ।

नवल अनंगा उदाहरण ।

भाल पर भागु लाल बेंदी मैं सुहाग देव भृकुटी अराग अनुराग हुलस्यो परै ।
सखिन कै संग मैं सुहाग राग रंग रुचि रंग भरे अंगनि अनंग उघस्यो परै ।
तन मैं सुभाउ दोउ तुलि के रहे हैं पग डुलि के परै न पैन खुलि के हंस्यो परै ।
आनन्द सुगंध तें सुगंध जैसे फूलनि तें फूल से दुकूलनि तें रूप निकस्यो परै ।।२१।।

प्रथम प्रसंग ।

आमोद विनोद इंदु वदनी गुविंद गोद उदित उदार मोद आनी आदरीक लौं ।
पी की सुख सेज स्वाइ सखी सुख पाइ ओट गई सुख औसर तें सरक सरीक लौं ।
अंचर उचकि कर कोरें कुच कोर लागि औचक उचकि परी छवि की छरीक लौं ।
देव देखौ बावरी सुहाग की विभावरी मैं बावरी डरनि भई घावरी घरीक लौं ।।१२।।

सुरतांत ।

हिरदै कठोर ऐसे निरदै निठुर तेरे सिर दै गई ये फांसि फांसी की फंसनि यह ।
सोंच न संकोच तुम्हैं लोचन न सोहैं होत कैसी उकसाइ डारी केस की कसनि यह ।
गाहक हौ जीके[1] जु कहा कहौं नीके नाह नाहक गमाइ आई लाज की लसनि यह ।
अबहूँ उपाधि तजौ आधिक जियतम्पर बाधिक बधिक तेरी हा धिक हँसनि यह ।।२३।।

[1] गाहक जो जाके जू—अ० ।

मध्या उदाहरण ।

बैरिनि या अनघेरू करे रहौ पीठि दिये रहौ डीठि अमैठी ।
आठहू जामे जिठानी भई रहौ[1] आठहू अंग अठा हठि अैंठी ।

प्यारे की ओर चितौनि न देति सरीकिनि ह्वै दृग मैं दुरि बैठी।
देव जू कोटि इलाज कियेहूं हौं देखति लाज हिये हू मैं पैठी ॥२४॥

[१] रहै—अ०।

मध्याभेद।

प्रगट यौवना अरु प्रगट मदना प्रगलभ बैन।
सुरति विचित्रा चारि विधि मध्या लाज समैन ॥२५॥

प्रगट यौवना उदाहरण।

को हैं वह देखि महा मोहनी को भेख धरैं नखसिख देव-देवता को अवरेख सों।
डगमगे पग मग• रूप रसमगे अंग जगमगे जोवन को जागत बिसेख सों।
या मुख मयंक जीत्यो लंक मृगराज हू को मृगदृग देखे दृग लग्यो न निमेख सों।
मंद मृदु हास सोभा सुन्दर विलास आसपास तें प्रकास को परत परिवेख सों ॥२६॥

प्रगट मदना उदाहरण।

नंद जू के बार देव आए बृषभान द्वार सौंहीं पौरि दौरि सखी कह्यो वर बाम सों।
धाइ गही धाइ देख्यो चाहै चलि धाइ पै मढ़्यो न परै घूंघट[१] कढ़्यो न परै धाम सों।
मदन सदेह[२] जाग्यो सदन संदेह लाग्यो पाग्यो पन पूर्यो मन लाग्यो जाइ स्याम सों।
त्रिकुटी चढ़ाइ कौ लौं भृकुटी भराईं गहैं लागि रही लोइन लराई लाज काम सों ॥२७॥

[१] प्रेम पैठ्यो नववधू घूंट—अ०। [२] सदेस—अ०।

प्रगलभ वचना उदाहरण।

लागी प्रेम डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढ़ि आई नेह सों निहोरि जोरि आली मन मानती।
उत तो उताल देव आपु नंद लाल इत सौंहें भई बाल नव लाल सुख सानती[१]।
कान्ह कह्यो टेरि कै कहाँ तें आई को हौ तुम लागती हमारे जानि कोई पतिवानती।
प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरि जू चलेई जाहु हमैं तुम जानत तुम्हेंहूँ हम जानती ॥२८॥

[१] मुख सानती—अ०।

बिचित्र सुरता उदाहरण।

ह्वै रहे अचल दुति दीपक समीप घेर आगेही तें ज्ौतैं मुखचंद की उज्यारी के।
पिंजरनि मंजु रव सार्यो सुक चार्यो ओर केकी कुल कोकिल कपोत किलकारी के।
अंग अंग नाचत अनंग रंगभूमि नची भृकुटी नटी ले संग नैन नृत्यकारी के।
चित्रनि चतुर मित्र सुरत विचित्र चितै चातुरी चरित्र चित्र मोहै चित्रसारी के ॥२९॥

अथ मध्या की सुरत।

बातनि मैं चूकति अचूक चित कूकति बिभूकति औ भूकति[१] सी लूकति लसति सी।
डोलति अडोल मन खोलति न बोलति बिलोल दृग लोल तनु तोलति त्रसति सी।
मोरति[२] मरोरति बिथोरति औ जोरति सी तोरति निहोरति सकोरति ससति सी।
सोवति संतावति न दूसति[३] न तूसति सी रोवति रिसाति रसरूसति हँसति सी ॥३०॥

[१] रूकति—अ०। [२] मोरनि–अ०। [३] रूसति–अ०।

प्रौढ़ा चतुर्विधि लक्षण ।

लब्धापति रतिकोविदा बस बल्लभ सविलास ।
चौविधि प्रौढ़ा सुरति सुख सम्मुख मोहन हास ॥३१॥

उदाहरण ।

घाइल करत[१] कर साइल मृगनि दृग कुटिल कटाच्छ सर भृकुटी धनुक के।
कंज कर[२] मंजु रव कंकन अनूप पग भू पर धरत बजे नूपुर भनक[३] के।
देव सोधि सुधारी अगाध सुधा सिंधु सुद्ध सुधा सी सुधाई बैन सुधा की बनक के।
बदन सुधाधर सुधाधरै अधर कुच तनक तनक बपु सुभर कनक के ॥३२॥

[१] पाइल करत—अ० ।[२] वर—अ० । [३] कनक—अ० ।

रति कोविदा उदाहरण ।

आरंभन थंभन सदंभ परिरंभ कुच हनन सरंभ अरु चुंबन घनेरेई।
सोखन विमोहन बसीकरन सी करन डाटन उचाटन सु चाटु चित चेरेई।
रीति रति प्रीति अनरीति विपरीत अति भीति हार जीतिहू रहति हिय हेरेई।
भौंर ज्यों सुबास बिसवास बस बस्यो रसमस्यो निसि बासर बिलास बस तेरेई ॥३३॥

वशवल्लभा उदाहरण ।

कंचन किनारी जरतारी के पटंबरानि छाति छहराति छिति छवि को पहल सी।
चमकत चामीकर रचित चंवारो चार्‌यो ओर कोर कोर वर तोरन तहल सी।
जगमगी सेज पै सुहाग रंगमगे दोऊ दंपति को देखैं देव संपति सहल सी।
सुख की टहल मुकुताहल महल बीच केसर कपूर कीच चंदन चहल सी ॥३४॥

हुलास भरे भौंहनि बिलास भरे भाल मृदुहास भरे अधर सुधारस धुरे परैं।
अंग-अंग आतुरी महातुरी नचावै मैन बैन कर सैन चित चातुरी चुरे परैं।
सुखद सुभाव देव कोमल विभाव हाव भावनि के लाल चलि लालच लुरे परैं।
सोंचनि ही सोंचे चित चोर मृग लोचन के लाज भरे लोचन सकोचन मुरे परैं ॥३५॥

प्रौढ़ा को सुरत ।

दोऊ रति पंडित अखंडित करत काम स्याम स्यामा मंडित कला कुहू पुरनि की।
चूकि चूकि चकनि अचूक उचकनि चौंकि चारुताई मोतिन के चौकन पुरनि की।
गंभीर सुरत परिरंभ संभरै न देव कौन गनै रति दंभ रंभारु पुरनि की।
किंकिनी समाजनि की साजनि मधुर सुर भाजनि बिराजनि अनूप नूपुरनि की ॥३६॥

प्रौढ़ा सुरतांत ।

जागे सब जामिनि जम्हात जोर जोवन के जोरि गात अंगिरात भुज कोरी कोरी लै।
सोंधे की सुबास आसपास तें मधुप पुंज गुंजि गुंजि भामरें भरत संग भौंरी लै।
भीतरे भवन देहरी तरे न पांउ धरे भांकत सहेली द्वार केली गृह पौरी लै।
नायिका सुघर वर नायक प्रपंच पंच सायक रच्यो री सुनि दौरी कर चौरी लै ॥३७॥

प्रौढ़ा को सुहाग-शिक्षा ।

मदन सदन सुख सनमुख नूपुरनिनाद रस निदरि अनादर अरेरि मारु ।
देव हंसि हरे हरे हेरि हरुई सु करि गरुई गिरा सों गुन गात न गरेरि मारु ।
तामरस मुख पै तर्‌योननि तमकि तौलौं तरल चितौनि तीखे चलनि तरेरि मारु ।
बालम की गोद चहुँ कोद को विनोद मोद सुमननि मानि दुसमननि दरेरि मारु ॥३८॥

सखी की सिच्छा ।

जो रस माने सु रोस करै रस मैं हंसि रोस करे मटको मति ।
देव मिहीं गुन प्रेम को तागु पुह्यो मन मानिक सों झटको मति ।
है सुख की अँखियानि लै पै सखियानि की बातनि सों अटको मति ।
द्वै दिन पी के सुहाग सों फूलिकै भाग सों भूलि भटू भटको मति ॥३९॥

जाके सुहाग को भाग भर्‌यो अनुराग भर्‌यो जग मैं जसु गैयै ।
रोसहु मैं रिस मैं सुनिहारे समै असमै बस मैं हरि हैं यै ।
देव जु सौतिन सों चलि पूछिये सो तिनको सपनेहुं न पैयै ।
तासों रिसात लजैये जु क्यों नहिं जाके रिसात रसातल जैयै ॥४०॥

इति तृतीय विनोद ।

इनहीं के भेदान्तर ।

दसा अवस्था हाव दस जद्यपि सकल त्रियानि ।
तदपि सुकवि क्रम तें कहत मुग्ध मध्य प्रौढ़ानि ॥१॥
मुग्धनि पूर्वनुराग मैं कह्यो दसा दस भांति ।
अरु मध्यनि की अवस्था भेद कहौं दस कांति ॥२॥

हाव भाव प्रौढ़ानि मैं सहज निरंतर होत ।
चेष्टा मुग्धा मध्य मैं भय लज्जा रस पोत ॥३॥
मुग्धा नवल किशोर के प्रथम पूर्वअनुराग ।
मिलन हेत हिय दुहुनि कैं विरह दसा दस भाग ॥४॥

दस दसा नाम ।

होय प्रथम अभिलाष अरु चिंता सुमिरन भाखु ।
अरु गुनकथा उद्वेग दुख तब प्रलाप चितु राखु ॥५॥
होत व्याधि उन्माद ह्वै जड़ता मरन निदान ।
विरह दसा दस प्रगट ए पूर्वनुराग प्रमान ॥६॥

पूर्वनुराग उदाहरण ।

आली झुलावति झूकनि सों इत्यादि ॥७॥

"आली झुलावति झूकनि सों झुकि जाति कटी झननाति झकोरे ।
चंचल अंचल बीच चलाचल बेनी बड़ी सु गड़ी चित चोरे ।

या विधि भूलत देखि गयो तब तें कवि देव सनेह के जोरे।
भूलत है हियरा हरि को हिय मांह तिहारे हरा के हिंडोरे ।।"
—सुजान विनोद, ७:२५

मिलनेच्छाभिलाष उदाहरण ।

पहिले सतराइ रिसाइ सखी जदुराइ पै पाइ गहाइये तौ।
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक बड़े खन लौं उर लाइये तौ।
अपनो दुख औरन को उपहास सबै कवि देव बताइये तौ।
घनस्यामहि नेकहु एक घरी कहुं ह्यां लगि जौ करि पाइये तौ ।।८।।

प्रेम कहानिन सों पहिले हरि काननि आनि समीप किये तें।
छांड़ि सकोचन लोचन लालची लोचत ही रहै सोंच लिये तें।
देवजु दूरि तें दौरि दुराइ कै मोहन मोहिं दिखाइ दिये तें।
बारिज से बिकसे मुख वै निकसे इत ह्वै निकसे न हिये तें ।।९।।

चिंता उदाहरण ।

छ्वैबे के छोभन छीजत ही[१] छतिया सु छिपाइ करै बहुतेरे।
जीवित नाथ सो जीव सनाथ सो साजति लाज के साज घनेरे।
तेरो कछू न लगै विलगै जिन देव अज्यों जिय जान जियेरे।
पां परि देव रट्यो मरि रे मति मेरो कह्यो करि रे मन मेरे ।।१०।।

[१] छाजत ही—अ० ।

विरह-निवेदन नायिका सों ।

आंखिन देख्यो नहीं दुख जो कहुं काननि जो न सुनी दुचिताई।
देव कहा कहौं देह दहै सोइ नेह नयो कै अनोखी मिताई।
भोजन पान कहा सुख सोइबो सैन घरीक न रैनि रिताई।
चंद्रिका मंदिर चंद्र मैं चित्त दै चैत की राति अचेत बिताई ।।११।।

ध्यान लक्षण ।

चिंता बढ़ि चित विकल ह्वै करै मित्र को ध्यान।
आठो सात्विक भाव तहं होत तत्व विज्ञान ।।१२।।

उदाहरण ।

राधिका कान्ह को ध्यान धरैं तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै।
त्यों[१] अँसुवा बरसै बरसाने को पाती लिखै लिखि राधिके ध्यावै।
राधे ह्वै जाइ तेही छिन देव सु प्रेम की पाती लै छाती लगावै।
आपु ते आपुही मैं उरझै सुरझै बिरझै समुझै समुझावै ।।१३।।

[१] तौ—अ० ।

हरि मूरति को धरि ध्यान रही रति पूरति[१] प्रेम हिलोरन ही।
ब्रज चंद जू को चित सुंदर आनन चंद चितै चितचोरन ही।।
कवि देव रही रस घूमि घनी हिये हेरि हनी दृग कोरनि ही।
सुकुमारि सु मारि सु मार करी मरूरी मरै मार मरोरन ही।।१४।।

[१] मूरति—अ०।

ध्यान को विरह निवेदन 'प्रेम तरंग चंद्रिका' में है।
जागत जागत खीन।।१५।।

"जागत जागत खीन भई अब लागत संग सखीन को भारो।
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों बसिबो बिसो बीस बिसारो।।
प्यो सुधि द्यौस गँवावति देव जू जामिनि जाम मनो जुग चारो।
नीरज नैनी निहारिए नैनन धीरज राखत ध्यान तिहारो।।"

—प्रेम-चंद्रिका, २ : ३७

गुण कथन।

सुमिरि परसपर दंपती रहत सरस रस पागि।
विरह मथन पिय गुन कथन बरनत अति अनुरागि।।१६।।

वद्य हरणं। चंद्रिकाम्या 'ए बिनु'।।१७।।
जे बिनु देखे गये दिन बीति न को पछिताउ अरो हिय हैए।
देव जू देखि उन्है हौं दुखी भई या जिय को दुख काहि दिखैए।
देखे बिना दिख साधन ही मरि देखुरी देखत ही न अघैए।
देखत देखत देखत ही रही आपनी देहौ न देखन पैए।।"

—प्रेम-चंद्रिका, २ : ३८

उद्वेग लक्षण।

बरनि बरनि गुन मित्र के बाढ़त बिरह अनेग।
भली वस्तु नागा लगै प्रगट होइ उद्वेग।।१८।।

उदाहरण।

रंग भौन भीतर उभीतर अतर रंग रावटी उसीरन तें ढाढ़स ढह्यो परै।
झंझरी झरोखा झाँकि झाँकति दृगनि देव द्वार देहरीनि देखि देह री दह्यो परै।।
कूकि कोकिला कुल करत बन आकुल निकुंज मंजु गुंज अलि पुंज उमह्यो परै।
गोपैं पग धीरज विलोपैं ये समीर धीर राती हरी कोपैं हरि मोपै न रह्यो परै।।१९।।

जीके सुख नीके काहू जानत नजीके जो तिहारे जाय तापन नजीके जरि जायगी।
नीर बिन मीन ज्यों समीर बिन छीन जन दुखी देखिबे की भूरि भूख भरि जायगी।।
देव घनसार वपुरैनि को बितावै लीपि येकहु तुसार ज्यों पुरैनि परि जायगी।
खंजरीट नैनी मृदु मंजरी सहज मार भार सों रुझि उरझि कै मु मरि जायगी।।२०।।

प्रलाप लक्षण ।

दंपति के उद्वेग हूं बाढ़ै विरह अलाप ।
चित उतकंठा प्रेम पिय पेख्यो प्रगट प्रलाप ।।२१।।

उदाहरण ।

जीभ कुजाति न नेकु लजाति गने कुल जाति न बात कह्यो करै ।
देव नयो हिय नेह लगाइ विदेह की आँचनि देह दह्यो करै ।।
जीभ अजान न जानत ज्यान जु आन अयान के ध्यान रह्यो करै ।
काहे को मेरो कहावत मेरो जु पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै ।।२२।।

नाखिन टरत टारे आँखि न लगत पल आँखिन लगेरी स्याम सुंदर सलोन से ।
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस भरि भरि रूप लेत लोचन अचौन से ।।
एरी कहि कोहौ हौं कहा हौ कहा कहति हौं कैसे वन कुंज देव देखियत भौन से ।
राधे हौ सदन बैठी कहती हौ कान्ह कान्ह हाहा कहि कान्ह वे कहाँ हैं कोहैं[1] कौन से।। २३।।

[1] कैसे—हाशिये पर दूसरे हस्ताक्षर में—अ० ।

सखी को वाक्य ।

मैं न कही री कहा भयो तोहि कहूँ मति मानिक सों मन खोलै ।
आई गमाइ कमाइ कहा कहौं बातन ही उतपातन तो लै ।।
बाहिर पौरि न दीजिये पाँउ री बाउरी होइ सु डावरी डोलै ।
तेरी बलाइ बकै री बलाइ ल्यों चूमति तो मुख तू मति बोलै ।।२४।।

अथोन्माद लक्षण ।

प्रेम विकल बकि-बकि थकी बाढ़यो विरह विषाद ।
बिन विचार जो कछु करै ताहि कहौ उन्माद ।।२५।।

उदाहरण ।

आन की कहति आन आनति न आन आन कान आने अनाकानी करे ध्यान ताहू को ।
बावरी सयानी की सुभाउ री न जानी जाति वासर बिभावरी सुभावै कौन जाहू को ।।
कहि कहि उठति कहाँ है री कहाँ है कान्ह दौरि-दौरि भेंटै देव सेवक सभाहू को ।
मानति न काहू उर आनति न काहू जिय जानति न काहू पहिचानति न काहू को ।।२६।।

ये अपनी करनी किनि देखत देव कहा न बनाइ कछू मैं ।
घाइल ह्वै कर साइल ज्यों मृग त्यों उतही उतराइल घूमैं ।।
मेटिबे को तन ताप दुहूँ भुज भेंटिबे को झपटै झुकि झूमैं ।
चित्र के मंदिर मित्र तुम्है लखि चित्र की मूरति को मुख चूमैं ।।२७।।

व्याधि ज्वरादि विकार उदाहरण ।

फूल से फैलि परे सब अंग दुकूलनि मैं दुति दौरि दुरी-सी ।
आँसुन के जल पूरति साँसनि सों सनि लाज इलाज लुरी सी ।।

देव जू देखिये दौरि दसा ब्रज पौरि पै रौरि कथा बिथुरी सी।
हेम की बेलि भई हिमरासि घरी पल घाम मैं जाति घुरी सी ।।२८।।

दसम दसा लक्षण।

दसम दसा सो मूरछा कहूँ मरन ह्वै जात।
ताहू तो विधि बरनिये जामैं रस न नसात ।।२९।।

उदाहरण।

ह्वै[1] अभिलाष सचिंत भइ हरि को धरि ध्यान कहैं गुन गोतैं।
पानी न पान न पौन हूँ चैन भई बकि बावरी कालि परो तैं ।।
आरति सौं न सम्हारति आजु भई अरविंद ज्यों इंदु उदोतैं।
केलि के भौन सहेलिनि की हिलकी सुनि कै किलकीं सब सौतैं ।।३०।।

[1] द्वै—अ०।

कान न सुनति आन आनन चितौति कहूँ आनन अनूप रूप छबि की छुधा भरे।
लोचन कमल कुम्हिलाने कुल कमला के बिलखि बिलाने बिरहागि वसुधा भरे ।।
डीठि विष डासी ह्वै बिसासी विषधर स्याम सेवत सुधाही देव दूभर दुधा भरे।
ज्याइ लीजे जाइ प्याइ पीतम सुधाधर सो सुने हैं तिहारे अधराधर सुधा भरे ।।३१।।

आए अचान सुने पति प्रान भयो सुख प्रान गयो दुख भारी।
त्यो सुखदाइक को मुख देखि जगी नवला नव लाज सम्हारी ।।
मोह समुद्र मैं बूड़ति ही गहि बाँह हियो भरि नाह निकारी।
राह के आनन तें निकसी बिकसी मनो देव ससी की उज्यारी ।।३२।।

एहि विधि मुग्ध वधूनि मैं विरह पूर्व अनुराग।
अभिलाषादिक दस दसा तब संयोग सुहाग ।।३३।।

इति चतुर्थ विनोद।

मध्या विषय दशा वर्णनम्।

मुग्धनि पूर्वनुराग मैं कही दसा दस भाँति।
अब मध्यनि की अवस्था भेद कहौं दस कांति ।।१।।

अवस्था नाम।

स्वाधीना वासकवती उत्का खंडित वार।
विप्रलब्ध कलहंतरति गतपति कृत अभिसार ।।२।।
आठ अवस्था भेद ये बरनत मत प्राचीन।
पिय विदेस गमनागमन जुत दस कहत नवीन ।।३।।

क्रम तें लक्षण।

सो कहिये स्वाधीनपति जाके पति आधीन।
वासकसज्जा सेज को साजै वार प्रवीन ।।४।।

प्रिय आगम बीतत समौ उत्कंठित चित चीत ।
खंडित वार[1] सु खंडिता प्रातहि आवै मीत ॥५॥

[1] खंडिस वार—अ० ।

विप्रलब्ध पति मिली नहीं जिहि संकेत बुलाइ ।
कलहंतरिता कलह करि पति सों फिरि पछिताइ ॥६॥
अभिसारिक पिय गृह चलै समै समान सरूप ।
प्रोषितपति परदेस पति दै गयो अवधि अनूप ॥७॥

स्वाधीनपतिका उदाहरण ।

जाकी सबै बिनु मोल की चेरी सु बोलनि के बल मोल लियो तैं ।
साधन जो दिख साधन को सु महा धन लै भरि राख्यो हियो तैं ॥
जोरे रहै दृग तो दृग देव जू दर्पन को प्रतिबिंब कियो तैं ।
जो मधुराधर आनन सो मधुराधर आनन ओठ पियो तैं ॥८॥
अथ वासकसज्जा अष्टयाम मैं ।
देव सखी एक लीने फुलेल इति ॥९॥
"देव सखी इक लीन्हे फुलेल सु चोया के चोरनि येकै निचोरै ।
येकै लिये कंगही इक दर्पन चेरी लिये इक बीजन डोरै ॥
चौकी पै चंद्रमुखी बिनु कंचुकी अंचर मैं उचकै कुच कोरै ।
बारन गौनी बधू बड़ी बार की बैठी बड़े बड़े बारनि छोरै ॥
—सुखसागर तरंग, ६३२

सेज के[1] समीप दीप दीपति जगमगाति दीपनि मैं चंद रुचि चंद मुख चंद की ।
भीति छिति छातिन छहरि उठै सोधों मंद पौन मैं लहरि मालती के मकरंद की ॥
नागरि नवीनै परवीनै कर वीनै देव गान रस लीने उर उमग अनंद की ।
कान लगी आवनि धनी के धन ध्यान लगी प्रान लगी प्रीति प्रानप्यारे नंद नंद की ॥१०॥

[1] सेज की—अ० ।

उत्का उदाहरण ।

आए न दवे सु आनन्दसा भई आनंद साहस की मति मूँदी ।
खंजननैनी उठी अकुलाइ धरे अंगुरी पर अंजन बूंदी ।
पौरि लौं दौरि के देखो री देखो कहै कर दाबै रहै पट फूंदी ।
आली अंगोछत अंग छुटी गज मोतिन मंग छुटी अधगूंदी ॥११॥

पलै पल पूछति विपल दृग मृगनैनी आए न कमलनैन आई ए अलपरी ।
जीभ मैं जलप देव देखिवे की तलप सु भूतल परी है पै सुहाति न तल परी ।
रसिक रसिकलाल कलानिधि मिलै तौलौ कलानिधि मुख चितचाई की चलपरी ।
केलि के महल कलभाखिनि अकेली संकलप विकलप[1] ही मैं क्योंहूं न कल[2] परी ॥१२॥

[1] संक कलप विकल–अ० । [2] तकल–अ० ।

खंडिता उदाहरण।

सांझ ससी ह्वै कै हंसि विहंसि कुमुदिनी के रहै चलि नीके नलिनी के उर सूल तें।
कीनी निहचिंत हौं दुरंत चित चिंता मेटि देव सेवकिनि के सदाही अनुकूल तें।
सिसिर मयंक सों ससंक पंकजनि जानि रजनी गमाइ भले भली भई भूल तें।
लाल लाल अम्बर उदित बाल भानु हेरि भोर बिनु लाइन कमल के से फूल तें ॥१३॥

मध्या धीरा खंडिता को व्यंग्य वचन।

है परमेसुर ते पतिनी को सदा पति नीको जु लोक लहावै।
देव जू दोस कहा कहिये दुख औ सुख औ सहिये जु सहावै।
दूरिहूं ते रहिये कर जोरि निहोरि पगौ गहिये जु गहावै।
काहे को रारि बढ़ाइ बृथा कुल नारि चढ़ाइ कुनारि कहावै ॥१४॥

विप्रलब्धा उदाहरण।

निपट निठुर हठि कठिन बसीठी के पढ़ाइ नव लग्यो आई गई दिन दूक ह्वै।
लै गई भुलाइ गुरू बंधु ते दुराइ चित बातनि चुराइ कीनी चातुरी अचूक ह्वै।
वै उत मिले न मिले पंचसर ताने सरदेव परपंच रही पूछति कछूक ह्वै।
केलि वन कुंज तें अकेली उठि चलि रूठि नागिनि लौं फूंकि मदनागिनि की ऊक ह्वै ॥१५॥

सखी सों।

गौरिन को गुन गर्व सु सर्वसु ग्वाँरि गँवावन हारि[१] लखी तू।
बातन यों घर जात पने उतपातन[२] की विधि मैं न नखी तू।
ल्याइ भुलाइ सु मेरिय भूल चली अपने मुख मेलि मखी तू।
देव जू मीत अमीत सुने नहिं होति सुनी भई सौति सखी तू ॥१६॥

[१] सु सर्वसुं खारि गंवावत हारि—अ०। [२] उतपानन—अ०।

कलहंतरिता उदाहरण।

मेरे मन तेरे गुन औगुन घनेरे कहा औगुन गनाऊं गुन गाऊं गहि बीन को।
देख्यो सीख्यो देव तू दिखायेहूं सिखांयें बिनु तोही को दिखावे को सिखावे परवीन को।
तब क्यों रिसान्यो अब पीछे पछितान्यो तैं न जान्यो जड़ जीव या बिचारे दुख दीन को।
तेरो कै पत्यारो प्यारो प्रीतम मैं न्यारो कियो प्रानधन जीवन उज्यारो जुवतीन को ॥१७॥

प्रेम पयोधि पर्‍यो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहि रे मन।
कोप तरंगन सों बहि रे पछिताइ पुकारत क्यों बहिरे मन।
देव जू लाज जहाज तें कूदि भेज्यो मुख मूंदि अजौं रहिरे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुहीं यह तेरी अनीति तुही सहि रे मन ॥१८॥

प्रोषितपतिका भेद।

चलनहार परदेस पिय अरु पिय आवनहार।
अरु विदेस पति तीनि ये गतपति भेद विचार ॥१९॥

प्रवसत्पतिका उदाहरण।

प्रानपती कहुं जान कह्यो उड़्यो चाहत प्रान रहे न अड़े अड़े।
सो सुनि देखि घटे न बढ़े जु उसासनि ओप हिये उमड़े मड़े।
लोक बिलोकि लजात से जात हैं गोरी के गातनि गात गड़े गड़े।
देव जू नाखिन सूखत री ए बड़ी अंखियानि तें बूंद बड़े बड़े।।२०।।

जान कह्यो काहू सों अचानक ही कान सुनि जानत न प्यारी को कहाधौ विधि होनेई।
देखौ दुख दूखि के उसासनि ही सूखि गई कैसी निसि नींद स्वेद[१] बूंद दृग कोनेई।
देव जू चले हैं प्रात चिरैया चुहुचुहात चंद मुखी चुप ह्वै रही है मुख मौनेई।
हाथ पाइ काइ साथ काय हाथ प्रान प्रान प्राननाथ साथ जान कहत अगौनेई।।२१।।

[१] खेद–अ०।

विदेस पतिगत पतिका उदाहरण।

प्रानपती को प्रभात पयान प्रभाकर कोटिहूं तें प्रतिकूल सों।
क्यों रहै प्रान चले पहिले पल दूसरो द्योस दसा दुख मूल सों।
नेह रच्यो बिरहागि तच्यो प्रिय प्रेम पच्यो पजरे तन तूल सों।
आंसुनि दूखि उसासनि रूखि गयो मुख सूखि गुलाब के फूल सों।।२२।।

आगत्पतिका उदाहरण।

कान पर्यो पति प्रान को आगम प्रान को पाइहै आनंद लूटि सी।
देखि सुहागिनि को सुख सौति मरी बिनु मौति हलाहल घूंटि सी।
ज्याइ[१] लई पिय प्याइ पियूख गई जिय की जम फांसियो टूटि सी।
लाल को भेंटत ही बरबाल परी सफरी जल जाल तें छूटि सी।।२३।।

[१] जाइ–अ०।

आवन की भनक अचानक ही कान परी आए सुनि देव सबही के सुख साज सो।
औधि गुन बांधी देह अचल सनेह नाधी आनंद की आंधी मन गयो उड़ि बाज सो।
पौरि ही तें दौरि दुहूँ भुजन मैं अंक भरि[१] भेंटतो जो प्यारो जो समेटतो समाज सो।
वारिधि विरह बड़वागिनि की लपट बरि जाती अबला जु अब लाज के जहाज सो।।२४।।

[१] दौरि के दुहूं भुजन अंक भरि–अ०।

अभिसारिका।

प्यो सुखदैनि चली पिय पै मृगनैनी निहारि कै रैनि अंधेरी।
स्याम तमालनि के बन बास रच्यो तन मैं[१] मृगमेद घनेरी।
अंबर नील मिली तम तोम खिली उखिली मुख सोम उजेरी।
देव सु भौंरनि घेरि लई अरु मोरनि घेरि चकोरनि घेरी।।२५।।

[१] रचा तन मैं–अ०।

सूझत न गात ।।२६।।

"सूझत न गात बीति आई अधरात अरु सोये सबै गुरुजन जानि कै बगर के।
छिपि कै छबीली अभिसार को किंवार खोले खुलिगे सुगंध चहुँ चंदन अगर के।
देव कहै भौंर गुंजि आए कुंज कुंजनि तें पूछि पूछि पाछे परे पाहरु डगर के।
देवता कि दामिनि मसाल किधौं जोति जाल झिगरे मचत जागे सिगरे नगर के।
—सुजान विनोद, ४:३२।

सुंदरि सिंगार करि आई अभिसार करि चहुं ओर सुर भौंर भीर करि राख्यो है।
मंद मृदु हास मुखचंद को उज्यास सुख सेज आसपास तें प्रकास भरि राख्यो है।
केसरि कुरंग्सार देव घनसार मिलै चंदन अगर को पसार करि राख्यो है।
महल सुहाग बाग भरि कै सुहाग अनुराग भरि राग भरि भाग भरि राख्यो है ।।२७।।

प्रौढ़ा विशेष दस हाव कथन।

लीला और विलास कहि विच्छित्त अरु बिव्वोक।
विभ्रम किलकिंचित कह्यो मोट्टाइत अवलोक ।।२८।।
कह्यो कुट्टमित अरु विहृत ललित ललित दस हाव।
त्रिय प्रिय सन्मुख पूर्ण रस सरसत सहित सुभाव ।।२९।।

क्रम तें लक्षण।

कपट भेष भाषानु करि लीला मैं रसहास।
सरस भाव तनमन वचन रुचिर सु रचन विलास ।।३०।।
लघु मंडन विच्छित्ति मैं मन अभिमान विशेष।
विभ्रम सो जु प्रमाद तें उलटे भूषन भेष ।।३१।।
किलकिंचित इकबार भय मुद रस रिस अरु मान।
मिले कपट मोट्टाइत सु वचन आन मन आन ।।३२।।
मन मैं सुख संकट प्रगट कपट कुट्टमित हाव।
पिय सदोष बिव्वोक कहि दृग भौंहनि के भाव ।।३३।।
अपनो गौं मिस लाज छल विहृत आन मन आन।
ललित सरस रचना ललित बरनंत सुकवि सुजान ।।३४।।

लीला उदाहरण।

छलकै अति राख्यो छिपाइ छपा मैं छपाकर की छवि हौं छहराऊं।
देव जू गोहन लागे फिरैं गहि के गहिरे रंग मैं गहिराऊं।
बांसुरी की बनि ताननि सों ब्रज की बनितानि सबै बहिराऊं।
पीत पटा पहिरौं हौ भटू उन्हैं नील प्टा दुपटा पहिराऊं ।।३५।।

विलास उदाहरण।

हास हुलास विलास विलासनिहूं प्रिय प्रेम प्रकासनि मोहै।
गाए लगाए लिए फिरे गोहन मोहन को गुन सों मन पोहै।

देव कहा कहौं देखत ही बनै सुंदरताई को मंदिर सो है।
चीकनी चौंकनि चालि चितौनि बराबर बारन गौन को को है॥३६॥

विच्छित्त उदाहरण।

भूषन भेष बिसेष बनावै न देखत देख महासुख दैनी।
चारु चितौनि बिलोचन बाननि सान चढ़ाइ करी अति पैनी।
देव दिपै दुति मोतिन तें अति जोवन जोतिन सों जग जैनी।
मोहन के मन रंजन को करै अंजन दै दृग खंजन नैनी॥३७॥

विभ्रम उदाहरण।

सोवत तें उठि आई प्रभात प्रभा तकि प्रीतम पेम सों पागे।
देव इतो इतराति अहो इत राति लसैं अंखियां निसि जागे।
लंक लटे उलटे पट भूषन ऊलटि ओर छुटि लट आगे।
रूप को मूल अनूप दुकूलनि भूल भई सु भलै अति लागे॥३८॥

किलकिंचित उदाहरण।

देव इती अनरीति अनीति की प्रीति की बातन ही पहिचानती।
आवती हौं जु बुलाए बिना अनबोले तें बोल कुबोल बखानती।
खेल मैं को गनै छोटो बड़ो अरु क्यों हू गड़ो कत भौंहनि तानती।
रोवति सी हंसती सी रिसाती खिस्याती कहै पर मान सु ठानती॥३९॥

मोट्टाइत उदाहरण।

भाग बड़ोई बड़ो अनुराग सुहाग बड़ो जग जानत जैसो।
तापर तूठी सी रूठी रहो अहो तूठी न रूठी न मूठी मैं है सो।
देव जू प्रीति की रीति न वैरु न प्रीतिन वैरु कहौ मतु तैसो[1]।
मेरो अयान सयान तिहारो कि मान बिना अपराध सु कैसो॥४०॥

[1] तुम तैसो—अ०।

कुट्टमित उदाहरण।

स्वारथ ही के हितू हित ही के हितारथ ही जिय जीवत जीके।
लंगरु अंग ही अंग मिले रति संग सरै बिसरै मुख फीके।
हानि गनै न मिटै कुलकानिहू जानि लुटावत लोक की लीके।
देव जू देखे महा सुखदानि हमैं दुख दै सुख पावत नीके॥४१॥

बिब्वोक उदाहरण।

आए हैं पैन्हि प्रभातहि प्रीतम सौति की मोहन माल गढ़ाई।
देव निहारि सु दूरहीं तें बर नारि सखीन सों रारि बढ़ाई।
टेढ़ी करी भृकुटी त्रिकुटी भरि डीठि छुटी दृग मान कढ़ाई।
प्यो हियो रोपि निसानो नखच्छत कोपि ज्यों काम कमान चढ़ाई॥४२॥

विहृत उदाहरण।

प्यो सुखदैन सौं बोली न बैन गई करि कै कर सैन सहेली।
ताहि निहारि कै लाज निबाहति चाहत चित्त कियो रस केली।
काम कमान सी भौहैं चढ़ाइ कै बान से नैन नचाइ नवेली।
देव सु दामिनि सी दुरि दौरि कै भामिनि भौन के कोन अकेली ॥४३॥

ललित उदाहरण।

लागत समीर लंक ॥४४॥

"लागत समीर लंक लहकै समूल अंग फूल से दुकूलनि सुगंध बिथुर्‌यो परै।
इंदु सो बदन मंदहासी सुधाबिंदु अरविंद ज्यों मुदित मकरंदनि मुर्‌यो परै।
ललित लिलार श्रम झलक अलक भार मग मैं धरत पग जावक घुर्‌यो परै।
देव मनि नूपुर पदम पद दू पर ह्वै भू पर अनूप रंग रूप निचुर्‌यो परै॥"

—सुजान विनोद, ५ : ४४

गोरे गोरे गात नवजोवन जगमगात उदित अनूप रुचि रूप छवि सों लसो।
पेखनो सो पेखत विलास हास देव दुति देखत उठत हिये होत अति हौल सो।
नख सिख खोजत मनोज के विसिख खोज ओज चित चोजनि को नेह नित नौल सो।
झीने झिलमिले पट घूंघट मैं झलकति ललित लुनाई सों कलित मुख कौंल सो॥४५॥
जगमगी जोतिन जराऊ मनि मोतिन की चंद्रमुख मंडल पै मंडित किनारी सी।
बेंदी बर बीरनि गहीरनि की देव झूम झूमका झमक झमकत भीर भारी सी।
अंग अंग उमड्यो परत रूप रंग नव जोवन अनूप की तरंग चटकारी सी।
आगे आगे मनिन तें जगर मगर होत सखिन संजोए पीछे आवति दिवारी सी॥८६॥

इति श्री सुमिल विनोदे पंचम विनोदः।

अथ वियोग शृंगार विषय मानप्रकास करुणात्मक वर्णन—

पिय को दच्छिन बाम लखि तिय हिय मान संदेह।
पूरन मान बखानिये पति सठ धृष्ट सनेह॥१॥
ज्येष्ठा और कनिष्ठका दुखित अन्य संभोग।
विप्रलब्ध हूं खंडिता मान बखानत लोग॥२॥
मुग्धा मध्या प्रौढ़ तिय ऊढ़ा और अनूढ़।
क्रम तें इनकी मानविधि बरनत गूढ़ अगूढ़॥३॥
गुरु मध्यम लघु मानि पति गुरु मध्यम लघु दोष।
धीर अधीरा मध्यमा धीरादिक वय पोष॥४॥
गुरु मध्यम लघु भेद ये अरु धीरादिक भाइ।
मान अवस्था तियनि की सूछम सहज सुभाइ॥५॥
स्वकिया सर्वसु मान है परकीया बस प्रेम।
समुझत रसिक सुनार ज्यों कस्यो कसौटी हेम॥६॥

क्रम तें लक्षण ।

अधिक नेह पिय जेष्ठ तिय ऊन सनेह कनिष्ट ।
नेह निबाहे चातुरी रहै दुहूं को इष्ट ।।७।।
दासी सखी की दूति सों गुपित करे पति नेह ।
दुखित अन्य संभोग लखि होत मान संदेह ।।८।।

सौतिन के संपति सुने रूप सील गुन सर्व ।
करति मान को अंग लै प्रेम रूप को गर्व ।।९।।
पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुरु मान ।
मध्यम ता मुख नाम सुनि दरसन ता लघु जानि[१] ।।१०।।

[१] लछिम सुजानि—अ० ।

साम दाम नति गुरु छुटे मध्यम सो गहि पाइ ।
लघु छूटे पति प्रेम गति कथा कुतूहल भाइ ।।११।।
गुरु मध्यम लघु मान को मुग्धा सूछम भाव ।
अरु धीरादिक भाव नौ मध्या प्रौढ़ सुभाव ।।१२।।

प्रौढ़ा धीरा कोप करि कोप अधीर अधीर ।
धीरा धीरा मध्य रुष रोदन वचन गहीर ।।१३।।
मध्या धीरा व्यंग रुख सो अधीर अव्यंगि ।
धीराधीरा लच्छना लच्छित दोऊ इंगि ।।१४।।

क्रम तें उदाहरण । ज्येष्ठा कनिष्ठा उदाहरण ।

खेलत आंख मिहीचिनि खेल मिहीचत आंखि बतावै न वाहू ।
दूसरी कौ पट लेत उठाइ छिपावै मिलै छतिया छतियाहू ।
देव इतै कर दाबत याहि कहै उत वाहू सों ढूंढ़न जाहू ।
पूछि कछू मति काहू सों घूमत झूठे ही झूमत चूमत काहू ।।१५।।

अन्य संभोग दुःखिता उदाहरण ।

देव को बावरी घावरी होइ कहा घबरैबो जु पै मरिबे ही को ।
जानि के कौन मरै बिनु मीच मरैहू न काम कछू सरिबेही को ।
खेलो हंसो खुलिकै खलु सोई इलाज करै सु करो लरिबेही को ।
जापै मया करै ताही को भाग जो लाइक होइ मया करिबे ही को ।।१६।।

प्रेम-गर्विता उदाहरण ।

राग रंगीले सों री कहिये कत रागहि के मृग रावरे ह्वैहौ ।
देव दबे रहो देखे बिना दिखसाधन ही दुख बावरे ह्वैहौ ।
घेर घरै घर घालिन के घर ही घर डोलत डावरे ह्वैहौ ।
घोर घनी घनघोर सुनै घनस्याम घरीक मैं घावरे ह्वैहौ ।।१७।।

रूपगर्विता उदाहरण।

भूलै मति बंधु हे मदंध मधुकरनि को तो मैं तो बंधु: मुख सुगंध सरसाते हौ।
रहिरे कमल जल गहिरे गुमान तजि गहि रे चरन सोभा सबही सुहाते हौ।
वृन्दावन चंद देव भए तौ अनंद करौ चंदमुखी मोहू सों अकह कहि तातें हौ।
एरे मुख मेरे की बराबरी करत हिमकर भोर होत ही हमारी तेंरी बाते हौ ॥१८॥

मान उदाहरण। मुग्धा को मान उदाहरण।

ओठनि तें उठि बैठि कंधानि पै अैंठि मुर्यो न कहूँ मुख मोरन।
देव कटाछनि तें कढ़ि कोप लिलार चढ़्यो बढ़ि भौंह मरोरन।
अंक मैं आई मयंक मुखी लई लाल को बंक चितै दृग कोरन।
आंसुनि बूड्यो उसास उड्यो किधौं मान गयो हिलकी की हिलोरन ॥१९॥

मुग्धा की सखी।

सुंदर जोवन रूप अनूप निहारत काहि न लागत नीको।
देव जू दोस कहा मुख देख्यो परोस पछावर की रमनी को।
पै इनही को सुभाव अनैसो हिये धरि राखती धोखो धनी को।
आंसुनि बूंद दुहूं दृग कोरनि धाम गड्यो धन ज्यों निधनी को ॥२०॥

अथ प्रौढ़ा को गुरु मान।

प्रीतम आए प्रभात प्रभा तकि रंग रंगे कहुं संग किये तैं।
दूरि तें आवत देखि हंसी ढिग तें उकसी न बिराग लिये तैं।
थाके मनाइ परे पिय पांइ मनोहर भाल गमाइ दिये तैं।
नैकु मुर्यो बहुर्यो बिहंस्यो मुख मान तरु निकस्यो न हिये तैं ॥२१॥

मध्यमान उदाहरण।

दंपति सोवत हैं सुख सेज महा सुख सों मुख सों मुख मौननि।
ताही को नाम लै टेरि उठे सपने पिय जाके बसे रंग भौननि।
लौटि परी सुनि प्यारी करौंट लै सूखत ओंठ उसास के पौननि।
नैकु गिरे न फिरे बरुनीन रहे अंसुवा बसिकै दृग कोननि ॥२२॥

लघु मान यथा।

ऊंचे अटा चढ़ि प्यारी परोस की लोइन लाल उतै लहराये।
देव सु देखत देखि दुखी भई आपु सों देखि हिये हहराए।
न्यारी ह्वै प्यारी परी उठि सेज दुहूं दृग तें अंसुवा ढहराए।
हांसी के कारन दास भए हरबाइ लला तरवा सहराए ॥२३॥

धीरादि दोहा।

मान समै सुकियानि के व्यंग वचन परधान।
सकल लच्छना लच्छिये वाचकहू परमान ॥२४॥

तिनकै ब्यौरो

व्यंग सुचेष्टा धीर तिय वच अव्यंग अधीर ।
व्यंग लच्छना कर्म रुख प्रगट सुधीरा धीर ।।२५।।
प्रौढ़ धीर गुरु मानिनी सादर धीर उदास ।
साम दाम पति सों प्रनति मानै जानै दास ।।२६।।
प्रौढ़ा धीरा धीर को व्यंग वाक्य रुख जानि ।
केवल वाच्यहिं पुरुष सों प्रौढ़ अधीरा मानि ।।२७।।
व्यंग वचन पति सों कहै मध्या धीरा नारि ।
धीराधीरा[1] करि रुदन अधीर नेह निरवारि ।।२८।।

[1] धीराधीर—अ० ।

वाच्य व्यंग लक्षणा के लक्षण ।

वाचक सूधे शब्द मैं वाच्यक अर्थ सुभाव ।
झलकत व्यंजक शब्द मैं व्यंग्य अर्थ को भाव ।।२९।।
वाच्यक व्यंजक शब्द हूं वाच्य व्यंग के बीच ।
लच्छ. अर्थ लाच्छनिक मैं प्रगटै लौटि नगीच ।।३०।।
अभिधा सूधी बात है लौटि लच्छना फेरु ।
तातपर्ज धुनि व्यंजना तिहूं वृत्ति को हेरु ।।३१।।

अथ वाचक शब्द अर्थ की वृत्ति अभिधा के स्थान ।

अभिधा सूधी बात कै जाति कर्म गुन काम ।
सम्मुख बचननि बूझिये अरु निज संज्ञा नाम ।।३२।।
रूढ़ि प्रयोजन कछु करै वाच्य अर्थ की भूल ।
लच्छ लौटि प्रगटत निकट होत व्यंग को मूल ।।३३।।

अथ लच्छना के स्थान ।

स्वपर अर्थ सारोप अरु कहिये अध्यवसान ।
सदृश भाव विपरीतिता आछेपक अनुमान ।।३४।।
कारज कारनहू कहौ सकल लच्छना इंगु ।
धुनि संज्ञा सुर चेष्टा पुनि तातपर्जहू विंगु ।।३५।।

इन तिहूं शब्द को प्रस्तार है। अथ अभिधा के स्थान ।।१।। अथ लच्छना के स्थान ।।२।। अथ व्यंजना के स्थान ।।३।। जाति वर्णन ।।१।। सदृश भाव वर्णन ।।१।। ध्वनि विकारः ।।१।। कर्म वर्णन ।।२।। विपरीत भाव वर्णन ।।२।। संज्ञा विकार ।।२।। गुण वर्णन ।।३।। कार्य कारण भाव वर्णन ।।३।। स्वर विकार ।।३।। संज्ञा नाम वर्णन ।।४।। आक्षेप गुणनाम ।।४।। चेष्टा विकार ।।४।। तातपर्ज ।।५।।३६।।

मध्या धीरा उदाहरण।

आजु हौं नाथ सनाथ करी इत आइ कियो चित तैं हित भारो।
देव सुखी चित ह्वै थिर ह्वै रहै भागवती जेहि नैकु निहारो।
धन्य अवास निवास कियो जिन अंग सुवास सुवासनि गारो।
सीखनि लै गुरु बंधुनि की मन लेत है मोल सुगंध तिहारो[1] ॥३७॥

[1] तेहारो–अ०।

सोलह सहस ब्रजनारी सब यों कहत जाते हौ निकंट जहां जिनके संकेत हैं।
केहि विधि दंपति परसपर लेत रस दासी पटरानी पर कैसे सुख लेत हैं।
तुम तो सखा हौ अब सांची कहौ ऊधो मोसों काम के उमाहे राम कैसे रस लेत हैं।
कौने विधि कुबिजा पै पौढ़िबे को बन आवैं खाट काटि[1] देत हैं कि खाड़ो[2] खोदि लेत हैं ॥३८॥

[1] काढ़ि–अ०। [2] कि खाटो–मूल में, उसी हस्ताक्षर से 'कि खाटो' का 'कि खाड़ो' बनाया गया है–अ०।

सादृश्यरूप लक्षणा स्वर विकार व्यंग। मध्या अधीरा उदाहरण।

सोवतहू नहिं भूलै तुम्है सपनेहू मैं वाके बियोग कराहौ।
जागत मैं दिनराति कहा कहौ वाही के ध्यान न सूझत राहौ।
देवजू और को ओर कहां तुम तो हरि वाके हिये के हरा हौ।
सो बड़भागिनि सो अनुरागिनि सोइ सुहागिनि जाहि सराहौ ॥३९॥

विपरीत लक्षण रूप में ध्वनि व्यंग। अथ मध्या धीराधीरा उदाहरण।

देव कहूं बरसै गरजै कहुँ पार न काल कहूं उमड़ेई।
सीतल सांझ प्रभात के भानु मैं जानि महा तप तेज मड़ेई।
भागु बड़ो जग जानिये ताही को जाके रहौ प्रभु प्रीति गड़ेई।
बूढ़ बड़ी लघु लोगनि ही कै बड़े सब बातनि गात बड़ेई ॥४०॥

अभिधा ध्वनि व्यंग। प्रौढ़ा धीरा उदाहरण।

मौन धरे रंगभौन में भामतो भोर ही आवत भौंहनि अैंठी।
दूरि तैं आदर दै उठि पीठि दै दासी सों रोस कै डीठि अमैठी।
स्वावन को पग दाबन को कह्यो सुंदरि मान के मंदिर पैठी।
चित्त चलै न हलै महलै न कहूं टहलै ठहलै करै बैठी ॥४१॥

प्रौढ़ा सों नायक की उक्ति नायिका की प्रत्युक्ति।

कैसे रूठि बैठी कब रूठी धौं रुठाई किहि झूठी मति कहो मालाधारी बिरकत हौ।
माला यह लीजै मंत्र दीजै दंडवत करौ मंत्र लै रहौ न गुरुदेव सिरकत हौ।
क्रोध आंच तचे नेह पचे तो हिये कराहि तो बचन सीत जल बूंदे छिरकत हौ।
हाथ डारि सोधि देउ हाथ थिर राख्यो नाथ लीन्ही है सो साथ थो थरेई थिरकत हौ ॥४२॥

कोप व्यंग गुरुमान प्रौढ़ा अधीरा उदाहरण।

खुल खेल खिलारनि लाल भले पर छाप दै छांड़ि दए तन दै।
पट[1] पीत उतारि उढ़ाइ दियो पट लाल जरी अपनोपन दै।

अब दास पराए उदास ह्वै आए जू दाहिनो पीपर को बन दै ।
तबही बिनु मोल बिकाने है देव सु बोलत मोल लिये मन दै ।।४३।।

[१] पठ—अ० ।

अभिधा आदर अनादर व्यंग मध्यम मान प्रौढ़ा धीराधीरा उदाहरण ।

माथे महावर पांइ को देखि महावर पाइ सुढार ढुरीये ।
ओठनि पै बनिकै अंखियां अंखियां उन ओठन पीक घुरीये ।
संग ही संग बसौ उनके अंग अंग वे देव तिहारे[१] लुरीये ।
साथ मैं राखिये नाथ उन्हैं हम हाथ मैं चाहतीं चारि चुरीये ।।४४।।

[१] निहारे—अ० ।

मानवती के वाक्य नायक सों ।

अंजन अधर पीक पलक कपोल लीक सेंदुर झलक सींक भाल भरमीले से ।
एहो बलवीर बलि गई बलबीर की सौं बोलत विचल बोल सांचे सकुचीले से ।
देव हित बंधनि पढ़ाइ परबंधनि सुगंधनि बसाई प्रेम बंधन तें ढीले से ।
ढीले ढले पेंचनि छबीले छकि छाके लाल लोइन लजीले ए रसीले रस गीले से ।।४५।।

निर्मल आरसी हौं ही तिहारी सिपारसी जाके हौ ताहू बुलाऊं ।
देव दोऊ मिलि रूप अनूप निहारिये मो मैं महा सुख पाऊं ।
लाल भए, रंगि लोइन लाल सु आंजिबेहू को कपूर मंगाऊं ।
प्रेम पियूख पियो जिनको खिन ही खिन आंखिन को अन्हवाऊं ।।४६।।

हौ तुम तो जुतही जु तहीं तुम वे इतही हित ही नित तेरे ।
है कहिबेई को वे इनहों उनही के बसे सहवास बसेरे ।
मो दृग की पुतरी तुम स्याम तहां अभिराम तिन्हैं तुम हेरे ।
दच्छिन बाम मिले रहौ देव सु दच्छिन बाम दोऊ दृग मेरे ।।४७।।

प्रौढ़ा मानवतीन की उक्ति ।

सेवक जानि के सेव कराइये देव हौ आतम देव बिहारी ।
दूरि ही तें कर जोरे रहौं बरजौ न कछू वर कुंज विहारी ।
लायक हौं न कहौ हिय लाइ बुलाइ कहौ सु करौं हितकारी ।
पाइ कहौ सुख पाइ कहौ पिय पाइ कहौं उनही की तिहारी ।।४८।।

राखति जीव सदा रटि पीव सो जानत पीर पपीहा कहां को ।
देखि समुंद बढ़ै दुख दुंद समुंद सुधाजल बुंद जहां को ।
देव जू काम दुधा बकरी औ करी परि एक छरी सों न हांको ।
प्रेम घटा घुमड़े घनस्याम जितै उमड़े फिरौ भागु तहां को ।।४९।।

टेरि कहौं हमतो हियरा हरि हेरि तिहारेई हाथ हरायो ।
सो तुम लै अनतै कहूं हार्‌यो निहारि कै हारि को नाउं धरायो ।
काहू की पीर तुम्हैं न तऊ अब लोकनि मैं अवलोक लरायो ।
देव दुभाव सुभाव तज्यो न सुभाव तज्यो दुख दोष परायो ।।५०।।

अथ सखीन की सिच्छा मानिनी सों।

न्यारो न कीजिये प्यारो धनी न सदा धन काहू के भौन भर्यो रहै।
देव सु धन्य घरी घर ज्यों मुख आंखिन को खिन आइ अर्यो रहै।
तासों न कीजै अयानपनो अपनो मन को पन क्यों न पर्यो रहै।
भादों नदी पिय को अनुराग सराहिये भाग सुहाग धर्यो रहै ॥५१॥

भूलेहू सो न गमाइये हाथ तें जो गुन पाइयें साथ किये के।
देव तहां मुख मोरिये क्यों सुख जाइ सबै जग माहि जिये के।
आपु तें डोलि के बोलि बसाइये बारक खोलि किवार हिये के।
... ... ॥५२॥

सखी सों मानवती की उक्ति।

प्रेम पढ़ाइ[1] बढ़ाइ के बंधुनि दीनी बढ़ाइ चढ़ाइ किये[2] कर।
सो अभिलाख्यो न काहू सों भाख्यो इलाज सों लाज सो राख्यो हिये पर।
सांझ सखीन के मांझ हिरान्यो बिरानो भयो अब जान्यो मुझे वर।
कीनो परोसु[3] खरो सुनि देख्यो सु देव परो सु परोसिन के घर ॥५३॥

[1] बढ़ाइ—अ०। [2] कंप—मूल में, हरताल की सहायता से 'किये'—अ०। [3] खरोसु—अ०।

एहि विधि मानवतीन के धीरादिक बहु भाइ।
लघु गुरु मध्यम मानहूं व्यंग लच्छ अधिकाई ॥५३॥

इति षष्ठम विनोद।

प्रोषितपतिक वधून मैं बरन्यो बिरह प्रवास।
करुणातम करुणा मिल्यो सो सिंगाराभास ॥१॥

करुणात्मक उदाहरण।

सूर न पावत सो पदवी मुनि पूरन हौं सुमिरे अबहूं।
अंगनगारो तें जाने कहा रन रंग नगारो बजावतहूं।
देव कहै सतमंतिन सों जु सुहाग सती सो न कीजो अहूं।
नाविक दै निकसे पग पै सर पावक दै निकसे न कहूं ॥२॥

पतिनायक स्वकियानि को उपपति परकीयानि।
सामान्या बनितानि को नायक वैसिक जानि ॥३॥

लक्षण।

सुद्ध इष्ट अरु चतुर पति गुप्त सु प्रगट अनिष्ट।
पति चौविधि अनुकूल अरु क्रम दक्षिण सठ धृष्ट ॥४॥
एक नारि अनुकूल व्रत सकल तिया सम दच्छ।
सब झूठी अनुकूलता लंपट धृष्ट समच्छ ॥५॥
पति अनुकूल सु दच्छिनो उपपति सब कहुँ दच्छ।
वैसिक धृष्ट सु क्रम अधम प्रकृति देव नर रच्छ ॥६॥

अथ अनुकूल पति मुग्धा स्वीया।

राज करो हित काज न बूझत लाज अकाजनि को घर घेरेई।
तू पट घूंघट ओट किये न निहारति मारत मार दरेरेई।
नाह के नाते न हाते करो हित लोग सबै दुलही कहि टेरेई।
ऊलहै प्रेम दोऊ अनुकूल है दूलहै तो त्रिन तूल है तेरेई ॥७॥

मध्या अनुकूल उदाहरण।

लाजि मरौं गुरु लोगनि मैं इनके मन मैं सुनि आवति है घिनि।
देव कहा कहौं सेवक ह्वै रहै कैसेहूँ कोई चबाव करो किनि॥
चौंर डुलावत दाबत पाँव बिसासिनि ठाढ़ी हँसैये सवासिनि।
देखो वधू वर जोरी घनी बरजेहू मैं तो बरजोरी करो जिनि ॥८॥

प्रौढ़ा अनुकूल उदाहरण।

होत न उदास यह जाको रिन दास कहैं जान्यो देवता सु भरतार भरती रहै।
प्रेम के प्रकास छिनु छाँड़त न पासु निसिबासर निवास बिसवास डरती रहै॥
एते दुख जासु कैसे नींद परै तासु आसपास सब बैरी सो उसास भरती रहै।
कैसो रंग रास कैसो संग को बिलास जहाँ ननद सों सासु उपहास करती रहै ॥९॥

अथ दक्षिण उदाहरण।

चोरी कै राखी चुराइ घने दिन वा चितचोर दुहूंनि सों ह्वै कै।
होरी के औसर गोरी गुमानिनि आनि भिटाइ हियो हि छ्वै कै॥
आपुस मैं मनिमाल दै लाल दई बदलाई मिलाइनि ह्वै कै।
सौति दोऊ पिय प्रीति उमाहिनी पाहुनी ह्वै मिलि साहुनी ह्वै कै ॥१०॥

शठ उदाहरण।

लाज तिहारी हौं आवनि पै बलिहारी हौं देव बने कहौ कापर।
पैये कहां तुमसो बहु नायक लायक होइ कृपा करो तापर॥
पूरी करी इतहूँ उत प्रीति भले खुलि खेलत बेलत[1] पापर।
धन्य सुहाग धनी तुम सो धनि ताही को भागु दया करो जापर ॥११॥

[1] खेलत—अ०।

धृष्ट उदाहरण।

चोर हौ कि चार जोर हो जु निसिचारक हूँ सोंचन विचार हार हीरनि हिरैबे की।
आवत सवारही खुलावत किवार उठि धावत कि बार तकि बार उत जैबे की॥
जैसे पापरत तैसे पापरत देव इत आये पा परत बलिहारी बिहँसैबे की[1]।
ऐसे असुमारन कुमारनि को मारे मार-मारी हौं सुमार तुम्हैं हौंस मार खैबे की ॥१२॥

[1] चरण का पाठ—कैसे प्रार परत बलि गई बिहँसैबे की—अ०।

नायक सखा। नर्म सचिव।

हितकारी बातन चातुर सेवक होय जो ढीठ।
पीठमर्द विट चेट क्रम विदूषको सु बसीठ ॥१३॥

चारिहूँ को उदाहरण।

प्रान पियारे सों रूठि रही अपनी मति तूठि कै आपु लजौगी।
आपुही आपु मनाइ कै साजनै सेज के साजन ही को सजौगी॥
भोजन पान बिसारि कै भामिनि मान तें जोजन[1] एक भजौगी।
कालिही देखि विदूषक को मुख मान कहा अभिमान तजौगी॥१४॥

[1] मानत जोजन—अ०।

नायक की दूती।

अहे कहै क्यों न वह कौन सी कुरंगनैनी कामिनि कही है कुलकानि मैं।
लाज को जहाज बुन जोवन गरब भर्‌यो कौन कोन बूडचो सोभा सिंधु सुखदानि मैं॥
ऐंठि अठि बैठति अमैठि भृकुटी कुटिल सूधी ह्वै रहोगी वा सुधानिधि सी बानि मैं।
देव दुति पून्यो चंदहू को न गुमान रह्यो मान रहै कैसे मृदु मंद मुसकानि मैं॥१५॥

नायिका की सुहित सखी उदाहरण।

मान करि बैठी मनभावन सों मौन धरि नोखी नई मानिनि मिलावो मन त्यों नहीं।
कैसी हौ सुघर घर घरिनी निहारि देखौ घरी घरी रूसनो करति कोई यों नहीं॥
जीवहू को जीवन जनम जगमग्यो जासो ऐसी जीवतेसु बिनु जनमन त्यों नहीं।
ताहि सुख सृष्टि सों बिहारि पति क्यों नहीं दया देव दृष्टि सों निहारियत क्यों नहीं॥१६॥

मान मोचन उदाहरण।

हारी मनाइ मनावनहारि पै पीठि दै प्यारी न डीठि उकासी।
देव कहैं पिय प्यारे की ओर चितै दृग कोर मिली मृदु हांसी॥
मैन के संग मिले उठि नैन सु बैन मिलैबे की नाह निकासी।
जोवन जोर अंकोर लिये तन आइ मिल्यो मन मान मवासी॥१७॥
घूंघट घाट चलैबे की बाट चल्यो दल भामिनि भीरु अमीर सो।
चोट करी भृकुटी भट पै त्रिकुटी तट पै वर खोलत वीर सो॥
पार भयो उर भेदि बिथा बढ़ि सौतिन को तन प्रान अधीरु सो।
मैन के संग दिमान को देखि गयो छुटि मान कमान को तीर सो॥१८॥

संयोग श्रृंगार उदाहरण।

मूरति सिंगार रति रामा संग स्यामा चैत पूनो की त्रियामा ससि ज्यों निहारियत है।
तीर तीर तरुनि अनंत तारिका सी देव दिव्य दारिका सी दीपों देखि हारियत है॥
एरी उठि गैल ऐल पारी छवि छैल वा बदन दुति बसुधा सुधा सुधारियत है।
रसिक रसाल नव लाल अंग अंग पर अंग वारे कोटिक अनंग वारियत है॥१९॥

मूरति रति सिंगार कीं दंपति नवल सरूप।
जगमगात जग मैं सुभग जागत जगत अनूप॥२०॥

इति श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे कवि देव विरचिते सुमिल विनोदे सिंगार रस निरूपण नाम सप्तम विनोदः।

...उत्साह वर्धनो वीर रस उदाहरण।

धनवंत सोई धन सोई सपूत लसै जस भूप अथाइन मैं।
कर ऊँचोई जाको करोरनि बीच रहै रनदान के दाइन मैं।।
कुल जाके समीप सोई कुलदीप महीपति देव सुभाइनि मैं।
धन जाको बसै मुख भूसुर के मन जाको बसै प्रभु पाइनि मैं।।१।।

शांत रस।

अग नग नाग नर किन्नर असुर सुर प्रेत पसु पच्छी कोटि कीटनि कढ्यो फिरै।
माया गुन तत्व उपजत बिन सत सत्व काल की कला को ख्याल खाल मैं मढ्यो फिरै।
आपुही भखत भख आपु आपुही अलख देव कहूँ मूढ़ कहूँ पंडित पढ्यो फिरै।
आपुही हथ्यार आपु मारत मरत आपु आपुही कहार आपु पालकी चढ्यो फिरै।।२।।

बंधु को बंधु हितू को हितू सुत वामनि जे धन धाम भरे पर्यो।
लाखन लोग लगे अभिलाखन लाखनि भाखनि भेष भरे पर्यो।।
बूढ़ो भयो बढ़ितें ते गयो अब बैठि परौ बढ़ि तेज तरे पर्यो।
श्री महाराज गरीबनिवाज हौं आजु तिहारेई आनि गरे पर्यो।।३।।

भोग भुलाइ संजोग डुलाइ कै जोग लै लै सुनि लोग लरेई।
भूपति यों धन भार भंडार गए गड़ि दाम सु धाम धरेई।।
देव कहैं दिन चारि के ख्याल मैं खेलि गए खल खोइ खरेई।
काहू के संग कछू न गयो सब सेंत मरे अकसेत मरेई।।४।।

अंग मैं अजूत सब जग मैं सजूत देव एकै सूत मोतिन पुह्यो है बेह बेह मैं।
गहिरो गुनन गहिबे को निरगुनि गह्यो परत न गह्यो गहि रह्यो गेह गेह मैं।
हार्यो हेरि हेरि चुनि हार्यो फेरि फेरि सुनि हार्यो टेरि टेरि सु निहार्यो नेह नेह मैं।
सोखन सिरावत भिरावत सदेह मैं रहे तो देह देह मैं लहै तो देह देह मैं।।५।।

माया गुन बंधन अचानक ही आनि जुर्यो जाको नांउ ठांउ रूप रेख गुन सूनतो।
गगन मैं तारो ज्यों उज्यारो ह्वै अंध्यारो होत ताको कौन गौन भयो हेत ऐसो तूनतो।।
आवत बढ़्यो न जग जातहू घट्यो न कछू देव को विलास देव एसोई अनून तो।
एकै सौ तरंग नच्यो बीच गयो बीच ही ते आगेहू कछू न ऐसे आगेहू कछू नतो।।६।।

कथा मैं न कंथा मैं न तीरथ के पथ मैं न पाथ मैं न गाथ मैं न साथी की बसीति मैं।
जरा मैं न मुंडन न तिलक त्रिपुंडन न नदी कूप कुंडन न न्हान दान रीति मैं।।
पीठ मठ मंडल न कुंडल कमंडल मैं मल्ला दंड मैं न देव धौहरे की भीति मैं।
आपुही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो पेखिके प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं।।७।।

याही भौन भीतर रह्यो न हौं न जानो जब कौन कौन ढूंढे कौन कौन भांति लीने जानि।
इत मैं निहारे सुने नित मैं तिहारे गुन चित मैं बिहारे पै न परे प्यारे पहिचानि।
देव जू सु गहि गहि गहिबे की गोहै अब सौहै क्यों न राखो कोई भौंहैं क्यों न तानि तानि।
कैसी लाज कैसो काज कैसे धौं सखी समाज कैसो घर कैसो वूर कैसो डर कैसो कानि।।८।।

मोहि तुम्है अंतर गनै न गुरुजन तुम मेरे हौं तुम्हारिये तऊ न पिघलत हौ।
पूरि रहे या तन मैं मन मैं न आवत हौं पंच पूछि देखे कहूँ काहू ना हिलत हौ॥
ऊँचे चढ़ि रोइ कोइ देत न दिखाई देव गातन की ओट बैठे बातनि गिलत हौ।
ऐसे निरमोही महामोही मैं रहत अरु मोही तें निकरि नेकु मोही न मिलत हौ॥९॥
सखिन बिसारि लाज काज डर डारि मिली मोहि मिलो लाल डहकाए डहकत नाहिं।
पात ऐसी पातरी बिचारी चंग लहकति पाहन पवन लहकाए लहकत नाहिं॥
झिलि मिलि फूलनि फुलेल वासु फैली देव तेल की तिलाई महकारो महकत नाहिं।
जौहीं लौं न जान्यो अनजाने रही तौ हीं लौं सु अब मेरो मन बहकाए बहकत नाहिं॥१०॥
जो न जी मैं प्रेम तब कीजै व्रत नेम जब कंजमुख भूले तब संजम बिसेषिये।
आस नहीं पी की तब आसनही बाँधियतु सासन के सासन को मूँदि पति पेखिये॥
नख तें सिखा लौं सब स्याम मई बाम भई बाहिर हू भीतर न दूजो देव देखिये।
जोग करि मिलै जो वियोग होइ बालम सों ह्या न हरि होइ तब ध्यान धरि देखिये॥११॥

[इति सुमिल विनोद]